ओ३म्

ऋग्वेद

हिन्दी भाष्य

भाग-५

Scanned by CamScanner

ऋग्वेद (हिन्दी भाष्य)

(नवम् एवं दशम्-मण्डल)

नवम् मण्डल के भाष्यकर्ता पं. आर्यमुनि जी, पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ एवं पं. हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

दशम् मण्डल के भाष्यकर्ता पं. हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी

भाग (५)

प्रकाशक :

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
''दयानन्द भवन'' ३/५ आसफ अली रोड
(रामलीला मैदान) नई दिल्ली-११०००२
दूरभाष : ०११-२३२७४७७१, २३२६०६८५
टेलीफैक्स : ०११-२३२७४२१६
E-mail : sarvadeshik@yahoo.co.in
Web. : www.vedicaryasamaj.com

सृष्टि सम्वत् : १९६०८५३११५
दयानन्दाब्द : १८७
विक्रमी सम्वत् : २०६७
पुनर्मुद्रित : नवम्बर, २०१०

मूल्य : ३००/- रुपये

मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस
२०४६, सीताराम बाजार, दिल्ली-११०००६
दूरभाष : ०११-२३२३१३६६

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

चारों वेदों का सम्पूर्ण हिन्दी भाष्य पुनर्मुद्रित करके हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत हिन्दी भाष्य उसी श्रृंखला की एक कड़ी है। वेद को ऋषि दयानन्द ने ज्ञान का सूर्य बतलाकर संसार को उससे प्रकाश लेने का सन्देश दिया था।

सर्वविदित है कि वेद मानव मात्र के लिए ज्ञान का आदि स्त्रोत हैं। वेद ही संस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। प्राचीन काल से भारतीय समाज का वैयक्तिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय संगठन वेदों की दृढ़ आधारशिला पर अवलम्बित रहा है। आर्य समाज वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है अतः वेद ही सारे संसार के पथ प्रदर्शक हैं।

वर्तमान युग भौतिक युग है, इस युग में मानव में धन प्राप्ति की इच्छा अत्यन्त बलवती हो गयी है जिसके कारण धर्म तथा सच्चाई से वह कोसों दूर होता जा रहा है। चारों तरफ दम्भ तथा आडम्बर का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। ऐसी स्थिति में देश का भविष्य युवा वर्ग, धर्म तथा सत्य की शिक्षा की कमी के कारण भौतिकता की चकाचौंध में अन्धा होता जा रहा है। यह सत्य है कि वेद का स्वाध्याय जब समाप्त होने लगता है तो मानव समाज में अन्धकार व्याप्त हो जाता है। अन्ध विश्वास और अन्ध परम्पराएं मानव समाज में अपनी पैठ बना लेती हैं, जिसके कारण मानव तथा समाज की जीवनी शक्ति अवरूद्ध ही नहीं समाप्त प्राय हो जाती है।

शतपथ ब्राह्मण में वेदाध्ययन का महत्व दर्शाते हुए कहा गया है कि धन से परिपूर्ण पृथ्वी का दान करने से जितना फल प्राप्त होता है वेदों के अध्ययन से उससे भी बढ़कर अविनाशी अक्षय लोक को मनुष्य प्राप्त करता है। महर्षि दयानन्द ने कहा था, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। अतः वेद के पढ़ने-पढ़ाने का क्रम जब तक पुनः प्रारम्भ नहीं किया जायेगा तब तक हम अपने धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वेद भाष्य के इस प्रकाशन में मेरे जिन सहयोगियों की सक्रिय भूमिका रही उनमें सर्व श्री मधुर प्रकाश व ब्र. दीक्षेन्द्र आर्य का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसी तरह यदि श्री स्वामी अग्निवेश जी व स्वामी सुमेधानन्द जी का वरदहस्त एवं श्री मिठाई लाल सिंह, श्री आनन्द चौहान, श्री माया प्रकाश त्यागी, श्री आर. एस. तोमर 'एडवोकेट', प्रो. विट्ठलराव के माध्यम से श्री दयानन्द गौरी, श्री अनिल आर्य, डॉ. लक्ष्मणदाय आर्य आदि का अग्रिम आर्थिक सहयोग एवं श्री सत्यव्रत सामवेदी, श्री रामसिंह आर्य एवं श्री विरजानन्द का आश्वासन नहीं मिलता तो यह संकल्प पूरा नहीं हो सकता था। इसी तरह उन अन्य सभी आर्यजनों का भी सकारात्मक सहयोग रहा जिन्होंने अग्रिम राशि भेजकर अपने वेद के सैट बुक कराये। मैं इन सभी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। हमारी कामना है कि प्रत्येक आर्य समाज स्वाध्याय का केन्द्र बने और प्रत्येक आर्य स्वाध्यायशील हो, इसी भावना से प्रेरित होकर वेदों के पुनः प्रकाशन का महान कार्य आप सबके सहयोग से पूर्णता को प्राप्त हुआ इसके लिए आप सबको साधुवाद अर्पित करता हूँ।

ऋषि निर्वाण दिवस (दीपावली)
5 नवम्बर, 2010
नई दिल्ली

स्वामी आर्यवेश
संयोजक, सार्वदेशिक सभा संचालन समिति
"दयानन्द भवन" 3/5, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2

Scanned by CamScanner

प्राक्कथन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की संचालन समिति का कार्य हमें 19 मई, 2009 को सौंपा गया था। उस समय सभा की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। हम लोगों ने ईश्वर भरोसे कार्य प्रारम्भ किया। उधार रुपया लेकर पहले कर्मचारियों का वेतन दिया फिर दिल्ली के रामलीला मैदान में सार्वदेशिक सभा के सौ वर्ष पूरे होनें के उपलक्ष्य में भव्य आर्य महासम्मेलन किया। यह महासम्मेलन बहुत सफल रहा। इसके पश्चात् कुम्भ मेले के अवसर पर हरिद्वार में एक मास तक वेद प्रचार का पावन कार्य किया। नशामुक्ति अभियान की सर्वत्र प्रशंसा हुई। कन्या बचाओ एवं भ्रूण हत्या बन्द करने हेतु ब्रह्मचारिणी पूनम आर्या व प्रवेश आर्या के नेतृत्व में बहुत प्रशंसनीय कार्य हुआ। संचालन समिति के मंत्री स्वामी आर्यवेश जी एक मास तक वहीं रहे। उन्होंने व उनके सभी साथियों ने वहां प्रशंसनीय कार्य किया। इसके पश्चात् लगभग 70-75 आर्य विद्वानों का आर्य समाज हरिद्वार में सफल चिन्तन शिविर आयोजित किया गया। इसमें आर्य समाज के भावी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचना हुई और अब वेदों के प्रकाशन का गुरूतर कार्य आप सबके सहयोग से प्रारम्भ किया है। प्रभु इस कार्य में सफलता दें, यही प्रार्थना है। कामना यही है कि वेद घर-घर में पहुंचे जिससे अविद्या रूपी अंधकार वेदज्ञान के प्रकाश से दूर हो सके। वैदिक धर्म का सूर्य उदय होने से ही संसार का कल्याण होगा।

मनुष्य की आत्मा के सम्मुख ज्ञान प्राप्ति ही सर्वोच्च लक्ष्य है। ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है किन्तु मनुष्य का आत्मा जब अज्ञान की ओर झुकता है तो उसका पतन हो जाता है। ज्ञान का आदि स्त्रोत वेद है अतः वेद का पावन ज्ञान जब धरती पर फैलेगा तो सारे अनर्थ समाप्त हो जायेंगे। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा था "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" आर्य जन स्वाध्याय की महिमा को जानें तथा वेद को स्वयं पढ़कर अन्यों को पढ़ाएं। वर्तमान में भौतिक उन्नति की ओर ही ध्यान दिया जा रहा है, भोगवाद की आंधी में स्त्री पुरुष बहे जा रहे हैं, मर्यादाएं टूट रही हैं, यह सब तभी रूक पायेगा जब वेद का ज्ञान सभी को मिल पायेगा।

हमारी आर्यजनों से पुरजोर अपील है कि घर-घर वेद पहुंचाने का संकल्प लें। मेरी कामना है कि आर्य समाजें, आर्य शिक्षण संस्थाएं, दानी महानुभाव तुरन्त वेदों की प्रति लेनें का प्रयास करेंगे, ईश्वर आर्यों को सामर्थ्य दें और वैदिक धर्म का जय-जयकार सर्वत्र हो, यही कामना, भावना एवं ईश्वर से प्रार्थना है। वेदों के प्रचार एवं प्रसार का हमारा अभियान निरन्तर चलता रहेगा।

स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती
अध्यक्ष, सार्वदेशिक सभा संचालन समिति
"दयानन्द भवन" 3/5, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2

Scanned by CamScanner

ओ३म्

ऋग्वेद

भाषा भाष्य

Scanned by CamScanner

ओ३म्

प्रकाशकीय वक्तव्य

ऋग्वेद-भाष्य के इस खण्ड (जिसमें नवम तथा दशम मण्डल सम्मिलित हैं) के प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब के कारण वेद के स्वाध्याय-कर्त्ताओं को जो कष्ट हुआ है, उसके लिए हमें महान् खेद है।

विलम्ब का कारण यह हुआ कि जिस प्रकार अन्य भाष्य हमें प्रामाणिक एवम् अधिकारी विद्वानों का उपलब्ध हो गया था, वैसा इन दो मण्डलों पर नहीं हो सका। नवम मण्डल का कुछ भाग पं० आर्यमुनि जी का मिला तो कुछ पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ का। वह भी मध्य-मध्य में किन्हीं मन्त्रों पर नहीं था। उन मन्त्रों का भाष्य गुरुकुल विश्व विद्यालय काँगड़ी के वरिष्ठ स्नातक श्री पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार से कराया गया। इस प्रकार नवम मण्डल का भाष्य तो सम्पूर्ण हुआ और वह मुद्रित भी हो गया।

तत्पश्चात् दशम मण्डल का भाष्य भी पं० हरिश्चन्द्र जी ने ही करना प्रारम्भ किया। किन्तु दैवदुर्विपाक से कुछ ही (२०--२५) मन्त्रों का भाष्य लिखते ही उनका देहान्त हो गया। भाष्य की समस्या पुनः सामने आ खड़ी हुई। कई विद्वानों से पत्र-व्यवहार किया गया, किन्तु हम अपने प्रयत्न में सफल न हो पाये। अन्त में हमारी प्रार्थना पर आर्यजगत् के स्व-नामधन्य विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम० ए० ने दशम मण्डल का भाष्य करना स्वीकार करके बड़ी योग्यता पूर्वक लिखा। वही भाष्य दशम मण्डल का पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत है।

परम पिता परमात्मा का अतिशय धन्यवाद है कि हम अपने चारों वेदों के हिन्दी भाष्य प्रकाशित करने के इस अति कठिन महान् संकल्प को पूर्ण करने में सफल हो सके हैं।

महर्षि दयानन्द भवन,
रामलीला मैदान,
नई दिल्ली-२
१-१०-१९७६

आर्य जनता का सेवक
ओम्प्रकाश पुरुषार्थी
सभा-मन्त्री

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

दक्षिण अफ्रीका का दौरा करके लौटते ही आर्य समाज स्थापना शताब्दी की तैयारी में लगना पड़ा। परिस्थितिवश शताब्दी का उत्सव बम्बई से हटाकर दिल्ली ले जाया गया। अतः उसकी तैयारी और विशेषतः वेद सम्मेलन की तैयारी के लिए आर्य समाज स्थापना शताब्दी के आग्रह पर मुझे दिल्ली जाना पड़ा और कार्य-सम्पादन के लिए एक मास पूर्व जाना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री लाला राम गोपाल जी शाल-वाले और मन्त्री श्री ओ३म् प्रकाश जी पुरुषार्थी एवम् उपमन्त्री श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री ने अनुरोध किया कि सभा द्वारा हाथ में लिए गए वेद भाष्य के कार्य की पूर्त्यर्थ मैं दशम मण्डल का भाषा भाष्य कर दूं क्योंकि और कोई उत्तम भाष्य छापने योग्य उपलब्ध नहीं था जो सभा की आकांक्षा को पूरा कर सके। सभा के यशस्वी मन्त्री पुरुषार्थी जी पांच-छः मास पूर्व से ही यह आग्रह लगातार कर रहे थे। निश्चय आपस में बैठकर सभा में किया गया कि भाष्य होता जावे और छपता भी जावे।

मैं इस अनुरोध को टाल न सका और भाष्य करना स्वीकार कर लिया। इसका कारण एक तो यह था जो सभा-पक्ष में प्रबल था कि इस वेद भाष्य का प्रारम्भ मुझसे ही हुआ था, अतः समापन जो एक कठिन कार्य था वह भी मेरे द्वारा ही पूरा किया जावे। दूसरा कारण यह था कि दशम मण्डल पर पाश्चात्यों और उनके अनुयायी एतद्देशीय विद्वानों की आपत्तियां भी हैं और यह कठिन भी है। अतः इस पर ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि वह एक मानदण्ड की एक दिशा बने। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ करने और सभा को शीघ्र देने का विचार कर लिया।

परन्तु इस भाष्य के कार्य को प्रारम्भ न कर सका। इसका कारण एक दुर्घटना थी जिसमें प्राण बच गए--यही भगवान् की बड़ी कृपा है। २६ दिसम्बर ७५ को वेद सम्मेलन बड़ी शान के साथ सम्पन्न हुआ। इसका संयोजक मैं ही था और कार्य को बड़ी तत्परता से पूरा किया। सम्मेलन समाप्त होने पर जब मैं मंच से उतरने लगा तो मंच का एक पट्टा टूट गया और मैं शिर के बल गिर गया। बहुत बड़ा घाव शिर में हो गया। आठ टांके अस्पताल में लगे और आठ दिन अस्पताल और १५-२० दिन सभा-भवन में ही रहना पड़ा क्योंकि डाक्टरी इलाज चल रहा था।

Scanned by CamScanner

इर्विन हास्पीटल और आल इण्डिया रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ मैडिकल साईंसेज के शल्य चिकित्सा विशेषज्ञों की सलाह होने पर मैं १७ जनवरी को बड़ौदा घर पर वापस आया और घर पर फरवरी मास तक चिकित्सा होती रही। परेश कृपया सब ठीक हुआ। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ किया और इसे आज पूरा कर दिया। भाष्य के पूरा करने पर प्रसन्नता का होना स्वाभाविक है। सभा-मन्त्री श्री पुरुषार्थी बम्बई में मिले और भाष्य की पूर्ति का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् की अति कृपा से यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ।

भाष्य को महर्षि दयानन्द की प्रक्रिया से सर्वोत्तम बनाने का यत्न किया गया है। जहां मन्त्रों से वैज्ञानिक विचार झलकते थे वहां पर उनका भाष्य वैसा ही किया गया है। इस सूक्त में दार्शनिक विचारधारा के भी मन्त्र हैं उनका भली प्रकार उद्घाटन किया गया है। जिन मन्त्रों को लोग दुरूह और विना अर्थ वाला समझते थे उनका भी अर्थ करके दिखाया गया है। बहुत स्थलों पर टिप्पणी देकर समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इस भाष्य को पूरा करने में जहां मुझे पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा वहां मेरी विदुषी पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री और योग्या सुपुत्री कुमारी शर्मिष्ठा शास्त्री एम० ए० एडवोकेट ने हस्तलेख को ठीक तैयार करने आदि अनेक कार्यों में पर्याप्त सहयोग दिया। इनका यह कार्य प्रशंसनीय है। महर्षि दयानन्द का वेद सम्बन्धी कार्य फले-फूले बढ़े और सर्वत्र फैले, यही मेरी इच्छा है।

—वैद्यनाथ शास्त्री

बड़ौदा,
वि०—१५-६-१६७६

Scanned by CamScanner

* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

—:०❀:०❀:०❀०❀:—

अथ नवमं मण्डलम् ॥

—:❀:—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॑नि॒ परा॑सुव ।

यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥

अथ दशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य १–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २, ६ गायत्री । ३, ७–१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब इस मण्डल में सौम्यस्वभाव परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सो॒म धार॑या । इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (स्वादिष्ठया) आनन्द के बढ़ाने वाले (मदिष्ठया धारया) आह्लाद के वर्द्धक स्वभाव से आप हमें (पवस्व) पवित्र करें जो स्वभाव, आप का (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के (पातवे) बढ़ाने के लिए (सुतः) प्रसिद्ध है ॥१॥

भावार्थः—यों तो परमात्मा के अपहतपाप्मादि अनन्त गुण हैं, पर शान्त स्वभाव परमात्मा के शान्ति के देने वाले सौम्य स्वभावादि ही हैं, परमात्मा के सौम्यस्वभाव के धारण करने से पुरुष शान्तिसम्पन्न हो जाता है। फिर उसको अपने स्वरूप में एक प्रकार का आनन्द प्रतीत होने लगता है। जिससे एक प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है। मद यहां हर्ष का नाम है किसी मादक द्रव्य का नहीं। कई एक टीकाकारों ने इस मण्डल को मदकारक सोम द्रव्य में लगाया है वह भूल की है क्योंकि इस मण्डल में परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभावों का वर्णन है किसी द्रव्यविशेष का नहीं ॥१॥

Scanned by CamScanner

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**रक्षोहा**) राक्षसों के हनन करने वाले हो, (**विश्वचर्षणिः**) सम्पूर्ण विश्व के द्रष्टा हो, (**अभियोनिम्**) सबके उत्पत्तिस्थान हो, (**अयोऽहतम्**) किसी अस्त्र-शस्त्र से छेदन नहीं किये जाते, (**द्रुणा**) गतिशील और (**सधस्थं**) मध्यस्थरूप से (**आसदत्**) सर्वत्र स्थिर हो ॥२॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र परिपूर्ण और विश्व के द्रष्टा हो तथा पापकारी हिंसक राक्षसों के हन्ता हो; आप हमारे हृदय में आकर विराजमान हों ॥२॥

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

पदार्थः—(**वरिवोधातमः**) हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण धनों के देने वाले (**भव**) हो [वरिव इति धननामसु पठितम्, नि २।१०] । (**मंहिष्ठः**) सर्वोपरिदाता हो; (**वृत्रहन्तमः**) सब प्रकार के अज्ञानों के नाशक हो (**मघोनाम्**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के पूर्ण करने वाले हो; (**राधः**) धनों को (**पर्षि**) हमको दें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा से सब ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति होती है, और परमात्मा ही अज्ञान से बचाकर मनुष्य को सन्मार्ग में ले जाता है; इसलिए सर्वोपरि देव परमात्मा से ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**महानां**) बड़े (**देवानाम्**) विद्वानों के (**वीतिम्**) पदवी को प्राप्त कराने वाले हैं और (**अन्धसा**) धनादि ऐश्वर्य से (**अभि, वाजं**) सब प्रकार के बल को (**अभ्यर्ष**) प्राप्त करायें (**उत**) और (**श्रवः**) अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करायें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से मनुष्य देवपदवी को प्राप्त होता है, और परमात्मा की कृपा से सब प्रकार का बल मिलता है, इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त हो ॥४॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**त्वां**) तुमको (**अच्छ**) भली-भाँति (**चरामसि**) हम लोग प्राप्त हों और (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन हे परमात्मन् ! (**तव, त्वे अर्थं**) आपके लिये (**इत्**) ही (**नः**) हमारा जीवन हो यही (**आशसः**) प्रार्थना है ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो पुरुष प्रतिदिन निष्काम कर्म्म करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करते हैं, और ईश्वर से भिन्न किसी अन्य देव की उपासना नहीं करते वे परमात्मस्वरूपको प्राप्त होते हैं ।।५।।

अब रूपकालङ्कार से श्रद्धा को सूर्य्य की पुत्रीरूप से वर्णन करते हैं ।।

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ।।६।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ते**) तुम्हारे (**परिस्रुतं**) जिसका सर्वत्र प्रभाव फैल रहा है ऐसे (**सोमं**) सौम्यस्वभाव को (**सूर्य्यस्य, दुहिता**) सूर्य की पुत्री (**पुनाति**) पवित्र करती है, और (**वारेण**) बाल्यपन से (**शश्वता**) निरन्तर (**तना**) शरीर से पवित्र करती है ।।६।।

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा द्वारा ईश्वर को प्राप्त होता है वह मानो प्रकाश की पुत्री द्वारा अपने सौम्यस्वभाव को बनाता है । जिस प्रकार सूर्य्य की पुत्री उषा मनुष्यों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करती है इसी प्रकार जिन मनुष्यों के हृदय में श्रद्धा देवी का निवास है वे लोग उषा देवी के समान सब के आह्लादजनक सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करते हैं ।।६।।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।

स्वसारः पार्ये दिवि ।।७।।

पदार्थः—(**तं**) उस पुरुष को (**समर्ये**) ज्ञानयज्ञ में (**आ**) भली प्रकार (**गृभ्णन्ति**) ग्रहण करती हैं (**दश**) दश संख्यावाली (**स्वसारः**) स्वयंगतिशील (**योषणः**) वृत्तियाँ जो (**अण्वीः**) अति सूक्ष्म हैं (**पार्ये, दिवि**) प्रकाशरूप ज्ञान के भाव में दश धर्म्म के स्वरूप उसे आकर प्राप्त होते हैं ।।७।।

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा के भावों से युक्त होता है उसे धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध, ये धर्म्म के दश रूप आकर प्राप्त होते हैं । तात्पर्य्य यह है कि वेद, शास्त्र और ईश्वर पर श्रद्धा रखने वाले पुरुष को ही धार्मिक भाव आकर प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं ।।७।।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।

त्रिधातु वारणं मधु ।।८।।

पदार्थः—(**तं**) उस पुरुष को (**अग्रुवः**) उग्रगतियां (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करती हैं और (**बाकुरं**) भासमान (**दृतिं**) शरीर को (**धमन्ति**) वह पुरुष प्राप्त होता है

Scanned by CamScanner

जिसमें (त्रिधातु) तीन प्रकार से (वारणं) दूसरों का वारण करने वाला (मधु) मधुमय शरीर मिलता है ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष श्रद्धा के भाव रखने वाले होते हैं, उनके सूक्ष्म, स्थूल और कारण तीनों प्रकार के शरीर दृढ़ और शत्रुओं के वारण करने वाले होते हैं। अर्थात् शारीरिक, आत्मिक, और सामाजिक तीनों प्रकार के बल उन पुरुषों को आकर प्राप्त होते हैं जो श्रद्धा का भाव रखते हैं ॥८॥

अभी३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् ।

सोममिन्द्राय पातवे ॥९॥

पदार्थः—(इमं) उस (सोमं) सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को (शिशुं) कुमारावस्था में ही (अभि) सब प्रकार से (अघ्न्याः) अहिंसनीय (धेनवः) गौवें (श्रीणन्ति) तृप्त करती हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य की (पातवे) वृद्धि के लिए (उत) अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियां ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए संस्कृत करती हैं ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष श्रद्धा के भाव वाले हैं उनको गौ आदि ऐश्वर्य्य प्राप्त होते हैं और सदुपदेशरूपी पवित्र वाणियाँ उनकी रक्षा के लिए सदा उद्यत रहती हैं। इस मन्त्र में गौ को (अघ्न्या) = अहिंसनीय माना गया है; इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोमेध आदि यज्ञों के अर्थ किसी हिंसाप्रधान यज्ञ के नहीं; [किन्तु गावः इन्द्रियाणि, मेध्यन्ते यस्मिन् स गोमेधः, जिसमें ज्ञानयज्ञद्वारा इन्द्रियां पवित्र की जायँ उसका नाम गोमेध है।] इसी प्रकार अश्वमेध, नरमेध आदि यज्ञ भी ज्ञानप्रधान यज्ञों के ही बोधक हैं, हिंसारूप यज्ञों के बोधक नहीं ॥९॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।

शूरो मघा च मंहते ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः) विज्ञानी पुरुष (अस्येत्) इसी भाव से (विश्वा) सम्पूर्ण (वृत्राणि) अज्ञानों को (आ जिघ्नते) नाश करता है (च) और इसी श्रद्धा के भाव से (शूरः) शूरवीर (मदेषु) अपनी वीरता के मदमें मस्त होकर (मघा) ऐश्वर्यों को (मंहते) प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थः—श्रद्धा के भाव से ही विज्ञानी पुरुष अज्ञानरूपी शत्रुओं का नाश करता है और श्रद्धा के भाव से ही वीर पुरुष युद्ध में शत्रुओं को जीतता है, श्रद्धा के भाव से ही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥१०॥

नवम मण्डल में पहला सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ दशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य १–१० मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ५, ७–९ गायत्री । १० विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभावयुक्त परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

पव॑स्व देव॒वीरति॑ प॒वित्रं॑ सोम॒ रंह्या॑ ।

इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा वि॑श ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव ! और (देववीः) दिव्यगुणयुक्त परमात्मन्! आप (पवस्व) हमें पवित्र करें और (इन्दो) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! आप (इन्द्रं) ऐश्वर्य प्राप्त करायें तथा (वृषा) हे आनन्द वर्षक ! आप (रंह्या) शीघ्र ही (विश) हमारे हृदय में प्रवेश करें और (पवित्रं) पवित्र करें तथा (अति) अवश्य रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही पवित्रता प्राप्त होती है, और परमात्मा की कृपा से ही पुरुष सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है। जिस पुरुष के मन में परमात्मदेव का आविर्भाव होता है वह सौम्यस्वभाव-युक्त होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥१॥

आ व॑च्यस्व म॒हि प्सरो॒ वृषे॑न्दो द्यु॒म्नव॑त्तमः ।

आ योनिं॑ धर्ण॒सिः स॑दः ॥२॥

पदार्थः—(वृषेन्दो) हे सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (द्युम्नवत्तमः) यशस्वी (महि) महान् परमात्मन् ! आप हमें (आ) सर्वव्यापी (प्सरः) ज्ञान का (वच्यस्व) उपदेश करें क्योंकि आप (सदः) सद्विज्ञान को और (योनिं) संसार के कारणभूत प्रकृति को (आ) सब ओर से (धर्णसिः) धारण किये हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का आधार है; उसी के शासन में द्युलोक, भूलोक, स्वर्लोक इत्यादि लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं, वही इस चराचर ब्रह्माण्ड का आधार है। मनुष्य को उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥२॥

अधु॑क्षत प्रि॒यं मधु॒ धारा॑ सु॒तस्य॑ वे॒धसः॑ ।

अ॒पो व॑सिष्ट सु॒क्रतुः॑ ॥३॥

पदार्थः—वह परमात्मा (अपः) अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से (वसिष्ठ) सब को अपने वशीभूत कर रहा है वह (सुक्रतुः) सत्कर्म्मों वाला है (सुतस्य, वेधसः)

Scanned by CamScanner

अभिलषित पदार्थों का देने वाला है और (मधु, धारा) अमृत की वृष्टियों से और (प्रियं) प्रिय वस्तुओं से (अयुक्षत) परिपूर्ण करने वाला है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के गुण, कर्म्म, स्वभाव ऐसे हैं कि जिससे एकमात्र परमात्मा ही सुकर्म्मा कहा जा सकता है, अर्थात् परमात्मा के ज्ञानादि गुण और सृष्टि के रचनादि कर्म्म तथा अचल, नित्य, ध्रुवादि स्वभाव सदा एकरस हैं; इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कथन किया है कि "न तस्य कार्य्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥" (श्वे० ६।८।) न उस से मिट्टी के घट के समान कोई कार्य्य उत्पन्न होता है और न वह मिट्टी के समान अन्य किसी पदार्थ का कारण है, किन्तु वह अपनी स्वाभाविक शक्तियों से इस संसार की रचना करता हुआ सर्वकर्ता और सर्वनियन्ता कहलाता है ॥३॥

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (महान्तं) सबसे बड़े (त्वा) तुमको (महीः) पृथिवी और (आपः) जल तथा (सिन्धवः) स्यन्दनशील सब पदार्थ (अर्षन्ति) आश्रय किये हुए हैं, (यत्) क्योंकि तुम (गोभिः) अपनी शक्तियों से सब का (वासयिष्यसे) नियमन करते हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्ति में पृथिवी, जल, वायु इत्यादि सम्पूर्ण तत्त्व तथा लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं। उसी महतोभूत के आश्रित होकर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है। इसका वर्णन, "एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" "एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" इत्यादि प्रमाणों द्वारा जिसका ब्राह्मण और उपनिषदों में वर्णन किया गया है, उसी पूर्ण पुरुष का वर्णन इस मन्त्र में है। मालूम होता है कि पूर्वोक्त प्रमाण जो परमात्मा को सर्वाधार वर्णन करते हैं, वे इसी मन्त्र के आधार पर हैं ॥४॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (समुद्रः) समुद्ररूप हैं [सम्यग् द्रवन्ति आपो यस्मात् स समुद्रः=जिसकी शक्ति से जलादि सब पदार्थ सूक्ष्मभाव को प्राप्त हो

जाते हैं उनका नाम समुद्र है, इस प्रकार परमात्मा का नाम समुद्र है] और (अप्सु) सूक्ष्म पदार्थों में (ममृजे) जो अपनी शुद्ध सत्ता से विराजमान है तथा जो सब का (विष्टम्भः) थाम्भने वाला, (दिवः) द्युलोक का (धरुणः) धारण करने वाला, (सोमः) सौम्यस्वभाव और (अस्मयुः) सर्वप्रिय है वही परमात्मा (पवित्रे) सम्पूर्ण शुभ काम में पूजनीय है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबको प्यार करता है, वह सर्वाधिकरण, सर्वाश्रय तथा सर्वनियन्ता है ॥५॥

अचिंक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।

सं सूर्येण रोचते ॥६॥

पदार्थः—(हरिः) दुष्टों के दलन करने वाला और सबका (मित्रः न) मित्र के समान (दर्शतः) सन्मार्ग दिखलाने वाला और (सं) भली प्रकार (सूर्य्येण) अपने विज्ञान से (रोचते) प्रकाशमान हो रहा है; (वृषा) सर्वकामप्रद वह परमात्मा (अचिक्रदत्) सब को अपनी ओर बुला रहा है ॥६॥

भावार्थः—वह परमात्मा जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तापरूपी शत्रुओं का नाश करने वाला, मित्र की तरह सब प्राणियों का सन्मार्गप्रदर्शक तथा आत्मज्ञानद्वारा सबके हृदय में प्रकाशित है, उसी के आह्वानरूप वेदवाणियां हैं और वही परमात्मा सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला है; इस लिए उसी एकमात्र परमात्मा की शरण में सबको जाना उचित है ॥६॥

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।

याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्यप्रद परमात्मन् ! (ते) आप के (ओजसा) प्रताप से (अपस्युवः) कर्म्मबोधक (गिरः) वाणियां (मर्मृज्यंते) लोगों को शुद्ध करती हैं (याभिः) जिन के द्वारा आप (मदाय) आनन्द प्रदान के लिये (शुम्भसे) विराजमान हैं ॥७॥

भावार्थः परमात्मा अपने कर्म्मबोधक वेदवाक्यों से सदैव पुरुषों को सत्कर्म्मों में उद्बोधन करता है, जिससे वे ब्रह्मानन्दोपभोग के भागी बनें जैसा कि अन्यत्र भी वेदवाक्यों में वणन किया है "क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर यजु० ४० । १५ ।" "कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँसमाः"

Scanned by CamScanner

यजु० ४०। २।" इत्यादि वाक्यों में कर्म्मयोग का वर्णन भली भांति पाया जाता है; उसी कर्म्मयोग का वर्णन इस मन्त्र में है ॥७॥

तं त्वा मदांय घृष्वंय उ लोककृत्नुमीमहे।

तव प्रशस्तयो महीः ॥८॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (तं) उस (त्वा) तुझको (ईमहे) हम प्राप्त हों जो तू (लोककृत्नुं) सम्पूर्ण संसार का रचने वाला है। वह तू (मदाय) आनन्द की प्राप्ति (उ) और (घृष्वये) दुःखों की निवृत्ति के लिए प्राप्त हो (तव) तुम्हारी (प्रशस्तयः) स्तुतियां (महीः) पृथिवी भर में पाई जाती हैं ॥८॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप का स्तवन प्रत्येक वस्तु कर रही है, और आप सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहार करने वाले हैं। आपकी प्राप्ति से सम्पूर्ण अज्ञानों की निवृत्ति होती है इस लिये हम आप को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अस्मभ्यंमिन्दविन्द्रयुर्मध्वंः पवस्व धारंया।

पर्जन्यों वृष्टिमाँ इव ॥९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त और (इन्द्रयुः) सर्वव्यापक परमात्मन् ! (मध्वः) आनन्द की (धारया) वृष्टि से (वृष्टिमान्) वर्षा करने वाले (पर्जन्यः) मेघ के (इव) समान आप (अस्मभ्यं) हमको (पवस्व) पवित्र करें ॥९॥

भावार्थः—जिस प्रकार मेघ अपनी वृष्टि से भूमि का सिञ्चन कर देता है, इसी प्रकार हे परमात्मन् ! आप अपनी आनन्दरूप वृष्टि से हमको पवित्र तथा सिक्त करें ॥९॥

गोषा इंन्दो नृषा अंस्यश्वसा वांजसा उत।

आत्मा यज्ञस्यं पूर्व्यः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (यज्ञस्य) सम्पूर्ण यज्ञों के (पूर्व्यः) आदि कारण हैं। आप हमको (गोषाः) गायें (अश्वसाः) घोड़े (वाजसाः) अन्न (नृषाः) मनुष्य (उत) और (आत्मा) आत्मिक बल--इन सब वस्तुओं के देने वाले (असि) हो ॥१०॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों फलों की प्राप्ति होती है। जिन पर आप कृपालु होते हैं, उनको हृष्ट-

Scanned by CamScanner

पुष्ट गौ और बलीवर्द तथा उत्तमोत्तम घोड़े एवं नाना प्रकार की सेनायें इत्यादि अभ्युदय के सब साधन देते हैं। और जिन पर आपकी कृपा होती है उन्हीं को आत्मिक बल देकर यम नियमों द्वारा संयमी बनाकर निःश्रेयस प्रदान करते हैं ॥१०॥

नवम मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य १–१० शुनःशेप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १० गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब पूर्वोक्त परमात्मदेव के गुणों का कथन करते हैं ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥१॥

पदार्थः—(एषः देवः) जिस परमात्मदेव का पूर्व वर्णन किया गया वह (अमर्त्यः) अविनाशी है (आसदम्) सर्वत्र व्याप्त होने के लिए वह परमात्मा (अभि, द्रोणानि) प्रत्येक ब्रह्माण्ड को (पर्णवीः) विद्युत् शक्ति के (इव) समान (दीयति) प्राप्त है ॥१॥

भावार्थः—[दीव्यतीति देवः=जो सबको प्रकाश करे उसको देव कहते हैं] सर्वप्रकाशक देव अनादिसिद्ध और अविनाशी है, उसकी गति प्रत्येक ब्रह्माण्ड में है। वही परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का करने वाला है, उसी की उपासना सबको करनी चाहिये ॥१॥

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥२॥

पदार्थः—(एषः देवः) यह पूर्वोक्त देव (विपा) मेधावी विद्वानों ने (अति) विस्तार से (कृतः) वर्णन किया है [विप इति मेधाविनामसु पठितम् [नि० ३।१५।] (अदाभ्यः) उपासना किया हुआ (पवमानः) यह पवित्र देव (ह्वरांसि) उपासकों के हृदय में (धावति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा का विद्वान् लोग वर्णन करते हैं वह उपासना करने से उपासकों के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होता है ॥२॥

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥३॥

पदार्थः—(एष देवः) यह पूर्वोक्त देव (विपन्युभिः, ऋतायुभिः) सत्यवक्ता विद्वानों द्वारा (पवमानः) पवित्र वर्णन किया गया है; (हरिः) इस सब दुःखों को दूर

Scanned by CamScanner

करने वाले परमात्मदेव की (वाजाय) ज्ञानयज्ञ के लिए (मृज्यते) उपासना की जाती है ॥३॥

भावार्थः—जिस पूर्णपुरुष को विद्वान् लोग इन्द्रियागोचर कथन करते हैं, वही पूर्ण पुरुष ज्ञानयज्ञद्वारा ज्ञानियों को ज्ञानगम्य होकर उपास्यभाव को प्राप्त होता है ॥३॥

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥४॥

पदार्थः—(**एषः**) यह पूर्वोक्त देव (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**वार्या**) धनों का (**सिषासति**) विभाग करता है । (**इव**) जिस प्रकार (**शूरः**) शूरवीर (**सत्वभिः**) अपने पराक्रमों से (**यन्**) आक्रमण करता हुआ सच-झूठ का निपटारा कर देता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मदेव अपने ऐश्वर्यों का विभाग पात्र-अपात्र समझ कर करता है । जिसको वह अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है उसको ऐश्वर्य देता है और जिसको अपात्र समझता है उससे ऐश्वर्य हर लेता है । जिस प्रकार पात्र अपनी बनावट और अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से उपादेय वस्तु का पात्र बनता है उसी प्रकार पुरुष भी अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव से पात्रता को प्राप्त होता है, वा यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्म्मों से वह उपादेय वस्तु को प्राप्त होने योग्य बनता है ॥४॥

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥५॥

पदार्थः—(**एष, देवः**) यह परमात्मदेव (**पवमानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**रथर्यति**) सदा सबका शुभ चाहता है और (**दशस्यति**) मनोवाञ्छित फलों की प्राप्ति कराता है तथा (**वग्वनुं**) सत्य को (**आविष्कृणोति**) प्रकट करता है ॥५॥

भावार्थः—वही परमात्मा सबके लिए पवित्रता का धाम है । सब लोग आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक पवित्रताएँ उसी से प्राप्त करते हैं, इस लिये वही परमदेव एकमात्र उपासनीय है ॥५॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥६॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**विप्रैः**) मेधावी लोगों के द्वारा (**अभिष्टुतः**) वर्णन किया गया है [विप्र इति मेधावि नामसु पठितम् (निरु० ३।१९।१५)] (**अपो, देवः**) कर्मों का अध्यक्ष है (**विगाहते**) सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला है (**दाशुषे**) यजमानों को (**रत्नानि**) नाना प्रकार के धन (**दधत्**) देवे ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—विद्वान् लोग जिस परमात्मा का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं वही इन्द्रियागोचर और एकमात्रज्ञानगम्य परमात्मा सर्वाधार, सर्वकर्त्ता, अजर, अमर और कूटस्थनित्य है इसी की उपासना सब को करनी चाहिये ॥६॥

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया। पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (दिवं) द्युलोक को (वि) नाना प्रकार से (रजांसि) परमाणुपुञ्ज के (धारया) प्रबल वेगों से (तिरो, वि, धावति) ढक देता है (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (कनिक्रदत्) अपनी प्रबलगति से सर्वत्र गर्ज रहा है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा नाना प्रकार के परमाणुओं से द्युलोकादि लोक-लोकान्तरों को आच्छादन करता है और अपनी सत्तासे सर्वत्र विराजमान हुआ सब को शुभ मार्ग की ओर बुला रहा है ॥७॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥८॥

पदार्थः—(एषः) वही परमात्मा (दिवं) द्युलोक को (व्यासरत्) प्राप्त है; (रजांसि) परमाणुओं में लोकलोकान्तरों को (तिरः) आच्छादन करके(अस्पृतः) अविनाशी भाव से (पवमानः) पवित्र और (स्वध्वरः) अहिंसकरूप से विराजमान है ॥८॥

भावार्थः —वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमात्मा सर्वत्र विराजमान है, और उसी की सत्ता से सब लोकलोकान्तर परिभ्रमण करते हैं ॥८॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥९॥

पदार्थः—(एषः, देवः) यह परमात्मा (प्रत्नेन) अनादि काल से [प्रत्नमिति पुराणनामसु पठितम् (निरु० ३।२०।२७)] (जन्मना) आविर्भाव से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (सुतः) सुप्रसिद्ध (हरिः) सब दुःखों का हरने वाला (पवित्रे) मनुष्य के पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है ॥९॥

भावार्थः—जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हैं और परमात्मा के निष्पापादि भावों को धारण करते हैं उनके हृदय में परमात्मा आकर प्रकट होता है ॥९॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१०॥

पदार्थः—(स्यः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (पुरुव्रतः) अनन्तकर्मा है (जज्ञानः) सर्वत्र प्रसिद्ध (इषः) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ

Scanned by CamScanner

(सुतः) स्वसत्ता से विराजमान (एषः) यही (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टि की धाराओं से (पवते) सबको पवित्र करता है ॥१०॥

भावार्थः—जो परमात्मा अनन्तकर्म्मा है वही अपनी शक्ति से सब लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न करता है और वही अपनी पवित्रता से सबको पवित्र करता है ।

अनन्तकर्म्मा, यहाँ परमात्मा को उसकी अनन्त शक्तियों के अभिप्राय से वर्णन किया है, किसी शारीरिक कर्म के अभिप्राय से नहीं ॥१०॥

नवम मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य १–१० हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ३, ४, १० गायत्री । २, ५, ८, ६, निचृद् गायत्री । ६, ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा से अभ्युदय के लिए विजय, और आत्मसुख के लिए निःश्रेयस की प्रार्थना का वर्णन करते हैं ॥

सना॑ च सोम॒ जेषि॑ च॒ पव॑मान॒ महि॒ श्रवः॑ ।

अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (महिश्रवः) सर्वोपरिदाता (च) और (पवमान) पवित्र आप (जेषि) पापियों का नाश करो (च) किन्तु सदा के लिए (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) कल्याण दें, (सन) और हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों के दाता हैं । जिन लोगों को अधिकारी समझते हैं उनको अभ्युदय, नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, और जिसको मोक्ष का अधिकारी समझते हैं उसको मोक्ष-सुख प्रदान करते हैं ॥१॥

सना॒ ज्योतिः॒ सना स्व१॒र्विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा ।

अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (सन, ज्योतिः) सदा ज्योतिः-स्वरूप हो (च) और (सन, स्वः) सदा सुखस्वरूप हो (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) सौभाग्यदायक वस्तुएँ आप हमको दें (अथ) और (नः) हमको (वस्यसस्कृधि) मुक्ति-सुख दें ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है उसी की कृपा से नाना विधि के सौभाग्य मिलते हैं और मोक्षसुख मिलता है ॥२॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोममृधो जहि ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**क्रतुम्**) हमारे शुभ कर्म्मों की आप (**सन**) रक्षा करें (**अथ**) और (**मृधः**) पाप कर्म्मों को (**अप, जहि**) हमसे दूर करें (**उत**) और (**दक्षम्**) सुनीति और (**वस्यसः**) मुक्ति (**कृधि**) सदा करो ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्ध भाव से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके पापकर्म्मों को हरलेता है, और नाना प्रकार के चातुर्य्य उनको प्रदान करता है ॥३॥

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

पदार्थः—(**पवीतारः**) हे विद्वान् लोगो ! तुम (**इन्द्राय, पातवे**) ऐश्वर्य्याधिकारी पुरुष के लिए (**सोमं**) सौम्यस्वभाव वाले परमात्मा का (**पुनीतन**) वर्णन करो (**अथ**) और यह प्रार्थना करो कि (**नः**) हमको वह परमात्मा (**वस्यसस्कृधि**) मोक्षसुख का भागी बनायें ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जब किसी पुरुष को दीक्षित करें तो शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मा का सब से प्रथम उपदेश करें। तदनन्तर अभ्युदय और निःश्रेयस का विस्तृत उपदेश करके इस सांसारिक यात्रा में दक्ष बनायें ॥४॥

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (नः) हमको (**सूर्य्ये**) ज्ञानप्रदान के लिए (**आभज**) आकर प्राप्त हो । (**क्रत्वा**) यज्ञों द्वारा (**अथ तव, ऊतिभिः**) और अपनी रक्षा द्वारा (नः) हमको (**वस्यसस्कृधि**) सुखी बनाएं ॥५॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप ज्ञान और कर्मद्वारा हमारी सर्वदा रक्षा करें और ऐहिक तथा पारलौकिक सुख से हमको सदैव सम्पन्न करें ॥५॥

Scanned by CamScanner

तव॒ क्रत्वा॒ तवो॒तिभि॒र्ज्योक्प॑श्येम॒ सूर्य॑म् ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! हम (**तव, क्रत्वा**) आपके कर्मयोग (**तवोतिभिः**) और ज्ञानयोग द्वारा सदैव (**सूर्य्यं**) आपके प्रकाशस्वरूप को (**ज्योक्**) निरन्तर (**पश्येम**) अनुभव करें (**अथ**) और (**नः**) हमारे (**वस्यसः**) कल्याण को (**कृधि**) करिये ॥६॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुष अपने आत्मभूत सामर्थ्य से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करके सदैव आनन्द का लाभ करते हैं ॥६॥

अ॒भ्य॑र्ष स्वायुध॒ सोम॑ द्वि॒बर्ह॑सं र॒यिम् ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥७॥

पदार्थः—(सोम) [सूते चराचरं जगदिति सोमः परमात्मा=जो चराचर जगत् को उत्पन्न करे उसका नाम यहां सोम है] हे जगदुत्पादक परमात्मन् ! आप हमको (**रयिं**) ऐश्वर्य (**अभ्यर्ष**) प्रदान करें जो ऐश्वर्य (**द्विबर्हसं**) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में सर्वोपरि है (**स्वायुध**) आप सब प्रकार से अज्ञान के दूर करने वाले हैं, इस लिए (**नः**) हमारे अज्ञान का नाश करके हमको (**वस्यसस्कृधि**) आनन्द प्रदान करें ॥७॥

भावार्थः—स्वप्रकाश परमात्मा अज्ञान को निवृत्त करके सदैव सुखका प्रकाश करता है ॥७॥

अ॒भ्य१॑र्षान॑पच्युतो र॒यिं स॒मत्सु॑ सास॒हिः ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥८॥

पदार्थः—(**अनपच्युतः**) वह कूटस्थ नित्य परमात्मा (**रयिम्, अभ्यर्ष**) अपने भक्तों को ऐश्वर्य्य प्रदान करता है (**अथ**) और (**समत्सु**) संग्रामों में (**सासहिः**) अन्याय-कारी शत्रुओं को पराजित करके अपने भक्तों को (**वस्यसस्कृधि**) सुख प्रदान करता है ॥८॥

भावार्थः—जो लोग न्यायशील हैं उनको परमात्मा विजयी बनाता है और अन्यायकारी दुरात्माओं का सदैव दमन करता है ॥८॥

त्वां य॒ज्ञैर॑वीवृध॒न्पव॑मान॒ विध॑र्मणि ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**पवमान्**) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**त्वां**) आप को (**यज्ञैः**) उपासनादि यज्ञों द्वारा (**अवीवृधन्**) उपास्य बनाते हैं (**विधर्मणि**) पापीय विषयों से आप हमारी रक्षा करें (**अथ**) और (**वस्यसस्कृधि**) आनन्द के भागी बनायें ॥६॥

भावार्थः - हे परमात्मन् ! आप सब को पवित्र करने वाले हैं। हम आप की उपासना करते हैं। आप पापों से हमारी रक्षा करके आनन्द के भागी बनायें ॥६॥

र॒यिं न॑श्चि॒त्रम॒श्विन॒मिन्दो॑ वि॒श्वायु॒मा भ॑र ।

अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥१०॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**नः**) हमको (**चित्रम्**) नाना प्रकार के (**अश्विनम्**) सर्वत्र व्याप्त होने वाले ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें (**अथ**) और (**विश्वम्, आयुम्**) सब प्रकार की आयु को (**रयिम्**) धन से भरपूर करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिन पुरुषों को ऐश्वर्य के पात्र समझता है उनको प्रत्येक आयु में ऐश्वर्यों से और ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण करता है ॥१०॥

नवम मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ एकादशर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य १–११ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः–१, २, ४-६ गायत्री । ३, ७ निचृद् गायत्री । ८ निचृद- नुष्टुप् । ६, १० । अनुष्टुप् । ११ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः १–७ षड्जः । ८–११ गान्धारः ॥

अब परमात्मा की स्वतःप्रकाशता का वर्णन करते हैं ॥

समि॑द्धो वि॒श्वत॒स्पति॒ः पव॑मानो॒ विरा॑जति ।

प्री॒णन्वृषा॒ कनि॑क्रदत् ॥१॥

पदार्थः—(**समिद्धः**)जो सर्वत्र प्रकाशमान है, (**विश्वतस्पतिः**) सब प्रकार से जो स्वामी है, (**पवमानः**) पवित्र करने वाला परमात्मा (**विराजति**) सर्वत्र विराजमान हो रहा है (**प्रीणन्**) वह सब को आनन्द देता हुआ (**वृषा**) सब कामनाओं का पूरक (**कनिक्रदत्**) अपने विचित्र भावों से उपदेश करता हुआ हम को पवित्र करे ॥१॥

भावार्थः—इस संसार में परमात्मा ही केवल ऐसा पदार्थ है जो स्व- सत्ता से विराजमान है अर्थात् जो परसत्ता की सहायता नहीं चाहता । अन्य

Scanned by CamScanner

प्रकृति तथा जीव परमात्मसत्ता के अधीन होकर रहते हैं । इसी अभिप्राय से परमात्मा को यहाँ समिद्ध कहा गया है; अर्थात् स्वप्रकाशरूपता से वर्णन किया गया है ॥१॥

तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति ।

अन्तरिक्षेण रारंजत् ॥२॥

पदार्थः—(**तनूनपात्**) [तनूं न पातयतीति तनूनपात् अर्थात् जो सब शरीरों को अधिकरण रूप से धारण करे उसका नाम यहाँ तनूनपात् है] वह परमात्मा (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला है (**शृङ्गे, शिशानः**) जो कूटस्थनित्य है और (**अर्षति**) सर्वत्र व्याप्त है और (**अन्तरिक्षेण, रारंजत्**) जो द्युलोक और पृथिवीलोक के अधिकरण रूप से विराजमान हो रहा है वह परमात्मा हमको पवित्र करे ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा को क्षेत्रज्ञरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य पदार्थों में परमात्मा कूटस्थ रूपता से विराजमान है । इस भाव को उपनिषदों में यों वर्णन किया है कि "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्" बृ. ३।७।१ जो परमात्मा पृथिवी में रहता है और पृथिवी जिसको नहीं जानती तथा पृथिवी उसका शरीर और वह शरीरी रूप से वर्तमान है ॥२॥

ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् ।

मधोर्धाराभिरोजसा ॥३॥

पदार्थः—(**ईळेन्यः**) उपासनीय परमात्मा (**पवमानः**) जो शुद्धस्वरूप है (**रयिः**) "राति सुखमिति रयिः"=जो सब प्रकार के सुखों को देने वाला है, वह (**मधोर्धाराभिः**) आनन्द की वृष्टि से तथा (**ओजसा**) प्रभावशाली प्रताप से (**विराजति**) विराजमान है और वह परमात्मा (**द्युमान्**) प्रकाशस्वरूप है ॥३॥

भावार्थः—उपासक को चाहिये कि वह उपास्यदेव की उपासना करे । जो स्वप्रकाश और सबको पवित्र करने वाला तथा आनन्द की वृष्टि से सब को आनन्दित करता है वही धारणाध्यानादि योगज वृत्तियों से साक्षात् करने योग्य है ॥३॥

बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन्हरिः ।

देवेषु देव ईयते ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**बर्हिः**) [बृंहतीति बर्हिः]=सब से बड़ा परमात्मा जो (**ओजसा**) अपने प्रकाश से सबको (**पवमानः**) पवित्र करता है और (**प्राचीनम्**) प्रवाह रूप से अनादि संसार को (**स्तृणन्**) कार्य्यरूप करता हुआ (**हरिः**) अन्त में [हरतीति हरिः] अपने में लय कर लेता है (**देवेषु**) सब दिव्य वस्तुओं में (**देवः**) [दीव्यतीति देवः]=जो सर्वोपरि दीप्तिमान् है वह ध्यान द्वारा (**ईयते**) साक्षात्कार किया जाता है ॥४॥

भावार्थः—वह देव जो सब दिव्य वस्तुओं में दिव्य स्वरूप है वही एक मात्र उपासनीय है, अन्य नहीं ॥४॥

उदातैर्जिहते बृहद्द्वारो देवीर्हिरण्ययीः ।

पवमानेन सुष्टुताः ॥५॥

पदार्थः—(**देवीः, हिरण्ययीः**) प्रकृति की दिव्य शक्तियां जो धनादि ऐश्वर्यों के देने वाली हैं वे (**पवमानेन**) पूज्य परमात्मा के साथ (**सुष्टुताः**) वर्णन की हुई (**बृहद्द्वारः**) ऐश्वर्य का मूल होती हैं और (**आतैः**) उनके विज्ञान से विज्ञानी लोग दिशाओं द्वारा (**उद् जिहते**) सर्वत्र फैल जाते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग प्रकृति-पुरुष की विद्या को जानते हैं कि परमात्मा निमित्त कारण और प्रकृति संसार का उपादान कारण है अर्थात् प्रकृति में ही नाना प्रकार की विद्याओं के बीज भरे पड़े हैं उसके तत्त्वज्ञान से वे लोग सब दिशाओं में फैल सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों के विज्ञान से होते हैं एक के विज्ञान से नहीं ॥५॥

अब पूर्वोक्त परमात्मा की उपासनार्थ उषःकाल का महत्त्व कथन करते हैं ॥

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति ।

नक्तोषासा न दर्शते ॥६॥

पदार्थः—(**नक्तोषासा**) रात्रि और उषःकाल (**दर्शते**) परमात्मा की उपासना करने योग्य हैं (**सुशिल्पे**) और सुन्दर-सुन्दर कलाकौशलादि विद्याओं के अनुसन्धान करने योग्य हैं (**बृहती**) बड़े और (**मही**) पूज्य अर्थात् सफल करने योग्य हैं। इन कालों में (**पवमानः**) उपास्यमान परमात्मा (**वृषण्यति**) सब कामनाओं को देता है और जो इस प्रकार के उपासक नहीं उनकी कामनाओं को (**न**) नहीं पूर्ण करता ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि उषःकाल अपने स्वाभाविक धर्म से ऐसा उत्तम है कि ऐसा अन्य कोई काल नहीं, इसमें मनुष्य की ईश्वरो-

Scanned by CamScanner

पासना की ओर स्वाभाविक रुचि होती है इस लिए इस ब्रह्ममुहूर्त का वर्णन वेदों में बहुधा आता है । इसी भाव को लेकर मनु आदि ग्रन्थों में "ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत" इत्यादि कहा है कि ब्राह्ममुहूर्त में उठे और परमात्मा का चिन्तन करे ॥६॥

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे ।

पवमान इन्द्रो वृषा ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्रः) "इरामन्नाद्यैश्वर्यं ददातीतीन्द्रः" परमात्मा जो इरा=अन्नादि ऐश्वर्यों को दे उसका नाम इन्द्र है और (**वृषा**) वह इन्द्ररूप परमात्मा, "वर्षतीति वृषा" जो सब कामनाओं को देने वाला है, (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला है, उस परमात्मा को (**उभा**) दोनों (**देवा**) दिव्य शक्तियों वाले जो कर्मयोग और ज्ञानयोग हैं (**नृचक्षसा**) और ईश्वर के साक्षात् कराने वाले (**होतारा**) अपूर्व सामर्थ्य देने वाले ज्ञान तथा कर्म द्वारा (**दैव्या**) जो दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं उनसे मैं (**हुवे**) परमात्मा का साक्षात्कार करता हूँ ॥७॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष जैसा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है इस प्रकार अन्य कोई भी नहीं कर सकता । क्योंकि कर्म द्वारा मनुष्य शक्ति बढ़ा कर ईश्वर की दया का पात्र बनता है और ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार करता है । इसी अभिप्राय से "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" कठ. २।२३ ॥ अर्थात् बहुत पढ़ने-पढ़ाने से परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता, किन्तु जब पुरुष सत्कर्मी बनकर अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाता है तो वह उसको लाभ करता है । पात्र से तात्पर्य यहां अधिकारी का है और वह अधिकारी ज्ञान तथा कर्म दोनों से उत्पन्न होता है केवल ज्ञान से नहीं, इसका नाम समसमुच्चय है अर्थात् ज्ञानयोग तथा कर्मयोग दोनों साधनों से सम्पन्न होने पर जिज्ञासु परमात्मा को लाभ करता है अन्यथा नहीं ॥७॥

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।

इमं नो यज्ञमागमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥८॥

पदार्थः—(**भारती**) "बिभर्त्तीति भरतस्तस्येयं भारती"=ईश्वरविषयिणी बुद्धि (**सरस्वती**) "सरो विद्यतेऽस्या इति सरस्वती"=त्रिविधज्ञानविषयिणी बुद्धि और (**इळा, मही**) सर्वपूज्या बुद्धि (**तिस्रः,**) ये तीनों प्रकार की (**सुपेशसः, देवीः**)

सुन्दर बुद्धियां (**पवमानस्य**) सब को पवित्र करने वाले परमात्मा के (**इमं, यज्ञम्**) इस ज्ञानरूपी यज्ञ में (**नः**) हमको (**आगमन्**) प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ज्ञानयज्ञ में विद्याप्राप्ति के लिए प्रार्थना करो। इसी अभिप्राय से उक्त मन्त्र में विद्या-विधायक भारती, सरस्वती और इला के नाम आये हैं। भारती, सरस्वती और विद्या ये एकार्थवाची शब्द हैं। इस प्रकार परमात्मा ने विद्यावृद्धि के लिए जीवों की प्रार्थना द्वारा उपदेश किया है। जैसा कि "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस वेदमन्त्र में विद्यावृद्धि का उपदेश है ऐसा ही उक्त मन्त्र में विद्यावृद्धि के लिए उपदेश है ॥८॥

त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑न॒मा हु॑वे ।

इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒: पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः ॥९॥

पदार्थः—(**त्वष्टारम्**) "त्वक्षतीति त्वष्टा"=जो इस सृष्टि को प्रलय काल में परमाणुरूप कर देता है उसका नाम त्वष्टा है (**अग्रजाम्**) अग्रे जाता अग्रजा"=जो सबसे प्रथम हो अर्थात् सबका आदिमूल कारण हो उसका नाम अग्रजा है (**गोपाम्**) "गोपायतीति गोपाः"=जो सर्वरक्षक हो उसका नाम यहां गोपा है (**पुरोयावानम्**) जो सर्वाग्रणी है उस देव को (**आहुवे**) हम उपास्य समझें। वही देव (**इन्दुः**) सबको प्रेमभाव से आर्द्र करने वाला (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यवाला (**वृषा**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (**हरिः**) और सब दुःखों को हर लेने वाला (**पवमानः**) पवित्रात्मा और (**प्रजापतिः**) सब प्रजा का पालन करने वाला है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय-कर्ता पुरुष-विशेष का इस ज्ञान-यज्ञ में उपास्य रूप से निर्देश किया है और त्वष्टादि द्वितीयान्त इस लिए हैं कि उपासनात्मक क्रिया के ये सब कर्म हैं अर्थात् इनकी उपासना उक्त यज्ञ में की जाती है ॥९॥

अब उक्त यज्ञ में उपासनीय परमात्मा के गुण कथन करते हैं ॥

वन॒स्पतिं॑ पवमान॒ मध्वा॒ सम॑ङ्ग्धि॒ धार॑या ।

स॒हस्र॑वल्शं॒ हरि॑तं॒ भ्राज॑मानं हिर॒ण्ययम् ॥१०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**मध्वा, धारया**) सुवृष्टि से (**वनस्पतिम्**) इस वनस्पति को (**समङ्ग्धि**) सींचें, जो वनस्पति (**सहस्रवल्शं**) अनन्त प्रकार की है, (**हरितं**) हरे रंगवाली है, (**भ्राजमानं**) नाना प्रकार से देदीप्यमान है और (**हिरण्ययं**) सुन्दर ज्योति वाली है ॥१०॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा से प्रार्थना है कि वह चराचर ब्रह्माण्डगत वनस्पति का सिञ्चन करे। इस स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा परमात्मा के वृष्टि-कर्तृत्व भावका निरूपण किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदमन्त्रों में "कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः" अथ० ३।६।२७।५। इत्यादि स्थलों में वनस्पति को परमात्मा का ग्रीवास्थानी वर्णन किया है। इसी प्रकार वनस्पति को विराट्स्वरूप की शोभा वर्णन करते हुए ईश्वर से स्वभावसिद्ध प्रार्थना है ॥१०॥

विश्वे॑ दे॒वाः स्वाहा॑कृतिं॒ पव॑मानस्या ग॑त ।

वा॒युर्बृह॒स्पतिः॒ सूर्यो॒ऽग्निरिन्द्रः॑ स॒जोष॑सः ॥११॥

पदार्थः—(**पवमानस्य**) सर्वपूज्य परमात्मा की (**स्वाहाकृतिं**) सुन्दरवाणी को (**वायुः**) सर्व विद्याओं में गति वाला (**बृहस्पतिः**) सुन्दर वक्ता (**सूर्य्यः**) दार्शनिक तत्वों का प्रकाशक (**अग्निः**) प्रतिभा शाली (**इन्द्रः**) विद्यारूपी ऐश्वर्यवाला (**विश्वे, देवाः**) ये सब विद्वान् (**सजोषसः**) परस्पर प्रेमभाव रखने वाले (**आगत**) इस ज्ञान रूपी यज्ञ में आकर उपस्थित हों ॥११॥

भावार्थः—इस सूक्त के उपसंहार में विद्वानों की संगति कथन की है कि उक्तगुणसम्पन्न विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ में आकर विविधप्रकार के ज्ञानों को उपलब्ध करें। तात्पर्य यह है कि इस मन्त्र में ज्ञानयज्ञ को सर्वोपरि वर्णन किया है। वस्तुतः ज्ञानयज्ञ सर्वोपरि है। इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप!" हे शत्रुतापक अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञों से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है ॥११॥

नवम मण्डल में ५वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षष्ठसूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३–६, ९ गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा से बल और आह्लाद की प्रार्थना की जाती है ॥

म॒न्द्रया॑ सोम॒ धार॑या॒ वृषा॑ पवस्व देव॒युः । अव्यो॒ वारे॑ष्वस्म॒युः ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप (**मन्द्रया**) आह्लाद करने वाली (**धारया**) वृष्टि से (**पवस्व**) हमको पवित्र करें, क्योंकि आप

(वृषा) सब कामनाओं के देने वाले हैं। (देवयुः) देवताओं के प्रिय हैं और (वारेषु, अव्यः) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों में व्यापक हैं। आप (अस्मयुः) हमको प्राप्त होकर आनन्दित करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विराजमान है। दैवी सम्पत्तिवाले लोग उसको पा सकते हैं। इस अभिप्राय से परमात्मा को इस मन्त्र में देवप्रिय कथन किया गया है। वस्तुतः परमात्मा न किसी का प्रिय और न किसी का द्वेषी है ॥१॥

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर। अभि वाजिनो अर्वतः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रेममय (इन्द्र) परमात्मन्! आप (त्यं, मदं, मद्यम्) उस आह्लादजनक अपने प्रेममय मद की (अभि क्षर) वृष्टि करें, जो (अभि, वाजिनः) सब बलकारक वस्तुओं में से हमारे योग्य है (अर्वतः) और जो ऐश्वर्य द्वारा सर्वत्र व्याप्त कराने वाला है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वोपरि हर्षजनक परमात्मा के प्रेम की प्रार्थना की गयी है ॥२॥

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ। अभि वाजमुत श्रवः ॥३॥

पदार्थः—(पवित्र) हे सबको पावन करने वाले परमात्मन्! आप (त्यं, पूर्व्यं, मदं) उस नित्यानन्द को (सुवानः) प्रदान करने वाले हैं जिससे मनुष्य सदैव के लिए आनन्दलाभ करता है इसलिए आप (अभि, वाजं) सब प्रकार का बल (उत) और (श्रवः) ऐश्वर्य हमको (अर्ष) प्रदान करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में आनन्दस्वरूप परमात्मा से सब प्रकार के बल और ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥३॥

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन्। पुनाना इन्द्रमाशत ॥४॥

पदार्थः—(द्रप्सासः) गतिशील परमात्मा (इन्दवः) ऐश्वर्यसम्पन्न (अनु) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (प्रवता, आपः, न) बहते हुए जलों के समान (असरन्) गति करता है। उक्त परमात्मा (पुनानाः) पवित्र करता हुआ (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आशत) देता है ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार सर्वत्र बहते हुए जल इस पृथिवी को नाना प्रकार के लतागुल्मादिकों से सुशोभित करते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक प्राणों में आह्लाद उत्पन्न करता है ॥४॥

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश। वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**यं**) जिस (**अत्यं**) सर्वव्यापक परमात्मा को (**योषणः, दश**) दश प्रकार की प्रकृतियां (**वाजिनम्, इव**) जीवात्मा के समान (**मृजन्ति**) शोभायुक्त करती हैं वह जीवात्मा जो (**वने**) शरीर रूपी वन में (**क्रीळन्तम्**) क्रीड़ा कर रहा है और (**अत्यविम्**) इन्द्रियसंघात से परे है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय ये दशों मिल कर जीवात्मा की महिमा को बढ़ाते हैं इसी प्रकार पांच सूक्ष्म भूत और स्थूलभूत ये दोनों प्रकृतियां मिल कर परमात्मा के महत्त्व को वर्णन करते हैं। कई एक लोगों ने दश के अर्थ यहां दश अंगुलियां दी हैं; उनके मत में सोम रस दश अंगुलियों से लपेट कर खाया जाता है। इस लिए दश से उन्होंने दश अंगुलियां ली हैं। पहले तो यह बात अन्यथा है कि सोमरस अंगुलियों से खाया जाता है क्योंकि सोमरस पीने की चीज है खाने की नहीं। अन्य युक्ति यह है कि इस मण्डल के प्रथम सूक्त मं० ७ में "गृभ्णन्ति योषणा दश" यह पाठ आया है, जिससे दश इन्द्रियों का ग्रहण किया गया है, अंगुलियों का नहीं ॥५॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥६॥

पदार्थः—(**तम्**) उक्त परमात्मा को (**वृषणम्**) जो कामनाओं का देने वाला है, (**मदाय**) आह्लाद के लिए (**रसम्**) रसरूप है, (**देववीतये**) ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए (**भराय**) धारण करने के लिए (**सुतम्**) स्वतःसिद्ध उस परमात्मा को (**संसृज**) ध्यान का विषय बनाओ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तू सर्वोपरि ब्रह्मानन्द के देने वाले ब्रह्म को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उसके साथ अपनी चित्तवृत्तियों का योग कर। इसका नाम आध्यात्मिक योग है। रसके अर्थ यहां ब्रह्म के हैं किसी रसविशेष के नहीं क्योंकि "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" (तै० २।७।) अर्थात् वह ब्रह्म आनन्दस्वरूप है और उसके आनन्द को लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥७॥

पदार्थः—(**देवः**) "दीव्यतीति देवः"=प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**देवाय**) दिव्यशक्तिधारी (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य वाले जिज्ञासु के लिए (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पवते**) पवित्र करता है वह (**सुतः**) आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है (**यत्**) क्योंकि (**अस्य**) इस पूर्वोक्त जिज्ञासु को (**पयः**) पानार्ह आनन्द को (**पीपयत्**) पिलाता है इसलिए वह आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है ॥७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा ही सब आनन्दों का आविर्भाव करने वाला है। वह जिन पुरुषों को ब्रह्मानन्द का पात्र समझता है उनको आनन्द प्रदान करता है। यहां देव शब्द के अर्थ परमात्मा और दूसरे देव शब्द के अर्थ जिज्ञासु के—"स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" (ब्र० सू० २।३।५।) इस सूत्र से ब्रह्मशब्द के समान हैं अर्थात् "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति" तै० ३।२। इस वाक्य में पहले ब्रह्म शब्द के अर्थ ईश्वर के हैं, दूसरे ब्रह्मशब्द के अर्थ तप के हैं, जिस प्रकार इसमें एक ही स्थान में दो अर्थ हो जाते हैं उसी प्रकार उक्त मन्त्र में देव शब्द के दो अर्थ करने में कोई दोष नहीं ॥७॥

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः ।

प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥८॥

पदार्थः—पूर्वोक्त परमात्मा (**यज्ञस्य, आत्मा**) यज्ञ का आत्मा है (**सुष्वाणः**) सर्वप्रेरक और (**सुतः**) आनन्द का आविर्भावक (**रंह्या**) सर्वत्र गति रूप से (**पवते**) पवित्र करता है वही परमात्मा (**प्रत्नं, काव्यम्**) प्राचीन काव्य की (**निपाति**) रक्षा करता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा सब यज्ञों का आत्मा है अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि कोई भी यज्ञ उसकी सत्ता के बिना नहीं हो सकता। इसी अभिप्राय से ब्रह्मज्ञान की कई एक पुस्तकों में परमात्मा को अधियज्ञ रूप से वर्णन किया है। इस मन्त्र में जो काव्य शब्द आया है वह 'कवते इति कविः' इस व्युत्पत्ति से ज्ञानी का अभिधायक है और 'कवेः कर्म काव्यम्' इस प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा की रचना रूप वेद का नाम यहां काव्य है, किसी आधुनिक काव्य का नहीं। तात्पर्य यह है कि वह अपने ज्ञानरूपी, वेद-काव्य द्वारा उपदेश करके सृष्टि की रक्षा करता है ॥८॥

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये ।

गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (**गुहा**) आपने अपनी ज्ञानरूपी गुहा में (**गिरः**) वेदरूपी वाणियों को (**दधिषे**) धारण किया है (**चित्**) क्योंकि (**इन्द्रयुः**) आप ऐश्वर्य के चाहने वाले हैं इसलिए (**वीतये**) ऐश्वर्य के लिए (**मदं, मदिष्ठ**) उनके द्वारा हमारे आनन्द को बढ़ाइये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान में वेद सदैव रहते हैं; आदिसृष्टि में परमात्मा लोकोपकार के लिए उनका आविर्भाव करता है। इसी अभिप्राय

Scanned by CamScanner

से यहां काव्य अर्थात् वेद को प्रत्न अर्थात् सनातन विशेषण दिया है । वेदों के नित्य मानने का भी यही प्रकार है अर्थात् प्रत्येक सर्ग के आदि में परमात्मा अपने ज्ञानरूप वेदों का आविर्भाव करता है और प्रलय काल में परमात्मा के ज्ञानरूप से वेद विराजमान रहते हैं ॥९॥

नवम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य १--९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५--९ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ विराड्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा को अनेक धर्मों का आधार कथन करते हैं ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।

विदाना अस्य योजनम् ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दवः**) विज्ञानी पुरुष (**अस्य**) इस परमात्मा के (**योजनम्**) सम्बन्ध को (**विदाना**) जानते हुए (**सुश्रियः**) अनन्त प्रकार की शोभाओं को धारण करते हैं (**ऋतस्य**) और इस सत्यरूप परमात्मा के (**धर्मन्**) धर्म में रहते हुए (**असृग्रम्**) अच्छे गुणों का लाभ करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध को जानते हैं और परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को जानकर उसके धर्मपथ पर चलते हैं वे संसार में ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१॥

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।

हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥२॥

पदार्थः—(**हविष्षु**) 'हूयते गृह्यत इति हविः' सम्पूर्ण ग्रहणयोग्य पदार्थों में से जो (**हविः**) सर्वोपरि ग्राह्य है और (**वन्द्यः**) सम्पूर्ण विश्व से वन्दनीय है वह (**अग्रियः**) अग्रणी परमात्मा (**मध्वः, धाराः**) मीठी धाराओं से (**महीः**) पृथिवीलोक तथा (**अपः**) द्युलोक को (**विगाहते**) अवगाहन करता है ॥२॥

भावार्थः—सर्वजनवन्दनीय परमात्मा लोकलोकान्तरों में सर्वत्र ही अपने आनन्द की वृष्टि करता है ॥२॥

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने ।

सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अध्वरः) "न ध्वरतीत्यध्वरः अध्वानं राति वा अध्वरः" हिंसावर्जित हैं और सत्य का रास्ता दिखलाने वाले हैं, (सत्यः) सत्यस्वरूप हैं, (वृषा) कामनाप्रद तथा (अग्रियः) सबसे अग्रणी और (प्रयुजः, वाचः) उपयुक्त वाणी के बोलने वाले हैं (वने, सद्म, अभि) याज्ञिक उपासनाओं में (अव, चक्रदत्) उपास्य ठहराये जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सत्यस्वरूप अर्थात् त्रिकालाबाध्य है, ऐसे सत्यादि पदों से उपनिषदों में "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ये लक्षण किये गए हैं ॥३॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति ।

स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

पदार्थः—वह परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है [कवते जानाति सर्वमिति कविः" जो सबको जाने उसका नाम कवि है] और (नृम्णा) ऐश्वर्यों को (वसानः) धारण करने वाला (पर्यर्षति) सर्वत्र प्राप्त है (स्वर्वाजी) आनन्दरूप बलवाला है तथा (काव्या, सिषासति) कवित्वरूप कर्मों के प्रचार की इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सबको धारण करने वाला और सर्वव्यापक है, उसीकी उपासना करनी चाहिये ॥४॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।

यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥

पदार्थः—(पवमानः) [पवते, इति पवमानः] सबको पवित्र करने वाला (अभिस्पृधः) सबको मर्दन करके विराजमान है (विशः राजा, इव सीदति) प्रजाओं को राजा के समान अनुशासन करता है, (यद्, ईम्) भली भांति (ऋण्वन्ति) सत्कर्मों में प्रेरणा करता है और (वेधसः) सर्वोपरि बुद्धिमान् है ॥५॥

भावार्थः—राजा की उपमा यहां इस लिए दी गई है कि राजा का शासन लोकप्रसिद्ध है । इस अभिप्राय से यहां राजा का दृष्टान्त है, ईश्वर के समान बलसूचना के अभिप्राय से नहीं और जो मन्त्र में बहुवचन है वह व्यत्यय से है ॥५॥

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।

रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

पदार्थः—वह परमात्मा (अव्यः, वारे) [अव्यते प्रकाशते इति अविर्म्वादि-लोकः]प्रकाश वाले लोकों में (परि, सीदति) रहता है, (प्रियः) सर्वप्रिय है,(हरिः) सब

Scanned by CamScanner

के दुःखों को हरण करने वाला है, (वनेषु) उपासनादि भक्तियों में उसी की उपासना से (मती, वनुष्यते) बुद्धि निर्मल होती है (रेभः) वेदादि शब्दों का प्रकाशक है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों में व्यापक है और भक्तों की बुद्धि में विराजमान है अर्थात् जिसकी बुद्धि उपासनादि सत्कर्मों से निर्मल हो जाती है उसी की बुद्धि में परमात्मा का आभास पड़ता है ॥६॥

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।

रणा यो अस्य धर्मभिः ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो पुरुष (अस्य, धर्मभिः) इस परमात्मा के धर्मों को धारण करता हुआ (रणा) रमण करता है (सः) वह (वायुम्) ज्ञानी यज्ञकर्मा पुरुष के और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवाले पुरुष के (अश्विना) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष के (साकम्) साथ (मदेन) अभिमान से (गच्छति) चल सकता है ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों को धारण करता है वह ज्ञानी विज्ञानी आदिकों की सब पदवियों को प्राप्त होता है अर्थात् अभिमान के साथ वह ज्ञानी विज्ञानी विद्वानों के मद को मर्दन कर सकता है ॥७॥

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।

विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

पदार्थः—जिन विद्वानों की (मध्वः, ऊर्मयः) मीठी वृत्तियाँ (भगम्) ईश्वर के ऐश्वर्य की ओर लगती हैं तथा (मित्रावरुणा) ईश्वर के प्रेम और आकर्षणरूप शक्ति की ओर लगती हैं वे (विदाना) विज्ञानी (अस्य, शक्मभिः) इस परमात्मा के आनन्द से (आ, पवन्ते) सम्पूर्ण संसार को पवित्र करते हैं ॥८॥

भावार्थः—ईश्वरपरायण लोग केवल अपने आप का ही उद्धार नहीं करते किन्तु अपने भावों से सम्पूर्ण संसार का उद्धार करते हैं ॥८॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।

श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक के मध्य में (मध्वः वाजस्य) बड़े बल की (सातये) प्राप्ति के लिये (रयिम्) धन (श्रवः) ऐश्वर्य (वसूनि) रत्न (सञ्जितम्) हमको आप दें ॥९॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा जब प्रसन्न होता है तो नाना प्रकार की विभूतियाँ प्रदान करता है क्योंकि जो विभूतियाँ हैं वह सब परमात्मा का ऐश्वर्य है। जैसा कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम्" (गीता)। अर्थात् जो कुछ विभूति वाली या शोभा वाली वा बल वाली वस्तु है वह सब परमात्मा के ऐश्वर्य की सूचक है ॥९॥

नवम मण्डल में यह ७वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य अष्टमसूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ८ निचृद्गायत्री। ३, ४, ७ गायत्री। ६ पाद निचृद्गायत्री। ९ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त सोमस्वभाव परमात्मा से कामनाओं की सिद्धि कथन करते हैं ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।

वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा की (**अभिप्रियम्, कामम्**) अभीष्ट-कामनाओं को (**अक्षरन्**) देता हुआ (**वीर्यम्**) उसके बल को (**एते, सोमाः**) उक्त परमात्मा (**वर्धन्तः**) बढ़ाता है ॥१॥

भावार्थः—"बलमसि बलं मे देहि वीर्यमसि वीर्यं मे देहि" अथ० २।३।१७। जिस प्रकार इस मन्त्र में परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है उसी प्रकार इस मन्त्र में भी परमात्मा से बल वीर्यादिकों की प्रार्थना है ॥१॥

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।

ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थः—(**पुनानासः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**चमूषदः**) जो प्रत्येक सैनिक बल में रहता है (**अश्विना**) प्रत्येक कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को तथा (**वायुम्**) गतिशील विद्वान् को (**गच्छन्तः**) जो प्राप्त है (**ते**) वह परमात्मा (**नः**) हमको (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल (**धान्तु**) धारण कराये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी परमात्मा से बल की प्रार्थना की गई है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।

ऋतस्य योनिमासदम् ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**ऋतस्य, योनिम्**) हे परमात्मन् ! आप सत्यरूपी यज्ञ के कारण हो; (**आसदम्**) प्रत्येक सत्यवादी के हृदय में स्थिर हो; (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**हार्दि**) अभिलषित कामनाओं की सिद्धि के लिये (**इन्द्रस्य**) इस जीवात्मा की (**राधसे**) ऐश्वर्य के लिए (**चोदय**) आप प्रेरणा करें क्योंकि (**पुनानः**) आप सब को पवित्र करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—सत्य का स्थान एकमात्र परमात्मा ही है। इसी अभिप्राय से "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसः" इस मन्त्र में यह लिखा है कि दीप्तिमान परमात्मा से ऋत और सत्य अर्थात् ऋत शास्त्रीयसत्य, और सत्य वस्तुगत-सत्य ये दोनों प्रकार के सत्य परमात्मा के आधार पर ही स्थिर रहते हैं। इस अभिप्राय से यहां परमात्मा को ऋत की योनि कहा गया है। योनि के अर्थ यहां कारण के हैं ॥३॥

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वा, दश, क्षिपः**) तुम को पांच सूक्ष्म भूत और पांच स्थूलभूत (**मृजन्ति**) ऐश्वर्यसम्पन्न करते हैं और (**सप्त, धीतयः**) महदादि सात प्रकृतियाँ तुम्हें (**हिन्वन्ति**) गति रूप से वर्णन करती हैं (**अनु**) इस के पश्चात् (**विप्राः**) मेधावी लोग आप को उपलब्ध करके (**अमादिषुः**) हर्षित होते हैं ॥४॥

भावार्थः—पाँच सूक्ष्म और पाँच स्थूलभूत उसकी शुद्धि व ऐश्वर्य का कारण इस अभिप्राय से वर्णन किये गए हैं कि उन्हीं भूतों के कार्यरूप इन्द्रिय-कर्म और ज्ञान द्वारा उसको उपलब्ध करते हैं और उस उपलब्धि को पाकर विद्वान् लोग आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥४॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥

पदार्थः—(**मेष्यः**) अज्ञान की वृत्तियां (**सृजानम्**) संसार के रचने वाले तुमको (**अति**) अतिक्रमण कर जाती हैं (**देवेभ्यः, त्वा**) दिव्य वृत्तियों वाले देवताओं के लिए तुम्हारा (**कम्**) आनन्द (**मदाय**) आह्लाद के लिए हो ताकि हम आपको (**सम्**) भली प्रकार (**गोभिः**) इन्द्रियों द्वारा (**वासयामसि**) निवास दें ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष अज्ञानी हैं उनकी बुद्धि का विषय ईश्वर नहीं होता। इस लिए कहा गया है कि उनकी बुद्धि को अतिक्रमण कर जाता है और जो लोग शुद्ध इन्द्रियों वाले हैं वह लोग उसको बुद्धि का विषय बना कर आनन्द को उपलब्ध करते हैं ॥५॥

Scanned by CamScanner

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।

परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**वस्त्राणि, अरुषः**) विद्युत् के समान तेजमय वस्त्रों को धारण करता हुआ (**आ**) प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर रख कर (**कलशेषु**) प्रत्येक ब्रह्माण्ड में आप व्यापक होकर (**पुनानः**) सबको पवित्र कर रहा है और (**हरिः**) सबके दुःखों को हरने वाला (**गव्यानि, पर्यव्यत**) प्रत्येक पृथिव्यादि ब्रह्माण्डों को आच्छादन कर रहा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है इसी लिये उसको हरि रूप से कथन किया है । वह परमात्मा विद्युत् के समान गतिशील होकर सब को चमत्कृत करता है, उसी की ज्योति को ज्ञानवृत्ति द्वारा उपलब्ध करके योगी आनन्दित होते हैं ॥६॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।

इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य वाले परमात्मन् ! आप (**मघोनः**) हमको ऐश्वर्यसम्पन्न करें (**आ, पवस्व**) और सब प्रकार से पवित्र करें (**विश्वा,**) सब (**अप-द्विषः**) दुष्टों का नाश करें और (सखायम्, आविश) सज्जनों को सर्वत्र फैलायें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! इस प्रकार के प्रार्थनारूप भाव को हृदय में उत्पन्न करो कि तुम्हारे सत्कर्मी सज्जनों की रक्षा हो और दुष्टों का नाश हो ॥७॥

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।

सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (**दिवः**) द्युलोक से (**वृष्टिं, परि, स्रव**) वृष्टि द्वारा (द्युम्नम्) अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिए और (**पृथिव्याः, अधि**) सर्वत्र पृथिवी पर (नः) हमको (सहः) बल देकर (पृत्सु, धाः) युद्धों में विजयी करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मविश्वासी होते हैं परमात्मा उनको युद्धों में विजयी और धनादि ऐश्वर्यों से नानाविध ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥८॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः हे परमात्मन् ! **(इन्द्रपीतम्,)** विद्वानों के द्वारा गृहीत किये गए **(नृचक्षसम्)** सर्वद्रष्टा [नॄन् चष्टे पश्यति यःस नृचक्षास्तम्] **(स्वर्विदम्)** सर्वज्ञ **(त्वाम्)** आपकी कृपा से **(प्रजाम्, इषम्)** संसार के ऐश्वर्य को **(भक्षीमहि)** भोगें ॥९॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों के सदुपदेश से सर्वज्ञत्वादि गुणयुक्त परमात्मा की उपासना करते हैं वे संसार के आनन्द को भोगते हैं ॥९॥

नवम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य १---९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३--५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभाव परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि॑ प्रि॒या दि॒वः क॒विर्वयां॑सि न॒प्त्यो॑र्हि॒तः ।

सु॒वा॒नो या॑ति क॒विक्र॑तुः ॥१॥

पदार्थः—**(कविक्रतुः)** सर्वज्ञ **(सुवानः)** सब को उत्पन्न करने वाला **(नप्त्योः, हितः)** जीवात्मा और प्रकृति का हित करने वाला **(कविः)** मेधावी **(वयांसि)** व्याप्तिशील **(दिवः प्रिया)** द्युलोक का प्रिय **(परि, याति)** सर्वत्र व्याप्त रहता है ॥१॥

भावार्थः—"न पततीति नप्ती" जिसके स्वरूप का नाश न हो उसका नाम यहां नप्ती है। इस प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का नाम यहां नप्ती हुआ। इन दोनों का परमात्मा हित करने वाला है अर्थात् प्रकृति को ब्रह्माण्ड की रचना में लगा कर हित करता है और जीव को कर्मफल-भोग में लगा कर हित करता है। "वियन्ति व्याप्नुवन्ति इति वयांसि" जो सर्वत्र व्याप्त हो उसको वयस् कहते हैं और बहुवचन यहां ईश्वर के सामर्थ्य के अनन्तत्वबोधन के लिये आया है। तात्पर्य यह निकला कि जो प्रकृति पुरुष का अधिष्ठाता और संसार का निर्माता तथा विधाता है उस को यहां कविक्रतु आदि नामों से वर्णन किया है ॥१॥

प्रप्र॒ क्षया॑य॒ पन्य॑से॒ जना॑य॒ जुष्टो॑ अ॒द्रुहे॑ ।

वी॒त्य॑र्ष॒ चनि॑ष्ठया ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! **(पन्यसे)** जो पुरुष कर्मयोगी है तथा **(अद्रुहे)** जो किसी के साथ द्वेष नहीं करता **(जनाय)** ऐसे मनुष्य के हृदय में आप **(प्र, प्र क्षयाय)**

अत्यन्त विराजमान होते हैं (च) और (वीती) उसकी तृप्ति के लिए (विष्ठया, जुष्टः) ऐश्वर्य की धारा से संयुक्त होकर (अर्ष) ऐश्वर्य दें ॥२॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक हैं तथापि ऐश्वर्य के प्रदाता होकर उन्हीं पुरुषों के हृदय में विराजमान हो रहे हैं जो पुरुष कर्मयोगी और रागद्वेष से रहित हैं, इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह रागद्वेष के भाव से रहित होकर निष्काम भाव से सदैव कर्मयोग में लगा रहे ॥२॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥३॥

पदार्थः—(सः) वह कर्मयोगी पुरुष (शुचिः) पवित्र है; (महान्) विशालात्मा है (ऋता, वृधा) यज्ञ के बढ़ाने वाले (मही) महान् (जाते) विश्व के उत्पन्न करने वाले (मातरा) जो माता पिता रूप द्युलोक और पृथिवी लोक हैं उनका (जातः, सूनुः) वह सच्चा पुत्र है (अरोचयत्) और वह कर्मयोग से उनको ऐश्वर्यसम्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः—द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में कर्मयोगी ही एक ऐसा पुरुष है जो अपने कर्मों द्वारा संसार को प्रकाशित करता है। इसी अभिप्राय से उसको द्युलोक और पृथिवीलोक का सच्चा पुत्र कहा गया है ॥३॥

स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः ।
या एकमक्षि वावृधुः ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (सप्त, नद्यः) इडा, पिंगलादि सात नाड़ियों को "नदन्तीति नद्यः" (धीतिभिः) 'धीयते सर्वकर्मसु इति धीतिर्बुद्धिः' जब बुद्धि की वृत्तियों से (हितः) धारण किया जाता है तो (अजिन्वत्) योग द्वारा तृप्त करता है (याः, अद्रुहः) जो नाडियाँ स्वकर्तव्य पालन करती हुई (एकम्, अक्षि) उस एक अविनाशी परमात्मा को (वावृधुः) प्रकाशित करती हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया गया है। भाव यह है कि जब पुरुष अपने प्राणायाम द्वारा इडा पिंगलादि नाड़ियों को तृप्त कर देता है तो वह उस अभ्यास से एकाग्रचित्त होकर अविनाशी परमात्मा के भाव को अनुभव करता है ॥४॥

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यशालिन् ! परमात्मन् ! (**तव, व्रते**) तुम्हारे व्रत की पूर्ति के लिए (**इन्दुं**) जीवात्मा को (**युवानम्**) जो नित्य नूतन है (**सन्तम्**) सत्कर्मी (**अस्तृतम्**) जो अच्छेद्य है उसको (**ताः**) वे (**अभि**) भलीभाँति योगजबुद्धिवृत्तियाँ (**महे**) महत्त्व की प्राप्ति के लिए (**आदधुः**) धारण करती हैं ॥५॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष अपने निष्काम कर्म द्वारा उस तत्त्व को प्राप्त होता है जिसको योग में एकतत्त्वाभ्यास लिखा है अर्थात् उस तत्त्व की प्राप्ति के लिए कर्मयोगी होना आवश्यक है ॥५॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः ।

क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

पदार्थः—जो (**अमर्त्यः**) मृत्युरहित है (**वह्निः**) प्रकाशमान है (**वावहिः**) जो सबका प्रेरक है (**सप्त, देवीः**) भूम्यादि सात प्रकृतियाँ (**अतर्पयत्**) जिसको वर्णन करती हैं । (**क्रिविः**) जो सद्गुणों से भरा हुआ है वह (**पश्यति**) सबको अपनी ज्ञान-दृष्टि से देखता है ॥६॥

भावार्थः—जो परमात्मा महत्त्वादि सात प्रकार की प्रकृतियों से अलंकृत किया हुआ है और जिसको धारणा ध्यानादि बुद्धि की सात वृत्तियाँ विषय करती हैं वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, एकमात्र उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥६॥

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या ।

तानि पुनान जङ्घनः ॥७॥

पदार्थः—हे (**सोम**) सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! आप (**तमांसि**) अज्ञानों को और जो (**योध्या**) युद्ध करने योग्य हैं (**तानि**) उनको (**जङ्घनः**) हनन करो (**पुनान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**पुमन्,**) हे पूर्ण पुरुष (**नः**) हमारी (**कल्पेषु**) सब अवस्थाओं में (**अव**) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य का परम शत्रु एकमात्र अज्ञान ही है, जो पुरुष अज्ञानरूपी शत्रु को नहीं जीतता वह शूरवीर व विजयी कदापि नहीं कहला सकता। बहुत क्या, पुरुष में पुरुषत्व यही है कि वह अज्ञानरूपी शत्रु को जीत कर अभ्युदय और निःश्रेयस रूपी फलों को लाभ करे। इस अभिप्राय के लिए उक्त मन्त्र में अज्ञान के जीतने की परमात्मा से प्रार्थना की गई, और अज्ञानरूपी शत्रु की शत्रुता का वर्णन "पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान-नाशनम् ।" गीता के इस श्लोक में सुप्रसिद्ध है कि हे जीव ! तू ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले परम शत्रु अज्ञान का सब से पहले नाश कर ॥७॥

Scanned by CamScanner

नु नव्यंसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद्रोचया रुचंः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नव्यसे) नूतन जीवन बनाने के लिए (नु) निश्चय करके (नवीयसे, सूक्ताय) नयी वाणियों के लिए (साधया, पथः) हमारे लिए रास्ता खोलो और (प्रत्नवत्) पहले के समान (रुचः) अपनी दीप्तियाँ (रोचया) प्रकाशित करो ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने जीवन को नित्य नूतन बनाना चाहे उसका कर्तव्य है कि वह परमात्मा की ज्योति से देदीप्यमान होकर अपने आप को प्रकाशित करे, और नित्य नूतन वेदवाणियों से अपने रास्तों को साफ करे अर्थात् वेदोक्त धर्मों पर स्वयं चले और लोगों को चलाये ॥८॥

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (महि, श्रवः) हमको सर्वोपरि आनन्द प्रदान करो और (गाम्, अश्वम्) गौ अश्वादि नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन (रासि) आप हमको दें । और (वीरवत्) वीरता धर्म वाले मनुष्य (सना) दें (मेधाम्) बुद्धि और (स्वः) स्वर्ग (सना) दें ॥९॥

भावार्थः—जिस जाति वा धर्म पर परमात्मा की अत्यन्त कृपा होती है उसको परमात्मा नाना प्रकार के ऐश्वर्य के साधन प्रदान करता है और शुद्ध बुद्धि तथा सर्वोपरि आनन्द प्रदान करता है ॥९॥

नवम मण्डल में नवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानःसोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८ निचृद्गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा को यज्ञरूप से वर्णन करते हैं ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) चराचर संसार का उत्पादक उक्त परमात्मा (राये) ऐश्वर्य के लिए (अक्रमुः) सदा उद्यत है (रथाः, इव) अति शीघ्र गति करने वाले

Scanned by CamScanner

विद्युदादि के समान (प्र, स्वानासः) जो प्रसिद्ध है और जो (अर्वन्तः, नः) गतिशील राजाओं के समान (अवस्यवः) ऐश्वर्य देने को सदा उद्यत है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार बिजली की जागृतिशील ध्वनि से सब पुरुष जागृत हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के शब्द से सब लोग उद्बुद्ध हो जाते हैं, अर्थात् परमात्मा नाना प्रकार के शब्दों से पुरुषों को उद्बोधन करता है, और जिस प्रकार न्यायशील राजा अपनी प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करता है इसी प्रकार वह सत्कर्मी पुरुषों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥१॥

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणामिव ॥२॥

पदार्थः—(रथा इव) विद्युत् के समान (गभस्त्योः, दधन्विरे) अपनी चमत्कृत रश्मियों को धारण किये हुए हैं। (हिन्वानासः) सदैव गतिशील हैं और (कारिणाम्, इव) कर्मयोगियों के समान सदैव सत्कर्म के (भरासः) भार उठाने को समर्थ हैं ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार कर्मयोगी सत्कर्म को करने में सदैव तत्पर रहता है इसी प्रकार संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्मों में परमात्मा सदैव तत्पर रहता है अर्थात् उक्त कर्म उस में स्वतःसिद्ध और अनायास होते रहते हैं। इसी अभिप्राय से ब्राह्मणग्रन्थों में उसे "सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः" ऐसा प्रतिपादन किया है कि सर्व प्रकार के कर्म और सब प्रकार के गन्ध तथा रस उसी से अपनी-अपनी सत्ता को लाभ करते हैं ॥२॥

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥३॥

पदार्थः—(राजानः, न) राजाओं के समान (सोमासः) साम्यस्वभाव वाला परमात्मा (गोभिः) अपनी प्रकाशमय ज्योतियों से (अञ्जते) प्रकाशित होता है (यज्ञः न) जिस प्रकार यज्ञ (सप्त, धातृभिः) ऋत्विगादि सात प्रकार के होताओं से सुशोभित है इसी प्रकार परमात्मा प्रकृति की विकृति महदादि सात प्रकृतियों से संसारावस्था में सुशोभित होता है ॥३॥

भावार्थः—संसार भी एक यज्ञ है और इस यज्ञ के कार्यकारी ऋत्विगादि होता प्रकृति की शक्तियाँ हैं। जब परमात्मा इस बृहत् यज्ञ को करता है तो प्रकृति की शक्तियाँ उसमें ऋत्विगादि का काम करती हैं। कि इसी अभिप्राय से यह कथन किया है "तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः" "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये" (यजु: ३१।९) कि उस पुरुष-

Scanned by CamScanner

मेधयज्ञ को करते हुए ऋषि लोग सर्वद्रष्टा परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं । इस प्रकार परमात्मा का इस मन्त्र में यज्ञ रूप से वर्णन किया है । इसी अभिप्राय से "यज्ञो वै विष्णुः" (शत०) इत्यादि वाक्यों में परमात्मा को यज्ञ कथन किया है ॥३॥

परि॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा ।

सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या ॥४॥

पदार्थः—(परि, सुवानासः) संसार को उत्पन्न करता हुआ (इन्दवः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (बर्हणा, गिरा) अभ्युदय देने वाली वेदवाणी द्वारा (सुताः) वर्णन किया हुआ (धारया) अमृत की वृष्टि से (मदाय, अर्षति) आनन्द को देता है ॥४॥

भावार्थः—द्युभ्वादि अनेक लोकों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा अपनी पवित्र वेदवाणी द्वारा हमको नानाविध आनन्द प्रदान करता है ॥४॥

आ॒पा॒नासो॑ वि॒वस्व॑तो॒ जन॑न्त उ॒षसो॒ भग॑म् ।

सू॒रा अण्वं॒ वि त॑न्वते ॥५॥

पदार्थः—(आपानासः) सब दुःखों का नाश करने वाला (विवस्वतः) सूर्य से (उषसः, भगम्) उषारूप ऐश्वर्य को (जनन्तः) उत्पन्न करता हुआ (सूराः) गतिशील (अण्वम्) सूक्ष्मप्रकृति का (वितन्वते) विस्तार करता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से अथवा यों कहो कि परमाणुओं से सृष्टि को उत्पन्न करता है और सूर्यादि प्रकाशमय ज्योतियों से उषारूप ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ संसार के दुःखों का नाश करता है ॥५॥

अप॒ द्वारा॑ मती॒नां प्र॒त्ना ऋ॑ण्वन्ति का॒रवः॑ ।

वृष्णो॒ हर॑स आ॒यवः॑ ॥६॥

पदार्थः—(वृष्णः) सब कामनाओं के दाता परमात्मा की (हरसे) पाप की निवृत्ति के लिए उपासना करने वाले (आयवः) मनुष्य (कारवः) जो कर्मयोगी हैं (प्रत्नाः) जो अभ्यास में परिपक्व हैं वह (मतीनाम्) बुद्धि के (अप, द्वारा) जो कुत्सित मार्ग हैं उनको (ऋण्वन्ति) मार्जन कर देते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो कर्मयोगी लोग कर्मयोग में तत्पर हैं और ईश्वर की उपासना में प्रतिदिन रहते हैं वह अपनी बुद्धि को कुमार्ग की ओर कदापि

Scanned by CamScanner

नहीं जाने देते । तात्पर्य यह है कि कर्मयोगियों में अभ्यास की दृढ़ता के प्रभाव से ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है कि उनकी बुद्धि सदैव सन्मार्ग की ओर ही जाती है, अन्यत्र नहीं ॥६॥

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः ।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥७॥

पदार्थः—(सप्त, जामयः) यज्ञकर्म में संगति रखने वाले सात (होतारः) होता लोग (समीचीनासः) यज्ञकर्म में जो निपुण हैं वे (एकस्य, पदम्) एक परमात्मा के पद को जब (आसते) ग्रहण करते हैं तो वे (पिप्रतः) यज्ञ को सम्पूर्ण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो लोग एक परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं के सब कामों की पूर्ति होती है । तात्पर्य यह है कि ईश्वरपरायण लोगों के कार्यों में कदापि विघ्न नहीं होता ॥७॥

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा ।
कवेरपत्यमा दुहे ॥८॥

पदार्थः—(कवेः) उस सर्वज्ञ क्रान्तकर्मा परमात्मा के (अपत्यम्) ऐश्वर्य को (आ, दुहे) मैं प्राप्त करूँ और (नाभिम्) [नह्यति बध्नाति चराचरं जगदिति नाभिः] जो चराचर जगत् को नियम में रखता है उसको (नाभा, नः) अपने हृदय में (आददे) ध्यानरूप से स्थित करूं, जो (सूर्ये, चित्) सूर्य में भी (चक्षुः सचा) चक्षुरूप से संगत है ॥८॥

भावार्थः—उक्त कामधेनु रूप परमात्मा के ऐश्वर्य को वह लोग दुह सकते हैं जो लोग उस परमात्मा को अपने हृदयरूपी कमल में साक्षी रूप से स्थिर समझ कर सत्कर्मी बनते हैं और वह परमात्मा अपनी प्रकाश रूप शक्ति से सूर्य का भी प्रकाशक है । इस मन्त्र में परमात्मा इस भाव को बोधन करते हैं कि हे जिज्ञासु पुरुषो ! तुम उस प्रकाश से अपने हृदय को प्रकाशित करके संसार के पदार्थों को देखो जो सर्वप्रकाशक है और जिससे यह भूत-वर्ग अपनी उत्पत्ति और स्थिति को लाभ करता है जैसा कि 'नाभ्या आसी-दन्तरिक्षम्' "चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत" (यजु० १ । १२) इत्यादि मन्त्रों में वर्णन किया है कि उसी के नाभिरूप सामर्थ्य से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ और उसी के चक्षुरूप सामर्थ्य से सूर्य उत्पन्न हुआ । चक्षु के अर्थ यहाँ 'चष्टे पश्यत्यनेनेति चक्षुः' अर्थात् अपने सात्विक सामर्थ्य से सूर्य को उत्पन्न किया जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि "सत्वात्संजायते ज्ञानम्",

Scanned by CamScanner

बहुत क्या' यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ।'' अर्थात् उसी से यह सब संसार वर्ग आविर्भाव को प्राप्त होता है और उससे सत्ता लाभ करके स्थिर रहता है और अन्त में परमाणु रूप होकर उसी में लय हो जाता है; उसी के जानने की इच्छा करनी चाहिये वही सर्वोपरि ब्रह्म है; "बृंहते वर्धते इति ब्रह्म" जो सदैव वृद्धि को प्राप्त है अर्थात् जिससे कोई बड़ा नहीं, उसका नाम यहाँ ब्रह्म है ॥८॥

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥९॥

पदार्थः —(सूरः) विद्वान् [सरति ज्ञानद्वारेण सर्वत्र प्राप्नोतीति सूरो विद्वान्] (**अभि, प्रिया**) जो सबका प्यारा है वह (**अध्वर्युभिः**) अध्वर्यु आदि ऋत्विजों से जो (**गुहा, हितम्**) यज्ञरूपी गुहा में निहित है और (**दिवस्पदम्**) जो द्युलोक का भी अधिकरणरूपी पद है उसको (**चक्षसा**) ज्ञानदृष्टि से (**पश्यति**) देखता है ॥९॥

भावार्थः—जो इस संसार रूपी गुहा में स्थिर सूक्ष्म से अति सूक्ष्म परमात्मा है और जो भ्वादिलोकों का एकमात्र अधिकरण है उसको आत्म-ज्ञानी विद्वान् ही जान सकते हैं अन्य नहीं ॥९॥

नवम मण्डल में यह दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य एकादशस्य सूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१--४, ९ निचृद्गायत्री । ५--८ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा के उपासन का प्रकार कथन करते हैं ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

पदार्थः—(नरः) हे यज्ञ के नेता लोगो ! तुम (**पवमानाय**) सबको पवित्र करने वाला (**इन्दवे**) "इन्दतीतीन्दुः" और जो परम ऐश्वर्यवाला है (**उपास्मै**) उसकी प्राप्ति के लिये (**गायत**) गायन करो, जो (**अभि, देवाँ, इयक्षते**) यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति को चाहता है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञादि कर्मों में विद्वानों की संगति करो और मिलकर अपने उपास्यदेव का गायन करो ॥१॥

Scanned by CamScanner

अभि ते मधुंना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तुमको (**अथर्वाणः**) "न थर्वंति स्वाधिकारं मुञ्चतीत्यथर्वा" जो अपने अधिकार को न छोड़े उसका नाम अथर्वा है, ऐसे दृढ़-विश्वासी विद्वान् (**अशिश्रयुः**) आश्रयण करते हैं जो तुम (**देवाय**) दिव्य शक्तियों के देने के लिये (**देवम्**) एकमात्र देव हो, और (**देवयु**) "देवमिच्छतीति देवयु" दिव्य शक्ति की इच्छा करने वाला पुरुष (**पयः**) आपके रस को (**मधुना**) मधुरता के साथ (**अभि**) भलीभांति ग्रहण करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे दृढ़ विश्वासी विद्वानो ! आप लोग उस रस का पान करो जिससे बढ़कर संसार में अन्य कोई रस नहीं और उपास्यत्वेन उस देव का आश्रयण करो जिससे बढ़कर और कोई उपास्य नहीं, वास्तव में बात भी यही है कि परमात्मा के आनन्द के बराबर और कोई आनन्द नहीं । इसी अभिप्राय से कहा है कि "रसो ह्येव सः रसं हि लब्ध्वा एष आनन्दी भवति" (तै० २।७।) परमात्मा रस अर्थात् आनन्द-रूप है उसके आनन्द को लाभ करके पुरुष आनन्दित होता है । इसी अभि-प्राय से गीता में कहा है कि "यल्लब्ध्वा नापरो लाभः" उसको प्राप्त करने के अनन्तर फिर कोई प्राप्तव्य वस्तु नहीं रहती ॥२॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थः—हे (राजन्, सः) पूर्वोक्त दीप्तिमन् परमात्मन् ! आप (**नः**) हमारी (**गवे**) इन्द्रियों के लिये (**शं, पवस्व**) कल्याणकारी हों (**शम्, अर्वते, जनाय**) कर्मकाण्डी मनुष्यों के लिये कल्याणकारी हों (**शम्, ओषधीभ्यः**) और हमारी ओषधियों के लिये कल्याणकारी हों ॥३॥

भावार्थः—यहाँ ओषधि आदिक केवल उपलक्षण हैं वस्तुतः प्रत्येक संसार वर्ग के लिये, इस मन्त्र में कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥३॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (**बभ्रवे**) "बिभर्तीति बभ्रुः" जो विश्वम्भर पर-मात्मा है और जो (**स्वतवसे**) बलस्वरूप है और (**दिविस्पृशे**) जो द्युलोक तक फैला हुआ है (**सोमाय**) चराचर संसार का उत्पन्न करने वाला है (**अरुणाय**) "ऋच्छती-त्यरुणः" जो सर्वव्यापक है उसकी (**नु**) शीघ्र ही (**गाथम्**) स्तुति (**अर्चत**) करो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ऐसे पुरुष की स्तुति करो जो पूर्ण पुरुष अर्थात् द्युभ्वादि सब लोकों में पूर्ण हो रहा है

Scanned by CamScanner

और तेजस्वी और सर्वव्यापक है। इस भाव को वेद के अन्यत्र भी कई एक स्थलों में वर्णन किया है जैसा कि "यस्य भूमिः प्रमामन्तरिक्षमुतोदरम् दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः" (अ० १०।४।७) कि जिसकी भूमि ज्ञान का साधन है, अन्तरिक्ष जिसका उदर स्थानीय है, जिसमें द्युलोक मस्तक के सदृश कहा जा सकता है, उस सर्वोपरि ब्रह्म को हमारा नमस्कार है। जैसा इस मन्त्र में रूपकालंकार से द्युलोक को मूर्धास्थानीय कल्पना किया है इसी प्रकार 'दिवस्पृशम्' इस शब्द में द्युलोक के साथ स्पर्श करने वाला भी रूपकालंकार से वर्णन किया है, मुख्य नहीं ॥४॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (हस्तच्युतेभिः, अद्रिभिः) वाणीरूप वज्र से (सुतं) कूट-कूट कर (सोमं) मेरे स्वभाव को (पुनीतन) पवित्र करें ताकि (मधौ) आप के मधुर स्वरूप में (मधु) मीठा बनकर (आधावत) लगे ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का वाग्रूपी वज्र जिस पुरुष की अविद्या-लता को काटता है वह पुरुष सरल प्रकृति बनकर परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप में निमग्न होता है ॥५॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (नमसा, इत्) हमारी नम्रवाणियों से (उपसीदत) हमारे हृदय में निवास करो (दध्ना इत्) "धीयतेऽनेनेति दधि" हमारी धारणा से (उप, श्रीणीतन) हमारे ध्यान का विषय बनो (इन्दुम्, इन्द्रे) हमारे मन को अपने प्रकाशित स्वरूप में (दधातन) लगाओ ॥६॥

भावार्थः—जो लोग प्रार्थना से अपने हृदय को नम्र बनाते हैं उनका मन परमात्मा के स्वरूप में अवश्यमेव स्थिर होता है ॥६॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (अमित्रहा) आप प्रेमरहित नास्तिक लोगों के हनन करने वाले हैं और (देवेभ्यो, अनुकामकृत्) और दैवीसम्पत्ति के गुण रखने वाले लोगों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं क्योंकि (विचर्षणिः) आप न्यायदृष्टि से देखने वाले हैं आप (गवे) हमारी वृत्तियों का (शं, पवस्व) कल्याण करें और पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—संसार में असुर और देव दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। असुर उनको कहते हैं जो धर्म को त्याग करके केवल प्राणयात्रा में लग

Scanned by CamScanner

जाते हैं। अर्थ इसके इस प्रकार हैं "अस्यति धर्ममित्यसुरः" यद्वा "असुषु रमते-इत्यसुरः" जो धर्म को छोड़ दे या प्राणों में ही रमण करे वह असुर है। और 'दीव्यतीति देवः' जो सदसद्विवेचिनी बुद्धि रखने वाले ज्ञानी पुरुष हैं उनको देव कहते हैं। जो असुर लोग हैं उन्हीं को इस मन्त्र में अमित्र माना गया है अर्थात् दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों को परमात्मा बढ़ाता है और आसुरी सम्पत्ति वाले पुरुषों का संहार करता है ॥७॥

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (मनश्चित्) आप ज्ञानस्वरूप हैं "मनुते-इति मनः" और (मनसस्पतिः) सबके मनों के प्रेरक हैं (इन्द्राय) जीवात्मा की (पातवे) तृप्ति के लिये (मदाय) आह्लाद के लिये (परिषिच्यसे) उपासना किये जाते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो लोग उपासना द्वारा अपने हृदय में ईश्वर को विराजमान करते हैं वे उसके मधुर आनन्द का पान करते हैं ॥८॥

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दर बल को (रयिम्) और धन को (नः, रिरीहि) हमको दें । (इन्दो) हे सर्व प्रकाशक (इन्द्रेण) परमैश्वर्य के साथ (नः, युजा) हमको युक्त करें (सोम) आप सौम्य स्वभाव वाले हैं ॥९॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मी बनकर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा सर्वोपरि ऐश्वर्य का उन्हीं को दान देता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह ग्यारहवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य १—९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः - १, २, ६—८ गायत्री । ३—५, ९ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा को यज्ञादि कर्मों का कर्त्तारूप से वर्णन करते हैं ॥

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिये (**मधुमत्तमाः**) जो अत्यन्त आनन्दमय परमात्मा है (**ऋतस्य**) यज्ञ की (**सादने**) स्थिति में जो (**सुताः**) उपास्य समझा गया है वह (**इन्दवः**) प्रकाशस्वरूप (**सोमाः**) सौम्य स्वभाव वाला है (**असृग्रम्**) उसी के द्वारा यह संसार रचा गया है ॥१॥

भावार्थः—जो सब प्रकार की सच्चाइयों का एकमात्र अधिकरण है जिससे वसन्तादि यज्ञरूप ऋतुओं का परिवर्तन होता है वही परमात्मा इस निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति है ॥१॥

अभि विप्रा॑ अनूषत गावो॑ वत्सं न मातरः॑ ।
इन्द्रं॑ सोम॑स्य पीतये॑ ॥२॥

पदार्थः—उस परमात्मा को पाने के लिये (**गावः**) इन्द्रियें (**मातरः, वत्सम्, न**) जैसे माता को बछड़ा आश्रयण करता है इसी प्रकार आश्रयण करती हैं उसी प्रकार (**विप्राः**) विज्ञानी लोग (**सोमस्य पीतये**) सौम्य स्वभाव के बनाने के लिये (**इन्द्रम्**) परमात्मा को (**अभि अनूषत**) विभूषित करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जब तक पुरुष सौम्यस्वभाव परमात्मा को आश्रयण नहीं करता तब तक उसके स्वभाव में सौम्य भाव नहीं आ सकते और उसका आश्रयण करना साधारण रीति से हो तो कोई अपूर्वता उत्पन्न नहीं कर सकता । जब पुरुष परमात्मा में इस प्रकार अनुरक्त होता है जैसे कि वत्स अपनी माता में अनुरक्त होता है अथवा इन्द्रियाँ अपने शब्दादि विषयों में अनुरक्त होती हैं इस प्रकार की अनुरक्ति के विना परमात्मा के भावों को पुरुष कदापि ग्रहण नहीं कर सकता ॥२॥

मदच्युत्क्षे॑ति साद॑ने सिन्धो॑रूर्मा विप॑श्चित् ।
सोमो॑ गौरी अधि॑ श्रितः ॥३॥

पदार्थः—जिस प्रकार (**ऊर्मा**) तरंगें (**सिन्धोः**) नदी का आश्रयण करती हैं और (**विपश्चित्**) विद्वान् (**गौरी, अधि, श्रितः**) वेदवाणी में अधिष्ठित होता है इसी प्रकार (**सोमः मदच्युत्**) आनन्द का देने वाला सौम्य स्वभाव परमात्मा (**सादने, क्षेति**) यज्ञस्थल को प्रिय समझता है ॥३॥

भावार्थः—कर्म यज्ञ, योगयज्ञ, जप यज्ञ, इस प्रकार यज्ञ नाना प्रकार के हैं परन्तु 'यजनं यज्ञः' जिसमें ईश्वर का उपासना रूप अथवा विद्वानों की संगति रूप अथवा दानात्मक कर्म किये जायें उसका नाम यहां यज्ञ है और

Scanned by CamScanner

वह यज्ञ ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन है। इसी अभिप्राय से 'यज्ञो वै विष्णुः (श० १ । ३७ ।) परमात्मा का नाम भी यज्ञ है। इसी भाव को वर्णन करते हुए गीता में यह कहा है कि 'एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे' इस प्रकार के कई एक यज्ञ वेद में वर्णन किये गये हैं ॥३॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।

सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (दिवः, नाभा) द्युलोक का नाभि है (विचक्षणः) सर्वज्ञ है (अव्यः) सबका भजनीय है (वारे महीयते) जो सब श्रेष्ठों में श्रेष्ठतम है (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (सुक्रतुः) सत्कर्मी है और (कविः) क्रान्तकर्मा है ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० २ । १) सत्य ज्ञान और अनन्तादि गुणों वाला ब्रह्म है, यह वाक्य सिद्धवस्तु को बोधन करता है इसी प्रकार उक्त मन्त्र भी सिद्ध वस्तु का बोधक है—और जो इसमें 'महीयते' कहा गया है यह भी सिद्धवस्तु का बोधक है, परन्तु इससे यह शंका कदापि नहीं होनी चाहिये कि इसमें कर्तव्य का उपदेश नहीं, क्योंकि जब 'महीयते' कह दिया तो अर्थ यह निकले कि वह पूजा जाता है। पूजा एक प्रकार का कर्म है उसी को कर्त्तव्य कहते हैं। तात्पर्य यह निकला कि परमात्मा ने इस मन्त्र में उपदेश किया है कि तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का पूजन करो अर्थात् सन्ध्यावन्दनादि कर्मों से उसे वन्दनीय समझो ॥४॥

यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः ।

तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (कलशेषु) [कलं शवातीति कलशो वैदिकशब्दः] वैदिक शब्दों में (आ) वर्णन किया गया है (पवित्रे, अन्तः) और सब पवित्र वस्तुओं में (आहितः) स्थिर है और (सोमः) सौम्यस्वभाव वाला है (तम्, इन्दुः) उसको विद्वान् लोग (परिषस्वजे) लाभ करते हैं ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् लोग परमात्मा की अभिव्यक्ति अर्थात् आविर्भाव को सब पवित्र वस्तुओं में उपलब्ध करते हैं, तात्पर्य यह है कि जो जो विभूति वाली वस्तु है उसमें वे परमात्मा के तेज को अनुभव करते हैं। मालूम होता है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्" अर्थात् जो जो विभूतिवाली वस्तु अथवा शोभा वाली वा यों

Scanned by CamScanner

कहो कि बलवाली है वह सब परमात्मा के तेज से ही उत्पन्न हुई है । मालूम होता है कि गीता का यह भाव भी पूर्वोक्त मन्त्रों से ही लिया गया है ॥५॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।

जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थः— (समुद्रस्य, अधि, विष्टपि) [समुद्रवन्ति यस्मादापः स समुद्रः] जो परमात्मा अन्तरिक्ष लोक के मध्य में (**मधुश्चुतम्, कोशम्**) सब प्रकार की मधुरताओं के सिञ्चन करने वाले कोश को (**जिन्वन्**) बढ़ाता है (**इन्दुः**) वही परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (**वाचम्, प्र, इष्यति**) वेदवाणी की प्रेरणा करता है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम से समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष में जलों का संचय रहता है क्योंकि समुद्र के अर्थ ये हैं जिसमें जलों का भलीभांति संचार हो अर्थात् इतस्ततः गमन हो उसको समुद्र कहते हैं । अन्तरिक्ष लोक में मेघों का इतस्ततः गमन होता है इसलिये मुख्य नाम समुद्र इन्हीं का है । तात्पर्य यह है कि जिस परमात्मा ने इन विशाल नियमों को बनाया है उसी परमात्मा ने वेदरूपी वाणी को प्रकट किया है ॥६॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।

हिन्वानो मानुषा युगा ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**नित्यस्तोत्रः**) नित्यस्तुति करने योग्य है (**वनस्पतिः**) सब ब्रह्माण्डों का स्वामी है (**धीनाम्, अन्तः**) बुद्धियों का अन्त है (**सबः दुघः**) अमृत से परिपूर्ण करने वाला है (**मानुषा, युगा**) और स्त्री पुरुष के जोड़े को उत्पन्न करने वाला है (**हिन्वानः**) सबका तृप्तिकारक है ॥७॥

भावार्थः—बुद्धियों का अन्त उसको इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि मनुष्य की बुद्धि उसके पारावार को नहीं पा सकती इसलिये उसने मनुष्यों पर अत्यन्त करुणा करके अपने वेदरूपी ज्ञान का प्रकाश किया है ॥७॥

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।

विप्रस्य धारया कविः ॥८॥

पदार्थः—(**कविः**) क्रान्तकर्मा (**सोमः**) सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (**दिवस्पदा**) द्युलोक का व्यापक रूप से अधिकरण है (**विप्रस्य**) ज्ञान की (**धारया**) धारा से (**प्रिया, अभि, अर्षति**) हमको आनन्दित करता है ॥८॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—द्युलोक आदि जिसके आश्रित हैं, वह सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा ज्ञान की वर्षा से हमें आनन्दित करता है ॥८॥

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।

अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥९॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले (**इन्दो**) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**अस्मे**) आप हमारे लिये (**रयिम्**) धन को तथा (**सहस्रवर्चसं, स्वाभुवम्**) अत्यन्त दीप्ति वाले गृहों को (**आ, धारय**) धारण कराइये अर्थात् दीजिये ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पुरुषों के कर्मों द्वारा प्रसन्न होता है उनको अनन्त प्रकार की दीप्तियों वाले गृहों को देता है और नानाविध ऐश्वर्य से उनको सम्पन्न करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य १–९ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ८ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री । ७ पाद निचृद्गायत्री ९ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की यज्ञादि कर्मप्रियता और दानप्रियता को कहते हैं ॥

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।

वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थः—(**सोमः**) सब चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा [सूते चराचरं जगदिति सोमः] (**पुनानः, अर्षति**) सबको पवित्र करता हुआ सब जगह व्याप्त हो रहा है और (**सहस्रधारः**) सहस्रों वस्तुओं को धारण करने वाला है, (**अत्यविः**) अत्यन्त रक्षक है और (**वायोः**) कर्मशील तथा (**इन्द्रस्य**) ज्ञानशील विद्वानों का (**निष्कृतं**) उद्धार करने वाला है ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वरक्षक है वह किसी को द्वेषदृष्टि व प्रिय दृष्टि से नहीं देखता तथापि वह सत्कर्मी पुरुषों को शुभ फल देता है और असत्कर्मियों को अशुभ, इसी अभिप्राय से उसको कर्मशील पुरुषों का प्यारा वर्णन किया है ॥१॥

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।

सुष्वाणन्देववीतये ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अवस्यव:**) हे उपदेश द्वारा प्रजा की रक्षा चाहने वाले विद्वानो ! आप (**देववीतये**) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**सुष्वाणम्, पवमानम्, विप्रम्**) सबके प्रेरक, सबकोपवित्र करने वाले पूर्ण परमात्मा का (**अभि, प्र, गायत**) गान करो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम उस पुरुष की उपासना करो जो सर्वप्रेरक है और सबको पवित्र करने वाला है और व्यापक रूप से सर्वत्र स्थिर है ॥२॥

पवंन्ते वाजंसातये सोमांः सहस्रंपाजसः ।

गृणाना देववींतये ॥३॥

पदार्थः—उक्त विद्वान् (**देववीतये**) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (**गृणानाः**) स्तुति करते हुए (**सहस्रपाजसः**) अनन्त प्रकार के बलों वाले (**सोमाः**) सौम्य स्वभाव वाले (**वाजसातये**) धर्मयुद्धों में (**पवन्ते**) हमको पवित्र करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वर पर विश्वास रख कर अनन्त प्रकार के कला-कौशलादि बलों से सम्पन्न होते हैं वे ही सब प्रजा को पवित्र करते हैं अर्थात् अपने ज्ञान से प्रजा की रक्षा करते हैं ॥३॥

उत नो वाजंसातये पवंस्व बृहतीरिषंः ।

द्युमदिंन्दो सुवीर्यंम् ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यवाले परमात्मन्! आप (**द्युमत्**) दीप्तिवाला (**सुवीर्यम्**) बल (**पवस्व**) हमको दें (**उत**) और (**वाजसातये**) युद्धों में (**नः, बृहतीः, इषः**) हमको बड़ी शक्ति प्रदान करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से बल और युद्धों में विजय प्राप्त करने की शक्ति की प्रार्थना की गई है ॥४॥

ते नः सहस्रिणं रयिं पवंन्तामा सुवीर्यंम् ।

सुवाना देवास इन्दंवः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दवः**) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा (**देवासः**) दिव्य शक्तिवाला (**सुवानाः**) सबको उत्पन्न करने वाला (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल को (**आ, पवन्ताम्**) भली भांति हमको दे और (**ते**) वह (**सहस्रिणम्**) अनन्त प्रकार के (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**नः**) हमको दे ॥५॥

भावार्थः—यहाँ 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से एकवचन के स्थान में बहुवचन हुआ है इसलिये ईश्वर का ही ग्रहण समझना चाहिये, किसी अन्य का नहीं ॥५॥

Scanned by CamScanner

अत्या॑ हि॒याना न हे॒तृभि॒रसृ॑ग्रं॒ वाज॑सातये ।

वि॒वा॒रम॒व्यमा॒शवः॑ ॥६॥

पदार्थः—(**अत्याः**) सर्वत्र परिपूर्ण ["अतति सर्वमित्यत्यः" जो सर्वत्र परिपूर्ण हो उसका नाम अत्य है] (**हियानाः**) प्रार्थना किया गया (**हेतृभिः**) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियों के (**न**) समान (**वाजसातये**) धर्मयुद्धों में (**असृग्रम्**) हमारी रक्षा करे। (**विवारम्, आशवः**) जो शीघ्र ही अज्ञान को नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाला और (**अव्यम्**) सबका रक्षक है उसकी हम उपासना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और एकमात्र उसी का भरोसा रखते हैं, वे धर्मयुद्धों में सदैव विजयी होते हैं ॥६॥

वा॒श्रा अ॑र्ष॒न्तीन्द॑वो॒ऽभि व॒त्सं न धे॒नवः॑ ।

द॒ध॒न्वि॒रे गभ॑स्त्योः ॥७॥

पदार्थः—(**धेनवः**) इन्द्रियाँ (**न**) जिस प्रकार (**वत्सं**) अपने प्रिय अर्थ की ओर जाती हैं उसी प्रकार (**वाश्राः**) जो वेदादि सब शास्त्रों की योनि है (**इन्दवः**) वह परमात्मा (**अभ्यर्षन्ति**) अपने उपासक की ओर जाता है (**गभस्त्योः, दधन्विरे**) और सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाता है ॥७॥

भावार्थः—उपासक पुरुष जब शुद्ध हृदय से ईश्वर की उपासना करता है तो ईश्वर का प्रकाश उसको आकर प्रकाशित करता है 'उपास्यतेऽनेनेत्युपासनम्' जिससे ईश्वर की समीपता लाभ की जाय उस कर्म का नाम उपासन कर्म है। समीपता के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा समीप होने के हैं किसी देश द्वारा समीप होने के नहीं। इस लिए जब परमात्मा ज्ञान द्वारा समीप होता है तो उसका प्रकाश उपासक के हृदय को अवश्यमेव प्रकाशित करता है ॥७॥

जुष्ट॒ इन्द्रा॑य मत्स॒रः पव॑मान॒ कनि॑क्रदत् ।

विश्वा॒ अप॒ द्विषो॑ जहि ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) जो धर्मप्रिय विद्वानों का (**जुष्टः**) संगी है, (**मत्सरः**) जो न्यायरूपी मद से मत्त है वह (**पवमानः**) सब को पवित्र करने वाला (**कनिक्रदत्**) सब को सदुपदेश दाता (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अप, द्विषः, जहि**) जो हमारे राग द्वेषादि हैं उनको नाश करे ॥८॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वरपरायण हो कर अपनी जीवनयात्रा करते हैं परमात्मा उन के रागद्वेषादि भावों को निवृत्त करता है ॥८॥

Scanned by CamScanner

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।

योनावृतस्य सीदत ॥९॥

पदार्थः—(**अराव्णः**) दुष्टों को (**अपघ्नन्तः**) दारुण दण्ड देने वाला (**पवमानाः**) सत्कर्मियों को पवित्र करने वाला (**स्वर्दृशः**) सर्वद्रष्टा परमात्मा (**ऋतस्य**) सत्कर्म रूपी यज्ञ की (**योनौ**) वेदी में (**सीदत**) आकर विराजमान हो ॥९॥

भावार्थः—कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के यज्ञों में परमात्मा अपने सद्भावों से आकर सदैव विराजमान होता है । तात्पर्य यह है कि परमात्मा के भाव सत्कर्मों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं इसी लिये आकर विराजना कथन किया गया है । वस्तुतः परमात्मा सदैव कूटस्थनित्य है, कहीं जाता-आता नहीं । इसी अभिप्राय से कहा है कि "तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके" (यजुः ४०।५।) वह अज्ञानियों की दृष्टि में चलता है और वास्तव में नहीं चलता, अज्ञानियों की दृष्टि में दूर है वास्तव में समीप; इस प्रकार वेद उसको सर्वत्र गतिरहित वर्णन करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह १३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य १–८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१–३, ५, ७ गायत्री । ४, ८ निचृद्गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।

कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१॥

पदार्थः—(**सिन्धोः ऊर्मौ**) जिसने समुद्र की लहरों को (**अधिश्रितः**) निर्माण किया (**कारम्, बिभ्रत्, पुरुस्पृहम्**) जिसने सर्वजनों के मनोरथरूप इस कार्य ब्रह्माण्ड को बनाया (**कविः**) वही परमात्मा (**परि, प्रासिष्यदत्**) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—उस परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की रचनाओं को बनाया है । कहीं महासागरों में अनन्त प्रकार की लहरें उठती हैं, कहीं हिमालय के उच्च शिखर नभोमण्डलवर्ती वायुओं से संघर्षण कर रहे हैं, एवं नाना प्रकार की रचनाओं का रचयिता वही परमात्मा है ॥१॥

Scanned by CamScanner

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।।२।।

पदार्थः—(**पञ्च, व्राताः**) पाँच ज्ञानेन्द्रियां (**सबन्धवः**) कर्मेन्द्रियों के साथ (**यदि, अपस्यवः**) जब ईश्वरपरायण हो जाती हैं तो (**गिरा**) परमात्मा की स्तुति से (**धर्णसिम्**) इस पृथिवी को (**परिष्कृण्वन्ति**) भूषित कर देती हैं ।।२।।

भावार्थः—ज्ञानयोगी पुरुष जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों को हटा कर अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर की ओर लगा देता है तो इस सम्पूर्ण संसार को अलंकृत करता है । तात्पर्य यह है कि स्वभावतः बहिर्मुख इन्द्रियों को जिनको "पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूः" (कठ. ४।१।) स्वयंभू विधाता ने स्वभावतः बाहर की ओर बहने वाली बनाया है, कोई एक धीर वीर पुरुष ही उनके वेग को बाहर से हटा कर उनको अन्तर्मुखी बनाता है अन्य नहीं ।।२।।

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।
यदी गोभिर्वसायते ।।३।।

पदार्थः—(**यदि**) अगर (**विश्वेदेवाः**) सम्पूर्ण विद्वान् (**अस्य**) पूर्वोक्त (**शुष्मिणः**) बलसम्पन्न परमात्मा को (**गोभिः, वसायते**) इन्द्रियगोचर कर सके (**आत्**) तदनन्तर वे सब देव (**अमत्सत**) उस को ध्यान का विषय बनाकर आनन्दित होते हैं ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम्हारे इन्द्रिय तुमको स्वभाव से बहिर्मुख बनाते हैं; तुम यदि संयमी बन कर उनका संयम करो तो इन्द्रिय परमात्मा के स्वरूप को विषय करके तुम्हें आनन्दित करेंगे, इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है कि "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्" (क० ४।१।) कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख सकता है, यहां देखने के अर्थ व इन्द्रियगोचर करने के अर्थ मूर्त्तिमान् पदार्थ के समान देखने के नहीं, किन्तु जिस प्रकार निराकार और निरूप होने पर भी सुख-दुःखादिकों का अनुभव होता है इसी प्रकार अनुभव का विषय बनाने का नाम यहां देखना व इन्द्रियगोचर करना है । इसी अभिप्राय से "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" अर्थात् वह सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा देखा जा सकता है । सूक्ष्म बुद्धि से तात्पर्य यहाँ योगज सामर्थ्य का है अर्थात् चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा परमात्मा का अनुभव हो सकता है । इसी अभिप्राय से कहा है

Scanned by CamScanner

कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" उस समय द्रष्टा के स्वरूप में स्थिति हो जाती है। इसी अभिप्राय से यहाँ कहा है कि "यदि गोभिर्वसायते" ॥३॥

निरिणानो विधावति जहच्छर्याणि तन्वा।

अत्रा सञ्जिघ्नते युजा ॥४॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा (**निरिणानः**) ज्ञानका विषय होता हुआ (**तान्वा**) अपने प्रकाश से (**द्वाराणि**) अपनी प्रकाशरश्मियों को छोड़ता हुआ (**विधावति**) जिज्ञासु के बुद्धिगत होता है (**अत्र, युजा**) उस परमात्मा में युक्त होकर (**सं, जिघ्नते**) उपासक लोग अज्ञानों का नाश करते हैं ॥४॥

भावार्थः—ध्यान का विषय हुआ वह परमात्मा जिज्ञासुओं के अन्तः-करणों को निर्मल करता है और जिज्ञासुजन उस की उपासना करते हुए अज्ञान को नाश करके परम गति को प्राप्त होते हैं ॥४॥

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा।

गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**विवस्वतः**) विज्ञान वाले जिज्ञासु की (**नप्तीभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**शुभ्रः**) प्रकाशित होकर (**युवा**) समीपस्थ वस्तु के (**न**) समान (**मामृजे**) साक्षात्कार को प्राप्त होता है और वह साक्षात्कार (**गाः कृण्वानः**) इन्द्रियों को प्रसन्न करते हुए (**निर्णिजं न**) रूप के समान होता है ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने मन को शुद्ध करते हैं वे उस पुरुष का साक्षात्कार करते हैं। उन पुरुषों की चित्तवृत्तियाँ उसको हस्तामलकवत् साक्षाद्रूप से अनुभव करती हैं, अर्थात् शुद्ध मन द्वारा साक्षात् किये हुए परमात्म-ध्यान में फिर किसी प्रकार का भी संशय व विपर्यय ज्ञान नहीं होता ॥५॥

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या।

वग्नुमियर्ति यं विदे ॥६॥

पदार्थः—(**अति, श्रिती**) [श्रितिमतिक्रान्तः अतिश्रिती" जो किसी अन्य वस्तु के आश्रित न हो उसका नाम अतिश्रिती] सबका आश्रय परमात्मा (**अण्व्या**) सूक्ष्म (**तिरश्चता**) तीक्ष्ण (**गव्या**) इन्द्रियों की वृत्तियों से (**जिगाति**) प्रकाश को प्राप्त होता है, (**यं**) जिसको (**वग्नुम्**) शब्दप्रमाण (**विदे**) जिज्ञासु के लिये (**इयर्ति**) प्रकट करता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थ—जब धारणा ध्यानादि योगांगों से चित्त की वृत्तियाँ निर्मल होती हैं तो उक्त परमात्मा को विषय करती हैं। जो पुरुष शब्द प्रमाण पर विश्वास करते हैं वे साधनसम्पन्न वृत्तियों के द्वारा उनका अनुभव करते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

अभि क्षिपः सम॑ग्मत मर्जय॑न्तीरि॒षस्पति॑म् ।

पृ॒ष्ठा गृ॑भ्णत वा॒जिनः॑ ॥७॥

पदार्थः—(**क्षिपः**) चित्तवृत्तियां (**अभि**) सब ओर से (**इषस्पतिम्**) जो सब ऐश्वर्यों का पति है उसको (**मर्जयन्तीः**) प्रकाशित करती हुई (**समग्मत**) समाधि अवस्था को प्राप्त होती हैं, और वहां (**वाजिनः**) सब वलों के (**पृष्ठा**) अधिकरण को (**गृम्णत**) ग्रहण करती हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सब पदार्थों का अधिकरण है अर्थात् उसी की सत्ता से सब पदार्थ स्थिर हो रहे हैं, उस बलस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार समाधि अवस्था के विना कदापि नहीं हो सकता ॥७॥

परि॑ दि॒व्यानि॒ मर्मृ॑श॒द्विश्वा॑नि सोम॒ पार्थि॑वा ।

वसू॑नि याह्यस्म॒युः ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**दिव्यानि**) दिव्य (**पार्थिवानि**) पृथिवीलोक के (**विश्वानि, वसूनि**) सम्पूर्ण धनों के (**मर्मृशत्**) सहित (**अस्मयुः**) हमारे उद्धार की इच्छा करते हुए (**परि, याहि**) हमको प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—पार्थिवानि यह कथन यहाँ उपलक्षण मात्र है अर्थात् पृथिवी लोक अथवा द्युलोक के जितने ऐश्वर्य हैं उनको परमात्मा हमें प्रदान करे। इस सूक्त में परमात्मा के सर्वाश्रयत्व और सर्वदातृत्वादि अनेक प्रकार के गुणों का वर्णन किया है ॥८॥

नवम मण्डल में यह चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ।

अथाष्टर्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य १—८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८ निचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब अन्य गुणों से परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं ॥

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह परमात्मा (धिया, अण्व्या) अपनी सूक्ष्म धारणशक्ति से (याति) सर्वत्र प्राप्त हो रहा है (रथेभिः, आशुभिः) अपनी शीघ्रगामिनी शक्तियों से (इन्द्रस्य, निष्कृतं) जीवात्मा के उद्धार के लिए (शूरः) ["शृणाति हन्तीति शूरः"] अविद्यादि दोषों को हनन करने वाला (गच्छन्) जगद्रचनारूप कर्म करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा जीवों को कर्मों का फल भुगाने के लिए इस संसाररूपी रचना को रचता है और वह अपनी विविध शक्तियों के द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् जिस-जिस स्थान में परमात्मा की व्यापकता है उस-उस स्थान में परमात्मा अनन्त शक्तियों के साथ विराजमान है ॥१॥

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।

यत्रामृतास आसते ॥२॥

पदार्थः—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (पुरु, धियायते) अनन्त विज्ञानों का दाता है (बृहते, देवतातये) सदैव संसार में देवत्व फैलाने का अभिलाषी है (यत्र) जिस ब्रह्म को प्राप्त होकर (अमृतासः, आसते) अमृतभाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्तकर्मा है, उसकी शक्तियों के पारावार को कोई पा नहीं सकता, इसी अभिप्राय से कहा है "तस्मिन्दृष्टे परावरे" उस परावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है और इसी अभिप्राय से "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इत्यादि वाक्यों में उपनिषत्कार ऋषियों ने भी कहा है कि उसकी शक्तियां असंख्यात हैं; उसी को जान कर मनुष्य अमृत पद को लाभ कर सकता है अन्यथा नहीं ॥२॥

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा ।

यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥३॥

पदार्थः—(यदि, भूर्णयः) यदि उपासक लोग (तुञ्जन्ति) उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तो (शुभ्रावता) शुभ (पथा) मार्गद्वारा (एषः, हितः) उस हितकारक परमात्मा को (अन्तः, विनीयते) अन्तःकरण में स्थिर करते हैं ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग यम-नियमों का पालन करते हैं वे अपने अन्तः-करण में परमात्मसत्ता का साक्षात्कार करते हैं और परम पद का लाभ करते हैं ॥३॥

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥४॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (शृङ्गाणि) सब ब्रह्माण्डों को (दोधुवत्) गतिशील करता है,(शिशीते) सर्वव्यापक है, (यूथ्यः) सबका पति है,(वृषा) कामनाओं की वृष्टि करने वाला है और (ओजसा) अपने पराक्रम से (नृम्णा) सब ऐश्वर्यों को (दधानः) धारण कर रहा है ॥४॥

भावार्थः—वही परमात्मा कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का चलाने वाला है, और उसी ने इन ब्रह्माण्डों में विद्युत् आदि शक्तियों को उत्पन्न करके अनेक प्रकार के आकर्षण-विकर्षण आदि गुणोंको उत्पन्न किया है । एकमात्र उसी की उपासना करने से मनुष्य सद्गति को लाभ कर सकता है ॥४॥

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थः—(एषः, वाजी) अनन्तबलवाला यह पूर्वोक्त परमात्मा (रुक्मिभिः) दीप्तिमती (शुभ्रेभिः) निर्मल (अंशुभिः) प्रकाशरूप शक्तियों से (ईयते) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है,(सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील जड़ प्रकृतियों का (पतिः, भवन्) वह पति है ॥५॥

भावार्थः—प्रकृति परिणामिनी नित्य है, परमात्मा की कृति अर्थात् यत्न से प्रकृति परिणामभाव को धारण करती है उससे महत्तत्व और महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्र; इस प्रकार सृष्टि की रचना होती है, इस अभिप्राय से उसको स्यन्दनशील अर्थात् बहने वाली प्रकृतियों का अधिपति कथन किया है । उक्त प्रकार से गुणों वाला परमात्मा उस पुरुष के हृदय में अपनी अनन्त शक्तियों का आविर्भाव करता है जो पुरुष अपनी अनन्य भक्ति से उसकी उपासना करता है ॥५॥

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(एषः) यह पूर्वोक्त परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पिब्दना) छीनने वाले (परुषा) कठोर राक्षसों को (अति, ययिवान्) अतिक्रमण करके (शादेषु) युद्धों में भक्तों की (अवगच्छति) अनेक प्रकार से ज्ञानादिकों को देकर रक्षा करता है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने पवित्र भावों से परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अवश्यमेव रक्षा करता है ॥६॥

एतं मृंजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
प्रचक्राणं महीरिषः ॥७॥

पदार्थः—(आयवः) मनुष्य (मर्ज्यं, एतम्) ध्यान करने योग्य इस परमात्मा को (द्रोणेषु) अन्तःकरणों में रख कर (उप, मृजन्ति) उपासना करते हैं, (प्रचक्राणं) जो परमात्मा (महीः, इषः) बड़े भारी अन्नाद्यैश्वर्यों का दाता है ॥७॥

भावार्थः—उपासकों को चाहिए कि वे उपासनासमय में परमात्मा के विराट्स्वरूप का ध्यान करते हुए उसके गुणों द्वारा उसका उपासन करें अर्थात् उसकी शक्तियों का अनुसन्धान करते हुए उसके विराट्स्वरूप को भी अपनी बुद्धि में स्थिर करें ॥७॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

पदार्थः—(एतं, त्यम्, उ) उस सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा को (दश, क्षिपः) दश इन्द्रियां और (सप्त, धीतयः) सात धारणादिवृत्तियाँ (मृजन्ति) प्रकट करती हैं (स्वायुधं) जो स्वतन्त्रसत्तावाला है और (मदिन्तमम्) सब को आनन्द देने वाला है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी स्वतन्त्र सत्ता से विराजमान है जब वह श्रेष्ठों का उद्धार और दुष्टों का दमन करता है तब उसे किसी शस्त्रादि साधन की आवश्यकता नहीं होती किन्तु उसका स्वरूप ही आयुध का काम करता है । इस प्रकार के स्वतन्त्रसत्तासम्पन्न परमात्मा को हृदय में धारण करने वाले अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥

नवम मण्डल में यह पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथाष्टर्चस्य षोडशसूक्तस्य १—८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः--१ विराड् गायत्री । २, ८ निचृद्गायत्री ३--७ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सात्विकभाव को उत्पन्न करने वाले रसों का वर्णन करते हैं ॥

प्र ते॑ सो॒तार॑ ओ॒ण्यो॒३ रसं॒ मदा॑य घृ॒ष्वये॑ ।

सर्गो॒ न त॒क्त्येत॑शः ॥१॥

पदार्थः—(प्रसोतारः) हे जिज्ञासु लोगो ! (ते) तुम्हारे (मदाय) आनन्द के लिए और (घृष्वये) शत्रुओं के नाश के लिए (ओण्योः) द्यावा-पृथिवी के मध्य में (रसम्) सौम्य स्वभाव का देने वाला रस (सर्गः) बनाया है जो (एतशः न तक्ति) विद्युत् के समान तीक्ष्णता देने वाला है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम ऐसे रस का पान करो जिससे तुम में बल उत्पन्न हो और शत्रुओं पर विजयी होने के लिए तुम सिंह के समान आक्रमण कर सको। यहां इस रस के अर्थ किसी रसविशेष के नहीं किन्तु आह्लादजनक रसमात्र के हैं ॥१॥

क्रत्वा॒ दक्ष॑स्य र॒थ्य॑म॒पो वसा॑न॒मन्ध॑सा ।

गो॒षाम॒ण्वे॑षु सश्चिम ॥२॥

पदार्थः—(दक्षस्य) चतुराई का देने वाला, (रथ्यम्) स्फूर्ति का देने वाला (अन्धसा, वसानम्) अन्नों से जिस की उत्पत्ति है, (गोषाम्) इन्द्रियों को (अण्वेषु) सूक्ष्मशक्तियों में बल उत्पन्न करने वाला वह रस (क्रत्वा, सश्चिम) कर्मों के द्वारा हम प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थः—जीवों की प्रार्थना द्वारा ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम ऐसे रस की प्राप्ति की प्रार्थना करो जिस से तुम्हारी चतुराई बढ़े, तुम्हारी स्फूर्ति बढ़े और तुम्हारी इन्द्रियों की शक्तियाँ बढ़ें और तुम ऐश्वर्यसम्पन्न होओ ॥२॥

अन॑प्तम॒प्सु दु॒ष्टरं॒ सोमं॑ प॒वित्र॒ आ सृ॑ज ।

पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥३॥

पदार्थः —हे परमात्मन् ! आप (पवित्रे) श्रेष्ठ लोगों के लिए (सोमं) सोम रस को उत्पन्न करो जो (अनप्तम्) क्रूर स्वभाव वालों के लिए अप्राप्य है और

Scanned by CamScanner

(अप्सु) जिसका संस्कार दूध में किया जाता है और जो (दुष्टरम्) आसुरी सम्पत्ति वालों के लिए दुस्तर है (इन्द्राय) कर्मयोगी के (पातवे) पीने के लिए, ऐसे रस को तुम पवित्र बनाओ ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम दैवी सम्पत्ति के देने वाले अर्थात् सौम्य स्वभाव के बनाने वाले सोम रस की प्रार्थना करो ताकि तुम कर्मयोगियों को कर्मों में तत्पर करने के लिए पर्याप्त हो।

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष अन्नादि औषधियों के रसों को पान करके अपने कामों में तत्पर होते हैं वे पूरे-पूरे कर्मयोगी बन सकते हैं और जो लोग मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं वे अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट करके स्वयं भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥३॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥४॥

पदार्थः—(चेतसा, प्र, पुनानस्य) चित्त को पवित्र करने वाले द्रव्य का जो (सोमः) सोमरस है वह (पवित्रे, अर्षति) पवित्र लोगों में ज्ञान को उत्पन्न करता है फिर वह मनुष्य (क्रत्वा) शुभकर्मों को करके (सधस्थम्) सद्गति को (आसदत्) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—सोमरस, जो कि पवित्र और सुन्दर द्रव्यों से निकाला गया है अर्थात् जो स्वभाव को सौम्य बनाते हैं उन द्रव्यों का रस मनुष्य में शुभ बुद्धि को उत्पन्न करता है ॥४॥

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे शूरवीर ! मैंने (त्वा) तुम्हारे लिये (नमोभिः) अन्नादि द्वारा (इन्दवः, सोमाः) परमैश्वर्य के देने वाले और सौम्यस्वभाव बनाने वाले सुन्दर रस (प्रासृक्षत) उत्पन्न किये हैं जो कि (कारिणः) कर्मयोगी पुरुष के लिए (महे, भराय) अत्यन्त पुष्टि करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर लोगो ! मैंने तुम्हारे लिए अनन्त प्रकार के रसों को उत्पन्न किया है जिनका उपभोग करके तुम आह्लादित होकर अन्यायकारी शत्रुओं के विजय के लिए शक्ति-सम्पन्न हो सकते हो ॥५॥

Scanned by CamScanner

अब इस बात को कथन करते हैं कि किस प्रकार का शूरवीर युद्ध में उपयुक्त हो सकता है॥

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।

शूरो न गोषु तिष्ठति॥६॥

पदार्थः—(अव्यये, रूपे) निराकार परमात्मा के स्वरूप के विज्ञान से (पुनानः) जिसने अपने आप को पवित्र किया है (विश्वाः, श्रियः) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को (अभ्यर्षन्) धारण करता हुआ भी (न, गोषु, तिष्ठति) जो इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होता वही (शूरः) वीर कहला सकता है॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो! तुम सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को भोगते हुए भी इन्द्रियों के वशीभूत मत होओ, क्योंकि इन्द्रियों के वशवर्ती लोग शूरवीरता के धर्म को कदापि धारण नहीं कर सकते इस लिए शूरवीरों के लिए संयमी बनना अत्यावश्यक है॥६॥

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः।

वृथा पवित्रे अर्षति॥७॥

पदार्थः—(पवित्रे) उस पात्र में (पिप्युषी) तृप्ति करने वाली (वेधसः सुतस्य, धारा) माता के दूध की या सोमादि रस की धारा (वृथा, अर्षति) वृथा ही गिरती है जो इन्द्रिय-संयमी नहीं है, जिस तरह (दिवः, न, सानु) अन्तरिक्ष से उन्नत शिखर पर मेघ की धारा गिर कर व्यर्थ ही हो जाती है॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर पुरुषो! तुम संयमी बनो, इन्द्रियारामी मत बनो। इन्द्रियारामी पुरुषों में जो सोमादि रसों की धारायें पड़ती हैं वे मानो इस प्रकार पड़ती हैं जिस प्रकार चोटी के ऊपर पड़ता हुआ जल इधर-उधर बह जाता है और उस में कोई विचित्र भाव उत्पन्न नहीं करता इसी प्रकार असंयमियों का दुग्धादि रसों का उपभोग करना है। यहां चोटी पर जल गिरने के दृष्टान्त से परमात्मा ने स्पष्टरीति से बोधन कर दिया कि जो पुरुष वीर्य ही का संयम नहीं करते न वे धीर वीर बन सकते हैं न वे ज्ञानी, विज्ञानी व ध्यानी बन सकते हैं। उक्त सब प्रकार की पदवियों के लिए मनुष्य का संयमी बनना अत्यन्त आवश्यक है। इसी अभिप्राय से योगसूत्र में कहा है कि 'ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः' (यो० साध० ३८) ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठा अर्थात् इन्द्रियसंयमी बनने से पुरुष को वीर्य का लाभ होता है॥७॥

Scanned by CamScanner

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।

अव्यो वारं वि धावसि ॥८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**आयुषु**) मनुष्यों में (**विपश्चितं, तना**) विद्वान् को भली भांति (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**अव्यः**) रक्षा के लिए (**वारम्**) उस वरणशील को (**विधावसि**) प्राप्त होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा को वरण करता है अर्थात् एकमात्र उसी पर विश्वास रख कर उसी को उपास्य देव ठहराता है उस की परमात्मा अवश्यमेव रक्षा करता है। वार शब्द का अर्थ यहां यह है कि 'वृणुते इति वारः' जो वरण करे वह वार है; इसी प्रकार 'सूते चराचरं जगदिति सोमः' इस मन्त्र में सोम के अर्थ परमात्मा के हैं। तात्पर्य यह है कि उक्त परमात्मा की उपासना करने वाला पुरुष सदैव कृतकार्य होता है इस लिए उपासना के लिए परमात्मपरायण होना आवश्यक है ॥८॥

नवम मण्डल में यह सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य १--८ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३---८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उपासक के हृदय में परमात्मा का प्रकाश कथन करते हैं ॥

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।

सोमा असृग्रमाशवः ॥१॥

पदार्थः—(**सोमाः**) उक्त सौम्यस्वभाव वाला परमात्मा (**वृत्राणि, घ्नन्तः**) अज्ञानों का नाश करता हुआ ["वृणोत्याच्छादयत्यात्मानमिति वृत्रमज्ञानम्"] (**भूर्णयः**) शीघ्रगतिशील (**आशवः**) सर्वव्यापक [अश्नुते व्याप्नोति सर्वमित्याशुः] (**सिन्धवः, प्रनिम्नेन, इव,**) नदियाँ जैसे शीघ्रगतिशील नीचे की ओर जाती हैं उसी प्रकार वह (**असृग्रम्**) भक्तों के हृदय में प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग शुद्धहृदय से उसकी उपासना करते हैं और यम-नियमों द्वारा अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं उनके हृदय में अतिशीघ्र परमात्मा का प्रकाश उत्पन्न होता है ॥१॥

Scanned by CamScanner

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।

इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥२॥

पदार्थः—(**इन्दवः**) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (**सोमासः**) परमात्मा (**अभि, सुवानासः**) भक्तों से सेवन किया गया (**इन्द्रम्**) सेवक को ऐश्वर्यसम्पन्न करके (**अक्षरन्**) दया-वृष्टि से आर्द्र करता है जिस प्रकार (**वृष्टयः पृथिवीम्, इव**) वृष्टियां पृथिवी को आर्द्र करती हैं, इस प्रकार सबको आर्द्र करता है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार वर्षाकाल की वृष्टियां धरातल को सिक्त कर के नाना प्रकार के अंकुर उत्पन्न करती हैं इसी प्रकार परमात्मा की कृपा-दृष्टियाँ उपासकों के हृदय में नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञानादिभावों को उत्पन्न करती हैं ॥२॥

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥३॥

पदार्थः—(**अत्यूर्मिः**) विघ्न पैदा करने वाली सम्पूर्ण संसार की बाधाओं को अतिक्रमण करने वाला (**मत्सरः**) प्रभुता के अभिमान वाला (**मदः**) हर्षप्रद (**सोमः**) उक्त परमात्मा (**रक्षांसि, विघ्नन्**) दुराचारियों को नष्ट करता हुआ और (**देवयुः**) सत्कर्म्मियों को चाहता हुआ (**पवित्रे, अर्षति**) जो कि उपासना द्वारा पात्रता को प्राप्त है, उसमें विराजमान होता है ॥३॥

भावार्थः—जिस पुरुष ने ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा अपने आत्मा को संस्कृत किया है वह ईश्वर के ज्ञान का पात्र कहलाता है, उक्त पात्र के हृदय में परमात्मा अपने ज्ञान को अवश्यमेव प्रकट करता है जैसा कि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" (क०, ३।२३।) जिसको यह पात्र समझता है उसको अपना आत्मा समझकर स्वीकार करता है ॥३॥

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।

उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

पदार्थः—वह पूर्वोक्त परमात्मा (**कलशेषु, आ, धावति**) [कलं शवति इति कलशः] वेदादिवाक्यों में भली भांति वाच्यरूप से विराजमान है और (**पवित्रे, परिषिच्यते**) पात्र में अभिषेक को प्राप्त होता है और (**उक्थैः, यज्ञेषु, वर्धते**) स्तुति द्वारा यज्ञों में प्रकाशित किया जाता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब वेदवेत्ता लोग मधुर ध्वनि से यज्ञों में उक्त परमात्मा का स्तवन करते हैं तो मानो उसका साक्षात् रूप भान होने लगता है ।।४।।

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् ।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ।।५।।

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**त्री, रोचना, अति**) आप तीनों लोकों को अतिक्रमण करके (**रोहन्, न**) सर्वोपरि विराजमान होकर (**दिवं, भ्राजसे**) द्युलोक को प्रकाशित करते हैं (**न**) और (**इष्णन्**) सर्वत्र गतिशील होकर (**सूर्यम्, चोदयः**) सूर्य की भी प्रेरणा करते हैं ।।५।।

भावार्थः—परमात्मा की सत्ता से पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोक स्थिर हैं और उसी की सत्ता में सूर्य, चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थ सब स्थिर हैं। अर्थात् उसी के नियम में विराजमान हैं 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः' (क० २।६) ।।५।।

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः ।
दधानाश्चक्षसि प्रियम् ।।६।।

पदार्थः—(**कारवः**) कर्मकाण्डी और (**चक्षसि, प्रियं, दधानाः**) उस सर्वद्रष्टा परमेश्वर में प्रेम को धारण करते हुए (**विप्राः**) विद्वान् लोग (**यज्ञस्य, मूर्धनि**) यज्ञ के प्रारम्भ में (**अभ्यनूषत**) उस परमात्मा की भली-भाँति स्तुति करते हैं ।।६।।

भावार्थः—यज्ञ के प्रारम्भ में उद्गाता आदि लोग पहले परमात्मा के महत्त्व का गायन करके फिर यज्ञ के अन्य कर्मों का आरम्भ करते हैं ।।६।।

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
मृजन्ति देवतातये ।।७।।

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (**अवस्यवः**) रक्षा चाहने वाले (**विप्राः नरः**) विद्वान् लोग (**देवतातये**) यज्ञ के लिए (**तम्, उ**) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट (**वाजिनम्**) अन्नादि ऐश्वर्य के देने वाले (**त्वा**) आपको (**धीभिः**) अपनी बुद्धियों से (**मृजन्ति**) बुद्धि की वृत्ति का विषय करते हैं ।।७।।

भावार्थः—याज्ञिक लोग जब 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्' इत्यादि मंत्रों का पाठ करते हैं, केवल पाठ ही नहीं किन्तु उसके वाच्यार्थ पर दृष्टि देकर

Scanned by CamScanner

तत्त्व का अनुशीलन करते हैं तब परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इसी अभिप्राय से कहा है कि 'धीभिः त्वा मृजन्ति' अर्थात् बुद्धिमान् तुम्हारा परिशीलन करते हैं ॥७॥

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमारे इस यज्ञ में (**मधोः, धाराम्, अनुक्षर**) प्रेम की धारा बहाइये, (**तीव्रः**) आप गतिशील हैं और (**चारुः**) सुन्दर हैं (**ऋताय, पीतये**) सत्य की प्राप्ति के लिये (**सधस्थम्, आसदः**) यज्ञ में स्थित हुए हमको स्वीकार करिये ॥८॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मों में स्थिर हैं और सत्कर्मों के प्रचार के लिए यज्ञादि कर्म करते हैं उनके उत्साह को परमात्मा अवश्यमेव बढ़ाता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टादशस्य सूक्तस्य १—७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४ निचृद्गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ३, ५, ६ गायत्री । ७ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब विभूतिवाली वस्तुओं में परमात्मा का महत्त्व कथन करते हैं ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

पदार्थः—वह आप (**परि सुवानः**) [परि सर्वं सूत इति परिसुवानः] सर्वोत्पादक हैं (**गिरिष्ठाः**) [गृणाति शब्दं करोतीति गिरिः] आप विद्युदादि पदार्थों में स्थित हैं (**पवित्रे**) पवित्र पदार्थों में स्थित हैं (**सोमः**) सौम्य स्वभाव वाले हैं (**अक्षाः**) [अक्षति व्याप्नोति सर्वमित्यक्षः] और सर्वव्यापक हैं, और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (**असि**) हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विद्युदादि सब शक्तियों में विराजमान है, क्योंकि वह सर्वव्यापक है और जो-जो विभूति वाली वस्तु हैं उन में सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाला परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यापकरूप से परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि विभूति वाली वस्तुओं में उसकी अभिव्यक्ति विशेषरूप से पाई जाती है ॥१॥

Scanned by CamScanner

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**त्वं, विप्रः**) [विप्राति क्षिप्नोतीति विप्रः] आप सब के प्रेरक हैं और (**त्वं, कविः**) [कवते जानाति सर्वमिति कविः] आप सर्वज्ञ हैं (**मधु, प्रजातम्, अन्धसः**) और अन्नादिकों में रस आप ही ने उत्पन्न किया है और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा धारण कराने वाले (**असि**) आप ही हैं ॥२॥

भावार्थः—परमातमाने अपनी विचित्र शक्तियों से नानाविध रस उत्पन्न किये हैं, और नानाप्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न किये हैं। वस्तुतः परमातमा ही सब ऐश्वर्यों का अधिष्ठान और सब रसों की खान है ॥२॥

तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तव, पीतिम्**) आपकी तृप्ति को (**सजोषसः**) परस्पर प्रेम करने वाले (**विश्वे, देवासः**) सब विज्ञानी लोग (**आशत**) पाते हैं, (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा के धारण कराने वाले (**असि**) आप हैं ॥३॥

भावार्थः—परमातमा के आनन्द को विज्ञानी लोग ही वस्तुतः पा सकते हैं अन्य नहीं, कारण यह कि विविध प्रकार के ज्ञान के विना उसका आनन्द मिलना अति कठिन है ॥३॥

आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे ।
मदेषु सर्वधा असि ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमातमा (**विश्वानि**) सब (**वार्या**) [वरीतुं योग्यानि वार्याणि] प्रार्थनीय (**वसूनि**) धन रत्नादिकों को (**हस्तयोः, आदधे**) विज्ञानी लोगों के हस्तगत कर देता है वही (**मदेषु**) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥४॥

भावार्थः—जो सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने हस्तगत करना चाहते हो तो ईश्वर के उपासक बनो ॥४॥

Scanned by CamScanner

य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते ।

मदेषु सर्वधा असि ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमेश्वर (**मातरा, इव**) जीवों की माता के समान (**इमे, मही, रोदसी**) इस महान् आकाश और पृथिवी लोक से (**सं, दोहते**) दूध के समान नाना प्रकार के धन रत्नादिकों को दुहता है (**मदेषु**) वही परमात्मा हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥५॥

भावार्थः—माता शब्द यहां उपलक्षणमात्र है। वास्तव में भाव यह है कि जीवों की माता-पिता के समान जो पृथिवीलोक और द्युलोक हैं इन से नानाविध भोग पैदा करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥५॥

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।

मदेषु सर्वधा असि ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमात्मा (**उभे, रोदसी**) पृथिवी और आकाश इन दोनों लोकों में (**वाजेभिः पर्यर्षति**) ऐश्वर्यों के सहित व्याप्त है वही (**मदेषु**) सब हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा के ऐश्वर्य से कोई स्थान भी खाली नहीं तथापि प्राकृत ऐश्वर्यों का स्थान जैसा द्युलोक और पृथिवी लोक है, ऐसा अन्य नहीं। इसी भाव से इन दोनों का वर्णन विशेषरीति से किया है ॥६॥

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।

मदेषु सर्वधा असि ॥७॥

पदार्थः—(**शुष्मी**) ओजस्वी और (**पुनानः**) सब को पवित्र करने वाला (**सः**) वह परमात्मा (**कलशेषु**) [कलं शवन्ति इति कलशा वैदिकशब्दाः] वैदिक शब्दों में (**अचिक्रदत्**) बोलता है और (**मदेषु**) हर्षयुक्त वस्तुओं में (**सर्वधाः**) सब प्रकार की शोभा को धारण कराने वाला (**असि**) वही है ॥७॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमात्मा के अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक मूर्धस्थानी रूपकालंकार से माने गये हैं इसी प्रकार उसके शब्दों की भी रूपकालंकार से कल्पना की गयी है। वास्तव में वह परमात्मा 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' कि वह शब्दस्पर्शादिगुणों से रहित है और अव्यय=अविनाशी है, इत्यादि वाक्यों द्वारा शब्दादि गुणों से सर्वथा रहित वर्णन किया गया

Scanned by CamScanner

है। उपनिषदों का यह भाव भी 'कि वह निराकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है 'सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' (यजु०, ४०।८) इत्यादि वेदमन्त्रों से लिया गया है ।।७।।

नवम मण्डल में यह अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथैकोनविंशतितमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः–१ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री ।। षड्जः स्वरः ।।

अब परमात्मा के ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं ।।

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।

तन्नः पुनान आ भर ।।१।।

पदार्थः—**(सोम)** हे परमात्मन् ! **(यत्)** जो **(चित्रम्)** अद्भुत **(उक्थ्यम्)** प्रशंसनीय **(दिव्यम्)** द्युलोकसम्बन्धी तथा **(पार्थिवं)** पृथिवीसम्बन्धी **(वसु)** धनरत्नादि ऐश्वर्य है **(तत्)** उससे **(नः)** हमको **(पुनानः)** पवित्र करते हुए **(आभर)** परिपूर्ण होने की शिक्षा दीजिये ।।१।।

भावार्थः—इसमें परमात्मा से विविध धनादि ऐश्वर्य पाने के लिये शिक्षा की प्रार्थना है ।।१।।

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।

ईशाना पिप्यतं धियः ।।२।।

पदार्थः—**(सोम)** हे परमात्मन्! आप **(च)** और **(इन्द्रः)** अध्यापक **(युवम्, हि)** ये दोनों **(स्वर्पती)** सुख के पति **(स्थः)** हैं और **(गोपती)** वाणियों के पति हैं और **(ईशाना)** शिक्षा देने में समर्थ हैं **(धियः, पिप्यतं)** आप दोनों हमारी बुद्धि को उपदेश द्वारा बढ़ाइये ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों को प्रार्थना द्वारा यह शिक्षा दी है कि तुम अपने अध्यापकों से और ईश्वर से सदैव शुभ शिक्षा की प्रार्थना किया करो ।।२।।

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।

हरिः सन्योनिमासदत् ।।३।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला (**आयुषु, पुनानः**) सब मनुष्यों को पवित्र करता हुआ (**अधि, बर्हिषि, स्तनयन्**) प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कारणों को उत्पन्न करता हुआ वह परमेश्वर (**हरिः, सन्**) अज्ञानादिकों का नाश करता हुआ (**योनिम्, आसदत्**) प्रकृतिरूप योनि को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा जब प्रकृति के साथ मिलता है अर्थात् अपनी कृति से प्रकृति में नाना प्रकार की चेष्टाएँ उत्पन्न करता है तो प्रकृति में पञ्चतन्मात्रादि कार्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् सूक्ष्म भूतों के कारण उत्पन्न होते हैं, इस कार्यावस्था में प्रकृतिरूप योनि अर्थात् उपादान कारण का परमात्मा आश्रयण करता है, जैसा कि 'योनिश्चेह गीयते' (वे० १।४।२७।) इस व्याससूत्र में भी योनिनाम प्रकृति का स्पष्ट है ।।।३॥

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।

सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥४॥

पदार्थः—(**धीतयः**) सात प्रकृतियाँ (**वृषभस्य**) सब कामप्रद परमात्मा के (**अधिरेतसि**) कार्य में (**अवावशन्त**) संगत होती हैं (**सूनोः, वत्सस्य**) जैसे वत्स के लिए (**मातरः**) गाय संगत होती हैं ॥४॥

भावार्थः—गौ अपने बच्चे को दुग्ध पिला कर जिस प्रकार परिपुष्ट करती है इसी प्रकार प्रकृति अपने इस कार्यरूप ब्रह्माण्ड को अपने परमाण्वादि दुग्धों द्वारा परिपुष्ट करती है । तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है, परमात्मा निमित्त कारण है और यह संसार वत्ससमान प्रकृति और वृषभरूपी पुरुष का कार्य है ॥४॥

कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।

याः शुक्रं दुहते पयः ॥५॥

पदार्थः—(**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा ने (**वृषण्यन्तीभ्यः**) प्रकृतियों से (**कुविद्, गर्भम्**) बहुत से गर्भ को (**आदधत्**) धारण किया (**याः**) जो प्रकृतियाँ (**शुक्रं, पयः**) सूक्ष्म भूतों से कार्यरूप ब्रह्माण्ड को (**दुहते**) दुहती हैं ॥५॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि जलादि सूक्ष्म भूतों से यह ब्रह्माण्ड स्थूलावस्था में आता है । पञ्चतन्मात्रा के कार्य जो पांच सूक्ष्म भूत उन्हीं का कार्य यह सब संसार है, जैसा कि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी (तै० २।१।) इत्यादि

Scanned by CamScanner

वाक्यों में निरूपण किया है कि परमात्मारूपी निमित्त कारण से प्रथम आकाशरूप तत्त्व का आविर्भाव हुआ जो एक अतिसूक्ष्मतत्त्व है, और जिसका शब्द गुण है, फिर उस से वायु और वायु के संघर्षण से अग्नि और अग्नि से फिर जल आविर्भाव में अर्थात् स्थूलावस्था में आया। उसके अनन्तर पृथिवी ने स्थूल रूप को धारण किया, यह कार्यक्रम है जिसको उक्त मन्त्र ने वर्णन किया है ॥५॥

उप॑ शिक्षापत॒स्थुषो॑ भि॒यस॒मा धे॑हि॒ शत्रु॑षु।
पव॑मान वि॒दा र॒यिम् ॥६॥

पदार्थः—(**पवमान**) 'पवत इति पवमानः संबुद्धौ तु पवमान' हे सब को पवित्र कराने वाले भगवन्! आप (**अपतस्थुषः, उपशिक्ष**) जो आप के समीप में रहने वाले हैं उनको शिक्षा दीजिये और (**शत्रुषु भियसम्, आधेहि**) शत्रुओं में भय उत्पन्न करिये और (**विदा, रयिम्**) उनके धन को अपहरण कर लीजिये ॥६॥

भावार्थः—मित्रबल से तात्पर्य यहां उस दल का है जो न्यायकारी और दीनों पर दया और प्रेम करने वाला हो, शत्रुदल से तात्पर्य उस दल का है जो "शातयतीति शत्रुः" शुभगुणों का नाश करने वाला हो। इस लिए उक्त मन्त्रार्थ में अन्याय का दोष नहीं, क्योंकि न्याय यही चाहता है कि दैवी सम्पत्ति के गुण रखने वाले वृद्धि को प्राप्त हों और आसुरी सम्पत्ति के रखने वाले नाश को प्राप्त हों ॥६॥

नि शत्रोः॑ सोम॒ वृष्ण्यं॒ नि शुष्मं॒ नि वय॑स्तिर।
दू॒रे वा॑ स॒तो अन्ति॑ वा ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! (**शत्रोः**) उस शत्रु के (**वृष्ण्यं**) बल को (**नि तिर**) नाश करिये और (**नि, शुष्मन्**) तेज को तथा (**वयः नि**) अन्नादि ऐश्वर्य को नाश करिये जो शत्रु (**दूरे सतः**) दूर में विद्यमान है (**वा, अन्ति**) वा समीप में ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने जीवों के भावद्वारा अन्यायकारी शत्रुओं के नाश करने का उपदेश किया है। जिस देश में अन्यायकारियों के नाश करने का भाव नहीं रहता, वह देश कदापि उन्नतिशील नहीं हो सकता ॥७॥

नवम मण्डल में यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ सप्तर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४–७ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

इस सूक्त में वेदवेत्ताओं में बलप्रदान का कथन करते हैं ॥

प्र क॒विर्दे॒ववी॑तये॒ऽव्यो॒ वारे॑भिरर्षति ।

सा॒ह्वान्विश्वा॑ अ॒भि स्पृधः॑ ॥१॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**कविः**) मेधावी है और (**अव्यः**) सबका रक्षक है (**देववीतये**) विद्वानों की तृप्ति के लिये (**अर्षति**) ज्ञान को देता है, (**साह्वान्**) सहनशील है और (**विश्वाः, स्पृधः**) सम्पूर्ण दुष्टों को संग्रामों में (**अभि**) तिरस्कृत करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा विद्वानों को ज्ञानप्रदान से और न्यायकारी सैनिकों को बलप्रदान से तृप्त करता है ॥१॥

स हि ष्मा॑ जरि॒तृभ्य॒ आ वाजं॒ गोम॑न्त॒मिन्व॑ति ।

पव॑मानः सह॒स्रिण॑म् ॥२॥

पदार्थः—(**सः, हि, ष्म**) वही (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**जरितृभ्यः**) अपने बलहीन उपासकों को (**आ**) भली प्रकार (**सहस्रिणम्**) हजारों प्रकार के (**गोमन्तम्**) बुद्धि के सहित (**वाजिनम्**) बलों को (**इन्वति**) देता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषों को अनन्त प्रकार का बल और बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

परि॒ विश्वा॑नि॒ चेत॑सा मृ॒शसे॒ पव॑से म॒ती ।

स नः॑ सोम॒ श्रवो॑ विदः ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**चेतसा**) हमारे मन के अनुकूल (**विश्वानि**) आप सब प्रकार के धनों को (**परिमृशसे**) देते हो (**मती, पवसे**) हमारी बुद्धियों को स्तुतियों से पवित्र करते हो (**सः, नः**) सो आप हमारे लिए (**श्रवः, विदः**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को दीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मपरायण पुरुषों की परमात्मा सब प्रकार की रक्षा करता हैं और उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।

इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**मघवद्भ्यः**) जो आप के उपासक धनादि ऐश्वर्य-सम्पन्न हैं उनके (**रयिं, ध्रुवम्**) धन को अचल सुरक्षित कीजिये और (**बृहद्, यशः**) अत्यन्त यश को (**अभ्यर्ष**) दीजिये और (**इषं, स्तोतृभ्यः, आभर**) जो आप के स्तोता हैं उनके लिए धनादि ऐश्वर्य दीजिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सदाचारी और संयमी पुरुषों के धनादि ऐश्वर्य और यश को दृढ़ करता है ॥४॥

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।

पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**त्वं, राजा इव**) आप राजा की तरह (**सुव्रतः**) सुकर्मा हैं और (**गिरः, आविवेशिथ**) वेदवाणियों में प्रविष्ट हैं (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाले हैं और (**वह्ने**) हे सबके प्रेरक ! आप (**अद्भुत**) नित्य नूतन हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सब नियमों का नियन्ता है, नियम पालने की शक्ति मनुष्यों में उसी की कृपा से आती है ॥५॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।

सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

पदार्थः—(**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**अप्सु**) लोक-लोकान्तर में विद्यमान है और (**वह्निः**) सब का प्रेरक है और (**दुष्टरः**) दुराधर्ष है (**गभस्त्योः**) अपने प्रकाश से (**मृज्यमानः**) स्वयं प्रकाशित है (**चमूषु, सीदति**) न्यायकारियों की सेना में स्वयं विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा के भाव सर्वत्र भावित हैं तथापि जैसे न्यायकारी सम्राटों की सेनाओं में उनके रौद्र, वीर, भयानकादि भाव प्रस्फुटित होते हैं ऐसे अन्यत्र नहीं ॥६॥

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (क्रीळुः) आप क्रीडनशील हैं (मखः, न, मंहयुः) यज्ञ के समान दानी हो (पवित्रं, गच्छसि) पवित्र सत्कर्मी मनुष्य को प्राप्त होते हो (स्तोत्रे, सुवीर्यं, दधत्) वेदादि सच्छास्त्रों में अपना बल प्रदान करते हो ॥७॥

भावार्थः—संसार की यह विविध प्रकार की रचना जिस के पारावार को मनुष्य मन से भी नहीं पा सकता वह परमात्मा के आगे एक लीला-मात्र है ॥७॥

नवम मण्डल में यह बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकविंशस्य सूक्तस्य १—७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ विराड् गायत्री । २, ७ गायत्री । ४–६ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब विराट् को परमात्मा के रथरूप से वर्णन करते हैं ॥

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः ।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थः—(एते, सोमाः) हे परमात्मन् ! आप (धावन्ति) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, (इन्दवः) स्वप्रकाश से प्रकाशित हैं, (इन्द्राय, घृष्वयः) विद्वानों द्वारा स्तुत्य हैं, (मत्सरासः) प्रभुता के अभिमान से युक्त हैं और (स्वर्विदः) सुख के देने वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा स्वयंप्रकाश और अपने प्रभुत्वभाव से सर्वत्रैव विराजमान है ॥१॥

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः ।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥२॥

पदार्थः—(प्रवृण्वन्तः) जो लोगों से भजन किया जाता, (अभियुजः) जो दूसरों का प्रेरक,(सुष्वये) सेवक के लिए (वरिवोविदः) धन देने वाला,(स्वयं) स्वसत्ता से विराजमान (स्तोत्रे वयस्कृतः) और स्तोता के लिए अन्नादिकों को देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जिन लोगों को परमात्मा की विविध प्रकार की रचना पर विश्वास है, और परमात्मा की अनन्यभक्ति करते हैं; उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥३॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा में विविध प्रकार के सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह(सिन्धोः, ऊर्मा) जिस तरह सिन्धु में से लहरें उठती हैं इस प्रकार इसी से पैदा होकर इसी में समा जाते हैं । वे ग्रह उपग्रह कैसे हैं (वृथा क्रीळन्तः) जो अनायास से भ्रमण करते हैं (इन्दवः) जिस तरह प्रकाशरूप अग्नियां (सधस्थम्) यज्ञकुण्ड में आके प्राप्त होती हैं इस प्रकार (अभि एकमित्) वह एक ही परमात्मा में प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में जितने ग्रह, उपग्रह हैं वे सब परमात्मा को ही आश्रित करते हैं ॥३॥

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत ।

हिता न सप्तयो रथे ॥४॥

पदार्थः—जिस प्रकार (सप्तयः) सात सूर्य की किरणें (रथे) इस विराट्रूपी रथ में (हिताः) निहित हैं (न) इसी प्रकार (एते, पवमानासः) सब को पवित्र करते हुए ये (विश्वानि) सम्पूर्ण (वार्या) ब्रह्माण्ड (आशत) परमात्मा में निवास करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार उपग्रह सूर्य आदि ग्रहों के इतस्ततः भ्रमण करते हैं इसी प्रकार सब लोक-लोकान्तर इस विराट् के इतस्ततः परिभ्रमण करते हैं ॥४॥

आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।

यो अस्मभ्यमरावा ॥५॥

पदार्थः—(अस्मिन्) इस विराट् में (पिशङ्गम्) अनेक वर्णों को (दधाता) धारण करते हुए (इन्दवः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (वेनम्, आदिशे) उस परमात्मा का आश्रय लेते हैं (यः) जो परमात्मा (अस्मभ्यम्, अरावा) हमारे लिए सब कामनाओं का देने वाला है ॥५॥

भावार्थः—उक्त कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड उसी निराकार परमात्मा के आधार पर स्थित है ॥५॥

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे ।

शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**शुक्राः**) हे पवित्रकारक परमात्मन् ! आप (**रथ्यम्, नवम्**) नये घोड़े को (**दधाता**) वश में रखते हुए (**ऋभुर्न**) सारथी की तरह (**केतम्, आदिशे**) आप सबको वश में करके ज्ञानादि ऐश्वर्य देते हैं। (**अर्णसा**) आप हमको धनाद्यैश्वर्य देकर (**पवध्वं**) पवित्र करिये ॥६॥

भावार्थः—जीव करने में स्वतन्त्र और भोगने में परतन्त्र है। ईश्वर कर्मों के भुगाने में उसे ऐसे नियमों में निगड़ित रखता है जिसका वह अतिक्रमण कदापि नहीं कर सकता। बड़े-बड़े सम्राटों को भी कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। इसी अभिप्राय से यह कहा है कि जिस प्रकार घोड़े को सारथी अपने अधीन रखता है इसी प्रकार परमात्मा जीवों को अपने अधीन रखता है ॥६॥

एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत ।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥७॥

पदार्थः—(**वाजिनः**) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाला (**त्ये, एते, उ**) वही पूर्वोक्त परमात्मा(**अववीशन्**) सबको वश में रखता हुआ (**सतः,मतिम्**) सत्कर्मियों की बुद्धि को (**असाविषुः**) शुभ मार्ग की ओर लगाता हुआ (**पराम्, काष्ठाम्, अक्रत**) परम काष्ठा को प्राप्त कराता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की ओर झुकते हैं अर्थात् यमनियमादि-साधनसम्पन्न होकर संयमी बनते हैं वे ब्रह्मविद्या की पराकाष्ठा को प्राप्त होते हैं इसी अभिप्राय से उपनिषदों में यह कहा है कि 'सा काष्ठा सा परा-गतिः' ॥७॥

नवम मण्डल में यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य द्वाविंशस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४–७ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की सृष्टिरचना का वर्णन करते हैं ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।
सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥१॥

पदार्थः—(**एते, सोमासः**) यह परमात्मा (**रथा, इव**) विद्युत् के समान (**आशवः**) शीघ्रगामी है और (**प्र, वाजिनः**) अत्यन्त बल वाला है (**सर्गाः, सृष्टाः, अहेषत**) उसने सृष्टियों को शब्दायमान रचा है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा में अनन्त शक्तियां पाई जाती हैं, उसकी शक्तियां विद्युत् के समान क्रियाप्रधान हैं; उसने कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को रचा है, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्रों के कार्य हैं । और इनकी ऐसी अचिन्त्य रचना है जिसका अनुशीलन मनुष्य मन से भी भली भांति नहीं कर सकता ॥१॥

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥

पदार्थः—(**एते**) सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**उरवः, वाताः, इव**) बहुतसी वायु की तरह (**पर्जन्यस्य, वृष्टयः, इव**) और मेघ की वृष्टि के समान,(**अग्नेः, भ्रमाः, इव**) अग्नि के प्रज्वलन की तरह (**वृथा**) अनायास गमन कर रहे हैं ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि की ज्वलनशक्ति स्वाभाविक है इसी प्रकार वे ब्रह्माण्ड भी स्वाभाविक गतिशील बनाये गये हैं । स्वाभाविक से तात्पर्य यहां आकस्मिक नहीं है किन्तु नियमपूर्वक भ्रमण का है जैसे कि सूर्य, चन्द्र आदि ईश्वरदत्त नियम से सदैव परिभ्रमण करते हैं इसी प्रकार ये सब ब्रह्माण्ड ईश्वरदत्त नियम से परिभ्रमण करते हैं । इसी अभिप्राय से कहा है कि 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः' (क० २।६।) उस के भय से अग्नि तपती है और उसी के भय से सूर्य तपता है, जिस प्रकार इस में ईश्वराधीनता अग्न्यादि तत्वों की वर्णन की गयी है इसी प्रकार सब कार्यजात ईश्वराधीन हैं ॥२॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥३॥

पदार्थः—(**पूताः**) पवित्र (**एते, सोमासः**) ये सब उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड (**दध्याशिरः**) सब के धारक आश्रयभूत (**विपा**) ज्ञानद्वारा (**विपश्चितः**) विद्वानों की (**धियः**) बुद्धि का (**व्यानशुः**) विषय होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की रचना में जो कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड हैं वे सब ज्ञानी-विज्ञानियों की ही समझ में आ सकते हैं, अन्यों की नहीं ॥३॥

Scanned by CamScanner

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥४॥

पदार्थः—(मृष्टाः) भास्वररूप (अमर्त्याः) नक्षत्रगण (पथः, रजः) रजोगुण से मार्ग को (इयक्षन्तः) प्राप्त होने वाले (ससृवांसः) चलते हुए (न, शश्रमुः) विश्राम को नहीं पाते ॥४॥

भावार्थः—यों तो संसार में दिव्यादिव्य अनेक प्रकार के नक्षत्र हैं पर जो दिव्य नक्षत्र हैं उनकी ज्योति प्रतिपल सहस्रों मील चलती हुई भी अभी तक इस भूगोल के साथ स्पर्श नहीं करने पायी। तात्पर्य यह है कि इस दिव्यरचनारूप ब्रह्माण्डों की इयत्ता को पाना परमात्मा का काम ही है, खद्योतकल्प क्षुद्र जीव केवल इनकी रचना को कुछ-कुछ अनुभव करता है सब नहीं। हां; योगिजन, जो परमात्मा के योग में रत हैं वे लोग साधारण, लोगों से परमात्मा की रचना को अधिक अनुभव करते हैं। इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी यह कहा है कि 'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत कुतो विजाता कुत इयं विसृष्टिः' (१०।११।१३०) कौन जान सकता है और कौन कह सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि परमात्मा ने कहां से और किस शक्ति से, किस समय उत्पन्न की? इस से आगे यह निरूपण किया है कि इसका पूर्णरूप से ज्ञाता वह परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं। इसी अभिप्राय से 'परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम्' (सा० १।७६।) इत्यादि सूत्रों में सांख्य शास्त्र में प्रकृति को विभु माना है, पर वहाँ यह व्यवस्था समझनी चाहिये कि प्रकृति सापेक्ष विभु है अर्थात् अन्य कार्यों की अपेक्षा विभु है। वास्तव में इयत्तारहित विभु एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य वस्तु नहीं ॥४॥

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥५॥

पदार्थः—(एते) ये सब नक्षत्रादि (रोदसोः, पृष्ठानि) पृथिवी और द्युलोक के मध्य में (विप्रयन्तः) चलते हुए (इदं, उत्तमम्, रजः) इस उत्तम रजोगुण को (उत, व्यानशुः) व्याप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—उक्त ब्रह्माण्डों की विविध रचना में परमात्मा ने इस प्रकार का आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न किया है कि जिस में एक-दूसरे के

Scanned by CamScanner

आश्रित होकर वे प्रतिक्षण गतिशील बन रहे हैं। वा यों कहो कि सत्व, रज, और तम प्रकृति के ये तीनों गुण अर्थात् प्रकृति की ये तीनों अवस्थायें जिस प्रकार एक-दूसरे का आश्रयण करती हैं, इस प्रकार एक-दूसरे को आश्रयण करता हुआ प्रत्येक ब्रह्माण्ड इस नभोमण्डल में वायुवेग के उत्तेजित तृण के समान प्रतिक्षण चल रहा है, कोई स्थिर नहीं है ॥५॥

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।

उतेदमुत्तमाय्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**प्रवतः**) गतिशील ब्रह्माण्ड (**उत्तमं, तन्तुम्, तन्वानम्**) उत्तम परमाणुप्रबन्ध को बढ़ाते हुए (**इदम्**) इतने (**उत्तमाय्यम्**) उत्तम कार्यों से (**उत, अन्वाशत**) व्याप्त हो रहे हैं ॥६॥

भावार्थः—प्रत्येक ब्रह्माण्ड मानो तन्तुरूप से अर्थात् रचनारूप यज्ञ से परमात्मा की संसृति को बढ़ा रहा है ॥६॥

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ।

ततं तन्तुमचिक्रदः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**पणिभ्यः**) दुष्टों से (**वसु, गव्यानि**) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी रत्नों का (**आ, धारयः**) अच्छी प्रकार ग्रहण करते हो और (**ततं, तन्तुम्**) बढ़े हुए कर्मात्मकयज्ञ का (**अचिक्रदः**) प्रचार करते हो ॥७॥

भावार्थः—इस सूक्त की समाप्ति करते हुए अर्थात् इस अगाध रचयिता की रचना का वर्णन करते हुए परमात्मा के रुद्ररूप का वर्णन करके इस सूक्त का उपसंहार करते हैं। 'रोदयति राक्षसानिति रुद्रः' जो अन्यायकारी राक्षसों को रुला दे उसका नाम यहां रुद्र है। वह रुद्ररूप परमात्मा अन्यायकारी दुष्ट दस्युओं से धन, जन और राज्यश्री का अपहरण कर लेता है और लेकर न्यायकारी दान्त शान्त देवताओं को प्रदान कर देता है, इसी का नाम देवासुर-संग्राम है और इसी का नाम दवी और आसुरी सम्पत्ति है। यह व्यवहार परमात्मा की विविध रचना में घटीयंत्र के समान सदैव होता रहता है। जिस तरह घटीयंत्र अर्थात् रहट के पात्र जो कभी भरे हुए होते हैं वे ही ऊंचे चढ़ कर गर्व करते हुए सर्वदा रीते हो जाते हैं, और जो

Scanned by CamScanner

रीते हो जाते हैं वे ही विनय और नम्रता करते हुए भर अर्थात् परिपूर्ण हो जाते हैं । इसलिए सदैव परमात्मा की विनयभाव से पूर्ण होने की अभिलाषा प्रत्येक अभ्युदयाभिलाषी को करनी चाहिये ॥७॥

नवम मण्डल में यह बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–४, ६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जःस्वरः ॥

अब उक्त रचना को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

सोमा॑ असृग्रमा॒शवो॒ मधो॒र्मद॑स्य॒ धार॑या ।

अ॒भि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ॥१॥

पदार्थः—(सोमाः) [सूयन्ते=उत्पाद्यन्त इति सोमाः ब्रह्माण्डानि] अनन्त प्रकार के कार्यरूप ब्रह्माण्ड (**मधोः, मदस्य**) प्रकृति के हर्षजनक भावों की (**धारया**) सूक्ष्म अवस्था से (**आशवः**) शीघ्र गति वाले (**असृग्रम्**) बनाए गये हैं और (**अभि, विश्वानि, काव्या**) तदनन्तर सब प्रकार के वेदादि शास्त्रों की रचना हुई ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृति की सूक्ष्मावस्था से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को उत्पन्न किया और तदनन्तर उसने विधिनिषेधात्मक सब विद्याभण्डार वेदों को रचा । जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि वेदमन्त्र और "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि सूत्रों से प्रतिपादन कर आये हैं ॥१॥

अनु॑ प्र॒त्नास॑ आ॒यवः॑ प॒दं नवी॑यो अक्रमुः ।

रु॒चे ज॑नन्त॒ सूर्य॑म् ॥२॥

पदार्थः—उनमें से (**आयवः**) शीघ्रगामी प्रकृतिपरमाणु (**प्रत्नासः**) जो स्वरूप से अनादि हैं वे (**अनु, नवीयः, पदम्, अक्रमुः**) नवीन पद को धारण करते हैं (**रुचे**) दीप्ति के लिये परमात्मा ने उन्हीं परमाणुओं में से (**सूर्यम्, जनन्त**) सूर्य को पैदा किया ॥२॥

भावार्थः—प्रकृति की विविध प्रकार की शक्तियों से परमात्मा सम्पूर्ण कार्यों को उत्पन्न करता है । इन सब कार्यों का उपादान कारण प्रकृति अनादि अनन्त है । इसी भाव को मन्त्रों में 'प्रत्नासः' पद से वर्णन किया है ॥२॥

Scanned by CamScanner

आ पवमान नो भरार्यो अदांशुषो गयम् ।

कृधि प्रजावतीरिषः ॥३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**नः**) हम को (**अर्यः**) जो भाव असुरों को (**अदाशुषः**) नहीं दिये वह (**गयम्**) भाव ((**आ, भर**) दें और (**प्रजावतीः, इषः**) धनपुत्रादि ऐश्वर्यों को (**कृधि**) दें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (अर्यः) परमात्मा का नाम है [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोति इत्यर्य्यः परमात्मा] जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम अर्य है, उस अर्य परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हे परमात्मन्! आप हमको दैवी सम्पत्ति के गुण दें अर्थात् हमको ऐसे पवित्र भाव दें जिससे हम में आसुरभाव कदापि न आवें। जो पुरुष सदैव देवताओं के गुणों से सम्पन्न होने की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें सदैव दिव्य गुणों का दान देता है ॥३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थः—(**सोमासः**) ये कार्य्य ब्रह्माण्ड जो (**आयवः**) गतिशील हैं (**मद्यं, मदम्**) अनन्त प्रकार के आह्लादकारक और मदकारक वस्तुओं को (**अभि**) सब ओर से उत्पन्न करते हैं और (**मधुश्चुतम्**) नानाप्रकार के रसों को देने वाले (**कोशम्**) खजाने को (**अभि**) सब ओर से उत्पन्न करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सब विभूतियों की खानरूप ब्रह्माण्डों का वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि इस संसार में नाना प्रकार की वस्तुएँ जिन ब्रह्माण्डों में उत्पन्न होती हैं उनको सोम नाम से कथन किया गया है ॥४॥

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् ।

सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥५॥

पदार्थः—(**सोमः**) सब पदार्थों का उत्पत्तिस्थान यह ब्रह्माण्ड (**अर्षति**) गति कर रहा है (**धर्णसिः**) सबके धारण करने वाला है और (**इन्द्रियं, रसम्**) इन्द्रियों के शब्दस्पर्शादि रसों को (**दधानः**) धारण करता हुआ विराजमान है और उसका (**सुवीरः**) सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा (**अभि, शस्तिपाः**) सब ओर से रक्षक है ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो ब्राह्मण्ड कोटि-कोटि नक्षत्रों को धारण किये हुए हैं और जिनमें नानाप्रकार के रस उत्पन्न होते हैं उनका जन्मदाता एकमात्र परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं। इस मन्त्र में ब्रह्माण्डाधिपति परमात्मा का वर्णन किया गया है और उसी की सत्ता से धारण किये हुए ब्रह्माण्डों का वर्णन है ॥५॥

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये तुम (पवसे) पवित्रता देते हो और (देवेभ्यः) विद्वान् लोगों के लिये तुम (सधमाद्यः) यज्ञ में सेवनीय हो और (इन्दो) परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन्! आप (वाजं, सिषाससि) सबको अन्न दान देते हो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही कर्मयोगी को कर्म्मों में लगने का बल देता है और परमात्मा ही सत्कर्मी पुरुषों को यज्ञ करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। बहुत क्या, परमात्मा ही अन्न धनादि सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदान करता है ॥६॥

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति ।
जघान जघनच्च नु ॥७॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द को (पीत्वा) पीकर जो (मदानाम्) सब प्रकार के मदों को तिरस्कार करके विराजमान है, (इन्द्रः) कर्मयोगी पुरुष ने (वृत्राणि) अज्ञानों को (अप्रति) प्रतिपक्षी बनकर (जघान) नाश किया और (जघनच्च) नाश करता है, (नु) निश्चय करके तुम उसी परमात्मा के आनन्द को पान करो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! सब आनन्दों से बढ़कर ब्रह्मानन्द है। इस आनन्द के आगे सब प्रकार के मादक द्रव्य भी निरानन्द प्रतीत होते हैं। वास्तव में मदकारक वस्तु मनुष्य की बुद्धि को नाश करके आनन्ददायक प्रतीत होती है और ब्रह्मानन्द का भान किसी प्रकार के मद को उत्पन्न नहीं करता, किन्तु आह्लाद को उत्पन्न करता है। इसी लिये सब प्रकार के मद उसके सामने तुच्छ हो जाते हैं। जिस प्रकार राजमद, धनमद, यौवनमद, रूपमद इत्यादि सब मद विद्यानन्द के आगे तुच्छ प्रतीत होते हैं; इसी प्रकार विद्यानन्द योगानन्द इत्यादि सब आनन्द ब्रह्मानन्द

Scanned by CamScanner

के आगे फीके हो जाते हैं। इसी अभिप्राय से मन्त्र में कहा है कि "मदानाम्" सब मदों में से सच्चा मद एकमात्र परमात्मा का आनन्द है। इसी अभिप्राय से कहा है कि "रसो ह्येव हि सः रसं ह्येव लब्ध्वा आनन्दी भवति" परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उस आनन्दस्वरूप को लाभ करके पुरुष आनन्दित होता है ॥७॥

नवम मण्डल में यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य १–७ असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५, ७ निचृद्गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

प्र सोमा॑सो अधन्विषुः॒ पव॑माना॒स इन्द॑वः ।
श्रीणा॒ना अ॒प्सु मृ॑ञ्जत ॥१॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्य स्वभाव को उत्पन्न करने वाले परमात्मा के आह्लादादि गुण (पवमानासः) जो मनुष्य को पवित्र कर देने वाले हैं (इन्दवः) जो दीप्ति वाले हैं जो कर्मयोगियों में (प्र) प्रकर्षता से आनन्द (अधन्विषुः) उत्पन्न करने वाले हैं (श्रीणानाः) वे सेवन किये हुए (अप्सु) शरीर, मन और वाणी तीनों प्रकार के यत्नों में (मृञ्जत) शुद्धि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम परमात्मा के गुणों का चिन्तन करके अपने मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि करो। जिस प्रकार जल शरीर की शुद्धि करता है और परमात्मोपासन मन की शुद्धि करता है और स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन वाणी की शुद्धि करता है, इसी प्रकार परमात्मा के ब्रह्मचर्य्यादि गुण शरीर, मन और वाणी की शुद्धि करते हैं। 'ब्रह्म' नाम यहाँ वेद का है। वेद के निमित्त जो व्रत किया जाता है उस का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। इस व्रत में इन्द्रियों का संयम भी करना अत्यावश्यक होता है। इस लिये ब्रह्मचर्य्य के अर्थ जितेन्द्रियता भी हैं। इसके मुख्य अर्थ वेदाध्ययन व्रत के ही हैं। वेदाध्ययन व्रत इन्द्रियसंयम द्वारा शरीर की शुद्धि करता है, ज्ञानद्वारा मन की शुद्धि करता है, और अध्ययनद्वारा वाणी की शुद्धि करता है। इसी प्रकार परमात्मा के सत्य, ज्ञान और अनन्तादि गुण आह्लाद उत्पन्न करके मन, वाणी तथा शरीर की शुद्धि के कारण होते हैं। इसी अभिप्राय से उपनिषदों ने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तै० २ । १ ।) इत्यादि वाक्यों में परमात्मा के सत्यादि गुणों का वर्णन किया है ॥१॥

Scanned by CamScanner

अभि गावो॑ अधन्विषुरापो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः ।

पुनाना इन्द्र॑माशत ॥२॥

पदार्थः—(**गावः**) इन्द्रियां (**अभि, अधन्विषुः**) कर्मयोगियों में (**आपः, न**) जल के समान (**प्रवता**) वेग वाली होती हैं और (**यतीः**) वशीभूत होती हैं (**पुनानाः**) वे वशीकृत इन्द्रियाँ मनुष्य को पवित्र करती हुई (**इन्द्रम् आशत**) परमात्मा को विषय करती हैं ॥२॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुषों की इन्द्रियाँ परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं। यहां साक्षात्कार से तात्पर्य्य यह है कि वे परमात्मा को विषय करती हैं जैसा कि "दृश्यते त्वग्रचा बुद्धचा सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" (कठ० ३।१२।) इस वाक्य में निराकार परमात्मा बुद्धि का विषय माना गया है। इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष की इन्द्रियाँ परमात्मा के साक्षात्कार के सामर्थ्य को लाभ करती हैं ॥२॥

प्र प॑वमान धन्वसि॒ सोमेन्द्रा॑य॒ पात॑वे ।

नृभि॒र्यतो॒ वि नी॑यसे ॥३॥

पदार्थः—(**प्र पवमान**) हे परमात्मन् ! (**धन्वसि**) तुम सर्वत्र गतिशील हो और (**सोम, इन्द्राय**) कर्मयोगी की (**पातवे**) तृप्ति के लिये तुम ही एकमात्र उपास्य-देव हो (**यतः**) जिस लिये (**नृभिः**) ऋत्विगादि लोगों के (**विनीयसे**) विनीत भाव से आप उन्हें प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष कर्मयोगी व ज्ञान-योगी हैं उनकी तृप्ति का कारण एकमात्र परमात्मा ही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार परमात्मा में ज्ञान, बल, क्रिया इत्यादि धर्म स्वाभाविक पाये जाते हैं इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुष भी साधनसम्पन्न होकर उन धर्मों को धारण करते हैं ॥३॥

त्वं सो॑म नृ॒माद॑नः॒ पव॑स्व चर्षणी॒सहे॑ ।

सस्नि॒र्यो॑ अ॑नु॒माद्यः॑ ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**त्वं**) तुम (**नृमादनः**) मनुष्यों को आनन्द देने वाले हो, (**चर्षणीसहे**) जो आप से विमुख मनुष्य हैं उन पर भी कृपा करने वाले हो, (**सस्निः**) शुद्ध स्वरूप हो, (**अनुमाद्यः**) सर्वथा स्तुति करने योग्य हो। (**यः**) जो इस प्रकार के गुणों का आधार सर्वोपरि देव आप हैं (**पवस्व**) वह आप हम पर कृपा करें ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा किसी से राग द्वेष नहीं करते, सब को स्वकर्मानुकूल फल देते हैं । अर्थात् एकमात्र परमात्मा ही पक्षपात से शून्य होकर न्याय करते हैं । इसी लिये परमात्मा को यहां "चर्षणीसह" अर्थात् सब पर दया करने वाला कहा गया है ॥४॥

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यत्) जब तुम (पवित्रम्) पवित्र अन्तःकरणों में (परिधावसि) निवास करते हो तब (अद्रिभिः, सुतः) अन्तःकरण की वृत्तिद्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (इन्द्रस्य, धाम्ने) कर्मयोगी पुरुष के अन्तःकरणरूपी धाम को (अरम्) अलङ्कृत करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी व्यापकता से कर्मयोगी पुरुषों के अन्तःकरणों को अलङ्कृत करता है ।

यद्यपि परमात्मा प्रत्येक पुरुष के अन्तःकरण को विभूषित करता है तथापि कर्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा जिन पुरुषों ने अपने अन्तःकरणों को निर्मल बनाया है उनके अन्तःकरण में परमात्मा का प्रकाश विशेषरूप से प्रतीत होता है । इसीलिये योगियों के अन्तःकरणों का विशेषरूप से प्रकाशित होना कथन किया गया है ॥५॥

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पदार्थः—(वृत्रहन्तम) हे अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मन् ! आप (उक्थेभिः) यज्ञों द्वारा (अनुमाद्यः) मनुष्यों को आनन्द देते हैं (शुचिः) शुद्धस्वरूप हैं (पावकः) सबको पवित्र करने वाले हैं तथा (अद्भुतः) आश्चर्यरूप हैं, आप कृपा कर (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही इस संसार में आश्चर्यमय है । अर्थात् अन्य सब वस्तुओं का पारावार मिल जाता है, एकमात्र परमात्मा ही ऐसा पदार्थ है जिसका पारावार नहीं । यद्यपि जिज्ञासु पुरुष उस पूर्ण को पूर्णरूप से नहीं जान सकता तथापि उसके ज्ञानमात्र में अर्थात् "अस्ति इत्येवोपलब्धव्यः" उसकी सत्ता ही के साक्षात्कार से पुरुष आनन्द का अनुभव करता है । केवल एकमात्र परमात्मा ही आनन्दमय है, अन्य सब उसी के आनन्द को लाभ करके आनन्द पाते हैं, अन्यथा नहीं ॥६॥

Scanned by CamScanner

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः ।

देवावीरघशंसहा ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप है, (**पावकः, उच्यते**) सबको पवित्र करने वाला कहा जाता है, (**सोमः**) "सूते चराचरं यः स सोमः" जो सबका उत्पादक है उसका नाम यहाँ सोम है (**सुतस्य**) इस कार्यमात्र ब्राह्मण का (**मध्वः**) अधिकरण है, (**देवावीः**) देवताओं का रक्षक है, (**अघशंसहा**) पापों की स्तुति करने वाले पापमय जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों का हनन करने वाला है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग पापमय जीवन व्यतीत करते हैं परमात्मा उनकी वृद्धि कदापि नहीं करता । यद्यपि पापी पुरुष भी कहीं-कहीं फलते-फूलते हुए देखे जाते हैं तथापि उनका परिणाम अच्छा कदापि नहीं होता । अन्त में 'यतो धर्मस्ततो जयः' का सिद्धान्त ही ठीक रहता है कि जिस ओर धर्म होता है उसी पक्ष की जय होती है । इस तात्पर्य से मन्त्र में यह कथन किया है कि परमात्मा पापी पुरुष और उनका अनुमोदन करने वाले दोनों का नाश करता है ॥७॥

नवम मण्डल में यह चौवीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ दृळ्हच्युत आगस्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,३,५,६ गायत्री । २,४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

मुक्ति का धाम एकमात्र परमात्मा है अब इस बात का वर्णन करते हैं ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।

मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१॥

पदार्थः—(**हरे**) हे परमात्मन् ! सब दुःखों के हरने वाले जगदीश्वर ! आप (**वायवे**) कर्मयोगी पुरुष के लिये (**मदः**) आनन्दस्वरूप हैं और (**मरुद्भ्यः**) ज्ञानयोगियों के लिये भी आनन्दस्वरूप हैं, आप (**देवेभ्यः**) उक्त विद्वानों की (**पीतये**) तृप्ति के लिये (**दक्षसाधनः**) पर्याप्त साधनों वाले हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्द का अनुभव केवल ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुष ही कर सकते हैं अन्य नहीं । जो पुरुष अयोगी है अर्थात् जिस पुरुष का किसी तत्त्व के साथ योग नहीं, वह कर्मयोगी व ज्ञानयोगी नहीं बन सकता ॥१॥

Scanned by CamScanner

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।

धर्मणा वायुमा विश ॥२॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**धिया, हितः**) बुद्धि से धारण किये हुए आप (**अभि,योनिम्**) हृदयरूपी स्थान में (**कनिक्रदत्**) सदुपदेश करते हुए (**आविश**) प्रवेश कीजिये और (**धर्मणा**) अपने अपहतपाप्मादि धर्मों द्वारा (**वायुम्**) कर्मयोगी विद्वान् के हृदय में आकर प्रवेश करें ॥२॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग शुद्ध बुद्धि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उनके हृदय को परमात्मा सदैव शुद्ध करता है। तात्पर्य यह है कि अपहतपाप्मादि परमात्मा के गुणों को वही पुरुष धारण कर सकता है जो पुरुष योगसाधनादि द्वारा संस्कृत की हुई बुद्धि के साथ परमात्मा का ध्यान करता है। इसी अभिप्राय से कहा है कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' (कठ० ३।१२।) तथा "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (मु० ३,१,३) जब जिज्ञासु पुरुष उस स्वतः-प्रकाश ब्रह्म को अपने योगजसामर्थ्य से देखता है तो पुण्य-पाप से छूटता है अर्थात् जिस प्रकार वह परम पुरुष निष्पाप है उसी प्रकार वह भी निष्पाप होकर उसके सत्यादि गुणों को धारण करता है। इसी का नाम वैदिक मत में मुक्ति है अर्थात् पापरूपी मल से छूटकर ब्रह्म के अमृत भावादि धर्मों को धारण करने का नाम मुक्ति है ॥२॥

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।

वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थः—सर्व जगत् का उत्पादक वह परमात्मा (**देवैः**) दिव्य-शक्तियों के द्वारा (**सं, शोभते**) शोभा को प्राप्त हो रहा है, (**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला है, (**कविः**) सर्वज्ञ (**योनौ, अधि**) प्रकृति-रूप योनि में अधिष्ठित अर्थात् अधिष्ठानरूप से जो विराजमान है (**प्रियः**) वह सर्वप्रिय और (**वृत्रहा**) अज्ञान का नाश करने वाला (**देववीतमः**) विद्वानों के हृदय में प्रकाशरूप से विराजमान है ॥३॥

भावार्थः यद्यपि परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तथापि उसको साक्षात् करने वाले विद्वानों के हृदय में विशेषरूप से विराजमान है। इसी अभिप्राय से गीता में कहा है कि "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" माया के सम्बन्ध के कारण परमात्मा सबको अपने-अपने हृदय में प्रतीत नहीं होता, वरन् सबके हृदय में आकाशवत् परिपूर्णरूप से विराजमान है ॥३॥

Scanned by CamScanner

अब इस बात का कथन करते हैं कि मुक्त पुरुष उस ब्रह्म के स्वरूप में निवास करते हैं ॥

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः ।
यत्रामृतास आसते ॥४॥

पदार्थः—(**पुनानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**विश्वा, रूपाणि**) सब रूपों में (**आविशन्**) प्रवेश करता हुआ (**हर्यतः**) अपनी कमनीयता से (**याति**) सर्वत्र प्राप्त है (**यत्र**) जिस ब्रह्मरूप में (**अमृतासः**) मुक्ति पद को भोगते हुए (**आसते**) मुक्त पुरुष निवास करते हैं वह ब्रह्म सबको पवित्र करने वाला है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा प्रत्येक वस्तु के भीतर व्यापक है अर्थात् वह प्रत्येक रूप में प्रविष्ट है, इसी तात्पर्य से उपनिषद् में कथन किया है "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" प्रत्येक रूप में परमात्मा तद्रूप हो रहा है अर्थात् उसी की सत्ता से उस रूप की मनोहरता है । इस प्रकार का जो सर्वाधिकरण परमात्मा है उसी में मुक्त पुरुष जाकर निवास करते हैं ॥४॥

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् ।
इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥५॥

पदार्थः—(**अरुषः**) प्रकाशमान परमात्मा (**गिरः**) वेदरूप वाणियों को (**जनयन्**) उत्पन्न करने वाला (**सोमः**) संसार को उत्पन्न करने वाला (**इन्द्रं**) जीवात्मा को (**आयुषक्**) जो कि कर्मयोग में लगा हुआ है (**गच्छन्**) प्राप्त होकर (**पवते**) पवित्र करता है (**कविक्रतुः**) वह परमात्मा सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थः—शुभाशुभ कर्मों के द्वारा परमात्मा प्रत्येक जीव को प्राप्त है । अर्थात् उनको शुभाशुभ कर्मों के फल देता है । और वही परमात्मा वेदरूप वाणियों का प्रकाश करके पुरुषों को शुभाशुभ मार्ग दर्शा कर शुभ कर्मों की ओर प्रेरणा करता है ॥५॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥

पदार्थः—(**अर्कस्य**) ज्ञानरूप प्रकाश के (**योनिं**) स्थान की (**आसदम्**) प्राप्ति के लिये (**मदिन्तम**) हे आनन्दस्वरूप भगवन् ! आप (**धारया**) आनन्द की वृष्टि द्वारा (**पवित्रं**) हमको पवित्र करें (**कवे**) हे सर्वद्रष्टः! (**आ पवस्व**) सब ओर से आप हमको पवित्र करें ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग शुद्ध हृदय से परमात्मा की उपासना करते हैं उन के हृदय में ज्ञान का प्रकाश अवश्यमेव होता है, वे लोग सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्टचस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,३–५ निचृद्गायत्री । २,६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर किस प्रकार बुद्धि का विषय होता है अब इस बात का उपदेश करते हैं ॥

तमम्मृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि ।

विप्रासो अण्व्या धिया ॥१॥

पदार्थः—(**विप्रासः**) धारणाध्यानादि साधनों से शुद्ध की हुई बुद्धि वाले लोग (**अण्व्या**) सूक्ष्म (**धिया**) बुद्धि द्वारा (**अदितेरधि**) सत्यादिक ज्योतियों के अधिकरण स्वरूप (**तं, वाजिनं**) उस बलस्वरूप परमात्मा को (**उपस्थे**) अपने अन्तःकरण में (**अमृक्षन्त**) शुद्ध ज्ञान का विषय करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जिन लोगों ने निर्विकल्प-सविकल्प समाधियों द्वारा अपनी चित्तवृत्ति को स्थिर करके बुद्धि को परमात्मविषयिणी बनाया है, वे लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। अर्थात् उसको आत्मसुख के समान अनुभव का विषय बना लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अपने आनन्दादि गुण प्रतीत होते हैं इसी प्रकार योगी पुरुषों को परमात्मा के आनन्दादि गुणों की प्रतीति होती है ॥१॥

अब उक्त स्वरूप के साक्षात्कार का अन्य प्रकार कथन करते हैं ॥

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् ।

इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥२॥

पदार्थः—(**गावः**) [गच्छन्ति विषयानिति गाव इन्द्रियाणि] इन्द्रियाँ (**तम्**) उस परमात्मा को (**अभ्यनूषत**) अपना विषय बनाती हैं, जो परमात्मा (**सहस्रधारम्**) अनेक वस्तुओं का धारण करने वाला, (**अक्षितम्**) अच्युत, (**इन्दुम्**) परमैश्वर्य-सम्पन्न (**दिवः, आधर्त्तारम्**) तथा द्युलोकपर्यन्त लोकों का धारण करनेवाला है ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो परमात्मा द्युभ्वादि लोकों का आधार है और जिसमें अनन्त प्रकार की वस्तुएं निवास करती हैं यह शुद्ध इन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है ।।२।।

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि ।

धर्णसिं भूरिधायसम् ।।३।।

पदार्थः—(**तम्, वेधां**) उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मा को (**मेधया, अह्यन्**) विद्वान् लोग अपनी बुद्धि का विषय बनाते हैं जो (**पवमानम्**) सबको पवित्र करने वाला है और (**अधि, द्यवि**) जो द्युलोक में अधिष्ठातारूप से स्थित है, (**धर्णसिम्**) सबको धारण करने वाला तथा (**भूरिधायसम्**) अनेक वस्तुओं का रचयिता है ।।२।।

भावार्थः—उक्त परमात्मा को, जो सब लोक-लोकान्तरों का आधार है, योगादि साधनों द्वारा संस्कृत बुद्धि से योगिजन विषय करते हैं। इस मन्त्र में जो परमात्मा को वेधा अर्थात् "विधति लोकान् विदधातीति वा वेधाः" विधाता रूप से वर्णन किया है इसका तात्पर्य यह हैं कि परमात्मा सब वस्तुओं का निर्माणकर्त्ता है । इसी अभिप्राय से "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" (ऋ. सू. १६) में यह कथन किया है कि सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिर्मय पदार्थों का निर्माण एकमात्र परमात्मा ने ही किया है । सूर्य चन्द्रमा यहाँ उपलक्षण हैं, वस्तुतः सब ब्रह्माण्डों का निर्माता एक परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ।।३।।

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः ।

पतिं वाचो अदाभ्यम् ।।४।।

पदार्थः –(**वाचः, पतिम्**) जो ऋग्वेदादि वाणियों का पति परमात्मा है और (**अदाभ्यम्**) जो निष्कपट सेवन करने योग्य है,(**संवसानम्**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है (**तम्**) उस परमात्मा को तथा (**विवस्वतः**) उस प्रकाशस्वरूप की (**भुरिजोः**) शक्तियों को विद्वान् लोग (**धिया**) अपनी बुद्धि से (**अह्यन्**) साक्षात् करते हैं ।।४।।

भावार्थः – जिस प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऋगादि चारों वेद उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ऋगादि वेद जिसकी वाणीरूप हैं, वह परमात्मा योगिजनों के ध्यानगोचर होकर उनको आनन्द का प्रदान करता है ।।४।।

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

हर्यतं भूरिचक्षसम् ।।५।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**जामयः**) इन्द्रियवृत्तियाँ (**तं**) उस परमात्मा को (**सानौ, अधि**) उच्च से उच्च प्रदेश में (**अद्रिभिः**) अपनी शक्तियों से (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करती हैं जो कि (**हरिम्**) भक्तों के दुःखों को हरने वाला और (**हर्यतम्**) प्रलयादि परिणामों में हेतुभूत तथा (**भूरिचक्षसम्**) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थः—उक्त परमात्मा ही जगत् के जन्मादिकों का हेतु है, अर्थात् उसी से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होते हैं। वह परमात्मा हिमालय के उच्च से उच्च प्रदेशों में और सागर के गम्भीर से गम्भीर स्थानों में विराजमान है। उस सर्वज्ञ का साक्षात्कार चित्तवृत्तिनिरोधरूपी योगद्वारा ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। ॥५॥

तं त्वां हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् ।

इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥६॥

पदार्थः— (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**तम्, गिरावृधम्**) उस पूर्वोक्तगुणसम्पन्न और वेदवाणियों से प्रकाशमान (**त्वा**) आपको (**वेधसः**) विद्वान् लोग (**हिन्वन्ति**) साक्षात् करते हैं। (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न भगवन् ! आप (**इन्द्राय, मत्सरम्**) अज्ञानी जीव के लिये अत्यन्त गूढ़ हो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के साक्षात् करने के लिये मनुष्य को संयमी होना आवश्यक है। जो पुरुष संयमी नहीं होता उसको परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं होता। संयम मन, वाणी तथा शरीर तीनों का कहलाता है। मन के संयम का नाम शम, और वाणी के संयम का नाम वाक्संयम, और इन्द्रियों के संयम का नाम दम है। इस प्रकार जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को संयम में रखता है और अपने मन को संयम में रखता है तथा व्यर्थ बोलता नहीं किन्तु वाणी को संयम में रखता है, वह पुरुष संयमी तथा दमी कहलाता है। इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में विस्तारपूर्वक है। वहां यह लिखा है कि देव और असुर में यही भेद है कि देव दमी अर्थात् इन्द्रियों को दमन करने वाले मनुष्यवर्ग का नाम है, और इन्द्रियारामी विषयपरायण लोगों का नाम असुर है। उक्त मन्त्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रियारामी और अज्ञानी मत बनो, किन्तु तुम विद्वान् बनकर संयमी बनो, यही मनुष्यजन्म का फल है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ षड्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य १–६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद्गायत्री । ३-५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब उक्त परमात्मा की नाना शक्तियों का वर्णन करते हैं ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**कविः**) सर्वज्ञ है (**अभिष्टुतः**) सबको स्तुति के योग्य है (**पवित्रे, अधि**) अन्तःकरण के मध्य में (**तोशते**) प्राप्त होता है (**स्रिधः**) दुराचारी शत्रुओं को (**अप, घ्नन्**) नाश करता हुआ (**पुनानः**) सत्कर्मियों को पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा दुष्टों का दमन करके सदाचारियों को उन्नतिशील बनाता है । उसके पाने के लिये अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना चाहिये । जो लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र नहीं बनाते वे उसको कदापि उपलब्ध नहीं कर सकते ॥१॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

पदार्थः—(**एषः**) वह उक्त परमात्मा (**वायवे, इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये सुलभ होता है (**स्वर्जित्, परिषिच्यते**) जिन लोगों ने सुख को जीत लिया है उन लोगों से सत्कृत होता है और (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**दक्षसाधनः**) सुनीति का देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखते हैं उनको परमात्मा सुनीति का दान देता है और वह परमात्मा, जिन लोगों ने विषयजन्य सुख को जीत लिया है, उन्हीं की चित्तवृत्तियों का विषय होता है । वा यों कहो कि कर्मयोगी लोग अपने उग्र कर्मों द्वारा उसको उपलब्ध करके उसके भावों को प्राप्त होते हैं । जो लोग आलसी बनकर अपने जन्म को व्यर्थ व्यतीत करते हैं उनका उद्धार कदापि नहीं होता ॥२॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**वनेषु, सोमः**) प्रार्थनाओं में सौम्यस्वभाव

वाला है (दिवः, मूर्धा) और द्युलोक का मूर्धारूप है, (वृषा) सब कामनाओं को देने वाला है (सुतः) स्वयंसिद्ध है,(विश्ववित्) सर्वज्ञ है एवंभूत परमात्मा (नृभिः, विनीयते) मनुष्यों का उपास्य देव है ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा को पालन करने वाले नम्र पुरुषों के लिये परमात्मा सौम्यस्वभाव है और जो उद्दण्ड अनाज्ञाकारी हैं उनके लिये परमात्मा उग्ररूप है । उक्त परमात्मा से सदैव अपने कल्याण की प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।

इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

पदार्थः—(अस्तृतः, एषः) यह उक्त अविनाशी परमात्मा (सत्राजित्) सब प्रकार के शत्रुओं को जीत कर सदाचारियों को (हिरण्ययुः) धन देता है और (पवमानः) पवित्र करता हुआ (अचिक्रदत्) निर्भयता का उपदेश करता है और वही परमात्मा (गव्युः) भूम्यादि धनों का दाता है, (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा जिन लोगों पर प्रसन्न होता है उनको भूम्यादि धनों का स्वामी बनाता है और उनको हिरण्यादि ऐश्वर्यों का स्वामी बना कर उनसे शत्रुओं को परास्त कराता है ॥४॥

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।

पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (सूर्येण, हासते) सूर्य को भी अपने तेज से तिरस्कृत करता है (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है (अधि, द्यवि) और द्युलोकादि सम्पूर्ण लोकों में विराजमान है । (पवित्रे, मत्सरः, मदः) पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुषों को अपने आनन्द से आनन्दित करता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की सत्ता से ही सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं और वही परमात्मा लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठाता है; उसी में चित्तवृत्ति लगाने से पुरुष आनन्दित होता है अन्यथा नहीं ॥५॥

एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥६॥

पदार्थः—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान् परमात्मा (अन्तरिक्षे, असिष्यदत्) अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (वृषा) सब कामनाओं का देने वाला और

Scanned by CamScanner

(हरिः) दुःख को हरने वाला; (पुनानः) सब को पवित्र करने वाला; (इन्दुः) सर्वत्र प्रकाशमान (इन्द्रम्, आ) कर्मयोगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म जो सर्व व्यापक और सब कामानाओं का देने वाला है वह अपने निवास का स्थान एकमात्र कर्मयोगी पुरुषों को समझता है। यद्यपि ब्रह्म सर्वव्यापक है तथापि विशेषाभिव्यक्ति उसकी कर्मयोगियों के हृदय में ही होती है अन्यत्र नहीं। तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी पुरुष अपने कर्मों द्वारा उसकी आज्ञाओं को पालन करके दिखला देता है, अन्य लोग आलस्य में पड़े-पड़े ही समय को बिता देते हैं। इस लिये इस मन्त्र में कर्मयोगी पुरुष को ज्ञान का मुख्यपात्र निरूपण किया गया है ॥६॥

नवम मण्डल में यह सताईवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्य १–६ प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर का अज्ञाननिवर्त्तकत्वस्वरूप से वर्णन करते हैं ॥

एषः वाजी हितो नृभिर्विश्ववि॒न्मन॑स॒स्पतिः ।
अव्यो वारं वि धावति ॥१॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (वाजी) बल वाला है और (नृभिः, हितः) जिज्ञासुओं करके अन्तःकरण में धारण किया गया है, (विश्ववित्) सर्वज्ञ है, (मनसः पतिः) मन का स्वामी है, (अव्यः) अविनाशी है और (वारं, विधावति) अपने भक्त के हृदय में निवास करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को मनसस्पति इस लिये कहा गया है कि मन उसके सात्विक रूप सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिये मन से ज्ञान उत्पन्न होता है। वा यों कहो कि मन का निरोध केवल उसी की कृपा से हो सकता है इसलिये मनसस्पति कहा है। तात्पर्य यह है कि आत्मिक बल बढ़ाने वाले पुरुषों को चाहिये कि सब ओर से अपने मन का निरोध करके अपने मन को उसी परमात्मा में लगायें ॥१॥

एष प॒वित्रे॑ अक्षर॒त्सोमो॑ दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः ।
विश्वा॒ धामा॑न्यावि॒शन् ॥२॥

पदार्थः—(एषः) यह परमात्मा (सोमः) सौम्य स्वभाव वाला (देवेभ्यः, सुतः)

दैवी सम्पत्ति वालों के लिये प्रकाशमान है (**विश्वा, धामानि, आविशन्**) सम्पूर्ण स्थानों में व्याप्त है, एवंभूत परमात्मा (**पवित्रे, अक्षरत्**) जिज्ञासुओं के पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थः—"यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः" (यजु०) विज्ञानी पुरुष के लिये सब भूत उसका निवासस्थान हैं। और इसी प्रकार 'य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्" (बृ०) अन्तर्यामि ब्रा० इत्यादि वाक्यों में यह प्रतिपादन किया है कि जीवात्मा उसका शरीरस्थानी है अर्थात् जिस प्रकार जीवात्मा अपने शरीर का प्रेरक है उसी प्रकार वह जीवात्मा का प्रेरक है इसलिये मन्त्र में 'धामान्याविशन्' कथन किया है अर्थात् शरीररूपी धाम में वह विराजमान है ॥२॥

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।

वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थः—(**एषः, देवः**) यह परमात्मा (**अधि, योनौ**) प्रकृति में (**अमर्त्यः**) अविनाशी होकर (**शुभायते**) प्रकाशित हो रहा है और वह (**वृत्रहा**) अज्ञान का नाशक है तथा (**देववीतमः**) सत्कर्मियों को अत्यन्त चाहने वाला है ॥३॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि योनि नाम यहां कारण का है वह कारण प्रकृतिरूपी कारण है अर्थात् प्रकृति परिणामी नित्य है और ब्रह्म कूटस्थ नित्य है। परिणामी नित्य उसको कहते हैं कि जो वस्तु अपने स्वरूप को बदले और नाश को न प्राप्त हो; और कूटस्थनित्य उसको कहते हैं कि जो स्वरूप से नित्य हो अर्थात् जिसके स्वरूप में किसी प्रकार का विकार न आये। उक्त प्रकार से यहां परमात्मा को कूटस्थरूप से वर्णन किया है ॥३॥

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।

अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

पदार्थः—(**एषः, वृषा**) यह सर्वकामप्रद परमात्मा (**कनिक्रदत्**) शब्दायमान और (**दशभिः, जामिभिः, यतः**) दश स्थूल भूत और सूक्ष्म भूतों द्वारा स्थिर है (**अभि, द्रोणानि, धावति**) कार्यमात्र में प्राप्त है ॥४॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि परमात्मा दश सूक्ष्म भूत और दश स्थूल भूतों को व्याप्त करके स्थिर है इसी लिये 'स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्' यह कथन किया है कि वह कार्यमात्र को अपने में व्याप्त करके दश प्रकार के भूतों को भी अतिक्रमण करके विराजमान है ॥४॥

Scanned by CamScanner

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः ।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥५॥

पदार्थः—(**एषः**) यह परमात्मा (**सूर्यम्, अरोचयत्**) सूर्य को भी प्रकाशित करता है (**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा है, (**विश्वा, धामानि**) सब स्थानों में विराजमान है, (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्य का भी प्रकाशक कथन किया है। तात्पर्य यह है कि यह जड़ सूर्य उसकी सत्ता से प्रकाशित होता है। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रों में इस जड़ सूर्य को उपास्य बतलाया करते हैं उनको 'सूर्यमरोचयत्' इस वाक्य से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि वेद का तात्पर्य जड़ सूर्य को उपास्य देव कथन करने का होता तो इस जड़ सूर्य को उससे प्रकाश पाकर प्रकाशित होना न कथन किया जाता और न "सूर्या-चन्द्रमसौ धाता" इत्यादि वाक्यों से इस जड़ सूर्यादि का निर्माता कथन किया जाता ॥५॥

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥६॥

पदार्थः—(**एषः**) यह (**शुष्मी**) बलवाला परमात्मा (**अदाभ्यः**) दम्भ से अप्राप्य है, (**सोमः**) सौम्यस्वभाव वाला (**पुनानः**) पवित्रताकारक (**अर्षति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (**देवावीः**) देवताओं का रक्षक तथा (**अघशंसहा**) अघशंसियों का नाश करने वाला है ॥६॥

भावार्थः—जो लोग स्वयं पापी अथवा पापियों की प्रशंसा करते हैं उनको परमात्मा कदापि प्राप्त नहीं होता। परमात्मप्राप्ति के लिये सदैव सरल प्रकृति होनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि परमात्मप्राप्ति विना दैवी सम्पत्ति के नहीं होती। दैवी सम्पत्ति के गुण ये हैं—तेज, तेजस्वी होना, धृति-दृढ़ता, क्षमा, शौच, अद्रोह, अहिंसा, सत्य, अक्रोध इत्यादि अनेक प्रकार के दैवी सम्पत्ति के गुण हैं। और जो लोग आसुरी सम्पत्ति वाले हैं उनमें निम्न-लिखित अवगुण होते हैं दम्भ, दर्प=गर्व, अभिमान, क्रोध, पारुष्य इत्यादि। इस मन्त्र में परमात्मा 'अदाभ्यः' पद से इस बात का उपदेश करता है कि दम्भ-दर्पादि छोड़ कर तुम लोग सन्मार्ग का ग्रहण करो ॥६॥

नवम मण्डल में यह अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ षड्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । २-४,६ निचृद्गायत्री । ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा अभ्युदयप्राप्ति के साधनों का वर्णन करते हैं ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थः—(प्रभूषतः) प्रभुत्व अर्थात् अभ्युदय को चाहने वाले पुरुष का कर्त्तव्य यह है कि वह (देवान्, अनु) विद्वानों का अनुयायी बने और (सुतस्य,ओजसा) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त परमात्मा के तेज से अपने आप को तेजस्वी बनावे, (वृष्णः, अस्य, धाराः) जो सर्वकामप्रद परमात्मा है उसकी धारा से (अक्षरन्) अपने को अभिषिक्त करे ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम विद्वानों की संगति के विना कदापि अभ्युदय को नहीं प्राप्त हो सकते । जिस देश के लोग नाना प्रकार की विद्याओं के वेत्ता विद्वानों के अनुयायी बनते हैं उस देश का ऐश्वर्य देश-देशान्तरों में फैल जाता है । इसलिये हे अभ्युदयाभिलाषी जनो ! तुम भी विद्वानों के अनुयायी बनो ॥१॥

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थः—(वेधसः) कर्मयोगी लोग जो (गृणन्तः) परमात्मपरायण हैं (कारवः) वे कर्मकाण्डी लोग (गिरा, जज्ञानम्) वेदरूपी वाणी द्वारा उत्पन्न हुई (सप्तिम्) शक्ति को (मृजन्ति) वढ़ाते हैं । (ज्योतिः) वह ज्योतिर्मयशक्ति (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वानो ! तुम अपनी शक्तियों को वेदरूपी वाणी द्वारा बढ़ाओ, जो लोग अपनी शक्तियों को ईश्वराज्ञा से बढ़ाते हैं उनका ऐश्वर्य विश्वव्यापी हो जाता है ॥२॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव वाले परमात्मन् ! (प्रभूवसो) धन रत्नादिकों के स्वामिन् ! (उक्थ्यम्, समुद्रम्, वर्ध)

प्रशंसनीय यश को मेरे लिये बढ़ाइये और (तानि, सुषहा, ते, पुनानाय) यह सबको पवित्र करने वाले आपका बढ़ा हुआ यश हमारे लिये सुख से भोग करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो लोग अपनी कीर्ति को नभोमण्डलव्यापिनी बनाना चाहें उनका कर्त्तव्य है कि वे परमात्मपरायण होकर कर्मयोगी बनें, कर्मयोगी पुरुष से अतिरिक्त किसी पुरुष का ऐश्वर्य बढ़ नहीं सकता ॥३॥

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (विश्वा, वसूनि, संजयन्) आप मेरे लिये सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्य को बढ़ाकर (धारया, पवस्व) आनन्द की वृष्टि से हम को पवित्र करिये और (इनु, द्वेषांसि, सध्र्यक्) सब प्रकार के द्वेषों को भी साथ ही दूर करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि जो पुरुष अपना अभ्युदय चाहे वह रागद्वेषरूपी समुद्र की लहरों में कदापि न पड़े। क्योंकि जो लोग रागद्वेष के प्रवाह में पड़कर बह जाते हैं वे आत्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक तीनों प्रकार की उन्नतियों को नहीं कर सकते, इस लिये पुरुष को चाहिये कि वह राग-द्वेष के भावों से सर्वथा दूर रहे ॥४॥

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् ।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नः) हमारी (समस्य, कस्यचित्, अररुषः) सम्पूर्ण अदाता लोगों के (स्वनात्, रक्ष) निन्दारूप शब्द से रक्षा करिये (निदः) और निन्दक लोगों से भी बचाइये (यत्र, मुमुच्महे) जिस रक्षा से हम निन्दादिकों से मुक्त रहें ॥५॥

भावार्थः—अभ्युदयशाली मनुष्य का कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि वह कदर्य कदापि न बने; जो पुरुष कदर्य होता है वह सर्वदैव संसार में निन्दनीय रहता है। इसलिये हे पुरुषो ! तुम कदर्यता, कायरता और प्रमत्तता इत्यादि भावों को छोड़ कर उदारता, वीरता और अप्रमत्तता इत्यादि भावों को धारण करो ॥५॥

Scanned by CamScanner

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।

द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्यशालिपरमात्मन् ! (दिव्यम्, पार्थिवम्, रयिम्) आप हमको द्युलोक सम्बन्धी तथा पृथिवी सम्बन्धी ऐश्वर्य की (धारया, आपवस्व) धारा से पवित्र करिये और (द्युमन्तम्, शुष्मम्) दिव्य बल को (आभर) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष उक्त प्रकार के अवगुणों से रहित होते हैं उनको परमात्मा द्युलोक, पृथिवी लोक के ऐश्वर्यों से भरपूर करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बिन्दुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३—५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा बलप्राप्ति के उपाय का उपदेश करते हैं ॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।

पुनानो वाचमिष्यति ॥१॥

पदार्थः—(प्र पुनानः) अपने आपको पवित्र करता हुआ जो पुरुष (वाचम्, इष्यति) वाग्रूप सरस्वती की इच्छा करता है (अस्य, शुष्मिणः) उस बलिष्ठ के लिये (पवित्रे) पात्र में (वृथा) व्यर्थ ही इस सोमरस की (धाराः) धारायें (अक्षरन्) गिरती हैं ॥१॥

भावार्थः—जितने प्रकार के संसार में बल पाये जाते हैं उन सब में से वाणी का बल सबसे बड़ा है, इस अभिप्राय से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! यदि तुम सर्वोपरि बल को उपलब्ध करना चाहते हो तो वाणीरूप बल की इच्छा करो; जो पुरुष वाणीरूप बल को उपलब्ध करते हैं उनके लिये सोमादि रसों से बल लेने की आवश्यकता नहीं ॥१॥

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।

इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) दीप्ति वाला शब्द जो, (सोतृभिः, मृज्यमानः, हियानः) वेदवेत्ता पुरुषों से शुद्ध करके प्रेरित किया गया है वह (वग्नुम्, इन्द्रियम्) श्रोत्रेन्द्रिय को जब (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (इयर्त्ति) प्राप्त होता है तो अनेक प्रकार के बल उत्पन्न करता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सदुपदेशकों द्वारा जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है वे शब्द बलप्रद होते हैं, इसलिये हे श्रोता लोगो! तुमको चाहिये कि तुम सदैव सदुपदेशकों से उपदेश सुनकर अपने आपको तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाओ ॥२॥

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।

पवस्व सोम धारया ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**नः**) हमको आप (**शुष्मम्**) जो बल (**नृषाह्यम्**) शत्रु को नाश करने वाला (**वीरवन्तम्**) वीरता वाला (**पुरुस्पृहम्**) सर्वोपरि है उसकी (**धारया**) सुवृष्टि से (**आ, पवस्व**) भली प्रकार पवित्र करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष सर्वोपरि बल की कामना करते हुए अपने आपको उस बल के योग्य बनाते हैं उनको संसार में न्याय नियम फैलाने के लिये सर्वोपरि बल अवश्यमेव मिलता है ॥३॥

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।

अभि द्रोणान्यासदम् ॥४॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**धारया**) अपनी कृपा की दृष्टिरूप धाराओं से (**पवमानः**) पवित्र करता हुआ ज्ञान के प्रभाव से (**अभि, द्रोणानि, आसदम्**) उन अन्तःकरणों को प्राप्त होता है जो अन्तःकरण सत्कर्मों द्वारा (**प्र, असिष्यदत्**) शुद्ध किये हुए होते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! यदि तुम अपने आपको सत्कर्मी बनाओगे तो ज्ञान का प्रवाह तुम्हारे अभ्युदयरूपी अंकुरों को अवश्यमेव अभ्युदयशाली बनायेगा ॥४॥

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दविन्द्राय पीतये ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्याभिलाषी जीव! (**अप्सु**) सब रसों में (**मधुमत्तमम्**) मीठा जो एक प्रकार का रस है ऐसे (**त्वा**) तुमको (**हरिम्**) जो तुम अज्ञान के हरने वाले हो (**अद्रिभिः**) वाणीरूप वज्र से (**हिन्वन्ति**) वेदवेत्ता पुरुष तुम्हें प्रेरित करते हैं ताकि तुम (**इन्द्राय**) कर्मयोगी को (**पीतये**) ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये समर्थ बनो ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो पुरुष धार्मिक बन के सदुपदेश करते हैं वे मानो सब रसों में से अपने आपको माधुर्य्यसम्पन्न सिद्ध करते हैं और वे ही लोग उपदेष्टा बन कर संसार में लोगों को कर्मयोग का उपदेश करते हैं ॥५॥

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्राय, वज्रिणे**) वज्र वाले कर्मयोगी के लिये (**सोमं, सुनोत**) सोमरस उत्पन्न करो, जो रस (**चारुम्**) सुन्दर है (**शर्धाय, मत्सरम्**) बल के लिये जो हर्ष उत्पन्न करने वाला है (**मधुमत्तमम्**) जो अत्यन्त मीठा है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे विद्वान् पुरुषो ! तुम उत्तमोत्तम ओषधियों से सौम्य स्वभाव बनाने वाले रसों को उत्पन्न करो, जिन रसों को पान करके कर्मयोगी पुरुष अपने कर्त्तव्यों में दृढ़ रहें और जिन रसों में हर्ष को प्राप्त होकर संसार में सर्वोपरि बल को उत्पन्न करें ॥६॥

नवम मण्डल में यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३,५ गायत्री । ४,६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब शूरवीरों के गुणों का वर्णन किया जाता है ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।

रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥१॥

पदार्थः—(**सोमासः**) शूरवीर लोग (**स्वाध्यः**) उच्चोद्देश्य वाले (**पवमानासः**) वीरता धर्म से संसार को पवित्र करते हुए (**प्राक्रमुः**) अन्यायकारी शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं और उक्त प्रकार के आक्रमण से (**रयिं**) अपने ऐश्वर्य्य को (**चेतनम्**) जीता जागता (**कृण्वन्ति**) बनाते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग उच्चोद्देश्य से अर्थात् देश की रक्षा के लिये शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं वे लोग अपने ऐश्वर्य को पुनरुज्जीवित करके अपने यश को विमल करके दशों दिशाओं में फैलाते हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

उक्त वीर परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः ।

भवा वाजानां पतिः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन् ! आप (**वाजानाम्**) सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों के (**पतिः**) स्वामी हैं (**दिवस्पृथिव्याः, अधि**) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच में (**द्युम्नवर्धनः**) ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले (**भव**) हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस प्रकार उपदेश करता है कि हे शूरवीरो! तुम लोग अपने परिश्रम के अनन्तर उस परा शक्ति से इस प्रकार की प्रार्थना करो कि हमारा ऐश्वर्य्य सर्वत्र फैले, और हम द्युलोक और पृथिवीलोक के बीच में शान्ति को फैलायें।

तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य कैसा ही ऐश्वर्य्यशाली हो, अथवा तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी हो पर फिर भी उसे उस परा शक्ति की सहायता लेनी पड़ती है, जिसने इस संसार को अपने नियमों में बाँध रखा है ॥२॥

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।

सोम वर्धन्ति ते महः ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**तुभ्यम्**) तुमको (**वाताः**) शूरवीर [वान्ति वीरधर्मेण सर्वत्र गच्छन्ति इति वाताः शूरवीराः—जो वीर धर्म से सर्वत्र फैल जायें उनका नाम यहाँ 'वाताः' है] (**अभिप्रियः**) प्यारे हैं और (**तुभ्यम्**) तुम्हारे नियम से (**सिन्धवः**) सिन्धु नदियां (**अर्षन्ति**) बहती हैं (**ते**) तुम्हारे (**महः**) यश को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा के नियम से शूरवीर उत्पन्न होकर उसके यश को बढ़ाते हैं, और परमात्मा के नियम से ही सिन्धु आदि महानद स्यन्दमान होकर सम्पूर्ण धरातल को सिञ्चित करते हैं ॥३॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।

भवा वाजस्य सङ्गथे ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सम्पूर्ण संसार के उत्पादक परमात्मन् ! (**ते, वृष्ण्यं**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाला तुम्हारा ऐश्वर्य्य (**विश्वतः**) सब ओर से (**समेतु**) हमको प्राप्त हो, और आप (**आप्यायस्व**) सब प्रकार से हमारी वृद्धि करें तथा (**वाजस्य, संगथे**) ऐश्वर्य्यनिमित्तिक संग्रामों में आप (**भव**) हमारे संगी बनें ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग एकमात्र परमात्मा को अपना आधार बनाते हैं वे सब प्रकार से ऐश्वर्य्यशाली होते हैं और संग्रामजनित विपत्तियों में परमात्मा उनकी सहायता करता है ॥४॥

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।

वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥५॥

पदार्थः—(बभ्रो) [बिभर्त्तीति बभ्रुः तत्संबुद्धौ बभ्रो] हे सबके धारण करने वाले परमात्मन् ! (वर्षिष्ठे, अधि, सानवि) विभूति वाली प्रत्येक वस्तु में आप शक्तिरूप से विराजमान हैं और (तुभ्यम्, गावः) तुम्हारे लिये ही पृथिव्यादि लोक-लोकान्तर (घृतम्, पयः) घृत दुग्धादि अनन्त प्रकार के रसों को जो (अक्षितम्) निरन्तर स्यन्दमान हो रहे हैं, उनको (दुदुह्रे) दुहते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मरचित इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के घृत-दुग्धादि रस दिनरात प्रवाह रूप से स्यन्दमान हो रहे हैं । बहुत क्या, जो-जो विभूति वाली वस्तु है उसमें परमात्मा का ऐश्वर्य्य सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है । इसी अभिप्राय से कहा है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्" अर्थात् जो-जो विभूति वाली वस्तु अथवा ऐश्वर्य्य और शोभावाली है वह सब परमात्मा के प्रकृतिरूप अंश से उत्पन्न हुई है ॥५॥

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् ।

इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥६॥

पदार्थः—(भुवनस्य, पते) हे सम्पूर्ण भुवनों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारी (स्वायुधस्य, सतः) जीवित-जागृत शक्ति से (इन्दो) हे परमैश्वर्य्यस्वरूप ! हम लोग तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्रीभाव को (उश्मसि) चाहते हैं ॥६॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के नियन्ता और निखिल ज्ञानों के अवगन्ता परमात्मा से जो लोग मैत्री डालते हैं, वे लोग इस संसार में परमानन्द का लाभ करते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में यह इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्गायत्री । ३—६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब परमात्मा की उपलब्धि का कथन करते हैं॥

प्र सोमा॑सो मद॒च्युतः॒ श्रव॑से नो म॒घोनः॑।

सु॒ता वि॒दथे॑ अक्रमुः ॥१॥

पदार्थः—(मदच्युतः) आनन्द का स्रोत (सुताः) स्वयम्भू (सोमासः) परमात्मा (विदथे) यज्ञ में (मघोनः, नः,) मुझ जिज्ञासु के (श्रवसे) ऐश्वर्य के लिये (प्राक्रमुः) आकर प्राप्त होता है॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्धभाव से यज्ञ करते हैं उनको परमात्मा अपने आनन्द-स्रोत से सदैव अभिषिक्त करता है। यज्ञ के अर्थ यहाँ शुद्धान्तःकरण से (१) ईश्वरोपासना, (२) ब्रह्मविद्यादि उत्तमोत्तम पदार्थों का दान, और (३) कला कौशलादि द्वारा विद्युदादि पदार्थों को उपयोग में लाना—ये तीन हैं। जो पुरुष उक्त पदार्थों की संगति करने वाले यज्ञों को करता है वह अवश्यमेव ऐश्वर्यसम्पन्न होता है॥१॥

आदीं॑ त्रि॒तस्य॒ योष॑णो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः।

इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥२॥

पदार्थः—(त्रितस्य) जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में अप्रतिहत प्रभाव वाले मक्त पुरुष की (योषणः) शक्तियाँ (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (आत्, ईम्) इस पूर्वोक्त (इन्दुम्) परमैश्वर्य वाले (हरिम्) सब दुःखों के हरने वाले परमात्मा को (अद्रिभिः) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की भक्ति में रत हैं उनकी इन्द्रियाँ परमात्मज्ञान की उपलब्धि के लिये सदैव तत्पर रहती हैं॥२॥

आदीं॑ हं॒सो यथा॑ ग॒णं विश्व॑स्यावीवशन्म॒तिम्।

अत्यो॒ न गोभि॑रज्यते ॥३॥

पदार्थः—(विश्वस्य, मतिम्, अवीवशत्) सबकी मति को वश में रखने वाला (अत्यो, न) विद्युत् के समान दुर्ग्राह्य (आदीम्) ऐसे परमात्मा को (हंसः, यथा, गणम्) जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में जाकर मिलता है, उसी प्रकार (गोभिः, अज्यते) जीव इन्द्रियों द्वारा साक्षात् करता है॥३॥

भावार्थः—जीवात्मा जब तक अपनी सजातीय वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं लगाता, तब तक उसे आनन्द कदापि प्राप्त नहीं हो सकता; इस भाव

Scanned by CamScanner

का इस मन्त्र में उपदेश किया है कि जिस प्रकार हंस अपने सजातीय गण में मिल कर आनन्दित होता है इस प्रकार जीवात्मा भी उस चिद्घन ब्रह्म में मिल जाता है । जीवात्मा को हंस की उपमा इस वास्ते दी है कि "हन्त्यविद्यामिति हंसः" यह जीव अविद्या का हनन करता है । यहाँ विज्ञानी जीव का वर्णन है । और ब्रह्म प्राप्ति से जीव अविद्या का हनन करता है जैसे कि 'सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति (छा०) ॥३॥

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि ।

सीदन्नृतस्य योनिमा ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (उभे, अवचाकशत्) आप द्युलोक और पृथिवी लोक के साक्षी हैं, (मृगः, न, तक्तः) और सिंह के समान प्रकृतिरूप वन में विराजमान हो रहे हैं (ऋतस्य, योनिम्, आसीदन्) अखिल कार्य का कारण जो प्रकृति उसमें स्थित होकर (अर्षसि) सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा इस प्रकृति के कार्य चराचर ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत हो रहा है अर्थात् प्रकृति एक प्रकार से गहन वन है और परमात्मा सिंह के समान इस वन का स्वामी है । इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता और शौर्य क्रौर्यादि गुणों के भाव से परमात्मा की रौद्ररूपता वर्णन की है ॥४॥

अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।

अगन्नाजिं यथा हितम् ॥५॥

पदार्थः— हे परमात्मन् ! (योषाजारमिव, प्रियम्) [योषयति आत्मनि प्रीतिमुत्पादयतीति योषा रात्रिः तस्या जारो जारयिता चन्द्रस्तम्] चन्द्रमा] के समान सर्वप्रिय (आजिम्) प्राप्त करने योग्य (हितम्) सबका हित करने वाले आप (यथा, अगन्) जिस प्रकार प्राप्त हो जायें उसी प्रकार (गावः) इन्द्रिय वृत्तियाँ (अभ्यनूषत) आपको विषय करती हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगा और ज्ञानयोगियों की ओर से परमात्मा की प्रार्थना कथन की गयी है, और परमात्मनिष्ठप्रियता की तुलना चन्द्रमा के साथ की; अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होने से सर्वप्रिय है, इसी प्रकार परमात्मा भी आह्लादक होने से सर्वप्रिय है । कई एक टीकाकार "योषाजारम्" के अर्थ स्त्री के जार के करते हैं अर्थात् जैसे स्त्री को अपना यार प्यारा होता है उसी प्रकार मुझ उपासक को तुम प्यारे हो । पहले तो

Scanned by CamScanner

यह दृष्टान्त विषम है, क्योंकि स्त्री को सर्वदा यार प्यारा नहीं लगता, किन्तु जब तक मोहमयी युवावस्था रहती है तभी तक प्यारा लगता है। और दूसरे जार शब्द के अर्थ सर्वत्र वेदमन्त्रों में तमोनिवर्तक आह्लादक गुण के हैं जैसा कि "स्वसारं जारोऽभ्येति पश्चात्" इस मन्त्र में जार के अर्थ आह्लादक गुण के ही सब प्रकार भाष्यकारों ने किये हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि 'योषाजार' यहाँ चन्द्रमा का नाम है, किसी लम्पट कामी पुरुष का नहीं ॥५॥

अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।

सनिं मेधामुत श्रवः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अस्मे**) मेरे लिये (**द्युमत्, यशः, धेहि**) दीप्ति वाले यश को दीजिये (**मघवद्भ्यः, च**) कर्मयोगियों के लिये और (**मह्यं, च**) मेरे लिये (**सनिम्**) धन को, (**मेधाम्**) बुद्धि को तथा (**उत, श्रवः**) सुन्दर कीर्ति को दीजिये ॥६॥

भावार्थः—कर्मयोग और ज्ञानयोग के द्वारा परमात्मा धन, बुद्धि, सुकीर्ति इत्यादि गुणों का प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह बत्तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५, गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वरप्राप्ति के लिये ज्ञान, कर्म, उपासना विषयक तीन वाणियाँ कही जाती हैं ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः ।

वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थः—(**अपाम्, ऊर्मयः, न**) जैसे समुद्र की लहरें स्वभाव ही से चन्द्रमा की ओर उछलती हैं, और (**वनानि, महिषा, इव**) जैसे महात्मा लोग स्वभाव ही से भजन की ओर जाते हैं, इसी प्रकार (**सोमासः, विपश्चितः प्रयन्ति**) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् ज्ञान, कर्म, उपासना बोधक वेदवाणी की ओर लगते हैं ॥१॥

भावार्थः—वेदरूपी वाणी में इस प्रकार की आकर्षण शक्ति है जैसी कि पूर्णिमा के चन्द्रमा में । अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्रमा के आह्लादक धर्म की

Scanned by CamScanner

ओर सब लोग प्रवाहित होते हैं । इसी प्रकार ओजस्विनी वेदवाक् अपनी ओर विमल दृष्टि वाले लोगों को खींचती है ॥१॥

अभि द्रोणांनि बभ्रवं शुक्रा ऋतस्य धारंया ।
वाजं गोमंन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थः— (बभ्रवः) ज्ञान, कर्म और उपासना को धारण करने वाले, (शुक्राः) पवित्र अन्तःकरण वाले विद्वान् ! (ऋतस्य, धारया) सच्चाई की धारा से (अभि, द्रोणानि) सत्पात्रों के प्रति उपदेश देकर (वाजम्, गोमन्तम्) उनके अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को (अक्षरन्) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग वेदविद्या का सदुपदेश देते हैं, उनके सदुपदेश से सब प्रकार के अन्नादिक ऐश्वर्य बढ़ते हैं ॥२॥

सुता इन्द्रांय वायवे वरुंणाय मरुद्भ्यंः ।
सोमां अर्षन्ति विष्णंवे ॥३॥

पदार्थः—(मरुद्भ्यः, सुताः सोमाः) विद्वानों द्वारा कर्मोपासना से सिद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् ! (विष्णवे, अर्षन्ति) सर्वव्यापक परमात्मा के पद को प्राप्त होते हैं । जो परमात्मा (इन्द्राय) [इन्दति परमैश्वर्यं प्राप्नोतीतीन्द्रः] परमैश्वर्य सम्पन्न है, तथा (वायवे) [वाति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीति वायुः] सर्वव्यापक है, (वरुणाय) [व्रियते सं भज्यते जनैरिति वरुणः] सबको भजनीय है, उसको प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—जिन लोगों ने माता-पिता और आचार्य से सिद्धि को प्राप्त किया है, वे ज्ञान कर्म उपासना द्वारा ईश्वर को उपलब्ध करते हैं ॥३॥

तिस्रो वाच उदीरते गावों मिमंति धेनवः ।
हरिरेति कनिंक्रदत् ॥४॥

पदार्थः— (धेनवः, गावः) इन्द्रियवृत्तियाँ (तिस्रः, वाचः उदीरते, मिमन्ति) तीनों वाणियों को उच्चारण करती हुई परमात्मा का साक्षात्कार कराती हैं (हरिः) और वह परमात्मा (कनिक्रदत्, एति) गर्जता हुआ उनके ज्ञान का विषय होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग वैदिक सूक्तों द्वारा वर्णित परमात्मा के स्वरूप को अपने ध्यान में लाना चाहते हैं, वे भली भांति परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं । तात्पर्य यह है कि परमात्मा शब्दगम्य है, तर्कों से उसका साक्षात्कार नहीं होता; क्योंकि तर्क की कोई आस्था नहीं । प्रथम के तर्क को, द्वितीय,

Scanned by CamScanner

जिसकी अधिक बुद्धि है, काट देता है। द्वितीय के तर्क को तृतीय, तृतीय के तर्क को चतुर्थ। और वेद पूर्णपुरुष का ज्ञान है, इस लिये उसमें यह दोष नहीं ॥४॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।

मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥५॥

पदार्थः—(**ऋतस्य, मातरः**) सत्य को उत्पन्न करने वाली (**यह्वीः, ब्रह्मीः**) अतिविस्तृत परमात्मसम्बन्धी वेदवाणियां (**अभि, अनूषत**) अपने वक्ता को विभूषित कर देती हैं (**मर्मृज्यन्ते, दिवः शिशुम्**) और ब्रह्मचारी को पवित्र कर देती हैं ॥५॥

भावार्थः— वेदवाणियाँ परमात्मा के साथ वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध से रहती हैं। इसी लिये इनको ब्रह्मी कहा गया है। जैसा कि गीता में कहा है कि—"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ, नैनां प्राप्य विमुह्यति" जिस प्रकार पुरुष ब्राह्मी स्थिति को पाकर मोह को नहीं प्राप्त होता, इसी प्रकार वेदवाणियाँ पुरुष के अज्ञान को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर देती हैं ॥५॥

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (**सहस्रिणः, रायः**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य वाले (**चतुरः समुद्रान्**) शब्द रूपी जल के चारों वेदरूपी समुद्रों को (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**विश्वतः**) भली प्रकार (**आ, पवस्व**) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा के पास नाना प्रकार के रत्नों के भरे हुए अनन्त समुद्र हैं, परन्तु शब्दार्णवरूप समुद्रों से सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं। इससे परमात्मा से शब्दार्णवरूप समुद्र की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

नवम मण्डल में यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १---६ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, निचृद्गायत्री ॥ ३, ५, ६ गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की अद्भुत सत्ता वर्णन की जाती है।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति ।

रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(इन्दुः) वह परमैश्वर्यवाला परमात्मा (ओजसा) अपने पराक्रम से (वृळहा, विरुजत्) अज्ञानों को नाश करता हुआ (धारया, प्रसुवानः) अपनी अधिकरण-रूप सत्ता से सबको उत्पन्न करता हुआ (हिन्वानः) सबको प्रेरित करता हुआ (तना, अर्षनि) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा की ऐसी अद्भुत सत्ता है कि निरवयव होकर भी सम्पूर्ण सावयव पदार्थों का अधिष्ठान है, उसी के आधार पर यह चराचर जगत् स्थिर है, और वह सर्वप्रेरक होकर कर्मरूपी चक्र द्वारा सबकी प्रेरणा करता है ॥१॥

सुत इंद्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

सोमो अर्षति विष्णवे ॥२॥

पदार्थः—(सुतः, सोमः) स्वयम्भू परमात्मा (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये, (वायवे) कर्मयोगी के लिये, (वरुणाय) उपदेशक के लिये, (मरुद्भ्यः) विद्वद्गणों के लिये, (विष्णवे) अनेक शास्त्रों में प्रविष्ट विद्वान् के लिये,(अर्षति) आकर उनके अन्तः-करण में प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान है, तथापि उसकी अभिव्यक्ति कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा अन्य साधनों द्वारा जिन लोगों ने अपने अन्तःकरण को निर्मल किया है उनके हृदय में विशेष रूप से होती है ॥२॥

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।

दुहन्ति शक्मना पयः ॥३॥

पदार्थः—विद्वान् लोग (वृषाणम्) सब कामनाओं के देने वाले (सोमम्) परमात्मा को (यतम्) ज्ञान का विषय बना कर (वृषभिः, अद्रिभिः) अखिल कामनाओं की साधक इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (शक्मना) ज्ञानयोग और कर्मयोग द्वारा (सुन्वन्ति) प्रेरणा करते हुए (पयः) ब्रह्मानन्द को (दुहन्ति) दुहते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी बनकर अभ्यास करते हैं वे ही लोग ब्रह्मामृतरूप दुग्ध को परमात्मरूपकामधेनु से दोहन करते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

भुवंत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।

सं रूपैरज्यते हरिः ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—परमात्मा **(त्रितस्य)** श्रवण, मनन, निदिध्यासन—इन तीनों साधनों से **(मर्ज्यः, भुवत्)** उपासनीय है, और **(इन्द्राय, मत्सरः, भुवत्)** विज्ञानियों के लिये आह्लादकारक है तथा **(हरिः रूपैः संभज्यते)** पापनाशक परमात्मा अपने ब्रह्माण्डरूप कार्यों से अभिव्यक्त होता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की रचना से उसकी सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है; अर्थात् जो नियम इस ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं उनका नियन्ता वही अवश्य मानना पड़ता है। उस नियन्ता का साक्षात्कार यम नियमादि-साधनों द्वारा होता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।

चारु प्रियतमं हविः ॥५॥

पदार्थः—**(पृश्निमातरः)** कर्मयोगी विद्वान् **(ऋतस्य, विष्टपं, ईम्)** सत्य के स्थान परमात्मा से **(चारु)** सुन्दर **(प्रियतमम्)** अतिप्रिय **(हविः)** शुभकर्म की **(अभिदुहते)** भली प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष अपने कर्म्मों से उसका साक्षात्कार अर्थात् उपासना कर्म्म द्वारा उसकी सत्ता को लाभ करते हैं ॥५॥

समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।

धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥६॥

पदार्थः—**(सस्रुतः)** आकाश में फैलती हुई **(अह्रुताः)** निष्कपटभाव से की हुई **(इमाः, गिरः)** कर्मयोगियों द्वारा की हुई स्तुतियां **(एनम्, समर्षन्ति)** इस परमात्मा को प्राप्त होती हैं, **(वाश्रः)** और वह वेदोत्पादक परमात्मा **(धेनूः, अवीवशत्)** उन कर्मयोगियों के लिये अभीष्ट कामनाओं के देने को उद्यत रहता है ॥६॥

भावार्थः—शुभ संकल्पों के मन में उत्पन्न हो जाने से परमात्मा उनका फल अवश्यमेव देता है। तात्पर्य्य यह है कि उपासना, प्रार्थना भी एक प्रकार के कर्म्म हैं, उनका फल उनको अवश्य मिलता है। इसलिये प्रार्थना केवल मांगना ही नहीं, किन्तु एक प्रकार का कर्म्म है, वह निष्फल कदापि नहीं हो सकता ॥६॥

नवम मण्डल में यह चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ षड्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ प्रभूवसुर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, ४—६ गायत्री। ३ विराड्गायत्री॥ षड्जः स्वरः॥

अथ परमात्मा का धर्मादिदातृत्वेन वर्णन करते हैं॥

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम्।

यया ज्योतिर्विदासि नः॥१॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन्! (**नः, धारया, आ पवस्व**) हमको आप आनन्द की धारा से भली प्रकार पवित्र करिये, (**रयिम्, पृथुम्**) और बड़े भारी ऐश्वर्य को दीजिये, (**यया, नः, ज्योतिः, विदासि**) उसी आनन्द की धारा से आप ज्ञानप्रद हैं॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने आप को परमात्मज्ञान का पात्र बनाते हैं परमात्मा उन्हें आनन्द की वृष्टि से सिञ्चित करते हैं॥१॥

इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय।

रायो धर्ता न ओजसा॥२॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (**समुद्रमीङ्खय**) हे अन्तरिक्षादि लोकों में व्याप्त! (**विश्वमेजय, ओजसा**) हे अपने प्रताप से संसार को चकित करनेवाले! (**रायः, धर्ता**) आप सम्पूर्ण धनादि ऐश्वर्यों को धारण करनेवाले हैं (**नः, पवस्व**) आप हमको धनादि ऐश्वर्य का दान करके पवित्र करिये॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही धनादि सब ऐश्वर्य पुरुष को प्राप्त होते हैं, इसलिये पुरुष को सदैव परमात्मपरायण होने का यत्न करना चाहिये॥२॥

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः।

क्षरा णो अभि वार्यम्॥३॥

पदार्थः—(**वीरवः**) हे वीरों के अधिपति परमात्मन्! (**वीरेण, त्वया**) सर्वोपरि पराक्रमवाले आप के द्वारा हम (**पृतन्यतः, अभिष्याम**) संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को पराजित करें। (**नः, वार्यम्, अभिक्षर**) आप हमको अभिलषित पदार्थों को दीजिये॥३॥

भावार्थः—जो लोग अन्यायकारी शत्रुओं का विजय करने का संकल्प रखते हैं, परमात्मा उन्हें अन्यायकारियों के दमन का बल प्रदान

Scanned by CamScanner

करता है, ताकि अन्यायकारियों को मर्दन करके वे संसार में न्याय का प्रचार करें ॥३॥

प्र वाजमिन्दुंरिष्यति सिषांसन्वाजसा ऋषिंः ।
व्रता विदान आयुधा ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) सर्वैश्वर्यवाला (**सिषासन्**) अपने भक्तों को चाहनेवाला (**वाजसाः**) अखिल ऐश्वर्यों से युक्त (**ऋषिः**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का साक्षी (**व्रता, आयुधा, विदानः**) सम्पूर्ण कर्मों तथा आयुधों से सम्पन्न परमात्मा (**वाजम्, प्रेष्यति**) अपने भक्तों को सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सन्मार्गगामी पुरुषों को सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य प्रदान करता है। जो लोग परमात्मा की आज्ञा मान कर उसका अनुष्ठान करते हैं, वही परमात्मा के भक्त व सदाचारी कहलाते हैं, अन्य नहीं ॥४॥

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि ।
सोमं जनस्य गोपतिम् ॥५॥

पदार्थः—(**वाचमीङ्खयम्**) वेदवाणी में निवास करने वाले (**पुनानम्**) सबको पवित्र करने वाले (**जनस्य, गोपतिम्**) मनुष्यों की इन्द्रिय वृत्तियों को प्रेरणा करने वाले (**तं, सोमम्**) उस परमात्मा को (**गीर्भिः**) स्तुतियों द्वारा (**वासयामसि**) अपने अन्तःकरण में वसाते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के स्व अन्तःकरण में धारण करने का उपाय यह है कि पुरुष उसके सद्गुणों का चिन्तन करके उसके स्वरूप में मग्न हो जाय, इसी का नाम परमात्मप्राप्ति वा परमात्मयोग है ॥५॥

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः ।
पुनानस्य प्रभूवसोः ॥६॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस (**धर्मणस्पतेः**) धर्म को पालन करने वाले (**पुनानस्य**) संसार को पवित्र करने वाले (**प्रभूवसोः**) अनन्त ऐश्वर्य वाले परमात्मा की (**व्रते**) भक्ति में (**विश्वः**) सम्पूर्ण ऐश्वर्याभिलाषियों का गण (**मनः, दाधार**) अपने-अपने मन को धारण करता है, उस परमात्मा को हम अपने हृदय में वसाते हैं ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा के नियम में ही सब सूर्य्यादि पदार्थ अपने-अपने धर्म्मों को धारण करते हैं; अर्थात् उसके नियमों का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उस परमात्मा के महत्त्व को स्वहृदय में धारण करना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है ॥६॥

नवम मण्डल में यह पंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री । २, ६ गायत्री । ३ ५ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा को रयि और प्राण रूप शक्ति का आधार रूप से वर्णन करते हैं ॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥१॥

पदार्थः—(रथ्यः) सब गतिशील पदार्थों को गति देनेवाला वह परमात्मा (चम्वोः, सुतः) रयि और प्राणरूप दोनों शक्तियों में प्रसिद्ध है। और उसने (यथा, असर्जि) पूर्ववत् सब संसार को पैदा किया, और (वाजी) श्रेष्ठबल वाला वह परमात्मा (पवित्रे, कार्ष्मन्, न्यक्रमीत्) भजन द्वारा उसको आकर्षण करनेवाले भक्तों के पवित्र हृदय में आकर विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा अपनी व्यापकता से प्रत्येक पुरुष के हृदय में विद्यमान है, तथापि जो पुरुष अपने अन्तःकरण को निर्म्मल रखते हैं, उनके हृदय में उसकी स्फुट प्रतीति होती है। इसी अभिप्राय से कथन किया है कि वह भक्तों के हृदय में विराजमान है ॥१॥

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति ।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे भगवन् ! (सः) वह पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (वह्निः) सब के प्रेरक हैं और (जागृविः) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूप हैं। (देववीः, अति) सद्गुणसम्पन्न विद्वानों को अति चाहने वाले हैं (मधुश्चुतम्, कोशम्, अभिपवस्व) आप आनन्द के स्रोत को बहाइये ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सम्पूर्ण वस्तुओं में से परमात्मा ही एकमात्र आनन्दमय है। उसी के आनन्द को उपलब्ध करके जीव आनन्दित होते हैं। इसलिये उसी आनन्दरूप सागर से सुख की प्रार्थना करनी चाहिये ॥२॥

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।

क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥३॥

पदार्थः—(पूर्व्य, पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले अनादि परमात्मन् ! (नः, ज्योतींषि) आप हमारे ज्ञान को (विरोचय) प्रकाशित कीजिये और (नः) हमको (क्रत्वे, दक्षाय, हिनु) बलप्रद यज्ञ के लिये उद्यत कीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मज्योति का ध्यान करते हैं, वे पवित्र होकर सदैव शुभ कामों में प्रवृत्त रहते हैं ॥३॥

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।

पवते वारे अव्यये ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (ऋतायुभिः) सत्य को चाहने वाले विद्वानों से (गभस्त्योः) अपनी शक्तियों द्वारा स्थित होते हुए (मृज्यमानः) उपास्य हो। (शुंभमानः) सर्वोपरि शोभा को प्राप्त होते हुए (अव्यये, वारे, पवते) अपने उपासकों के लिये अव्यय मुक्ति पद को प्रदान करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शुभ काम करते हुए श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनों से युक्त रहते हैं वे मुक्तिपद के अधिकारी होते हैं ॥४॥

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।

पवतामान्तरिक्ष्या ॥५॥

पदार्थः—(सः, सोमः) वह सौम्यस्वभाव वाले आप (दाशुषे) अपने उपासक के लिये (दिव्यानि) दिव्य (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्ष में होने वाले तथा (पार्थिवानि) पृथिवीलोक में होने वाले (विश्वा, वसु) सम्पूर्ण रत्नादि ऐश्वर्यों को (आ पवताम्) दीजिये ॥५॥

भावार्थः जो लोग अपने स्वभाव को सौम्य बनाते हैं, अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को लक्ष्य में रख कर अपने गुण कर्म स्वभाव को भी उसी प्रकार का पवित्र बनाते हैं, वे सब ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं ॥५॥

Scanned by CamScanner

आ दि॒वस्पृ॒ष्ठम॑श्व॒युर्ग॑व्य॒युः सो॑म रोहसि ।

वी॒र॒युः श॑वसस्पते ॥६॥

पदार्थः—(सोम, शवसस्पते) हे अन्नादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् परमात्मन् ! आप अपने उपासक के लिये (**वीरयुः**) वीरों की इच्छा करने वाले तथा (**अश्वयुः, गव्युयुः**) अश्व, गौ आदिकों की इच्छा करने वाले हैं (**दिवः, पृष्ठम्, आरोहसि**) और द्युलोक के भी पृष्ठ पर आप विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थः—ईश्वर सदाचारी और न्यायकारी लोगों के लिये धीरत्व, वीरत्वादि धर्मों को धारण करता है । और गौ, अश्वादि सब प्रकार के धनों से उन्हें सम्पन्न करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–३ गायत्री । ४–६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा दुराचारियों से रक्षा का कथन करते हैं ॥

स सु॒तः पी॒तये॒ वृषा॒ सोमः॑ प॒वित्रे॑ अर्षति ।

वि॒घ्नन्रक्षां॑सि देव॒युः ॥१॥

पदार्थः—(**सुतः**) स्वयम्भू (**वृषा**) सर्व कामप्रद (**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**रक्षांसि, विघ्नन्**) राक्षसों का हनन करता हुआ और (**देवयुः**) देवताओं को चाहता हुआ (**पीतये**) विद्वानों की तृप्ति के लिये (**पवित्रे, अर्षति**) उनके अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में आकर विराजमान होता है । और उनके सब विघ्नों को दूर करके उनको कृतकार्य बनाता है । यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है, तथापि वह देवभाव को धारण करने वाले मनुष्य को ज्ञान द्वारा प्रतीत होता है, अन्यों को नहीं । इस अभिप्राय से यहाँ देवताओं के हृदय में उसका निवास कथन किया गया है, अन्यों के नहीं ॥१॥

स प॒वित्रे॑ विचक्ष॒णो हरि॑रर्षति धर्ण॒सिः ।

अ॒भि योनिं॒ कनि॑क्रदत् ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अभियोनिम्**) प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त होकर (**कनिक्रदत्**) शब्दायमान (**सः**) वह परमात्मा (**पवित्रे, अर्षति**) पवित्र हृदयों में निवास करता है और (**विचक्षणः**) सर्वद्रष्टा है (**हरिः**) पापों का हरने वाला तथा (**धर्णसिः**) सबको धारण करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ही इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का अधिष्ठाता तथा विधाता है ॥२॥

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।

रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (**वाजी**) अत्यन्त बलवाला (**दिवः, रोचना**) तथा अन्तरिक्ष का प्रकाशक है,(**रक्षोहा**) असत्कर्मियों का हनन करनेवाला, (**वारं**) सब का भजनीय और (**अव्ययम्**) अविनाशी है। (**पवमानः**) एवम्भूत परमात्मा सबको पवित्र करता हुआ (**विधावति**) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥३॥

भावार्थः—सूर्य चन्द्रमादि सब लोक-लोकान्तर उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। स्वयंप्रकाश एकमात्र वही परमात्मा है। अन्य कोई वस्तु स्वतःप्रकाश नहीं ॥३॥

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।

जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**त्रितस्य, अधिसानवि**) नीतिशास्त्रों में सर्वोपरि नेता है,(**पवमानः**) लोकों को शुद्ध करने वाले उसी परमात्मा ने (**जामिभिः, सह**) तेजों के सहित (**सूर्यम्, अरोचयत्**) सूर्य को देदीप्यमान किया है ॥४॥

भावार्थः—सब प्रकार की विद्याएँ उसी परमात्मा से मिलती हैं। और वही परमात्मा राजनीति से राजधर्मों का निर्माता तथा विधाता है ॥४॥

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।

सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

पदार्थः—(**वृत्रहा**) अज्ञानों का नाशक (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**सुतः**) स्वयंसिद्ध (**वरिवोवित्**) ऐश्वर्यों का देने वाला (**अदाभ्यः**) अदम्भनीय (**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**वाजम्, इव असरत्**) शक्ति की नाईं व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य (वृत्र)मेघों को छिन्न-भिन्न करके धरा-

Scanned by CamScanner

तल को जल से सुसिंचित कर देता है, इसी प्रकार परमात्मा सब प्रकार के आवरणों को छिन्न-भिन्न करके अपने ज्ञान का प्रकाश कर देता है ॥५॥

स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति ।

इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥६॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**देवः**) दिव्यगुण सम्पन्न है (**कविना, इषितः**) विद्वानों द्वारा प्रार्थित होता है । (**इन्दुः**) परम ऐश्वर्यसम्पन्न है (**मंहना**) महान् है और (**इन्द्राय, अभि, द्रोणानि**) विद्वानों के अन्तःकरणों में (**धावति**) विराजमान होता है ॥६॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है तथापि विद्याप्रदीप से जो लोग अपने अन्तःकरणों को देदीप्यमान करते हैं उनके हृदय में उसकी अभिव्यक्ति होती है । इस अभिप्राय से यहाँ परमात्मा का विद्वानों के हृदय में निवास करना कथन किया गया है ॥६॥

नवम मण्डल में यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य अष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १–६ रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से ईश्वर के गुण वर्णन करते हैं ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति ।

गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थः—(**एषः, स्यः,**) यह परमात्मा (**रथः**) गतिशील और (**वृषा**) सब कामनाओं का देने वाला (**अव्यः**) तथा सबका रक्षक है (**सहस्रिणम्, वाजम्**) अनन्त-शक्तिसम्पन्न (**गच्छन्**) होता हुआ (**वारेभिः, अर्षति**) वरणीय विद्वानों द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा का ज्ञान विद्वानों द्वारा इस संसार में प्रचार पाता है, इस अभिप्राय से परमात्मा ने उक्त मन्त्र में विद्वानों की मुख्यता निरूपित की है ॥१॥

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**त्रितस्य, योषणः, हरिम्**) [हरति प्रापयति स्ववशमानयतीति हरिः स्वामी] तीनों गुणवाली माया के अधिपति (**एतम्, इन्दुम्**) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा को (**इन्द्राय पीतये**) जीव की तृप्ति के लिये (**अद्रिभिः**) इन्द्रियवृत्ति द्वारा (**हिन्वन्ति**) विद्वान् लोग ध्यानविषय करते हैं ॥२॥

भावार्थः—सत्व, रज, और तम—इन तीनों गुणों वाली माया जो प्रकृति है, उसका एकमात्र अधिपति परमात्मा ही है; कोई अन्य नहीं। जो-जो पदार्थ इन्द्रियगोचर होते हैं, वे सब मायिक हैं अर्थात् मायारूपी उपादान-कारण से बने हुए हैं। परमात्मा मायारहित होने से अदृश्य है। उसका साक्षात्कार केवल बुद्धिवृत्ति से होता है। बाह्य-चक्षुरादि इन्द्रियों से नहीं। इसी अभिप्राय से यहाँ परमात्मा को बुद्धिवृत्ति का विषय कहा गया है ॥२॥

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥३॥

पदार्थः—(**हरितः, दश, अपस्युवः**) परमात्मस्तुति द्वारा पापों को हरण करने वाली दश इन्द्रियां (**एतम्, त्यम्**) इस परमात्मा को (**मर्मृज्यन्ते**) ज्ञान का विषय बनाती हैं, (**याभिः**) जिन इन्द्रियों से (**मदाय**) आनन्द देने के लिये (**शुंभते**) परमात्मा प्रकाशित होता है ॥३॥

भावार्थः—जो लोग योगादि साधनों द्वारा अपने मन का संयम करते हैं, अथवा यों कहिये कि, जिन्होंने पापवासनाओं को अपने मन की पवित्रता से नाश कर दिया है, परमात्मा उन्हीं के ज्ञान का विषय होता है, मलिनात्माओं का कदापि नहीं ॥३॥

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥४॥

पदार्थः—(**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**श्येनः, न**) शीघ्रगामी विद्युदादि शक्तियों के समान (**जारः योषितं, गच्छन्, न**) जैसे चन्द्रमा रात्रि को प्रकाशित करता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार (**मानुषीषु, विक्षु, सीदति**) मानुषी प्रजाओं में प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार चन्द्रमा अपने शीतस्पर्श और आह्लादको देता हुआ प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार परमात्मा अपने शान्त्यादि और आनन्दादिगुणों से सब प्रजाओं को प्रसन्न करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

एष स्य मद्यो रसोऽव॑ चष्टे दि॒वः शिशुः॑ ।

य इन्दु॒र्वार॒मावि॑शत् ॥५॥

पदार्थः—(**मद्यः**) आह्लादजनक (**रसः**) आनन्दरूप (**दिवः, शिशुः**) द्युलोक का शासक (**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**अवचष्टे**) सबको देखता है (**यः, इन्दुः**) जो परमैश्वर्यवाली परमात्मा (**वारम्, आविशत्**) स्तोता विद्वान् के अन्तःकरण में प्रविष्ट होता है ॥५॥

भावार्थः—इस संसार में सर्वद्रष्टा एकमात्र परमात्मा ही है। उससे भिन्न सब जीव अल्पज्ञ हैं। योगी पुरुष भी अन्यों की अपेक्षा सर्वज्ञ कहे जाते हैं, वास्तव में वे सर्वज्ञ नहीं ॥५॥

एष स्य पी॒तये॑ सु॒तो हरि॑रर्षति धर्ण॒सिः ।

क्रन्द॒न्योनि॑म॒भि प्रि॒यम् ॥६॥

पदार्थः—(**एषः, स्यः**) यह परमात्मा (**सुतः**) स्वयम्भू (**धर्णसिः**) धारण करने वाला (**क्रन्दन्**) शब्दमय वेद को आविर्भाव करता हुआ (**पीतये**) संसार की तृप्ति के लिये (**योनिम्, प्रियम्**) प्रिय प्रकृति में (**अभ्यर्षति**) व्याप्त हो रहा है ॥६॥

भावार्थः—इस प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड के रोम-रोम में व्याप्त और वेदादि विद्याओं का आविर्भावकर्ता एकमात्र परमात्मा ही है ॥६॥

नवम मण्डल में यह अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, निचृद् गायत्री ॥ २, ३, ५, गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञ में ज्ञान रूप से परमात्मा का आवाहन कथन करते हैं।

आ॒शुर॑र्ष बृहन्मते॒ परि॑ प्रि॒येण॒ धाम्ना॑ ।

यत्र॑ दे॒वा इति॒ ब्रुव॑न् ॥१॥

पदार्थः—(**बृहन्मते**) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (**आशुः**) आप शीघ्र गतिशील हैं (**यत्र देवाः, इति, ब्रवन्**) जहाँ दिव्यगुण सम्पन्न ऋत्विगादि आपका आवाहन करते हैं, उस यज्ञ स्थल में आप (**प्रियेण, धाम्ना, पर्यर्ष**) अपने सर्वहितकारक तेजःस्वरूप से विराजमान हों ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यज्ञादि शुभ कर्मों में परमात्मा के भाव वर्णन किये जाते हैं, इसलिये परमात्मा की अभिव्यक्ति यज्ञादि स्थलों में मानी गई है। वास्तव में परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है ॥१॥

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**अनिष्कृतम्, परिष्कृण्वन्**) हे परमात्मन् ! आप अपने अज्ञानी उपासकों को ज्ञान देते हुए (**जनाय, इषः, यातयन्**) और अपने भक्तों को ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए (**दिवः, वृष्टिम्, परिस्रव**) द्युलोक से वृष्टि को उत्पन्न कीजिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्माके, संसार में अद्भुत कर्म ये हैं कि उसने द्युलोक को वर्षणशील बनाया है, और सूर्यादिलोकों को तेजोमय तथा पृथिवीलोक को दृढ़ इत्यादि । इन विचित्र भावों का कर्त्ता एकमात्र परमात्मा ही है ॥२॥

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥३॥

पदार्थः—(**विरोचयन्**) सब प्रकाशित वस्तुओं को प्रकाशमान करता हुआ (**विचक्षाणः**) और अखिल ब्रह्माण्ड का द्रष्टा (**सुतः**) वह स्वयम्भू परमात्मा (**ओजसा, त्विषिं, दधानः**) अपने प्रताप से ज्ञान को धारण कराता हुआ (**पवित्रे, एति**) विद्वानों के पवित्र अन्तःकरण में प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक है, तथापि उसका स्थान विद्वानों के हृदय को इसलिए वर्णन किया गया है, कि विद्वान् लोग अपने हृदय को उसके ज्ञान का पात्र बनाते हैं ॥३॥

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥४॥

पदार्थः—(**अयम्, सः**) यह वह परमात्मा है (**यः**) जोकि (**दिवस्परि**) अन्तरिक्ष के भी ऊर्ध्वभाग में वर्तमान है और (**रघुयामा**) शीघ्रगतिवाला है (**पवित्रे, आ**) और ज्ञानयोगियों के पवित्र अन्तःकरण में निवास करता है, तथा (**सिन्धोः ऊर्मा, व्यक्षरत्**) जो स्यन्दनशक्ति उत्पन्न करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—उसी परमात्मा की अद्भुत शक्ति तथा सत्ता से सूर्य चन्द्रमादिकों का परिभ्रमण और नदियों का प्रवहन इत्यादि सम्पूर्ण गतियाँ उसी की सत्ता से उत्पन्न होती है ॥४॥

आविवांसन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

पदार्थः—(सुतः) वह स्वयम्भू परमात्मा (परावतः) दूरस्थ (अथो, अर्वावतः) और समीपस्थ वस्तुओं को (आविवासन्) भली प्रकार प्रकाशित करता हुआ (इन्द्राय, सिच्यते, मधु) जीवात्मा के लिये आनन्द की वृष्टि करता है ॥५॥

भावार्थः—जीवात्मा के लिये आनन्द का स्रोत, एकमात्र वही परमात्मा है ॥५॥

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

योनावृतस्य सीदत ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (हरिम्) पापों को नाश करने वाले आपको (समीचीनाः) सत्कर्मा ऋत्विगादि लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं । तथा (अद्रिभिः, हिन्वन्ति) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा ज्ञान का विषय बनाते हैं, (ऋतस्य, योनौ, सीदत) हे परमात्मन् ! आप सत्य की योनि यज्ञ में स्थित हों ॥६॥

भावार्थः—याज्ञिक पुरुष अपने अन्तःकरण को यज्ञवेदिस्थानी बनाकर परमात्मज्ञान को अवनेय बनाकर इस ज्ञानमय यज्ञ से प्रजा को सुगन्धित करते हैं । तात्पर्य यह है कि अध्यात्मयज्ञ ही एकमात्र परमात्मप्राप्ति का मुख्य साधन है, अन्य जलस्थलादि कोई वस्तु भी परमात्मप्राप्ति का मुख्य साधन नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—६ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर से शीलता की प्रार्थना की जाती है ॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१॥

पदार्थः—(**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा परमात्मा (**पुनानः**) सत्कर्मियों को पवित्र करता हुआ (**विश्वा, मृधः, अभ्यक्रमीत्**) अखिल दुराचारियों का नाश करता है (**विप्रं, धीतिभिः**) उस परमात्मा को विद्वान् लोग वेदवाणियों से (**शुम्भन्ति**) स्तुति करके विभूषित करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मी पुरुषों को शुभ स्वभाव प्रदान करता है। तात्पर्य यह है कि सत्कर्मियों को उनके शुभ कर्म्मानुसार शुभ फल देता है, और दुष्कर्मियों को दुष्कर्मानुसार अशुभ फल देता है ॥१॥

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः ।

ध्रुवे सदसि सीदति ॥२॥

पदार्थः—(**अरुणः**) सर्वव्यापी (**सुतः**) स्वयंसिद्ध वह परमात्मा (**आ योनिम् रुहत्**) सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त हो रहा है और (**वृषा**) सर्वकामनाओं का देनेवाला वह परमात्मा (**सदसि**) यज्ञस्थल में (**इन्द्रम्, गमत्**) ज्ञानयोगी को प्राप्त होकर (**ध्रुवे, सीदति**) उसके दृढ़विश्वासी अन्तःकरण में विराजमान होता है ॥२॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुषों को परमात्मा सदैव उत्साह देकर सत्कर्मों में प्रवृत्त करता है ॥२॥

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (**सोम**) हे सौम्य स्वभाव वाले (**नः**) हमारे लिये (**नु**) निश्चय करके (**विश्वतः**) सब ओर से (**सहस्रिणम्**) अनेक प्रकार के (**महां**) बड़े (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**आ पवस्व**) दीजिये ॥३॥

भावार्थः—सत्कर्मी पुरुष भी जब तक परमात्मा से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि की प्रार्थना नहीं करते, तब तक उनका अभ्युदय नहीं होता। यद्यपि अभ्युदय पूर्वकृत शुभ कर्मों का फल है, तथापि जबतक मनुष्य का अभ्युदयशाली शील नहीं बनता तब तक वह अभ्युदय को कदाचित् भी नहीं चाहता। इसलिये अभ्युदयशाली शील बनाने के लिए अभ्युदय की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये ॥३॥

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर ।

विदाः सहस्रिणीरिषः ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सोम, पवमान**) हे जगत् को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यसम्पन्न ! (**विश्वा, द्युम्नानि, आभर**) आप मेरे लिये सम्पूर्ण दिव्यरत्नों को दीजिये तथा (**सहस्रिणीः, इषः, विदाः**) और अनेक प्रकार के अन्नादि ऐश्वर्यों को दीजिये ॥४॥

भावार्थः—सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये उससे ऐश्वर्यों की प्रार्थना करनी चाहिये ॥४॥

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।

जरितुर्वर्धया गिरः ॥५॥

पदार्थः—(**सः**) हे परमात्मन् ! वह पूर्वोक्त आप (**नः, स्तोत्रे**) आपकी स्तुति करने वाले मुझको (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**सुवीर्यम्, रयिम्**) सुन्दर पराक्रम के साथ ऐश्वर्य को (**आभर**) दीजिये और (**जरितुः, गिरः, वर्धय**) मुझ उपासक की वाक्शक्ति को बढ़ाइये ॥५॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपनी वाक्शक्ति को बढ़ाते हैं, परमात्मा उन्हें वाग्मी अर्थात् सुन्दर वक्ता बनाता है ॥५॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।

वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्दो, सोम**) हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन् ! (**पुनानः**) आप मेरे स्वभाव को पवित्र करते हुए (**द्विबर्हसम्, रयिम्, आभर**) द्युलोक तथा पृथिवी-लोक सम्बन्धी दोनों ऐश्वर्यों को दीजिये । (**इन्दो**) हे प्रकाशरूप ! (**वृषन्**) सब कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (**नः, उक्थ्यम्**) मेरी स्तुतिरूप वाणी को स्वीकार करिये ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के गुणकर्मानुसार अपने स्वभाव को बनाते हैं परमात्मा उन्हें ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह चालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ६ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब परमात्मा की रचना का महत्त्व वर्णन करते हैं ॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थः—(ये, गावः, न) पृथिव्यादिलोकों के समान जो लोक (भूर्णयः) शीघ्र गतिशील हैं (त्वेषाः) जो दीप्तिमान् और (अयासः) वेगवाले (कृष्णाम्, त्वचम्) महागूढ़ अन्धकार को (अपघ्नन्तः, प्राक्रमुः) नष्ट करते हुए प्रक्रमण करते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोक लोकान्तरों को उत्पन्न करता है, उसी की सत्ता से सब पृथिव्यादि लोक गति कर रहे हैं ॥१॥

सुवितस्यं मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।

साह्वांसो दस्युंमव्रतम् ॥२॥

पदार्थः—(सुवितस्य, दुराव्यम्, सेतुम्) ऐसे पूर्वोक्त लोकों को उत्पन्न करने वाले दुःख से प्राप्त करने योग्य संसार के सेतुरूप ईश्वर की (मनामहे) स्तुति करते हैं, जो परमात्मा (अव्रतम्, दस्युम् साह्वांसः) वेदधर्म को नहीं पालन करने वाले, दुराचारियों का शमन करने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर जगत् का सेतु है, अर्थात् मर्य्यादा है, उसी की मर्य्यादा में सूर्य्य चन्द्रादि सब लोक परिभ्रमण करते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि उस मर्य्यादापुरुषोत्तम को सदैव अपना लक्ष्य बनावें ॥२॥

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।

चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थः—(वृष्टेः, इव, स्वनः, शृण्वे) जिसका अनुशासन मेघ की वृष्टि के समान निस्सन्देह सुना जाता है, उसी (पवमानस्य, शुष्मिणः) संसार को पवित्र करने वाले तथा सर्वोपरि बल वाले परमात्मा की (विद्युतः, दिवि, चरन्ति) विद्युदादि शक्तियाँ आकाश में भ्रमण करती हुई दिखाई देती हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की विद्युदादि अनेक शक्तियाँ हैं, इसलिए उसे अनन्त शक्तिमद्ब्रह्म कहा जाता है ॥३॥

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।

अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (सुतः) स्वयंसिद्ध हैं (गोमत्, हिरण्यवत्, अश्वावत्, वाजवत्) गौ, हिरण्य, अश्व, बल, पराक्रमादि से युक्त (महीम्, इषम्, आपवस्व) बड़े भारी ऐश्वर्य को मेरे लिये उत्पन्न करिये ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी स्वसत्ता से विराजमान है। अर्थात् परमात्मा सबका अधिष्ठान होकर सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा है और वह स्वयंप्रकाश है ॥४॥

स पंवस्व विचर्षण आ मही रोदंसी पृण ।

उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

पदार्थः—(विचर्षण) हे सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! (उषाः, सूर्यः, न, रश्मिभिः) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से उषःकाल को प्रकाशित कर देते हैं उसी प्रकार (मही, रोदसी) इस महान् पृथिवी लोक और द्युलोक को (आपृण) अपने ऐश्वर्य से पूरित करिये। और (पवस्व) उस ऐश्वर्य से अपने सत्कर्मी उपासकों को पवित्र करिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र पवित्रता का केन्द्र है, पवित्रता चाहने वालों को चाहिये कि पवित्र होने के लिए उसी परमात्मा की उपासना करके अपने आपको पवित्र बनायें ॥५॥

परि णः शर्मयन्त्या धारंया सोम विश्वतः ।

सरा रसेव विष्टपंम् ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (रसेव, विष्टपम्) जिस प्रकार रस से अर्थात् ब्रह्म से लोक व्याप्त हो रहा है, उसी प्रकार (शर्मयन्त्या, धारया) सुख देनेवाली आनन्द की धारा सहित (नः, विश्वतः, परिसर) मेरे हृदय में आप भली प्रकार निवास कीजिये ॥६॥

भावार्थः—आनन्द का स्रोत एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिये आनन्दाभिलाषी जनों को चाहिए कि उसी आनन्दाम्बुधि का रसपान करके अपने आपको आनन्दित करें ॥६॥

नवम मण्डल में यह इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य द्वाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब परमात्मा को सूर्यादिकों के कर्त्ता रूप से वर्णन करते हैं॥

जनयंत्रोचना दिवो जनयंन्नप्सु सूर्यंम्।

वसांनो गा अपो हरिंः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) पापों का हरनेवाला वह परमात्मा (दिवः, रोचना, जनयन्) आकाश में प्रकाशित होनेवाले ग्रहनक्षत्रादिकों को उत्पन्न करता हुआ और (अप्सु, सूर्यम्, जनयन्) अन्तरिक्ष में सूर्य को उत्पन्न करता हुआ (गाः, अपः) भूमि तथा द्युलोक को (वसानः) आच्छादित करता हुआ सर्वत्र व्याप्त हो रहा है॥१॥

भावार्थः—उसी परमात्मा ने सूर्य्यादि सब लोकों को उत्पन्न किया। और उसीकी सत्ता से स्थिर होकर सब लोकलोकान्तर अपनी-अपनी स्थिति को लाभ कर रहे हैं॥१॥

एष प्रत्नेन मन्मंना देवो देवेभ्यस्परिं।

धारंया पवते सुतः ॥२॥

पदार्थः—(प्रत्नेन, मन्मना) प्राचीन वेदरूप स्तोत्र से (देवः) प्रकाशमान (एषः, सुतः) यह स्वयंसिद्ध परमात्मा (देवेभ्यः) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानों को (धारया) आनन्द की धारा से (परि, पवते) भली प्रकार आह्लादित करता है॥२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने वैदिक ज्ञान से सब लोगों को ज्ञानी-विज्ञानी बनाकर आनन्दित करता है॥२॥

वावृधानाय तूर्वंये पवंन्ते वाजंसातये।

सोमाः सहस्रंपाजसः ॥३॥

पदार्थः—(सहस्रपाजसः, सोमाः) अनन्तशक्तिसम्पन्न परमात्मा (वावृधानाय) अपनी अभ्युन्नति की इच्छा करने वाले (तूर्वये) दक्षतायुक्त कर्मयोगियों की (वाजसातये) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये (पवन्ते) उनके हृदयों में ज्ञान उत्पन्न करके उनको पवित्र करता है॥३॥

भावार्थः—इस संसार में सर्वशक्तिमान् एकमात्र परमात्मा से सब प्रकार के अभ्युदय की प्रार्थना करनी चाहिये। जो लोग उक्त परमात्मा से अभ्युदय की प्रार्थना करके उद्योगी बनते हैं, वे अवश्यमेव अभ्युदय को प्राप्त होते हैं॥३॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परिं षिच्यते।

क्रन्दंन्देवाँ अंजीजनत् ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**प्रत्नम्, इत्**) प्राचीन वेदवाणियों में (**पयः, दुहानः**) ब्रह्मानन्द को उत्पन्न करता हुआ वह परमात्मा (**पवित्रे, परिषिच्यते**) उपासकों के पवित्र हृदय में ध्यान का विषय होता है और (**क्रन्दन्**) उसी शब्दायमान परमात्मा ने (**देवान्, अजीजनत्**) देदीप्यमान चन्द्रादिकों को उत्पन्न किया ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ने वेदवाणीरूपी कामधेनु को ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण कर दिया है। जो लोग इस अमृतरस को पान करना चाहते हों, वे उक्तामृतप्रदायिनी ब्रह्म विद्यारूपी वेदवाग्धेनु के वत्सवत् प्रेमपात्र बनकर इस दुग्धामृत को पान करें ॥४॥

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः ।
सोमः पुनानो अर्षति ॥५॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**ऋतावृधः, देवान्**) सत्य को बढ़ाने वाले सत्कर्मियों को (**अभिपुनानः**) सर्वथा पवित्र करके (**वार्या, विश्वानि**) सम्पूर्ण वाञ्छनीय पदार्थों को (**अभ्यर्षति**) उनके लिये प्राप्त करता है ॥५॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा दयामय और सर्वहितकारी है, तथापि उद्योगी पुरुषों को पवित्र करता हुआ, अभ्युदयरूप फल देता है; अनुद्योगियों को नहीं ॥५॥

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः ।
पवस्व बृहतीरिषः ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**गोमत्**) गवादि ऐश्वर्यों से युक्त तथा (**वीरवत्**) वीरयुक्त (**अश्वावत्, वाजवत्**) अश्वादियुक्त और अन्नादि ऐश्वर्य युक्त हैं; (**बृहतीः, इषः, पवस्व**) आप अपने उपासकों को महान् ऐश्वर्य दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही वीर धर्म का दाता है। उसकी कृपा से वीर पुरुष उत्पन्न होकर दुष्टों का दलन, और श्रेष्ठों का परिपालन करते हैं ॥६॥

नवम मण्डल में यह बयालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब परमात्मा का दातृत्व वर्णन करते हैं ॥

यो अत्यं इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः ।

तं गीर्भिर्वासयामसि ॥१॥

पदार्थः—(हर्यतः, यः) सर्वोपरि कमनीय जो परमात्मा (अत्यः, इव) विद्युत् के समान दुर्ग्राह्य है, (गोभिः मदाय, मृज्यते) और जो परमात्मा ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिये इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किया जाता है (तम्) उस परमात्मा को (गीर्भिः) अपनी स्तुतियों द्वारा (वासयामसि) हम हृदयाधिष्ठित करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की प्रार्थना, उपासना और स्तुति करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मा के स्वरूप को अनुभव करते हैं ॥१॥

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थः—(तम्, इन्दुम्) उस प्रकाशमान परमात्मा को (अवस्युवः, नः, विश्वाः, गिरः) रक्षा को चाहने वाली मेरी सम्पूर्ण वाणियाँ (इन्द्राय, पीतये) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (पूर्वथा) पहले की तरह (शुम्भन्ति) स्तुतियों से विराजमान करती हैं ॥२॥

भावार्थः—वही परमात्मा मनुष्य की पूर्ण तृप्ति के लिये, पर्याप्त होता है। अन्य शब्द स्पर्शादि विषय इसको कदाचित् भी तृप्त नहीं कर सकते ॥२॥

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।

विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥३॥

पदार्थः—(गीर्भिः, परिष्कृतः) वेदवाणियों से स्तुति किया गया (हर्यतः, सोमः) दर्शनीय परमात्मा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (मेध्यातिथेः, विप्रस्य) ज्ञानयोगी विद्वान् के हृदय में (याति) निवास करता है ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोगी बनकर ज्ञानप्रदीप से अपने हृदय-मन्दिर को प्रदीप्त करते हैं, उनके हृदयरूपी मन्दिर में परमात्मा का पूर्णतया अवभास होता है ॥३॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।

इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**पवमान**) हे सर्वपावक परमात्मन् ! (**इन्दो**) हे प्रकाशमान ! (**सोम**) हे सौम्यस्वभाव वाले ! (**अस्मभ्यम्**) आप मेरे लिये (**सहस्रवर्चसम्**) अनेक प्रकार की दीप्ति वाले (**सुश्रियम्**) सुन्दर शोभा से युक्त (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**विदा.**) प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थः—वही परमात्मा अनन्त प्रकार के अभ्युदयों का दाता है। अर्थात् ब्रह्मवर्चसादि सब तेज उसी की सत्ता से उपलब्ध होते हैं ॥४॥

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रंति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) वह प्रकाशमान परमात्मा (**अत्यः न वाजसृत्**) विद्युत् के सदृश अपनी शक्तियों से व्याप्त होता हुआ (**कनिक्रंति**) शब्दायमान हो रहा है (**यत्**) जो परमात्मा (**देवयुः**) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानों को चाहता हुआ (**पवित्रे, आ**) उनके पवित्र हृदयों में भली प्रकार (**अति, अक्षाः**) ब्रह्मानन्द का अत्यन्त क्षरण करता है ॥५॥

भावार्थः—दैवी सम्पत्ति वाले पुरुषों के हृदय में परमात्मा की ज्योति सदैव देदीप्यमान रहती है। मलिनान्तःकरण, आसुरी सम्पत्ति वालों के हृदय उस दैवी दिव्य ज्योति से सर्वथैव वञ्चित रहते हैं ॥५॥

पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
सोम रास्व सुवीर्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**वाजसातये**) अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये और (**वृधे**) अभ्युन्नति के लिये (**गृणतः, विप्रस्य, पवस्व**) आपकी स्तुति करने वाले जो कर्मयोगी विद्वान् हैं उनको पवित्र करके योग्य बनाइये और (**सुवीर्यं, रास्व**) उनके शत्रुओं को दमन करने के लिये पर्याप्त पराक्रम को दीजिये ॥६॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष जो अपने उद्योग से सदैव अभ्युदयाभिलाषी रहते हैं, उनको परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ षड्ट्टचस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री । २—६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा मेधावी लोगों की बुद्धि का विषय है, यह वर्णन करते हैं ॥

प्र णं इन्दो महे तनं ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।

अभि देवाँ अयास्यः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (ऊर्मिम्, बिभ्रत्) आप आनन्द की तरंगों को धारण करते हुए (महे, तने) बड़े ऐश्वर्य के लिये (नः, न, प्रार्षसि) हमको शीघ्र ही प्राप्त होते हैं और (अभिदेवान्) कर्मयोगियों को (अयास्यः) विना प्रयत्न प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष अनुष्ठानशील नहीं अर्थात् उद्योगी बनकर कर्म्म-योग में तत्पर नहीं है, वह पुरुष कदाचित् भी परमात्मा को नहीं पा सकता, इसलिए उद्योगी बनकर कर्म्म में तत्पर होना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए ॥१॥

मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।

विप्रस्य धारया कविः ॥२॥

पदार्थः—(कविः, सोमः) वेदरूप काव्यों का निर्माता वह परमात्मा (परावति) अल्प प्रयत्न से ध्यानविषयी न होने के कारण दूरस्थ (मती, जुष्टः) स्तुतियों द्वारा प्रसन्न होता हुआ (विप्रस्य, धिया, हितः) ज्ञान योगियों की बुद्धि से साक्षात्कार किया गया (धारया, हिन्वे) अपने ब्रह्मानन्द की धारा से तृप्त करता है ॥३॥

भावार्थः—वेद परमात्मा का ज्ञान है और उस ज्ञान का आविर्भाव परमात्मा करता है । इसी अभिप्राय से उसे वेदों का निर्म्माता वा कर्त्ता कथन किया है, वास्तव में वेद नित्य है ॥२॥

अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ ।

सोमो याति विचर्षणिः ॥३॥

पदार्थः—(जागृविः, सुतः, अयम्, सोमः) स्वयंसिद्ध जागरूक यह परमात्मा (विचर्षणिः) सबको देखता हुआ (आ, याति,) सर्वत्र व्याप्त है । और (देवेषु) विद्वानों के (पवित्रे) पवित्र हृदय में (एति) आविर्भूत होता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—अन्य लोगों की जागृति नैमित्तिकी होती है अर्थात् स्वतः-सिद्ध नहीं होती। एकमात्र परमात्मा की जागृति ही स्वतःसिद्ध है अर्थात् परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप है, अन्य सब जीव पराधीन ज्ञानवाले हैं ॥३॥

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।

बर्हिष्माँ आ विवासति ॥४॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**बर्हिष्मान्, आ, विवासति**) व्यापकता रूप से सब लोकों को आच्छादन कर रहा है (**सः**) वह परमात्मा (**अध्वरं, चारुं, चक्राणः**) हमारे यज्ञ को शोभायमान करता हुआ (**नः, पवस्व**) हम को पवित्र करे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी व्यापक सत्ता से सब लोक-लोकान्तरों को एकदेशी बनाकर व्यापक रूप से स्थिर है, उक्त यज्ञ में उसकी प्रकाशक भाव से प्रकाशित होने की प्रार्थना की गई है ॥४॥

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः ।

सोमो देवेष्वा यमत् ॥५॥

पदार्थः—(**सदावृधः**) जो सदैव सर्वोपरि रहता है और (**विप्रवीरः**) [वीरयति यद्वा विशेषेण-ईर्ते ईरयति वा इति वीरः] जो मेधावी पुरुषों को वीर अर्थात् शक्ति प्रदान करके प्रेरणा करता है (**सः, सोमः**) वह परमात्मा (**नः भगाय, वायवे**) हमारे व्याप्तिशील ऐश्वर्य के लिये (**देवेषु, आयमत्**) ज्ञानक्रियाकुशल विद्वानों की शक्तियों को बढ़ाये ॥५॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी तथा ज्ञानयोगी पुरुषों की शक्तियों के बढ़ाने के लिये परमात्मा सदैव उद्यत रहता है ॥५॥

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः ।

वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥६॥

पदार्थः—(**क्रतुवित्**) सबके कर्मों को जानने वाले और (**गातुवित्तमः**) कवियों में उत्तम कवि (**सः**) वह आप (**वसुत्तये**) रत्नादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये (**नः**) हमारे (**बृहत्, वाजम्, श्रवः**) बड़े बल तथा कीर्त्ति को (**अद्य**) तत्काल ही (**जेषि**) बढ़ाइये ॥६॥

भावार्थः—कवि शब्द के अर्थ यहाँ सर्वज्ञ के हैं। ज्ञानी-विज्ञानी सब में से एकमात्र परमात्मा ही सर्वोपरि कवि=सर्वज्ञ है, अन्य कोई नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह चवालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ षड्रचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३–५ गायत्री । २ विराड्गायत्री । ६ निचृद्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा न्याय करता है यह वर्णन करते हैं ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।

इन्दविन्द्राय पीतये ॥१॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्तगुणसम्पन्न (इन्दो) हे प्रकाशमान ! आप (**नृचक्षाः**) सब मनुष्यों के द्रष्टा हैं (**मदाय**) आह्लाद के लिये और (**देववीतये**) यज्ञ के लिये तथा (**इन्द्राय, पीतये**) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (**कम्, पवस्व**) आप सुख प्रदान करिये ॥१॥

भावार्थः—जीवात्मा के हृदय मन्दिर को एकमात्र परमात्मा ही प्रकाशित करता है, अन्य कोई भी जीव को सत्यज्ञान के प्रकाश का दाता नहीं ॥१॥

स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे ।

देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सः) वह आप (**नः दूत्यम्, अभ्यर्ष**) हमारे लिये कर्मयोग प्रदान करिये (**त्वम्, इन्द्राय, तोशसे**) क्योंकि आप परमैश्वर्य सम्पन्न होने के लिये स्तुति किये जाते हैं। (**देवान्, सखिभ्यः**) और सत्कर्मी विद्वानों के लिये (**आवरम्**) भली प्रकार उनके अभीष्ट को दीजिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सदाचारियों को सुख और दुष्कर्मियों को दुःख देता है। परमात्मा के राज्य में किसी के साथ भी अन्याय नहीं होता। इस बात को ध्यान में रखकर मनुष्य को सदैव सदाचारी बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।

वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**अरुणम्, उत, त्वाम्**) गतिशील आपको (**मदाय**) आह्लादप्राप्ति के लिये (**गोभिः, अञ्ज्मः**) इन्द्रियों द्वारा ज्ञान का विषय करते हैं

(नः, राये) आप हमारे ऐश्वर्य के लिये (दुरः, विवृधि) पापों को नष्ट करिये तथा (कम्) सुख प्रदान करिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग अपनी इन्द्रियों का संयम करते हैं वे ही उस परमात्मा के शुद्धस्वरूप को अनुभव कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

अत्यूं पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि ।

इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥४॥

पदार्थः—(वाजी, इन्दुः) उत्तम बलवाला वह परमात्मा (धुरम्, अत्यक्रमीत्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भार के सहने में समर्थ है, और (यामनि, न) ध्यान करने से शीघ्र ही (देवेषु, पवित्रम्, पत्यते) विज्ञानियों के हृदय में अधिष्ठित होता है ॥४॥

भावार्थः—यद्यपि प्रकृति, जीव यह दोनों पदार्थ भी अपनी सत्ता से विद्यमान हैं, तथापि अधिकरण अर्थात् सब का आधार बन कर एकमात्र परमात्मा ही स्थिर है। इसलिए उसको धुर रूप अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के आधाररूप से कथन किया गया है ॥४॥

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम् ।

इन्दुं नावा अनूषत ॥५॥

पदार्थः—(अत्यविम्) अतिशय सबकी रक्षा करने वाले (वने, क्रीडन्तम्) अखिल ब्रह्माण्डरूप वन में क्रीडा करते हुए (ईम्, इन्दुम्) इस परमात्मा की (सखायः) उसके प्रिय स्तोता लोग (अस्वरन्) शब्दायमान होते हुए (नावाः, समनूषत) उसकी रचित-वेदवाणियों से स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान का साधन मनुष्य के पास एकमात्र उस का स्तोत्र वेद ही है, अन्य कोई ग्रन्थ उसके पूर्ण ज्ञान का साधन नहीं ॥५॥

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे ।

इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यया, पीतः) जिस ज्ञान की धारा से सेवन किये गए आप (विचक्षसे, स्तोत्रे) अपने विद्वान् स्तोता के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर ज्ञानकर्मशालिनी शक्ति को देते हैं (तया, धारया, पवस्व) उसी आनन्दोत्पादक ज्ञान की धारा से आप मुझे पवित्र करिये ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा अपनी ज्ञानरूप धारा से सबके अन्तःकरणों को सिञ्चित करता है । तात्पर्य्य यह है कि उसका ज्ञानरूप प्रकाश प्रत्येक पुरुष के हृदय में पड़ता है । परन्तु सुपात्र पुरुष ही पात्र बनकर उसका ग्रहण कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नवम मण्डल में यह पैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—६ अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब पदार्थविद्या के जाननेवाले विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्या इव ।

क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥१॥

पदार्थः—उस परमात्मा द्वारा (पर्वतावृधः) ज्ञान और कर्म से बढ़े हुए (क्षरन्तः) उपदेशक को देने वाले (कृत्व्याः, इव) कर्मयोगियों के समान (अत्यासः) सर्व कर्मों में व्यापक विद्वान् (देववीतये) देवों के तृप्तिकारक यज्ञ के लिये (असृग्रन्) पैदा किये जाते हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानरूप यज्ञ के लिये ज्ञानी-विज्ञानी पुरुषों को उत्पन्न करता है । इसलिये सब मनुष्यों को चाहिये कि वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानों को बुलाकर अपने यज्ञादि कर्मों का आरम्भ किया करें ॥१॥

परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती ।

वायुं सोमा असृक्षत ॥२॥

पदार्थः—(पित्र्यावती, योषेव) पितावाली कन्या के समान (परिष्कृतासः) ब्रह्मविद्या से अलङ्कृत होने से (इन्दवः) परम ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (सोमाः) वे विद्वान् लोग (वायुम्) सूक्ष्मभाव को प्राप्त हुए पदार्थों को (असृक्षत) सिद्ध करते हैं ॥२॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष उक्त पदार्थों में से अति सूक्ष्मभाव निकाल कर प्रजाओं में प्रचार करते हैं । इसलिये प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह कर्म्मयोगी विद्वानों का सत्कार करें । ताकि विज्ञान की वृद्धि होकर प्रजाओं में सुख का सञ्चार हो ॥२॥

Scanned by CamScanner

एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः ।

इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥३॥

पदार्थः—(सुताः, एते, इन्दवः, सोमासः) ये उत्पन्न किये गए परमैश्वर्यशाली विद्वान् लोग (चमू, प्रयस्वन्तः) सेनाओं में प्रयत्न करते हुए (कर्मभिः) अनेक प्रकार की क्रियाओं से (इन्द्रम्) अपने स्वामी को (वर्धन्ति) जययुक्त करके समृद्ध बनाते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्म्मयोगियों के प्रभाव से ही सैनिक बल की वृद्धि होती है। और कर्म्मयोगियों के प्रभाव से ही सम्राट् सम्पूर्ण देश-देशान्तरों का शासन करता है; इसलिये परमात्मा ने इन मन्त्रों में कर्म्मयोगियों के सत्कार का वर्णन किया है ॥३॥

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना ।

गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥४॥

पदार्थः—(सुहस्त्यः) हे क्रियाकुशल हस्तोंवाले विद्वानो ! आप (आ, धावत) ज्ञान की ओर लगकर (मन्थिना) यन्त्र द्वारा (शुक्रा, गृभ्णीत) बलवाले पदार्थों को सिद्ध कीजिये (गोभिः) और रश्मियुक्त विद्युदादि पदार्थों द्वारा (मत्सरम्) आह्लाद-कारक पदार्थों को (श्रीणीत) सुदृढ़ करके प्रकाशित कीजिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वे कर्म्मयोगियों से प्रार्थना करके अपने देश के क्रिया-कौशल की वृद्धि करें ॥४॥

स पवस्व धनञ्जय प्रयन्ता राधसो महः ।

अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥५॥

पदार्थः—(धनञ्जय) हे अपने उपासकों के धन को बढ़ानेवाले ! (गातुवित्) हे उपदेशकों में श्रेष्ठ ! (सः) ऐसे-ऐसे विद्वानों के उत्पादक आप (महः राधसः) बड़े भारी ऐश्वर्य के (प्रयन्ता) प्रदाता हैं। (सोम) हे परमात्मन्! (अस्मभ्यम्) आप हमारे लिये (पवस्व) सब अभीष्ट का प्रदान कीजिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से सदुपदेशक उत्पन्न होकर देश में सदुपदेश देकर देश का कल्याण करते हैं ॥५॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः ।

इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**पवमानम्**) सबको पवित्र करने वाले (**मर्ज्यम्, एतम्**) संमजनीय उस परमात्मा को (**दश, क्षिपः, मृजन्ति**) दश इन्द्रियें ज्ञानगोचर करती हैं। जो परमात्मा (**इन्द्राय, मत्सरम्, मदम्**) जीवात्मा के लिये आह्लादकारक मद है ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा ही जीवात्मा के लिये एकमात्र आनन्द का स्रोत है। उसी के आनन्द का लाभ करके जीव आनन्दित होता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—१-५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३, ४ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा उद्योग का उपदेश करते हैं ॥

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत ।
मन्दान उद्वृषायते ॥१॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**अया, सुकृत्यया**) विद्वानों के शुभकर्म्मों से (**मन्दानः**) हर्ष को प्राप्त होता हुआ (**महश्चित्, अभ्यवर्धत**) उनको अत्यन्त अभ्युदय को प्राप्त कराता है। और (**उद् वृषायते**) उन विद्वानों के लिये बल प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थः—हे अभ्युदयाभिलाषी जनो ! यदि आप अभ्युदय को चाहते हैं तो एकमात्र परमात्मा की शरण को प्राप्त होकर उद्योगी बनो ॥१॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा ॥
ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२॥

पदार्थः—विद्वान् लोग (**अस्य इत**) इस परमात्मा के (**दस्युतर्हणा, कृतानि, कर्त्वा**) दुष्टनाशन रूप किये हुए कर्म्मों का (**चेतन्ते**) स्मरण करते हैं (**धृष्णुः**) और स्वयंशासक वह परमात्मा (**ऋणा, च, चयते**) देव ऋणादि तीनों ऋणों के उद्धार का उपदेश करता है ॥२॥

भावार्थः—देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण—इन तीन ऋणों को उतारने योग्य वही पुरुष हो सकता है जो परमात्माज्ञापालन करता हुआ उद्योगी बनता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् ।
उक्थं यदस्य जायते ॥३॥

पदार्थः (यत्, अस्य, उक्थम्, जायते) जब इस परमात्मा की वेदरूपी स्तुति का आविर्भाव होता है (आत्) तब (सोमः) वह परमात्मा (इन्द्रियः, रसः,) जीवात्मा का तृप्तिकारक आनन्दमय रस तथा (वज्रः) दुष्टों से रक्षा करने के लिये शस्त्ररूप, और (सहस्रसाः) अनन्त शक्तियों का प्रदाता (भुवत्) होता है ॥३॥

भावार्थः—जीवात्मा के लिये परमात्मा ने अनन्त शक्तियाँ प्रदान की हैं। परन्तु उन सबका आविर्भाव तभी होता है जब जोवात्मा वेदों द्वारा उन शक्तियों का ज्ञाता बनता है ॥३॥

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥४॥

पदार्थः—(यदि, धियः, मर्मृज्यते) यदि यह परमात्मा बुद्धि द्वारा ध्यान-विषय किया जाता है तो (स्वयं, कविः) स्वयं वेदादि काव्यों का रचयिता वह परमात्मा (विधर्तरि) रत्नादिकों को विरुद्ध धारण करने वाले असत्कर्मियों से (विप्राय, रत्नम्, इच्छति) सत्कर्मी विद्वान् को रत्नादि ऐश्वर्य दिलाने की इच्छा करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा किसी को विना कारण ऊँच-नीच नहीं बनाता, किन्तु कर्म्मानुकूल फल देता है। इसीलिए उद्योगी और सदाचारियों को ही ऐश्वर्य्य मिलता है अन्यों को नहीं ॥४॥

सिषासतू रयीणां वाजेष्ववर्तामिव ।
भरेषु जिग्युषामसि ॥५॥

पदार्थः—(वाजेष्ववर्तामिव) हे परमात्मन् ! आप सर्वशक्तियों में व्यापक के समान (भरेषु जिग्युषाम्) संग्राम में जय को चाहने वाले कर्मयोगियों को (रयीणां सिषासतुरसि) सम्पूर्ण उपयोगी पदार्थों के देनेवाले हैं ॥५॥

भावार्थः—जो संग्रामों में कर्मयोगी बनकर विजय की इच्छा करते हैं परमात्मा उन्हीं को विजयी बनाता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह संतालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ पंचर्चस्य अष्टाचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य—१–५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ५ गायत्री । २–४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव कहे जाते हैं ॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।

चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥

पदार्थः—(नृम्णानि बिभ्रतम्) अनेक रत्नों को धारण करने वाले (दिवो महः) द्युलोक के प्रकाशक (सुकृत्यया चारुम्) सुन्दर कर्मों से शोभायमान (तं त्वा) पूर्वोक्त आपकी (सधस्थेषु) यज्ञस्थलों में (ईमहे) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का धारण करनेवाला एकमात्र परमात्मा ही है ॥१॥

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।

शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

पदार्थः—(संवृक्तधृष्णुम्) धर्मपथ को छोड़ अधर्म पथ को ग्रहण करनेवाले दुराचारियों का नाश करने वाले (उक्थ्यम्) स्तुति करने योग्य (महामहिव्रतम्) बड़े श्रेष्ठ व्रतों को धारण करनेवाले (मदम्) आनन्दजनक (शतं पुरो (रुरुक्षणिम्) दुष्कर्मियों के अनेक पुरों को नाश करने वाले आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सत्य के विरोधी अनन्त दलों का भी नाश करने वाला है । इसलिये सत्यव्रती होने के लिए उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना की आवश्यकता है; क्योंकि, सम्पूर्ण अज्ञानों को दूर करके एकमात्र अपने सच्चे ज्ञान का प्रकाश करे ॥२॥

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः ।

सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥३॥

पदार्थः—(सुक्रतो) हे शोभनकर्मों से विराजमान परमात्मन् ! (रयिमभि राजानम्) आप जो कि सम्पूर्ण धनाद्यैश्वर्य के स्वामी हैं और (दिवः सुपर्णः) द्युलोक में भी चेतनरूप से विराजमान हैं और (अव्यथिर्भरत्) अनायास संसार का पालन करने वाले हैं (अतः त्वा) इससे आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थः—सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए उसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिए जिससे बढ़कर जीव का कोई अन्य स्वामी नहीं हो सकता ॥३॥

Scanned by CamScanner

विश्वंस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।

गोपामृतस्य विर्भरत् ॥४॥

पदार्थः—(विश्वस्मै, इत् स्वर्दृशे) हे परमात्मन् ! आप सब ही दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वानों के लिये (साधारणम्) समान हैं, और (रजस्तुरम्) प्रधानतया रजोगुण के प्रेरक हैं (ऋतस्य गोपाम्) तथा यज्ञ के रक्षिता हैं और (विः) सर्वव्यापक होकर (भरत्) संसार का पालन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों में से रजोगुण की प्रधानता है अर्थात् रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण को धारण किये हुए रहता है इसी प्रकार से परमात्मा के सत्, चित्, और आनन्द इन तीनों गुणों में से चित् की प्रधानता है। अर्थात् चित् ही सत् और आनन्द का भी प्रकाशक है। इसी प्रकार परमात्मा के तेजोमय गुण को प्रधान समझ कर उसके उपलब्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए ॥४॥

अर्धा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायों महित्वमानशे ।

अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥५॥

पदार्थः—(अधा) आप (इन्द्रियं, हिन्वानः) इन्द्रिय के प्रेरक हैं (ज्यायः) सर्वोपरि विराजमान होने से (महित्वमानशे) अपनी महिमा से सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं (अभिष्टिकृत्) तथा अपने भक्तों के लिये कामनाओं के प्रदाता हैं (विचर्षणिः) सबके कर्मों के द्रष्टा हैं ॥५॥

भावार्थः—जीवों के अन्तर्यामी रूप से एकमात्र परमात्मा ही है कोई अन्य देव नहीं ॥५॥

नवम मण्डल का यह अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ४, ५ निचृद्गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की शक्ति का वर्णन करते हैं ॥

पर्वस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।

अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नः) आप हमारे लिये (**दिवस्परि**) द्युलोक से (**अपामूर्मिम्**) जल की तरङ्गों वाली (**सुवृष्टिम्**) सुन्दर वृष्टि को (**आ पवस्व**) सम्यक् उत्पन्न करिये तथा (**अयक्ष्माः बृहतीः, इषः**) रोगरहित महान् अन्नादि ऐश्वर्य को उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने ही द्युलोक को वर्षणशील और पृथिवीलोक को नानाविध अन्नादि औषधियों की उत्पत्ति का स्थान बनाया है ॥१॥

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।

जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

पदार्थः—(**तया धारया पवस्व**) हे परमात्मन् ! आप मुझे उस आनन्द की धारा से पवित्र करिये (**यया**) जिस धारा से (**गावः**) सम्पूर्ण इन्द्रियें (**जन्यासः**) सब जनों की हितकारक होकर (**इह नः गृहम्**) अपने गृहरूप शरीर के अभ्यन्तर ही में (**उपागमन्**) आयें ॥२॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर हमको संयमी बनाइये ॥२॥

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।

अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**देववीतमः**) देवताओं के अत्यन्त तृप्तिकारक हैं । (**धारया घृतं पवस्व**) आप अपनी ज्ञान की धारा से हमारे हृदय में स्नेह को उत्पन्न करिये, और (**अस्मभ्यम् वृष्टिमापवस्व**) हमारे लिये सब कामनाओं की वर्षा करिये ॥३॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयज्ञ, या कर्म में तत्पर होकर परमात्मा का भजन करते हैं, परमात्मा उनको सर्वैश्वर्यसम्पन्न बनाता है ॥३॥

स न ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया ।

देवासः शृणवन्हि कम् ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**सः**) वह आप (**ऊर्जे**) ज्ञान और क्रिया में बलप्राप्ति के लिये (**नः, अव्ययं पवित्रम्**) हमारे अन्तःकरण को निश्चल करके (**धारया धाव**) ज्ञान की धारासे शुद्ध करें और हे भगवन् ! (**किम्**) आपकी उच्चारित वेदवाणी को (**देवासः, हि**) दिव्यगुणवाले विद्वान् ही (**शृणवन्**) सुनें ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग दिव्यशक्ति वाले होते हैं वही परमात्मा की वेद-रूपी वाणी का श्रवण मनन आदि कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।

प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥

पदार्थः—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (रक्षांसि, अपजंघनत्) असत्कर्मियों को नष्ट करता हुआ और (प्रत्नवत् रुचः रोचयन्) पहले ही के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने प्रकाश को फैलाता हुआ (असिष्यदत्) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा चराचर के हृदय में स्थिर है, इसलिए उसकी स्थिति को अत्यन्त सन्निहित मानकर सदैव परमात्मपरायण होना चाहिए ॥५॥

नवम मण्डल में यह उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—५ उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४, ५ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा की शक्तियों की निरन्तरता का वर्णन करते हैं ॥

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।

वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सिन्धोः, ऊर्मेः, स्वनः, इव) जिस प्रकार समुद्र की तरङ्गों के शब्द अनवरत होते रहते हैं उसी प्रकार (ते शुष्मास ईरते) आपकी शक्तियों के वेग निरन्तर व्याप्त होते रहते हैं । आप (वाणस्य पविं चोदय) वाणी की शक्ति को प्रेरित करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्तियाँ अनन्त हैं और नित्य हैं । यद्यपि प्रकृति तथा जीवात्मा की शक्तियाँ अनादि अनन्त होने से नित्य हैं तथापि, वे अल्पाश्रित होने से अल्प और परिणामी नित्य हैं; कूटस्थ नित्य नहीं ।

तात्पर्य यह है कि जीव और प्रकृति के भाव उत्पत्ति-विनाशशाली हैं और ईश्वर के भाव सदा एकरस हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।

यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थः—(यत्) जब आप (मखस्युवः, अव्ये सानवि, एषि) यज्ञकर्ताओं के रक्षणीय उच्च यज्ञस्थलों में प्राप्त होते हैं, तो वह ऋत्विग्लोग (ते प्रसवे) आपके प्रादुर्भूत होने से (तिस्रः वाचः, उदीरते) ज्ञान, कर्म और उपासना विषयक तीनों वाणियों का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थः– परमात्मा का आविर्भाव और तिरोभाव वास्तव में नहीं होता; क्योंकि वह कूटस्थ नित्य अर्थात् एकरस सदा अविनाशी है। उसका आविर्भाव तिरोभाव उसके कीर्तनप्रयुक्त कहा जा सकता है। अर्थात् जहां उसका कीर्तन होता है उसका नाम आविर्भाव है, और जहां उसका अकीर्तन है वहां तिरोभाव है। उक्त आविर्भाव तिरोभाव मनुष्य के ज्ञान के अभिप्राय से है। अर्थात् ज्ञानियों के हृदय में उसका आविर्भाव है और अज्ञानियों के हृदय में तिरोभाव है ॥२॥

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (मधुश्चुतम्) परम आनन्द के क्षरण करनेवाले हैं और (पवमानम्) सबके पवित्रकारक हैं और (हरिम्) सबके दुःखों के हरने वाले हैं इससे (परि, प्रियम्) परमप्रिय आपकी भक्ति से युक्त (अव्यः) आपसे रक्षा को चाहने वाले आपके उपासक (वारे) अपने हृदयों में (अद्रिभिः) इन्द्रियवृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी या ज्ञानयोगी विद्वान् दोनों अपने शुद्धान्तःकरण से परमात्मा का साक्षात् करते हैं ॥३॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थः—(अर्कस्य योनिमासदम्) तेज की योनि को प्राप्त होने के लिये अर्थात् तेजस्वी बनने के लिये (मदिन्तम) हे आनन्द के बढ़ाने वाले ! (कवे) हे वेदरूप काव्य के रचने वाले ! (धारया) अपनी ज्ञान की धारा से (पवित्रं, आ पवस्व) मेरे अन्तःकरण को पवित्र करिये ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा ही अपने ज्ञानप्रदीप से उपासकों के हृदयरूपी-मन्दिर को प्रकाशित करता है ॥४॥

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (मदिन्तम) सर्वोपरि आनन्द के जनयिता! (अक्तुभिर्गोभिरञ्जानः) साधनभूत इन्द्रियों द्वारा ध्यानविषय किये गए (सः) सकल भुवनप्रसिद्ध वह आप (इन्द्राय पीतये) जीवात्मा की परमतृप्ति के लिये (पवस्व) ब्रह्मानन्द का क्षरण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जीव की सच्ची तृप्ति परमात्मानन्द से ही होती है, अन्यथा नहीं ॥५॥

नवम मण्डल में यह पचासवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–५ उचथ्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २ गायत्री । ३ –५ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सौम्यस्वभाव के उत्पादन का वर्णन करते हैं ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थः—(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु लोगो ! (सोमम्) परमात्मा को (अद्रिभिः सुतम्) अपनी इन्द्रियों द्वारा ज्ञान का विषय (सृज) करिये और (इन्द्राय पातवे) जीवात्मा की तृप्ति के लिये (पवित्रे पुनीहि) अपने अन्तःकरण को पवित्र करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की प्राप्ति के लिए अन्तःकरण का पवित्र होना अत्यावश्यक है, इसलिए प्रत्येक जिज्ञासु को चाहिये कि पहले अपने अन्तःकरण को पवित्र करे ॥१॥

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनेता मधुमत्तमम् ॥२॥

पदार्थः—हे अध्वर्यु लोगो ! जोकि (मधुमत्तमम्) सब रसों में उत्तम है (दिवः पीयूषम्) और द्युलोक का अमृत है, ऐसे (उत्तमं सोमम्) उत्तम परमात्मा को

Scanned by CamScanner

(इन्द्राय पातवे) अपने जीवात्मा की तृप्ति के लिये **(सुनोत)** ध्यान का विषय बनाओ ॥२॥

भावार्थः—जो अपनी तृप्ति के लिए एकमात्र परमात्मा को ध्यान का विषय बनाते हैं, वे ही उस ब्रह्मामृत का पान करते हैं अन्य नहीं ॥२॥

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते ।

पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थः—**(इन्दो)** हे परमात्मन् ! **(पवमानस्य)** सबको पवित्र करने वाले **(तव)** आपके **(मधोः)** मधुर **(अन्धसः)** रस का **(देवाः त्ये मरुतः)** दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् **(व्यश्नते)** पान करते हैं ॥३॥

भावार्थः—ब्रह्मामृतरसास्वाद के लिए दिव्य शक्तियों को उपलब्ध करना अत्यावश्यक है; इसलिए उक्त मन्त्र में परमात्मा ने दिव्यशक्तियों का उपदेश किया है ॥३॥

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।

वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥४॥

पदार्थः—**(सोम)** हे परमात्मन् ! **(त्वं हि)** आप जब **(सुतः)** विद्वानों द्वारा साक्षात् किये जाते हैं तो **(मदाय)** आनन्द के लिये और **(भूर्णये)** दक्षता के लिए तथा **(ऊतये)** रक्षा के लिये **(स्तोतारम्)** उपासक को **(वर्धयन्)** समृद्ध बनाते हुए **(वृषन्)** सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—सर्वोपरि नीति और व्यवहारकुशलता की नीति एकमात्र परमात्मा द्वारा उपदिष्ट वेदों से ही मिल सकती है, अन्यत्र नहीं ॥४॥

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥५॥

पदार्थः—**(विचक्षण)** हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! **(सुतः)** ध्यान विषय किये गए आप **(धारया पवित्रमभ्यर्ष)** आनन्द की धारा से पवित्र हुए अन्तःकरण में निवास करिये और **(वाजम्)** अन्नादि ऐश्वर्य तथा **(उत श्रवः)** सुन्दर कीर्ति का **(अभि)** प्रदान करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥५॥

नवम मण्डल में यह इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ पञ्चर्चस्य द्वापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–५ उचथ्यः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ भुरिग्गायत्री । २ गायत्री । ३, ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड्-गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सदुपदेश का वर्णन करते हैं ॥

परि॑ द्युक्षः स॒नद्र॑यि॒र्भर॒द्वाजं॑ नो॒ अन्ध॑सा ।

सु॒वा॒नो अ॑र्ष प॒वित्र॒ आ ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (परि द्युक्षः) सर्वोपरि प्रकाशमान हैं । आप (नः) हमारे लिये (सनद्रयिः) धनादिकों को देते हुए (अन्धसा) अन्नादि ऐश्वर्य के सहित (वाजं भरत्) बल को परिपूर्ण करिये और (सुवानः) स्तुति किये जाने पर, आप (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र अन्तःकरण में निवास करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि, हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग जब अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाकर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उपलब्ध करने की जिज्ञासा अपने हृदय में उत्पन्न करोगे तब तुम ऐश्वर्य को उपलब्ध करोगे ॥१॥

तव॑ प्र॒त्नेभि॒रध्व॑भि॒रव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यः ।

स॒हस्र॑धारो या॒त्तना॑ ॥२॥

पदार्थः—(तव प्रियः, अव्यः) हे भगवन् ! आपका प्रिय रक्षणीय उपासक (प्रत्नेभिरध्वभिः) आपके प्राचीन वेदविहित मार्गों द्वारा (सहस्रधारः) आपकी अनेक प्रकार की धाराओं से युक्त होने से (तना) समृद्ध होकर (वारे परियात्) आपके प्रार्थनीय पद को प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा वेदमार्ग के आश्रयण का उपदेश-करते हैं ॥२॥

च॒रुर्न यस्तमी॑ङ्खयेन्दो॒ न दान॑मीङ्खय ।

व॒धैर्व॑धस्नवीङ्खय ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यः, चरुः) जो आप चराचर को ग्रहण करने वाले हैं (तम्, न, इंखय) वह आप अपने रूप को शीघ्र प्राप्त कराइये । और (दानम्, न, इंखय) मुझको दातव्य वस्तु को शीघ्र प्राप्त कराइये । (वधैः, वधस्नो इंखय) हे अपनी प्रबलशक्तियों से शत्रुओं के नाश करने वाले आप मुझको सत्कर्म की ओर प्रेरित कीजिये ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सत्कर्म्मी बनने का उपदेश दिया है ॥३॥

नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।

यो अस्माँ आदिदेशति ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (पुरुहूत) हे अखिल विद्वानों से स्तुति किये गए ! (**एषां जनानाम्, बलम्, नि**) इन विद्वानों के बलों को बढ़ाइये (**यः, अस्मान्, आदिदेशति**) जो कि आप हम लोगों का अनुशासन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश दिया है कि जो पुरुष विद्या तथा बल को उपलब्ध करके सत्कर्म्मी तथा विनीत बनते हैं उन्हीं से संसार शिक्षा का लाभ करता है ॥४॥

शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।

पवस्व मंहयद्रयिः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (**मंहयद्रयिः**) आप हमारे धनादि ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए (ऊतिभिः) रक्षा के लिये (**शुचीनां शतम्, न, सहस्रं, वा**) पवित्र सैंकड़ों तथा सहस्रों शक्तियों को (**पवस्व**) उत्पन्न करिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा ने मनुष्य के ऐश्वर्य के लिए सैकड़ों और सहस्रों शक्तियों को उत्पन्न किया है, मनुष्य को चाहिए कि कर्मयोगी बन कर उन शक्तियों का लाभ करे ॥५॥

नवम मण्डल में यह बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृद्गायत्री । २, ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।

नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

पदार्थः—(**अद्रिवः**) हे शस्त्रों को धारण करने वाले ! (**ते शुष्मासः**) आपकी शत्रुशोषक शक्तियाँ (**रक्षः भिन्दन्तः**) राक्षसों का नाश करती हुईं (**उदस्थुः**) सदा उद्यत रहती हैं (**नुदस्व याः परिस्पृधः**) जो आपके द्वेषी हैं उनकी शक्तियों को वेगरहित करिये ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा में राग द्वेषादि भावों का गन्ध भी नहीं है। जो लोग परमात्मोपदिष्ट मार्ग को छोड़कर यथेष्टाचार में रत हैं उनके यथा-योग्य फल देने के कारण परमात्मा उनका द्वेष्टा कथन् किया गया है ।।१।।

अया निजध्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।

स्तवा अबिभ्युषा हृदा ।।२।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप **(अया ओजसा निजघ्निः)** अपने इस शत्रु-नाशनशील पराक्रम से शत्रु की शक्तियों को शमन करने वाले हैं। इस से **(रथसंगे धने हिते)** शरीररूप रथ के हितकारक धनादि ऐश्वर्य के निमित्त **(अबिभ्युषा हृदा स्तवै)** निर्भय अन्तःकरणों से आपकी स्तुति करते हैं ।।२।।

भावार्थः—जो पुरुष शुभकार्य करते हुए परमात्मा के उपासना समय निर्भयता से उसकी समक्षता लाभ करते हैं वे सदैव तेजस्वी और ब्रह्म-वर्चस्वी आदि दिव्यभावों को उपलब्ध करते हैं ।।२।।

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।

रुज यस्त्वा पृतन्यति ।।३।।

पदार्थः—**(पवमानस्य अस्य)** जगत्पावक आपके नियमानुशासन को **(दूढ्या)** कोई भी दुराचारी **(नाधृषे)** बाधित नहीं कर सकता, क्योंकि **(यः त्वा पृतन्यति)** जो आपसे ईर्ष्या करता है उसको **(रुज)** आप शक्तिहीन कर देते हैं ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा दुराचारियों का अधःपतन करते हैं और सदा-चारियों को सदैव उन्नतिशील बनाते हैं ।।३।।

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ।।४।।

पदार्थः—**(मदच्युतम्)** आनन्द को क्षरण करने वाले **(हरिम्)** सब दुःखों के हरने वाले **(नदीषु वाजिनम्)** सब शब्दायमान विद्युदादि शक्तियों में बल को निवेश करने वाले **(इन्दुम्)** अखिल ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान **(इन्द्राय मत्सरम्)** विद्वानों के लिये गर्वजनक धनरूप आपको विद्वान् लोग **(हिन्वन्ति)** बुद्धिद्वारा प्रेरित करते हैं ।।४।।

भावार्थः—आनन्द का स्रोत परमात्मा ही सबका प्रकाशक है उसी के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है ।।४।।

नवम मण्डल में यह त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

Scanned by CamScanner

अथ चतुर्ऋचस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ४ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब केवल परमात्मा के सेवन में हेतु कहते हैं ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।

पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

पदार्थः—(अह्रयः) विज्ञानी लोग (अस्य) इस परमात्मा के रचित (प्रत्नाम् ऋषिम् अनु) प्राचीन वेद से (द्युतम्) दीप्तिमान् (शुक्रम्) पवित्र (सहस्रसाम्) अपरिमित शक्तियों को उत्पन्न करने वाले (पयः दुदुह्रे) ब्रह्मानन्दरूप रस को दुहते हैं ॥१॥

भावार्थः—उक्त कामधेनुरूप परमात्मा से विद्वान् सदाचारी लोग दुग्धामृत के दोग्धा बनकर संसार में ब्रह्मामृत का संचार करते हैं ॥१॥

अयं सूर्यं इवोपदृगयं सरांसि धावति ।

सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

पदार्थः—(अयम्) यह परमात्मा (सूर्यः इव उपदृग्) सूर्य के समान सबके कर्मों का द्रष्टा है और (अयं सरांसि धावति) यह परमात्मा ज्ञान द्वारा सर्वत्र व्याप्त है (सप्त प्रवतः आदिवम्) जो यह परमात्मा सात किरण वाले सूर्य को अपने भीतर लेकर और द्युलोक को भी एकदेशी बना कर स्थिर हो रहा है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार अन्य ग्रह उपग्रहों की अपेक्षा से सूर्य स्वयंप्रकाश है, इसी प्रकार सूर्य आदिकों की अपेक्षा से परमात्मा स्वयंप्रकाश है। उस स्वयंप्रकाश स्वयंज्योति की उपासना करके सबको पवित्र बनने का यत्न करना चाहिये ॥२॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।

सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थः—(सूर्यः, न) सूर्य के समान जगत्प्रेरक (अयम्) यह परमात्मा (सोमः, देवः) सौम्यस्वभाव वाला और जगत्प्रकाशक है। और (विश्वानि, पुनानः) सब लोकों को पवित्र करता हुआ (भुवनोपरि, तिष्ठति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के ऊर्ध्व भाग में भी वर्तमान है ॥३॥

भावार्थः—उसी सर्वपावन परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥३॥

Scanned by CamScanner

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः ।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन्(नः) हमको (परि पुनानः) सब ओर से पवित्र करते हुए आप (देववीतये) देवों की तृप्ति के लिए (गोमतः वाजान्) गवादि ऐश्वर्य को (अर्षसि) देते हैं (इन्द्रयुः) क्योंकि आप देवों अर्थात् दिव्यगुण सम्पन्न सत्कर्मियों को चाहने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य को दिव्यशक्तियाँ मिलती हैं। परमात्मा ही अपनी अपार दया से मनुष्यों को देवभाव प्रदान करता है। हे देवत्व के अभिलाषीजनो ! आपको चाहिए कि आप सदैव उस दिव्य-गुण परमात्मा की उपासना करते रहें ॥४॥

नवम मण्डल में यह चव्वनवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के अनन्तत्व, अनेक वस्तुजनकत्व आदि गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमारे लिये (अन्धसा) अन्नादिकों के सहित (पुष्टम् पुष्टम्) अतिबलप्रद (यवम् यवम्) सञ्चित अनेक पदार्थों को तथा (विश्वा च सौभगा) सम्पूर्ण सौभाग्य को (परिस्रव) उत्पन्न करिये ॥१॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सौभाग्य को देने वाला एक-मात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥१॥

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (यथा तव स्तवः) जिस प्रकार आपका यश संसार भर में व्याप्त है और (यथा ते अन्धसः, जातम्) जिस प्रकार अन्नादि पदार्थों का समूह आप ही ने रचा है उसी प्रकार (निषदः प्रिये बर्हिषि) जो आपका प्रिय यज्ञस्थल है उसमें आकर आप विराजमान हों ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा यज्ञादिस्थानों को अपने विचित्र भावों से विभूषित करता है ॥२॥

उत नों गोविदंश्ववित्पवंस्व सोमान्धंसा ।

मक्षूतंमेभिरहंभिः ॥३॥

पदार्थः—(उत नः) जो कि हमारे लिये (गोवित् अश्ववित्) गवाश्वादि ऐश्वर्य के प्रापक आप ही हैं इसलिये (सोम) हे परमात्मन् ! (मक्षुतमेभिः अहभिः) अति अल्पकाल ही में (अन्धसा पवस्व) सम्पूर्ण अनादि समृद्धि से पवित्र करिये ॥३॥

भावार्थः—सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का अधिपति एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिए उसी की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये ॥३॥

यो जिनाति न जीयंते हन्ति शत्रुंमभीत्यं ।

स पंवस्व सहस्रजित् ॥४॥

पदार्थः—(यः जिनाति) जो आप सकल ब्रह्माण्डगत पदार्थों को आयुरहित कर देते हैं और (न जीतये) स्वयं कदापि निरायुष नहीं होते तथा (शत्रुम् अभीत्य हन्ति) जो आप अपनी व्याप्ति द्वारा शत्रुओं की शक्तियों को हर लेते हैं और स्वयं अहार्य शक्तिवाले हैं वह (सहस्रजित्) सर्वोपरि शक्तिसम्पन्न आप (पवस्व) हमको सुरक्षित करिये ॥४॥

भावार्थः—काल सब पदार्थों के आयु को क्षय करके आप स्वयं अविनाशी बना रहता है। परन्तु काल का अविनाशित्व भी सापेक्ष है अर्थात् अनित्य पदार्थों की अपेक्षा काल को नित्य कहा जाता है परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से काल भी अनित्य है। इसलिए परमात्मा सर्वोपरि कूटस्थ नित्य है, उसी की उपासना मनुष्य को शुद्ध हृदय से करनी चाहिए ॥४॥

नवम मण्डल में यह पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १–३ गायत्री । ४ यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब परमात्मा सदाचारियों को ही ज्ञानगोचर हो सकता है यह कहते हैं॥

परि सोम॑ ऋतं बृहदाशुः प॒वित्रे॑ अर्षति।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! आप (**ऋतम् बृहत् आशुः**) सत्यस्वरूप और सबसे महान् तथा शीघ्र गति वाले हैं (**देवयुः**) सत्कर्मियों को चाहते हुए और (**रक्षांसि विघ्नन्**) दुष्कर्मियों का नाश करते हुए (**पवित्रे अर्षति**) पवित्र अन्तःकरणों में निवास करते हैं॥१॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मों का यथायोग्य फलप्रदाता है; इस लिए उसके उपासक को चाहिए कि वह सत्कर्म करता हुआ उसका उपासक बने, ताकि उसे परमात्मा के दण्ड का फल न भोगना पड़े। तात्पर्य यह है कि उपासना से केवल हृदय की शुद्धि होती है पापों की क्षमा नहीं होती॥१॥

यत्सोमो॒ वाज॒मर्षति श॒तं धारा॑ अप॒स्युवः॑।

इन्द्र॑स्य स॒ख्यमा॑विशन्॥२॥

पदार्थः—(**यत्, सोमः, वाजम्, अर्षति**) जो परमात्मा बल का प्रदान करता है इससे (**अपस्युवः**) कर्मयोगी लोग (**इन्द्रस्य, सख्यम्, आविशन्**) परमैश्वर्य वाले उस परमात्मा के मैत्रीभाव को प्राप्त होते हुए (**शतम् धाराः**) उसके दिये हुए बल और आनन्द की अनेक धाराओं का उपभोग करते हैं॥२॥

भावार्थः—वास्तव में परमात्मा का कोई मित्र या अमित्र नहीं। जो लोग परमात्मा की आज्ञापालन करने से उसके अनुकूल चलते हैं उनसे वह स्नेह करता है इसलिये वे मित्र कहलाते हैं और प्रतिकूलवर्ती लोग स्नेह के पात्र नहीं होते, इसलिए अमित्र कहलाते हैं। इसीलिए यहां मित्र शब्द आया है; कुछ मानुषी मैत्री के भाव से नहीं॥२॥

अ॒भि त्वा॒ योष॑णो॒ दश॑ जा॒रं न क॒न्यानू॑षत।

मृ॒ज्यसे॑ सोम सा॒तये॑॥३॥

पदार्थः—(**कन्या, जारम्, न**) जिस प्रकार दीप्ति अग्नि को प्राप्त होती है उसी प्रकार (**दश, योषणः**) दश इन्द्रियवृत्तियां (**त्वा, अभ्यनूषत**) आपको स्तुति द्वारा प्राप्त होती हैं (**सोम**) हे परमात्मन्! (**सातये**) आप इष्टप्राप्ति के लिये (**मृज्यसे**) ध्यानगोचर किये जाते हैं॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—संस्कारी पुरुषों की इन्द्रियवृत्तियाँ उसको विषय करती हैं, असंस्कारियों की नहीं ॥३॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।

नॄन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (इन्द्राय विष्णवे) व्याप्तिशील ज्ञानयोगी के लिये (स्वादुः) परम आस्वादनीय रस हैं। उनके लिये (परिस्रव) आप सकल अभीष्ट का प्रदान करिये (नॄन् स्तोतॄन् पाहि अंहसः) अपने उपासकों को पाप से बचाइये ॥४॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी अपने ज्ञान के प्रभाव से ईश्वर का साक्षात् करता है और अनिष्ट कर्मों से बचता है ॥४॥

नवम मण्डल में यह छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सारः ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद्गायत्री । ४ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

परमात्मा अपने भक्तों को त्रिविध आनन्दों से और दुराचारियों को दारिद्रय से युक्त करता है, यह कहते हैं ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।

अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थः—(दिवः वृष्टयः न) द्युलोक से वृष्टि के समान (ते, धाराः) आपके ब्रह्मानन्द की धाराएँ (असश्चत) अनेक प्रकार की (यन्ति) विद्वानों के हृदयों में प्रादुर्भूत होती हैं, आप अपने उपासकों को (सहस्रिणम् वाजम्) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य के (अच्छ) अभिमुख करिये ॥१॥

भावार्थः—जिन लोगों ने सत्कर्मों द्वारा अपने आपको ज्ञान का पात्र बनाया है उनके अन्तःकरण में परमात्मा की सुधामयी वृष्टि सदैव होती रहती है ॥१॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।

हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**हरिः**) वह परमात्मा (**आयुधा युञ्जानः**) अपने शस्त्रों से शत्रुओं को व्यथित करता हुआ (**विश्वा काव्या चक्षाणः**) सम्पूर्ण कर्मों को देखता हुआ (**प्रियाणि अभि अर्षति**) अपने प्रिय उपासकों की ओर जाता है ॥२॥

भावार्थः—उसका दण्डरूप वज्र दुष्टों के लिए सदैव उद्यत रहता है और सत्कर्मी सदैव उससे निर्भय रहते हैं ॥२॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।

श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थः—(**सुव्रतः, इभः, राजा, इव**) सुन्दर अनुशासन करनेवाले निर्भीक राजा के समान (**सः**) वह परमात्मा (**आयुभिः, मर्मृजानः**) ऋत्विजों द्वारा स्तुति किया गया (**श्येनः, वंसु, न**) जिस प्रकार विद्युदादि शक्तियाँ सूक्ष्म पदार्थों में रहती हैं उस प्रकार (**सीदति**) वह उनके हृदय में अधिष्ठित होता है ॥३॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्माण्डगत प्रत्येक पदार्थ में विद्युत् व्याप्त है इसी प्रकार परमात्मशक्ति भी सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।

पुनान इन्दवा भर ॥४॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे परमात्मन् ! (**सः**) वह आप (**नः**) हमारे लिए (**दिवः, विश्वा, वसु**) द्युलोक सम्बन्धी सकल सम्पत्तियाँ (**उतो**) तथा (**पृथिव्याः, अधि**) पृथिवी सम्बन्धी सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ (**आभर**) आहरण कीजिये और (**पुनानः**) मुझको पवित्र करिये ॥४॥

भावार्थः—सम्पूर्ण संपत्तियों का स्वामी एकमात्र परमात्मा ही है । इसलिए ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए उसी का शरणागत होना आवश्यक है ॥४॥

नवम मण्डल में यह सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य अष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १—४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ४ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा का सर्वव्यापक होना वर्णन करते हैं ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।

तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**मन्दी सः**) परम आनन्दमय यह परमात्मा (**तरत्**) पापियों को तारता हुआ (**सुतस्य अन्धसः धारा**) उत्पन्न किये हुए ब्रह्मानन्द के रस सहित (**धावति**) स्तोताओं के हृदय में विराजमान होता है। (**तरत् सः मन्दी धावति**) और वह परमात्मा निश्चय सब पापियों को तारता हुआ परमानन्दरूप से संसार में व्याप्त हो रहा है ॥१॥

भावार्थः—पापियों को तारने का अभिप्राय यह है कि जो लोग पापका प्रायश्चित्त करके उसकी शरणको प्राप्त होते हैं वे फिर कदापि पापपंक में लिप्त नहीं होते। अथवा यों कहो कि पापमयसंचित कर्मों की स्थिति उनके हृदयसे दूर हो जाती है; अन्य पापोंकी क्षमा ईश्वर कदापि नहीं करता ॥१॥

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः।
तरत्स मन्दी धावति ॥२॥

पदार्थः—(**वसूनाम्, उस्रा**) सर्वविध रत्नादि ऐश्वर्य्यों की प्रदात्री (**देवी**) परमात्मा की दिव्यशक्ति (**मर्तस्य अवसः वेद**) जीवों की रक्षा करने में जागरूक रहती है और (**तरत् सः मन्दी धावति**) वह परमात्मा सबको तारता हुआ आनन्दरूप से सर्वत्र व्याप्त है ॥२॥

भावार्थः—परमात्माके आनन्दसे ही आनन्दित होकर सब प्राणी सुखको उपलब्ध करते हैं। अर्थात् आनन्दमय एकमात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥२॥

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे।
तरत्स मन्दी धावति ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः**) आपकी व्याप्तिशील जो ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति (**सहस्राणि**) अनेक प्रकार की हैं उनको (**आदद्महे**) हम प्राप्त करें (**तरत् सः मन्दी धावति**) आप सबको तारते हुए हर्षरूप से सर्वत्र विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा की ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति को लाभ करके कर्मयोगी और ज्ञानयोगी अपने कर्तव्य में तत्पर रहते हैं ॥३॥

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे।
तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**ययोः**) जिन शक्तियों से (**त्रिशतम् तना**) हम तीनसौ वर्ष तक दीर्घायु और (**सहस्राणि च आदद्महे**) सहस्रों शक्तियों को उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसी शक्तियों वाला (**मन्दी**) आह्लादजनक (**सः**) वह परमात्मा (**तरत्**) सब पापियों को तारता हुआ (**धावति**) सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहा है ॥४॥

भावार्थः—यद्यपि साधारणतया मनुष्य के आयु की अवधि सौवर्ष तक है, तथापि कर्मयोगी अपने उग्रकर्मों द्वारा अपनी आयु को बढ़ा सकते हैं। इसी लिए "भूयश्च शरदः शतात्" इस वाक्य में सौ से अधिक की प्रार्थना की गई है। और जो इस मन्त्र में पापों के नाश का कथन है वह पापवासना के क्षय के अभिप्राय से है; प्रारब्धकर्मों के नाश के अभिप्राय से नहीं ॥४॥

नवम मण्डल में यह अठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य १–४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, गायत्री २ आर्चीस्वराड्गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अभ्युन्नतिको चाहने वाला केवल परमात्मा की ही प्रार्थना करे, यह कहते हैं ॥

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित् ।

प्रजावद्रत्नमा भर ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**गोजित्, अश्वजित्**) आप गवाश्वादि ऐश्वर्यों से विराजमान तथा (**रण्यजित्**) संग्राम में दुराचारियों को पराजय प्राप्त कराने वाले और (**विश्वजित्**) संसार में सर्वोपरि हैं। आप हमको (**पवस्व**) पवित्र करिये। और (**प्रजावद्रत्नम् आभर**) सन्तानादियुक्त रत्नों से परिपूर्ण करिये ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा की दया से ही पुरुष को विविध प्रकार के रत्नों का लाभ होता है ॥१॥

पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः ।

पवस्व धिषणाभ्यः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अदाभ्यः**) अदम्भनीय हैं (**अद्भ्यः**) जलों से (**ओषधिभ्यः**) ओषधियों से (**धिषणाभ्यः**) तथा बुद्धियों से (**पवस्व**) हमको सुरक्षित कीजिये ॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः--तात्पर्य यह है कि परमात्मा सब शक्तियों के ऊपर विराजमान है। उसका शासन करने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं ॥२॥

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर ।

कविः सीद नि बर्हिषि ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे भगवन् ! (त्वम्) आप (विश्वानि दुरिता तर) सम्पूर्ण पापों को दूर करिये (कविः) सर्वकर्माभिज्ञ आप (बर्हिषि) यज्ञस्थलों में (निषीद) विराजमान हों ॥३॥

भावार्थः—मलिनवासनाओं के क्षय के लिए परमात्मा से सदैव प्रार्थना करनी चाहिए ॥३॥

पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् ।

इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सर्वपावक ! (इन्दो) परमात्मन् ! आप (अभवः) अनादि हैं और (महान्) पूजनीय हैं तथा (विश्वान्, अभि, इदसि) सबको नीचे किये हुए आप सर्वोपरि विराजमान हैं। (जायमानः) आप विज्ञानियों के हृदय में प्रादुर्भूत होते हुए (स्वः, विदः) सर्वविध अभीष्टों को प्रदान करिये ॥४॥

भावार्थः—उसी परमात्मा की उपासना से सब इष्ट फलों की प्राप्ति होती है ॥४॥

नवम मण्डल में यह उनसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य १–४ अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः १, २, ४ षड्जः । ३ ऋषभः ॥

अब उसके गुणों के कीर्तन से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् ।

इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥१॥

पदार्थः—हे होता लोगो ! तुम (इन्दुम्) परमैश्वर्यसम्पन्न (पवमानम्) सब को पवित्र करने वाले (सहस्रचक्षसम्) अनेकविध वेदादिवाणी वाले (विचर्षणिम्) सर्वद्रष्टा परमात्मा को (गायत्रेण) गायत्रादि छन्दों से (प्रगायत) गान करो ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम वेदाध्ययन से अपने आप को पवित्र करो ॥१॥

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षसमथो॑ स॒हस्र॑भर्णसम् ।

अति॒ वार॑मपाविषुः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**तम् त्वा**) लोकप्रसिद्ध उन आपको स्तोता लोग (**अति**) अत्यन्त (**अपाविषुः**) स्तुतिद्वारा प्रकाशित करते हैं जो आप (**सहस्रचक्षसम्**) अनेक वेदवाक् के रचयिता हैं तथा (**सहस्रभर्णसम्**) सम्पूर्ण जीवों के पोषक हैं और (**वारम्**) भजनीय हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की सर्वज्ञता का वर्णन किया गया है और एकमात्र उसी को उपास्यदेव वर्णन किया है ॥२॥

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो असिष्यदत्क॒लशाँ॑ अ॒भि धा॑वति ।

इन्द्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन् ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य, हार्दि, आविशन्**) विज्ञानी के हृदय में निवास करते हुए (**वारान् अतिपवमानः**) अपने उपासकों को अत्यन्त पवित्र करते हुए (**कलशान्, अभि, धावति**) उनके अन्तःकरणों में प्रादुर्भूत होते हुए (**असिष्यदत्**) सर्वत्र अपनी स्यन्दनशील शक्तियों से पूरित हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानप्रद होकर शुद्धान्तःकरणों में सदैव विराजमान रहता है। इस लिए परमात्मज्ञान के लिए बुद्धिका निर्मल करना अत्यावश्यक है ॥३॥

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से॒ शं प॑वस्व विचर्षणे ।

प्र॒जाव॒द्रेत॒ आ भ॑र ॥४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**इन्द्रस्य, राधसे**) कर्मयोगी के ऐश्वर्य के लिए आप (**शं, पवस्व**) आनन्द का क्षरण कीजिये और (**प्रजावत्, रेतम् आभर**) प्रजादिकों से सम्पन्न ऐश्वर्य को परिपूर्ण करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से अभ्युदय की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप हम को कर्मयोगी बनाकर अभ्युदयशील बनाएं ॥४॥

नवम मण्डल में यह साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ त्रिंशदृचस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२—२४, २६, ३० निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ७, ६, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६, २८ गायत्री । ११, १६ विराड्गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर क्षात्रधर्म का उपदेश करते हैं ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सेनापते ! (यः) जो शत्रु (ते) तुम्हारे (मदेषु) सर्वसुखकारक प्रजापालन में (आ) विघ्न करे, उसको (अया, वीती, परिस्रव) अपनी क्रियाओं से अभिभूत करो । और (अवाहन्, नवतीः, नव) निन्यानवे प्रकार के भी दुर्गों का विध्वंस करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में क्षात्रधर्म्म का वर्णन है । और परमात्मा से इस विषय का बल मांगा गया है कि हम सब प्रकार से शत्रुओं का नाश करके संसार में न्याय का प्रचार करें ॥१॥

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

पदार्थः—हे कर्मयोगिन् ! जो (इत्थाधिये, दिवोदासाय) सत्यबुद्धि वाले और द्युलोक सम्बन्धी कर्मों में कुशल आपका (शम्बरम्) शत्रु है (त्यम्, तुर्वशम्, यदुम्) इस हिंसक मनुष्य को (अध) और उसके (पुरः) पुर को ध्वस्त करो ॥२॥

भावार्थः—कर्म्मयोगीलोग शत्रुओं के पुरों को सर्व प्रकार से भेदन कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥२॥

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे कर्मयोगिन् ! (अश्ववित्) अश्वादिकों से युक्त आप (नः) हमारे लिए (परि) सब ओर से अपने कर्मयोग द्वारा (अश्वमत्, गोमत्, हिरण्यवत्) अश्व, गो, हिरण्यादि युक्त (सहस्रिणीः, इषः) अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों को (क्षर) उत्पन्न करिये ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्म्मयोगियों के द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्यों-की उपलब्धिका का वर्णन किया गया है ॥३॥

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।

सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(पवमानस्य) अपने आश्रितजनों को पवित्र करते हुए (पवित्रम् अभ्युन्दतः) और पवित्र किये हुए मनुष्य को उत्साहित करने वाले (ते) तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्रीभाव के लिए (वयम्) हम लोग (आवृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के सद्गुणों को धारण करके परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का वर्णन किया गया है ॥४॥

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।

तेभिर्नः सोम मृळय ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव कर्मयोगिन् ! (ये, ते, ऊर्मयः) जो आपकी शरणरक्षक शक्तियें (पवित्रम्) शुद्ध हृदय वाले मनुष्य की ओर (धारया) प्रवाहरूप से (अभिक्षरन्ति) अभिगत होती हैं (तेभिः) उन शक्तियों से (नः) हमको (मृळय) सुरक्षित करके सुखी करिये ॥५॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी के उद्योगादि भावों को धारण करके स्वयं उद्योगी बनने का उपदेश इस मन्त्र में किया गया है ॥५॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।

ईशानः सोम विश्वतः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे विद्वन् ! (सः) वह आप (विश्वतः, ईशानः) चारों ओर से अपना अधिकार जमाते हुए (नः पुनानः) हम लोगों को पवित्र करते हुए (वीरवतीम्) बड़े-बड़े वीरों से युक्त (इषम्, रयिम्) अन्नधनादि सम्पत्ति से (आ, भर) अपने जन स्थानों को परिपूर्ण करिये ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अपने विद्याबल से अपने देश को ऐश्वर्य्यों से परिपूर्ण करते हैं । इसलिए विद्वानों का सत्कार करना परम कर्तव्य है ॥६॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

समादित्येभिरख्यत ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(एतम्, त्यम्, उ) उन आपको (दश, क्षिपः, मृजन्ति) दसों इन्द्रियें नियत होने से ज्ञानक्रियादक्ष बनाती हैं। जिससे आप (सिन्धुमातरम्) समुद्रविषयक पदार्थों के ज्ञाता तथा (आदित्येभिः, समख्यत) विद्युदादिशक्तियों द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों के ज्ञाता हो जाते हैं। "आदित्यः कस्मादादत्ते रसानादत्ते भासं ज्योतिषामादीप्तो भासेति" नि० अ० २। खं० १३ ॥७॥

भावार्थः—ईश्वर का साक्षात्कार बुद्धिकी वृत्तियों के द्वारा होता है ॥७॥

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥८॥

पदार्थः—(सुतः) सुसंस्कृत कर्मयोगी (सूर्यस्य, रश्मिभिः, सम्) तैजस पदार्थों के आश्रय से (इन्द्रेणः, उत, वायुना) विद्युत्, तथा वायु से मिलकर (पवित्रे, आ समेति) बड़े-बड़े पवित्र कार्यों को सिद्ध करता है ॥८॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों की सिद्धि कर लेता है। अर्थात् इससे कोई काम भी अशक्य नहीं। कर्म्मयोगी के सामर्थ्य में समग्र काम है। इस बात का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है ॥८॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥९॥

पदार्थः—(मधुमान्) मधुर आनन्द के उत्पादक (चारुः) सर्वत्र गति वाले (सः) वह आप (नः) मुझको (मित्रे) और उचित कर्म करने वाले को तथा (वरुणे) जो सत्कार करने योग्य है उसको (भगाय) ऐश्वर्य (वायवे) सुन्दरगति (पूष्णे) तथा पुष्टि प्राप्त होने के लिये (पवस्व) सोद्योग होवें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से उद्योग की प्रार्थना की गई है, परमात्मा की परमकृपा से ही पुरुष उद्योगी बन कर परम ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होता है ॥९॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१०॥

पदार्थः—(ते, अंधसः) हे कर्मयोगिन्! तुम्हारे पैदा किए हुए पदार्थों के (उच्चा, जातम्) उच्च समूहको (भूमिः आददे) सम्पूर्ण पृथिवी भर के लोग ग्रहण करते हैं आप (उग्रम्, शर्म) जो कि अत्यन्त सुखस्वरूप हैं तथा (महि श्रवः) आपका महत् यश (दिविषत्) द्युलोक में भी व्याप्त है ॥१०॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—कर्म्मयोगी पुरुष के उत्पन्न किये हुए कलाकौशल से सम्पूर्ण लोग लाभ उठाते हैं ॥१०॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

सिषासन्तो वनामहे ॥११॥

पदार्थः—(**अर्यः**) प्रजाओं का स्वामी (**एना**) अपनी क्रियाओं से (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों की (**विश्वा, द्युम्नानि**) सम्पूर्ण सम्पत्तियों का (**आ**) आहरण अर्थात् संचय करता है (**सिषासन्तः**) ऐसे स्वामी की भक्ति में तत्पर रहते हुए हम (**वनामहे**) उसकी प्रार्थना करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वामिभक्तिका वर्णन किया गया है । तात्पर्य्य यह है कि स्वामिभक्ति से पुरुष उच्च पदवी को प्राप्त होता है ॥११॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥

पदार्थः—(**सः**) वह कर्मयोगी (**वरिवोवित्**) सम्पूर्ण धनों के प्रापयिता आप (**नः**) हमारे (**यज्यवे**) प्रशंसनीय (**इन्द्राय, वरुणाय, मरुद्भ्यः**) तैजस, जलीय तथा वायवीय पदार्थों की सिद्धि के लिये (**परिस्रव**) उद्यत हों ॥१२॥

भावार्थः—अग्नि तथा जलादि सब पदार्थ कर्मयोगी पुरुषों के द्वारा सब प्रकार के सुखों को उत्पन्न करते हैं ॥१२॥

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३॥

पदार्थः—(**सुजातं**) सुन्दर संस्कार युक्त (**अप्तुरम्**) अनेक कर्मों का प्रेरक (**गोभिः परिष्कृतम्**) शुद्ध इन्द्रियों वाला (**भंगम्**) शत्रुओं का भञ्जक जो (**इन्दुम्**) परम प्रकाश वाला कर्मयोगी है उसका (**देवाः**) अपनी अभ्युन्नति चाहने वाले लोग (**अयासिषुः**) अनुसरण करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—अभ्युदयाभिलाषी जनों को चाहिये कि उक्तगुण वाले कर्मयोगी का आश्रयण करें ॥१३॥

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।

य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः (यः) जो राष्ट्र (इन्द्रस्य, हृवंसनिः) अपने स्वामी का भक्त है (तम्) उसको (इत्) निश्चय (नः गिरः) उपदेश प्रयुक्त मेरी वाणियें (वर्धन्तु) बढ़ायें (वत्सम्, संशिश्वरीः इव) जिस प्रकार दुग्ध से परिपूर्ण गौ अपने बच्चे को बढ़ाती है उसी प्रकार ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वामिभक्ति का उपदेश किया गया है ॥१४॥

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।

वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे कर्मयोगिन् ! आप (नः) हमारी (गवे) वाणी के लिये (शम्, अर्ष) सुख को बढ़ाइये (पिप्युषीम्, धुक्षस्व) और तृप्ति करने में पर्याप्त अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करिये (समुद्रम्, उक्थ्यम्, वर्ध) समुद्र के समान अचल ऐश्वर्य को बढ़ाइये ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहते हैं तो कर्मयोगियों से प्रार्थना करके उद्योगी बनिये ॥१५॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६॥

पदार्थः—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला कर्मयोगी (दिवः, तन्यतुम्, न) द्युलोक की शस्त्ररूप विद्युत् के समान (बृहत्, वैश्वानरम्, ज्योतिः) बड़े विद्युतादि तैजस पदार्थ को (अजीजनत्) पैदा करता है ॥१६॥

भावार्थः—कर्मयोगी द्वारा ही विद्युतादि पदार्थ उपयोग में आ सकते हैं। इसलिए हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि तुम कर्मयोगियों को उत्पन्न करके अपने देश को अभ्युदयशाली बनाओ ॥१६॥

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः ।

वि वारमव्यमर्षति ॥१७॥

पदार्थः—हे कर्मदक्ष ! (पवमानस्य, ते) सबको सुख देने वाले आपको (रसः) पैदा किया हुआ सुख और (मदः) आह्लाद (राजन्) हे स्वामिन् ! (अदुच्छुनः) जो विघ्नकारियों से रहित है वह (वारम्, अव्यम्) जो आपका दृढ़ भक्त है उसकी ओर (वि) विशेष रूप से (अर्षति) जाता है ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ईश्वर की भक्ति का उपदेश किया गया है।

Scanned by CamScanner

ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को समझ कर जो पुरुष ईश्वरपरायण होता है उसको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥१७॥

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।

ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८॥

पदार्थः—(पवमान) हे प्रजारक्षक ! (तव) तुम्हारा (रसः) रक्षाजनित सुख (द्युमान्) सुन्दर (दक्षः) अनायासलभ्य विराजित है । और (स्वः) सब (दृशे) पदार्थों के देखने के लिये आप (विश्वम्, ज्योतिः) सर्वव्यापिनी सूक्ष्म शक्तियों को पैदा करते हैं ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से मनुष्य में दिव्यशक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । जिससे मनुष्य देवभाव को धारण करता है ॥१८॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।

देवावीरघशंसहा ॥१९॥

पदार्थः—हे स्वामिन् ! आप (देवावीः अघशंसहा) सदाचारियों के रक्षक तथा दुष्टों को मारने वाले हैं (यः) जो (ते) तुम्हारा (वरेण्यः, रसः) भजनीय सुख है (तेन, अन्धसा) उस तृप्तिकारक सुख से हम लोगों को (पवस्व) पवित्र करिये ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से आनन्दोपलब्धि की प्रार्थना की गई है ॥१६॥

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।

गोषा उ अश्वसा असि ।२०॥

पदार्थः—(अमित्रियम्, वृत्रम्, जघ्निः) आप जो आपकी आज्ञा के प्रतिकूल है उस पापी के हन्ता है । तथा (वाजम्, दिवेदिवे, सस्निः) प्रतिदिन संग्राम के लिये सैनिक विभाग में तत्पर रहते हैं (गोषाः उ, अश्वसाः, असि) गो, अश्व आदि हित-कारक जीवों के बढ़ाने वाले हैं ॥२०॥

भावार्थः—परमात्मा का वज्र दुष्टों के दमन के लिए सदैव उद्यत रहता है। इस मन्त्र में परमात्मा की दण्डशक्ति का वर्णन किया गया है ॥२०॥

Scanned by CamScanner

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१॥

पदार्थः—आप (श्येनः, न, योनिम्, आसीदन्) विद्युत् के समान अपने स्थान में स्थित होते हुए (न) तत्काल ही युद्ध में (सूपस्थाभिः, धेनुभिः, संमिश्लः) दृढ़ स्थिति वाली इन्द्रियों से मिश्रित अर्थात् सावधान होकर (अरुषः, भव) देदीप्यमान होवें ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा की शक्तियाँ विद्युत् के समान सदैव उग्ररूप से विद्यमान रहती हैं । जो पुरुष उनके विरुद्ध करता है उसको आत्मिक सामाजिक और शारीरिक रूप से अवश्यमेव दण्ड मिलता है ॥२१॥

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

पदार्थः—(यः) जो आप (वृत्राय, हन्तवे) दुष्टाचारी प्रतिपक्षी के हनन करने के लिये (महीः अपः वव्रिवांसम्) सब अवस्थाओं में अप्रतिहत (इन्द्रम्, आविथ) शक्तियों को सुरक्षित रखते हैं (सः) एवंभूत आप (पवस्व) मेरी रक्षा करें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना की गई है ॥२२॥

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥

पदार्थः—(मीढ्वः) हे सुख की वर्षा करने वाले ! (नः) हमारी (गिरः) वाक्शक्ति को (पुनानः) बढ़ाते हुए (वर्ध) हमको भी अभिनन्दित करिये । जिससे (सोम) हे स्वामिन् ! (वयम्) हम (सुवीरासः) सुन्दर वीरों से संगत होकर (धनम्, जयेम) अनेक प्रकार की सम्पत्ति का लाभ करें ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से प्रगल्भवक्ता बनने की प्रार्थना की गई है ॥२३॥

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः ।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**त्वोतासः, तव, अवसा**) हे प्रभो! तुम्हारी रक्षा से सुरक्षित होकर हम (**वन्वन्तः**) आपकी सेवा में तत्पर होते हुए (**आमुरः, स्याम**) आपके विरोधियों के विनाशक हो जायें (**सोम**) हे सौम्यचित्त वाले! आप (**व्रतेषु, जागृहि**) अपने नियमों में सदैव जागृत हैं ॥२४॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने नियमों में सदैव जागृत है अर्थात् जिसके नियम सदैव अटल हैं उन नियमों के अनुयायी होकर हम ईश्वर-नियम के विरोधियों का दलन करें ॥२४॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५॥

पदार्थः—(**सोमः**) रक्षा करने वाला स्वामी (**मृधः, अपघ्नन्**) हिंसकों को मारता हुआ (**अराव्णः**) जो लोग इसको देय धन नहीं देते उनको (**इन्द्रस्य**) अपने कर्माधिकारी के (**निष्कृतम्**) अधिकार में (**अपगच्छन्**) दुर्गति रूप से स्थापित करता हुआ (**पवते**) संसार को निर्विघ्न करता है ॥२५॥

भावार्थः—जो अपने रक्षक स्वामी अर्थात् राजा को देयधन (कर) नहीं देते वे राजनियम से दण्डनीय होते हैं ॥२५॥

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।

रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यसम्पन्न ! आप (**नः**) हमको (**महः, रायः आभर,**) पवित्र धन से परिपूर्ण करिये (**पवमान**) हे सर्वरक्षक ! (**मृधः, जहि**) हिंसकों को नष्ट करिये (**वीरवत्, यशः, रास्व**) वीरों के सहित यश को प्रकट करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का उपदेश है। जो पुरुष राजधर्म का पालन करते हैं, वे वीरपुरुषों को उत्पन्न करके प्रजा को सर्वथा सुरक्षित करते हैं ॥२६॥

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।

यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥

पदार्थः—(**यत्, पुनानः, मखस्यसे**) आप जो कि अपनी प्रजाओं को सुखी करने के लिये धन ग्रहण करने की इच्छा करते हैं इससे (**राधः**) धनको (**आदि-**

Scanned by CamScanner

रसम्तम्) ग्रहण करते हुए (त्वा) तुमको (शतम्, चन, हुताः) सैंकड़ों कुटिल दुष्ट (न, मिनन्) बाधित नहीं कर सकते ॥२७॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा की रक्षा के निमित्त 'कर' लेता है उसे कोई दूषित नहीं कर सकता है। और उसकी रक्षा से सुरक्षित होकर प्रजा सर्वथैव विर्निघ्न रहती है, उसमें दुष्ट दस्यु आदि कोई विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥२७॥

पर्वस्वेन्द्रो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८॥

पदार्थः—(इन्दो) हे स्वामिन् ! आप (वृषा) सब कामनाओं के प्रापण करने में समर्थ हैं (सुतः, पवस्व) आप सेवन किये गए अपने सेवकों की रक्षा कीजिये (नः, यशसः, कृधि, जने) और मनुष्यों में मुझको यशस्वी बनाइये (विश्वा अपद्विषः, जहि) सम्पूर्ण बुरे कामों में तत्पर शत्रुओं को मारिये ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यशस्वी बनने की प्रार्थना की गई है ॥६८॥

अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।

सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥

पदार्थः—(अस्य, ते, सख्ये) तुम्हारे मित्रभाव को प्राप्त होकर (इन्दो) हे सुन्दर यश से प्रकाशित ! (तव, उत्तमे द्युम्ने) तुम्हारे उत्तम यश के निमित्त हम (पृतन्यतः, सासह्याम) संग्राम में युद्ध के निमित्त आये हुए प्रतिपक्षियों को अभिभूत करें ॥२६॥

भावार्थः – इस मन्त्र में परमात्मा ने राजधर्म में साहाय्यका उपदेश किया है ॥२६॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।

रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥

पदार्थः– हे सेनापते ! (धूर्वणे) शत्रुओं के नाश के लिये (या) जो (ते) आपके (भीमानि, तिग्मानि, आयुधा, सन्ति) भयंकर तीक्ष्ण शस्त्र हैं तिनसे (नः) हमको (समस्य, निदः) सब प्रकार के अपयशों से (रक्ष) बचाइये ॥३०॥

भावार्थः—तीक्ष्ण शस्त्रों वाले सेनापति प्रजाओं को सब प्रकार की विपत्तियों से बचाते हैं ॥३०॥

नवम मण्डल में यह इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ त्रिंशदृचस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० जमदग्निर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, १०, २३, २५, २८, २९, निचृद्गायत्री । २, ५, ११—१९, २१—२४, २७, ३०—गायत्री । ३ ककुम्मती गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २०, २६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब सेनापति की प्रशंसा की जाती है ॥

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

पदार्थः—(एते) यह (आशवः) क्रियादक्ष (इन्दवः) सेनाधीश (पवित्रम् अभि) अपनी पवित्र प्रजा के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के (तिरः) द्विगुण (सौभगा) भोग्य पदार्थों को (असृग्रम्) पैदा करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सेनापति के गुणों का वर्णन किया है ॥१॥

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥२॥

पदार्थः—(वाजिनः) पर्याप्त बल वाले सेनापति (पुरु, दुरिता, विघ्नन्तः) बड़ी-बड़ी आपत्तियों को हनन करते हुए (तोकाय) हमारी सन्तानों को (अर्वते) व्यापक होने के लिए (सुगा) सब प्रकार के सुखों तथा (तना) धनों का (कृण्वन्तः) संचय करते हुए भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो सेनापति प्रजा की सन्तानों को व्यापक होने के लिए सब रास्तों को निष्कंटक बनाता है । उक्तगुणों वाला सेनापति राज का अंग होकर राज्य की रक्षा करता है ॥२॥

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

पदार्थः—(गवे, वरिवः, कृण्वन्तः) हमारे गवादिकों के लिए अनेक पदार्थों को उत्पन्न करते हुए और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (संयतम्) सुदृढ़ (इलाम्) अन्न को संचित करते हुए (सुष्टुतिम्) हमारी सुन्दर प्रार्थना को (अभ्यर्षन्ति) दत्तचित्त होकर सुनते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो सेनापति प्रजा के लिए ऐश्वर्य उत्पन्न करता है और

Scanned by CamScanner

प्रजा की प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है, वह धर्म का पालन करता हुआ भली-भाँति प्रजाओं की रक्षा करता है ॥३॥

असा॑व्यं॒शुर्मदा॑या॒प्सु दक्षो॑ गिरि॒ष्ठाः ।

श्ये॒नो न योनि॒मास॑दत् ॥४॥

पदार्थः—(अप्सु, दक्षः) क्रियाओं में कुशल (गिरिष्ठाः, श्येनः, न) मेघ में स्थित विद्युत् के समान शीघ्रकारी (अंशुः) तेजस्वी सेनापति (असावि) ईश्वर से पैदा किया गया (योनिम्, आसदत्) अपनी पदवी को ग्रहण करता है ॥४॥

भावार्थः—उक्त गुणसम्पन्न सेनापति ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त गुणों वाले पुरुष को सेनापति मानो। और ऐसे सेनापतियों से राजधर्म का दृढ़ प्रबन्ध करके प्रजा में रक्षा का प्रचार करो ॥४॥

शु॒भ्रमन्धो॑ दे॒ववा॑तम॒प्सु धू॒तो नृभिः॑ सु॒तः ।

स्वद॑न्ति॒ गावः॒ पयो॑भिः ॥५॥

पदार्थः—(देववातम्) उस दिव्यगुणसम्पन्न सेनाधिपकी रक्षा से सुरक्षित तथा (नृभिः, सुतः) प्रजाओं द्वारा पैदा किये गए जो अन्न (अप्सु, धूतः) और जो जल से शुद्ध किया गया है (शुभ्रम्, अन्धः) वीर्य और बुद्धि के वर्धक उस उज्ज्वल अन्न को (गावः, पयोभिः) भली-भाँति जो कि गौ के दुग्ध से संस्कृत है ऐसे अन्न को (स्वदन्ति) प्रजागण उपभोग करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जिस देश में प्रजा की रक्षा करने वाले सेनाधीश होते हैं, उस देश की प्रजा, नाना प्रकार के अन्नों को दुग्ध से मिश्रित करके उपभोग करती है। तात्पर्य यह है राजधर्म से सुरक्षित ही ऐश्यर्य को भोग सकते हैं, अन्य नहीं। इसलिये परमात्मा ने इस मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥५॥

आदी॒मश्वं॒ न हेता॒रोऽशू॑शुभन्न॒मृता॑य ।

मध्वो॒ रसं॑ स॒धमा॑दे ॥६॥

पदार्थः—(सधमादे) यज्ञस्थलों में (आत्) आनन्दित होने के अनन्तर (हेतारः) प्रार्थयिता प्रजालोग (अश्वम्, न) शीघ्र ही राष्ट्रभर में व्यापक (मध्वः, रसम्) मधुरस के समान आस्वादनीय आनन्दका (अमृताय) फिर भी सुरक्षित होने के लिए (अशूशुभन्) स्तुति द्वारा सुभूषित करते हैं ॥६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग कर्मकाण्डी बनकर यज्ञ करते हैं, वे लोग अपने शुभ कर्मों से प्रजा को विभूषित करते हैं ।।६।।

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।

ताभिः पवित्रमासदः ।।७।।

पदार्थः—(इन्दो) हे कर्मप्रधान सेनापते ! (याः) जो (मधुश्चुतः) आनन्द की वर्षा करने वाली आपकी (धाराः) अनेक शाखाएं (ऊतये) प्रजाओं के रक्षणार्थ (असृग्रम्) इधर-उधर फैली हुई हैं (ताभिः) उनसे (पवित्रम्) सत्कर्मी को (आसदः) अनुगृहीत करिये ।।७।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि सेनाधीश अपनी सुरक्षारूप वृष्टि से प्रजाओं को आनन्द से सुसिञ्चित करे ।।७।।

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया ।

सीदन्योना वनेष्वा ।।८।।

पदार्थः—हे स्वामिन् ! (सः) पूर्वोक्त आप (योना, आसीदन्) अपने पद पर स्थित होते हुए (वनेषु) अपने राष्ट्र में (इन्द्राय पीतये) विज्ञानी की तृप्ति के लिये (अर्ष) व्याप्तिशील हों (तिरः, रोमाणि, अव्यया) और अन्तर्हित जीवों को भी रोम-रोम प्रति अव्यय अर्थात् दृढ़ रक्षित करिये ।।८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रतिपादन किया गया है कि राजधर्म की रक्षा द्वारा देश में ज्ञान और विज्ञान की वृद्धि होती है ।।८।।

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।

वरिवोविद्घृतं पयः ।।९।।

पदार्थः—(इन्दो) हे तेजस्विन् ! (त्वम्) आप (स्वादिष्ठः) परमप्रिय हैं । और (वरिवोविद्) सब प्रजाओं को धनों के प्रापयिता हैं (अङ्गिरोभ्यः) आप विद्वानों के लिये (घृतम्, पयः) घृत दुग्धादि पदार्थ (परिस्रव) उत्पन्न करिये ।।९।।

भावार्थः—प्रजाओं को चाहिए कि वे सदैव अपने राजपुरुषों से ऐश्वर्य की प्रार्थना करके संसार में ऐश्वर्य बढ़ाने का यत्न करें ।।९।।

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।

हिन्वान आप्यं बृहत् ।।१०।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सः, अयम्) यह सेनापति (विचर्षणिः) प्रजाओं को विशेष रूप से देखने वाला (हितः) और सब का हितकारक (पवमानः) दुष्टों को दण्ड द्वारा शुद्ध करता हुआ (बृहत् आप्यम् हिन्वानः) बहुत से भोग्य पदार्थ को उत्पन्न कराता हुआ (चेतति) सर्वथा जागृतावस्था से विराजमान है ॥१०॥

भावार्थः—जो सेनापति अपने कर्म में तत्पर रहता है अर्थात् राजधर्म का यथाविधि पालन करता है वह, प्रजा में सब प्रकार से सुख उत्पन्न करता है ॥१०॥

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।

करद्वसूनि दाशुषे ॥११॥

पदार्थः—(वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला (वृषव्रतः) कामनापूर्त्तिरूप ही व्रत धारण करने वाला (पवमानः) सर्वपावक (अशस्तिहा) दुराचारियों का नाशक (एषः) यह सेनापति (दाशुषे) भाग देने वाले के लिये (वसूनि, करत्) प्रत्येक प्रकार के धनों की प्राप्ति का प्रयत्न करता है ॥११॥

भावार्थः—उक्तगुणसम्पन्न सेनापति सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न करके प्रजा में सुख बढ़ाता है ॥११॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥१२॥

पदार्थः—हे सेनाधीश ! (सहस्रिणम्) आप प्रत्येक प्रकार के (गोमन्तम् अश्विनम्) गो अश्वादि के सहित (चन्द्रम्) हर्षोत्पादक (पुरुस्पृहम्) अनेक लोगों से प्रार्थनीय (पुरु, रयिम्) बहुतसे धन को (आ पवस्व) सर्वथा सञ्चित करिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सेनाधीश के गुणों का वर्णन किया है कि सेनाधीश सहस्र प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रजाजनों के लिये उत्पन्न करे ॥१२॥

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः ।

उरुगायः कविक्रतुः ॥१३॥

पदार्थः—(एषः स्यः) वह यह (कविक्रतुः) जो कि विद्वानों में श्रेष्ठ और (उरु गायः) सब लोगों से प्रशंसित है, ऐसा सेनापति (आयुभिः) सब प्रजाओं द्वारा (मर्मृज्यमानः) शुद्धाचरण रूप से सिद्ध किया गया (परिषिच्यते) नेतृत्वपद पर अभिषिक्त किया जाता है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है उसी को सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये ॥१३॥

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः ।

इन्द्राय पवते मदः ॥१४॥

पदार्थः—वह सेनापति (**इन्द्राय**) इन्द्र अर्थात् सर्वोपरि ऐश्वयसम्पन्न होने के लिए (**सहस्रोतिः**) सहस्रों प्रकार की रक्षण शक्ति को धारण करता है और (**शतामघः**) सैकड़ों प्रकार के धनों का सञ्चय करता है (**विमानः रजसः**) और प्रजा रक्षणार्थं रजोगुणप्रधान होता है (**कविः**) सब शास्त्रों का प्राज्ञ तथा (**इन्द्राय मदः**) विज्ञानियों का सत्कर्ता और तृप्तिकर्ता तथा (**पवते**) उनकी विशेष रूप से रक्षा करता है ॥१४॥

भावार्थः—जो विद्वानों का रक्षक तथा सत्कार करने वाला और विद्या के प्रचार में प्रेमी होता है वही सेनापति प्रशंसित कहा जाता है ॥१४॥

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।

विर्योना वसताविव ॥१५॥

पदार्थः—(**विः, वसतौ, इव**) "विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः अथापि इषुनामेह भवत्येतस्मादेव" (नि. अ. २ । ६) ।जिस प्रकार शत्रु से रक्षा के लिये बाण ज्या में स्थापित किया जाता है उसी प्रकार (**इह, जातः इन्दुः**) इस लोक में सब ऐश्वर्य को प्राप्त सेनापति (**गिरा, स्तुतः**) सब की वाणियों द्वारा स्तुत (**इन्द्राय**) रक्षा करने से निर्भीक होने के लिये (**योना, धीयते**) उच्च पद पर स्थापित किया जाता है ॥१५॥

भावार्थः—जिस प्रकार शस्त्र अपने नियत स्थानों में स्थित होकर राजधर्म की रक्षा करते हैं, इसी प्रकार सेनापति अपने पद पर स्थिर होकर राजधर्म की रक्षा करता है ॥१५॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।

चमूषु शक्मनासदम् ॥१६॥

पदार्थः—(**नृभिः सुतः**) विदुषी प्रजाओं के द्वारा अभिषिक्त (**सोमः**) सौम्य सेनाधीश (**पवमानः**) सबको पवित्र करता हुआ (**चमूषु**) सेनाओं में (**शक्मना**) अपने पराक्रम से (**आसदम्**) अपने शत्रु की ओर अभिगमन करने के लिये (**वाजम्, इव**) विद्युदादि अद्भुत शक्ति के समान (**असरत्**) गमन करता है ॥१६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सोम यहाँ सेनाधीश का नाम है क्योंकि सेनाधीश को भी धीरता के लिये सौम्यस्वभाव की आवश्यकता है। इसलिये उसे सोमरूप से वर्णन किया है ॥१६॥

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।

ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥१७॥

पदार्थः—(ऋषीणाम्, सप्त, धीतिभिः) जो कि ऋषियों अर्थात् विज्ञानी शिल्पियों के द्वारा रचित है तथा सात प्रकार के आकर्षणादि गुणों से संयुक्त है तथा (त्रिपृष्ठे) तीन उपवेशनस्थानों से युक्त तथा (त्रिवन्धुरे) तीन जगह ऊँचा-नीचा है (रथे) ऐसे रथ में (तम्) उस सेनापति को (यातवे, युञ्जन्ति) यात्रा करने के लिये प्रयुक्त करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो ! तुम अपने सेनापतियों के लिये ऐसे यान बनाओ, जो अनन्त प्रकार से आकर्षणविकर्षणादि गुणों से युक्त हों। और जल, स्थल तथा नभोमण्डल में सर्वत्रैव अव्याहतगति होकर गमन कर सकें ॥१७॥

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे ।

हरिं हिनोत वाजिनम् ॥१८॥

पदार्थः—(सोतारः) हे अमात्यादि अभिषेक्ता लोगो ! (धनस्पृतम्) जो कि धनों का सञ्चय करने वाला है तथा (आशुं) बहुव्यापी है (हरिम्) और शत्रुओं का विघातक (वाजिनम्) सुन्दर बल वाला है उसको (वाजाय) शक्ति बढ़ाने को (यातवे) यात्रा करने के लिये (हिनोत) प्रेरणा करो ॥१८॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम लोग जो उक्तगुणसम्पन्न पुरुष है उसको अपने अभ्युदय के लिए सेनाधीशादि पदों पर नियुक्त करो ॥१८॥

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९॥

पदार्थः—(सुतः) अभिषिक्त सेनापति (कलशम्, आविशन्) शब्दायमान शस्त्रों में प्रवेश करता हुआ अर्थात् शस्त्रविद्याको सीखता हुआ (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) सम्पूर्ण लक्ष्मी को प्राप्त करता हुआ (गोषु) इन्द्रियों में (शूरः, न) शूर के समान अर्थात् जितेन्द्रिय की तरह (तिष्ठति) स्थित होता है ॥१९॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो पुरुष जितेन्द्रिय और दृढ़व्रती होते हैं वे ही राजधर्म के लिए उपयुक्त होते हैं, अन्य नहीं ॥१९॥

आ तं इन्द्रो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः ।

देवा देवेभ्यो मधु ।२०॥

पदार्थः—(इन्द्रो) हे परमैश्वर्यशालिन् ! (ते) आपके (मदाय) आनन्द के लिये (आयवः देवाः) दिव्य शक्ति वाले आपके अनुयायी लोग (देवेभ्यः) ज्ञानक्रिया-शाली विद्वानों से (मधु) सुन्दर भोगयोग्य (पयः) दूध रूपी (कम्) सुख को (आ) भली-भांति (दुहंति) दुहते है ॥२०॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आपके अनुयायी लोग कामधेनु रूप पृथिव्यादि लोकान्तरों से अनन्त प्रकार के अमृतों को दुहते हैं ॥२०॥

आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।

देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम (नः) हम लोगों के (सोमम्) सौम्य स्वभाव वाले स्वामी को (आ सृजत) इस प्रकार सिद्ध करो जिससे (मधुमत्तमम्)मधुर स्वभाव वालों में उत्तम हो। और (देवेभ्यः, देवश्रुत्तमम्) सब देवों अर्थात् विद्वानों की प्रार्थना सुनने वाला हो ॥२१॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम ऐसे सेनापति को वरण करो जो मधुर स्वभाव वाला हो और सब की प्रार्थनाओं पर ध्यान देने वाला हो ॥२१॥

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे ।

मदिन्तमस्य धारया ॥२२॥

पदार्थः—(एते, सोमाः) ये सेनापति (महे, श्रवसे गृणानाः) महायश के लिये स्तुति किये गए (मदिन्तमस्य, धारया) आह्लादक शौर्यवीर्यादि शक्तियों की धारा के सहित (असृक्षत) पैदा किये जाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—उक्त गुणों वाले सेनापति संसार में यश और बल बढ़ाने के लिए उत्पन्न किए हैं ॥२२॥

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।

सनद्वाजः परि स्रव ॥२३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे स्वामिन्! (वीतये) उपभोग के लिए (गव्यानि नृम्णा) गोसम्बन्धी धनों को (अभि पुनानः) निर्विघ्न करते हुए (अर्षसि) आप गमन करते हैं (सनद्वाजः) सब शक्तियों को सर्वत्र विभक्त करते हुए आप (परिस्रव) सर्वत्र व्यापक हों ॥२३॥

भावार्थः—जो सेनापति पृथिव्यादि रत्नों को निर्विघ्न करने के लिये अपनी ज़ीवनयात्रा करते हैं, व सेनाधीशादि पदों के लिये उपयुक्त होते हैं ॥२३॥

उत नो गोमंतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदंग्निना ॥२४॥

पदार्थः—(उत) और (जमदग्निना, गृणानः) प्रज्वलित प्रताप होने से सब लोगों से स्तूयमान आप (नः) हमारे लिये (परिष्टुभः) जोकि किसी प्रकार नहीं चलने वाली ऐसी (विश्वाः) सब प्रकार की (गोमतीःइषः) गवादि पदार्थ युक्तशक्ति को (अर्ष) प्राप्त कराइये ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग उक्तगुणसम्पन्न राजपुरुषों के सदैव अनुयायी बने रहो, ताकि वे तुम्हारे लिए पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों के ऐश्वर्यों से तुम्हें विभूषित करें ॥२४॥

पवंस्व वाचो अंग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिंः ।
अभि विश्वानि काव्यां ॥२५॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्य ! (अग्रियः) आप जोकि हम लोगों में अग्रणी हैं इससे (चित्राभिः, ऊतिभिः) अनेक प्रकार की विचित्र रक्षाओं से (वाचः) अपनी आज्ञाविषयक वाणी को (पवस्व) निर्बाध करिये तथा (विश्वानि, काव्या) सम्पूर्ण वेदादि काव्यों को (अभि रक्ष) सुरक्षित कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमेश्वर से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है ॥२५॥

त्वं संमुद्रिया अपोऽग्रियो वाचं ईरयंन् ।
पवंस्व विश्वमेजय ॥२६॥

पदार्थः—(विश्वमेजय) हे सब संसार को भय से अपने वश में रखनेवाले ! आप (अग्रियः) प्रधान हैं (वाचः ईरयन्) अपने अनुशासन द्वारा (समुद्रियाः, आपः) समुद्र सम्बन्धी जलों को (पवस्व) निर्बाध करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की कृपा से ही सब पदार्थ निर्विघ्न रह सकते हैं, अन्यथा नहीं । इसीका वर्णन किया गया है ॥२६॥

Scanned by CamScanner

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।

तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥२७॥

पदार्थः—(कवे) हे विद्वन् ! (इमा भुवना) यह लोक (तुभ्य महिम्ने) तुम्हारी ही महिमा के लिये (तस्थिरे) ईश्वर द्वारा स्थित है और (सोम) हे सौम्य ! (सिन्धवः) सब नदियाँ (तुभ्यम् अर्षन्ति) तुम्हारे उपभोग के लिये ही ईश्वर द्वारा स्यन्दमान हो रही हैं ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के महत्त्व का वर्णन किया गया है कि अनेक प्रकार के भुवनों की रचना और समुद्रों की रचना उसके महत्त्व का वर्णन करती है । अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति के कार्य उसके एक देश में हैं । परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है । अर्थात् परमात्मा अनन्त है, और प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य सान्त हैं ॥२७॥

प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः ।

अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥२८॥

पदार्थः—हे सेनापते ! (दिवः वृष्टयः न) जिस प्रकार आकाश से जल की अनेक धाराओं का पात होता है उसी प्रकार (ते) आपकी (धाराः) रक्षक सेनायें (असश्चतः) पृथक्-पृथक् (प्रयन्ति) इधर-उधर विचरती हैं और (शुक्राम्, अभि) अपनी रक्षणीय पवित्र प्रजा को (उपस्तिरम्) भलीभाँति अनुगृहीत करती हैं ॥२८॥

भावार्थः—जिस प्रकार सेनापति की सेनाएं इतस्ततः विचरती हुई उसके महत्त्व को बतलाती हैं उसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्ड परमात्मा के महत्त्व को सेनाओं की नाईं सुशोभित करते हैं ॥२८॥

इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम् ।

ईशानं वीतिराधसम् ॥२९॥

पदार्थः—हे प्रजालोगो ! जोकि (उग्रम्) महातेजस्वी है और (दक्षाय, साधनम्) जिसके द्वारा तुम लोग दक्ष अर्थात् सब कार्यों में कुशल हो सकते हो और जो (ईशानम्) स्वयं परमैश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ है और (वीतिराधसम्) जो सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता है ऐसे (इन्दुम्) अपने ऐश्वर्यशाली सेनाधीश को (इन्द्राय) ऐश्वर्यसम्पन्न होने के लिये (पुनीतन) सब सम्मिलित होकर यथाशक्ति उपसेवन करो ॥२९॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में सेनापति की आज्ञा का पालन करना कथन किया गया है, कि जो लोग ऐश्वर्यशाली होना चाहें वे अपने सेनाधीश की आज्ञा का पालन करें ॥२९॥

पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबके रक्षक ! आप (**ऋतः**) सत्यता को धारण करने वाले (**कविः**) विद्वान् (**सोमः**) उदार हैं। और (**स्तोत्रे सुवीर्यम्, दधत्**) अपने स्तोताओं तथा अनुयायियों के लिए सुन्दर पराक्रम को धारण करते हुए (**पवित्रम्, आसदत्**) सत्कर्मी तथा सुरक्षित करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म की रक्षार्थ परिश्रमी बनने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानःसोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३०निचृद्गायत्री । ३, ७–११, १६, १८, १९, २१, २४, २६ गायत्री । ५, १३ १५ विराड्गायत्री । ६, १४, २९ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब दूसरी तरह से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।

अस्मे श्रवांसि धारय ॥१॥

पदार्थः—(**सोम**) हे जगदीश्वर ! आप (**सहस्रिणं सुवीर्यं**) अनन्त प्रकार का बल और (**रयिं**) अनन्त प्रकार का ऐश्वर्य हमको प्रदान करें (**अस्मे**) हममें (**श्रवांसि**) सब प्रकार के विज्ञान (**धारया**) प्रदान करें। (**आपवस्व**) सब तरह से पवित्र करें ॥१॥

भावार्थः—राजधर्म की पूर्ति के लिए इस मन्त्र में अनेक प्रकार के बलों की परमात्मा से याचना की गई है ॥१॥

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।

चमूष्वा नि षीदसि ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**चमूषु**) आप सब सेनाओं में (**आनिषीदसि**) नियामक रूप से स्थित हैं। आप (**इन्द्राय**) शूरवीर के लिये (**मत्सरितमः**) अत्यन्त मद करने वाला वीरता का भाव उत्पन्न करें। (**इषं च**) ऐश्वर्य और (**ऊर्जं**) बल (**पिन्वते**) धारण कराइये ॥२॥

भावार्थः—राजधर्म के लिए अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य की आवश्यकता होती है। इसलिये परमात्मा से इस मन्त्र में अनन्त सामर्थ्य की प्रार्थना की गई है ॥२॥

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।

मधुमाँ अस्तु वायवे ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**सुतः सोमः**) साधनों से सिद्ध किया हुआ सौम्य स्वभाव (**इन्द्राय**) ज्ञानयोगी के लिये (**विष्णवे**) जो बहु व्यापक है (**वायवे**) कर्मयोगी के लिए (**मधुमाँ अस्तु**) सुशीलतायुक्त माधुर्यादि भावों को देने वाला हो। और (**कलशे**) उनके अन्तःकरणों में (**अक्षरत्**) सदैव प्रवाहित होता रहे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सर्वोपरि शील की शिक्षा दी है कि हे पुरुषो ! तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाओ ताकि तुम्हारा अन्तःकरण धृत्यादि धर्म के लक्षणों को धारण करके राजधर्म के धारण के योग्य बने ॥३॥

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।

सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥

पदार्थः—(**एते**) ये (**सोमाः**) सौम्यस्वभाव (**बभ्रवः**) जो दृढ़तायुक्त हैं वे (**ऋतस्य**) सच्चाई की (**धारया**) धारा से (**अतिह्वरांसि**) राक्षसों को अतिक्रमण करते हुए (**आशवः**) जो अत्यन्त तेजस्वी हैं, हे परमात्मन् ! आप (**असृग्रम्**) उनको उत्पन्न करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि राजधर्मानुयायी पुरुषो ! तुम लोग उग्र स्वभाव को बनाओ ताकि दुष्ट, दस्यु और राक्षस तुम्हारे रौद्र स्वभाव से भयभीत होकर कोई अनाचार न फैला सकें ॥४॥

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।

अपघ्नन्तो अराव्णः ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**इन्द्रं**) शूरवीर के महत्त्व को (**वर्धन्तः**) बढ़ाते हुए और उसको (**अप्तुरः**) गतिशील (**कृण्वन्तः**) करते हुए और (**अराव्णः**) सब शत्रुओं का(**अपघ्नन्तः**) नाश करते हुए (**विश्वं**) सब प्रकार के (**आर्यम्**) आर्यत्व को दें ॥५॥

भावार्थः—परामत्मा से प्रार्थना है कि परमात्मा श्रेष्ठ स्वभाव प्रदान करे, ताकि आर्यता को धारण करके पुरुष राजधर्म का शासन करे ॥५॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः ।

इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥६॥

पदार्थः—(**सुताः**) संस्कार किये हुए और (**स्वं**) अपने (**रजः**) स्थान को (**आगचछन्तः**) प्राप्त होते हुए (**इन्द्रं**) परमात्मा को प्राप्त होकर (**इन्दवः**) प्रकाश-स्वरूप संकल्प (**बभ्रवः**) जो स्थिर हैं वे (**अन्वभ्यर्षन्ति**) परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करते हैं वे एक प्रकार से व्यवसायात्मक बुद्धि को बनाते हैं। अथवा यों कहो कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" (यो. १ । ३ ।) इस योगसूत्र में वर्णित किये हुए आत्मस्वरूप में स्थिति पाकर शुद्ध होते हैं। चित्तवृत्ति, संकल्प ये पर्याय शब्द हैं। परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! आप शुद्ध संकल्प होकर मेरी ओर आयें ॥६॥

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।

हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**अया**) उस (**धारया**) प्रकाश से प्रकाशित करते हुए (**यया**) जिससे (**सूर्यमरोचयः**) सूर्य को आप प्रकाशित करते हैं, उससे मुझे भी प्रकाशित कीजिये। और (**मानुषीः**) मनुष्यों के (**अपः**) कर्मों की (**हिन्वानः**) यथा-योग्य प्रेरणा करते हुए (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यथायोग्य न्याय की प्रार्थना है। यद्यपि परमात्मा स्वभावसिद्ध न्यायकारी हैं, तथापि परमात्मा ने इस मन्त्र में "हिन्वानः मानुषीरपः" इस वाक्य से यथायोग्य कर्मों का फलप्रदाता कथन करके यह सिद्ध किया है कि तुम परमात्मा के न्याय तथा नियम के अनुकूल काम करो ॥७॥

Scanned by CamScanner

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥८॥

पदार्थः—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (मनावधि) जो मनुष्यमात्र का स्वामी है, वह (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष मार्ग द्वारा (यातवे) जाने के लिए (सूरः) जो अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करता है (एतशं) ऐसे शक्तिसम्पन्न सूर्य को (अयुक्त) जोड़ता है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से अनन्त शक्ति उत्पन्न की हैं ॥८॥

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९॥

पदार्थः—(उत) और (इन्दुः) जो पुरुष अपने प्रेम से सब पुरुषों के हृदयों को स्निग्ध करे उसका नाम यहाँ इन्दु है (इन्द्रः) जो सर्वऐश्वर्ययुक्त परमात्मा है (इति) उनको ऐसे नामों से (ब्रुवन्) कथन करता हुआ जो पुरुष (यातवे) अपनी शारीरिक यात्रा के लिए (त्याः) उन (हरितः) पाप को नष्ट करने वाली (दशसूरः) दश प्रकार की वृत्तियों को (अयुक्त) जोड़ता है वह परमानन्द को प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष अपनी इन्द्रियवृत्तियों को सब ओर से हटाकर एक परमात्मा में लगाते हैं वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं। इस मन्त्र में परमात्मा ने इन्द्रियवृत्तियों को रोक कर ईश्वर में लगाने का उपदेश किया है। इसका नाम ईश्वर योग है "पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्" परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इसलिए वे बाहर की ओर जाती हैं। इनके रोकने का उपाय उक्त मन्त्र में बतलाया है ॥९॥

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१०॥

पदार्थः—(गिरः) हे स्तोता लोगो ! आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये और (वायवे) ज्ञानयोगी के लिए (इतः) इस कर्मभूमि में (मत्सरं) आह्लादजनक (सुतं) शील की वृष्टि करें। और (वारेषु) सब वरणीय पदार्थों में (अव्यः) रक्षा की (परिषिचत) सब ओर से वृष्टि करें ॥१०॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि वेदवेत्ता लोग ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का उपदेश करते हैं वे मानो अमृत की वृष्टि से अकर्मण्यता-रूप मृत्यु से मृत लोगों का पुनरुज्जीवन करते हैं ॥१०॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।

यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥

पदार्थः—(पवमान) सबको पवित्र करने वाले हे परमात्मन् ! (सोम) हे सौम्य-स्वभाव ! (अस्मभ्यं) हमारे लिए उस (रयिं) धन को (विदाः) दे (यः) जो (वनुष्यता) शत्रुओं से (दूणाशः) अजेय है (दुष्टरम्) और अप्राप्य है ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने उस अलभ्य लाभ का उपदेश किया है जो ज्ञान विज्ञान रूपी धन है। ज्ञान विज्ञान रूप धन को कोई पुरुष बलात्कार से छीन वा चुरा नहीं सकता। इसी लिए कहा है कि हे वेदानुया-यियो ! आप उक्त धन का संचय करें ॥११॥

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (सहस्रिणम् रयिम्) अनन्त प्रकार के धनों को जो (गोमत्) अनेक प्रकार की भूमि हिरण्यादि युक्त है तथा (अश्विनम्) जो विविध यानों से परिपूर्ण है और जो (वाजम्) बलरूप (उत) और (श्रवः) यशोरूप है उसको (अभ्यर्ष) आप हमको दें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने अनन्त प्रकार के धनों की उप-लब्धिका उपदेश किया है ॥१२॥

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः ।

दधानः कलशे रसम् ॥१३॥

पदार्थ—(सोमः) सब संसार को उत्पन्न करने वाला (देवः) दिव्यस्वरूप (सूर्यः न) सूर्य के समान (अद्रिभिः) अपनी शक्तियों से (पवते) पवित्र करता है। और (सुतः) स्वतःसिद्ध परमात्मा जो (कलशे) प्रत्येक पदार्थ में (रसं) रस को (दधानः) धारण कराता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मदेव ही प्रत्येक पदार्थ में रस को उत्पन्न करता है। और वही अपनी शक्तियों से सबको पवित्र करता है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥

पदार्थः—(एते शुक्राः) पूर्वोक्त शीलस्वभाव जो (ऋतस्य धारया) सचाई की धाराओं से (वाजम्) बल को और (गोमंतं) ऐश्वर्य को (अक्षरन्) बरसाते हैं वे (आर्या) आर्यपुरुषों के (धामानि) स्थान समझने चाहियें ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि श्रेष्ठ पुरुषों की स्थिति का हेतु एकमात्र शुभस्वभाव वा शील ही समझना चाहिये । अर्थात् शुभशील से ही उनकी दृढ़ता और उनका आर्यत्व बना रहता है । इस लिए शील को सम्पादन करना आर्यों का परम कर्तव्य है ॥१४॥

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः ।
पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥

पदार्थः—(सुताः सोमासः) स्वयंसिद्ध परमात्मा (अतिपवित्रं दध्याशिरः) जो सर्वोपरि पवित्रता का अधिकरण है बह (इन्द्राय वज्रिणे) कर्मयोगी पुरुष के लिए (अक्षरन्) परमानन्द की वृष्टि करता है ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी पुरुष के लिये आनन्द की वृष्टि करता है । इसका तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुषों के लिये परमात्मा सदैव आनन्द को प्रदान करता है । यद्यपि परमात्मा का आनन्द सबके सन्निहित है तथापि उसके आनन्द को उद्योगी कर्मयोगी ही लाभ कर सकते हैं । इस अपूर्वता का इस मन्त्र में उपदेश किया गया है ॥१५॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ ।
मदो यो देववीतमः ॥१६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमेश्वर ! आपका (यः) जो (मदः) रस (मधुमत्तमः) अत्यन्त स्वादु तथा (देववीतमः) दिव्यस्वरूप है उसको (राये) हमारे ऐश्वर्य के लिये (पवित्रे) पवित्रान्तःकरणों में (प्रार्ष) प्राप्त कराइये ॥१६॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के आनन्द का अनुसन्धान करते हैं अर्थात् परमात्मा को ध्येय बनाकर उसके आह्लाद से आह्लादित होते हैं वे सब प्रकार से अभ्युदय के पात्र होते हैं ॥१६॥

Scanned by CamScanner

तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् ।

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥

पदार्थः—(तं, हरिं) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का (इन्दुं) जो सबको अपने प्रेम से आर्द्रित करने वाला और (इन्द्राय मत्सरम्) कर्मयोगी के लिये आह्लाद को उत्पन्न करने वाला है (ई वाजिनम्) बलस्वरूप को समृद्धियों में (नदीषु) सम्पूर्ण अभ्युदयों में (आयवः) मनुष्य लोग (मृजंति) अविद्या के परदे को हटा कर बुद्धिविषय बनाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग आवरण को दूर करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे सब प्रकार के अभ्युदयों को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् ।

वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (आपवस्व) हमको सब ओर से पवित्र करें। आप (हिरण्यवत्) सब प्रकार के ऐश्वर्य वाले हैं (अश्वावत्) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं (वीरवत्) विविध प्रकार के वीरों के स्वामी हैं। आप हमको (गोमंतं वाजं) ज्ञान के ऐश्वर्य से (आभर) भरपूर करिये ॥१८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं उनको परमात्मा ज्ञान-विज्ञानादि अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य से परिपूर्ण करता है ॥१८॥

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत ।

इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (मधुमत्तमम्) सर्वोपरि माधुर्य को (परिषिञ्चत) सिंचन करें (अव्यः) सबको रक्षा करने वाले आप (वारेषु) वरणीय पदार्थों में (वाजयुं न) वीरों के समान (वाजे) युद्ध में रक्षा करें ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग कर्मयोगी और उद्योगी बनकर अपने लक्ष्य की पूर्ति में कटिबद्ध रहते हैं परमात्मा वीरों के समान उनकी रक्षा करता है ॥१९॥

Scanned by CamScanner

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः ।
वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥

पदार्थः--(**अवस्यवः**) रक्षा करने वाले (**विप्राः**) मेधावी लोग (**धीभिः**) बुद्धि द्वारा (**मर्ज्यं**) शुद्धस्वरूप तथा (**कविं**) सर्वज्ञ परमात्मा को (**मृजन्ति**) ध्यान का विषय बनाते हैं, वह परमात्मा (**वृषा**) जोकि कामनाओं की वृष्टि करने वाला है, एवंभूत ईश्वर (**कनिक्रत्**) वेदवाणी को प्रदान करता हुआ (**क्षरति**) आनन्द की वृष्टि करता है ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग संस्कृतबुद्धि द्वारा उसका ध्यान करते हैं उनको परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इसी लिये उपनिषद् में कहा है कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि सूक्ष्मदर्शी लोग सूक्ष्मबुद्धि द्वारा उसके साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ॥२०॥

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।
मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥

पदार्थः—(**विप्राः**) मेधावीजन (**वृषणं**) कामनाओं की वृष्टि कराने वाले (**सोमं**) परमात्मा को (**धीभिः**) शुद्ध बुद्धि द्वारा (**मती**) स्तुति से तथा (**ऋतस्य धारया**) सत्य की धारणा से (**समस्वरन्**) बुद्धिविषय करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र से परमात्मा के साक्षात्कार करने का उपदेश किया है ॥२१॥

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥

पदार्थः—(**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप मुझको (**पवस्व**) पवित्र करें । (**ते**) आपका (**मदः**) परम आनन्द (**आयुषक्**) उपासक (**इन्द्रं**) कर्मयोगी पुरुष को (**गच्छतु**) प्राप्त हो। तथा आप (**वायुं**) ज्ञानयोगी पुरुष को (**धर्मणा**) उपास्य भाव से (**आरोह**) प्राप्त हों ॥२२॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोगी वा कर्मयोगी बनकर परमात्मा के उपासक बनते हैं परमात्मा उन्हें तद्धर्मतापत्तियोग द्वारा पवित्र करता है। अर्थात् अपने शिष्यादि भावों को प्रदान करके उनको शुद्ध करता है ॥२२॥

Scanned by CamScanner

पव॑मान॒ नि तो॑शसे र॒यिं सो॑म श्र॒वाय्य॑म् ।
प्रि॒यः स॑मु॒द्रमा वि॑श ॥२३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले ! (**सोम**) हे परमात्मन् ! जो आप (**श्रवाय्यं, रयिम्**) दुष्टों के धनों को (**नि तोशसे**) भली-भाँति नष्ट करते हैं वह (**प्रियः**) आनन्ददाता आप (**समुद्रं**) आर्द्रीभूत हमारे अन्तःकरण में (**आविश**) विराजमान हों ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के रौद्रभाव का वर्णन किया है। जैसा कि "भयं वज्रमुद्यत" इस उपनिषद्वाक्य में परमात्मा के वज्र को भयरूप से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार यहां परमात्मा का स्वरूप दुष्टों के प्रति भयप्रद वर्णन किया है ॥२३॥

अ॒प॒घ्नन्प॑वसे॒ मृधः॑ क्रतु॒वित्सो॑म मत्स॒रः ।
नु॒दस्वादे॑वयुं॒ जन॑म् ॥२४॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**मत्सरः**) परम आनन्द देने वाले तथा (**क्रतुवित्**) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। जो आप (**मृध**) दुष्टों को (**अपघ्नन्**) हनन करते हुए (**पवसे**) रक्षा करते हैं वह आप (**अदेवयुं**) दुष्टाचारी (**जनं**) राक्षससमूह को (**नुदस्व**) हनन करिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी परमात्मा के रौद्ररूपका वर्णन किया गया है ॥२४॥

पव॑माना असृक्षत॒ सोमाः॑ शु॒क्रास॒ इन्द॑वः ।
अ॒भि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ॥२५॥

पदार्थः—(**शुक्रासः**) जो बलवान् तथा (**इन्दवः**) दीप्तिमान् है ऐसा (**पवमानाः**) रक्षा करने वाला (**सोमाः**) परमात्मा (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**काव्या**) वेद को (**अभ्यसृक्षत**) प्रकाशित करता है ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का कथन है कि परमात्मा सब ज्ञानों का स्रोत तथा वेद का प्रकाशक है। जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि मन्त्रों में अन्यत्र भी वर्णन किया है कि परमात्मा से ऋगादि वेद उत्पन्न हुए ॥२५॥

Scanned by CamScanner

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।

घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥

पदार्थः—(**अपद्विषः**) अनुचित द्वेषियों को (**घ्नंतः**) नाश करते हुए (**पवमानासः**) देश को पवित्र करने वाले शूरवीर (**आशवः**) अतिशीघ्रता करने वाले (**शुभ्राः**) सुन्दर (**इन्दवः**) ऐश्वर्यशाली (**विश्वाः असृग्रं**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को उत्पन्न करते हैं ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि जो शूरवीर अन्यायकारी दुष्टों का दमन करते हैं वे देश के अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं ॥२६॥

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।

पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥

पदार्थः—जो शूरवीर (**दिवस्परि**) द्युलोक से ऊपर (**अंतरिक्षात्**) अंतरिक्ष और (**पृथिव्याः अधि**) पृथिवी लोक के बीच में (**सानवि**) शूरवीरता धर्म से सर्वोपरि होकर विराजमान हैं वे (**पवमानाः**) स्वयं पवित्र होकर (**असृक्षत**) शुभगुणों को उत्पन्न करते हैं ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम अपने शूरवीरतादि धर्मों से इस संसार के उच्च शिखर पर विराजमान होकर सबकी रक्षा करो ॥२७॥

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः ।

जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥

पदार्थः—हे सौम्य स्वभाव वाले विद्वन् ! आप (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**पुनानः**) हमको पवित्र करते हुए (**विश्वा अपस्रिधः**) सम्पूर्ण धर्मविरोधियों का (**जहि**) नाश करो (**रक्षांसि**) जो राक्षस शुभ कर्मों के नाशक हैं । हे सुक्रतो ! अनाचारियों का नाश करो ॥२८॥

भावार्थः—धीरवीरतादि गुणसम्पन्न शूरवीर दुराचारी राक्षसों का नाश करके देश में सदाचार प्रचार करता है ॥२८॥

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न विद्वन् ! आप (रक्षसः) राक्षसों का (अपघ्नन्) नाश करते हुए (कनिक्रदत्) और शूरवीरता का उपदेश करते हुए (उत्तमं) उत्तम (द्युमंतं) दीप्ति वाला (शुष्मं) बल (अभ्यर्ष) हमको दें ॥२६॥

भावार्थः—जिस देश में सौम्यस्वभाव युक्त शूर वीर उत्पन्न होते हैं, उस देश में सर्वोपरि बल और ऐश्वर्य उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिये धीरवीरतादि गुणों का धारण करना अत्यावश्यक है ॥२६॥

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।

इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ज्ञानविज्ञानादि गुणसम्पन्न विद्वन् ! (सोम) हे परमात्मन् ! आप (पार्थिवा) पृथिवी सम्बन्धी (दिव्यानि) तथा द्युलोक सम्बन्धी (विश्वानि वसूनि) सब रत्न (वार्या) जो वरण करने योग्य हैं, उनको (अस्मे) हमारे लिये (धारय) धारण कराइये ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा ने इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया है कि जो लोग सौम्य स्वभावयुक्त शूरवीरों के अनुयायी होकर देश का परिपालन करते हैं, वे नाना प्रकार के रत्नों का धारण करके ऐश्वर्यशाली होते हैं ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, १२, १३, १५, १७, १६, २२, २४, २६ गायत्री । २, ५, ६, ८–११, १४, १६, २०, २३, २५, २६ निचृद्गायत्री । १८, २१, २७, २८ विराड्गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।

वृषा धर्माणि दधिषे ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (द्युमान्) आप दीप्तिमान् (असि) हैं (वृषा) तथा सब कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं (देव) हे देव ! आप (वृषव्रतः) अर्थात् आनन्द की वृष्टिरूप शील को धारण किये हुए हैं। तथा उपा-

Scanned by CamScanner

सकों के हृदयों को (वृषा) स्नेह से सिञ्चन करते हैं, (वृषा धर्माणि दधिषे) और वर्षणशील धर्मों को धारण किये हुए हैं ॥१॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव हैं। और आपकी मर्यादा से ही सब लोक लोकान्तर स्थिर हैं। आप अपनी धर्ममर्यादा में हमको भी स्थिर कीजिये ॥१॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः ।
सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वृष्णः) वर्षणशील (ते) आपका (मदः) आनन्द (वृषा) वर्षक है। तथा (ते) तुम्हारा (शवः) बल (वृष्ण्यं) वर्षणशील है। और तुम्हारा (वृषा) वर्षणशील (सत्यं) सत्यस्वरूप (वनं) भजन करने योग्य है। और एकमात्र (वृषेत्) वर्षक आपही (असि) उपासना करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में एकमात्र परमात्मा को उपास्य रूप से वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर से भिन्न सत्यादि गुणों का धाम अन्य कोई पदार्थ नहीं है ॥२॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अश्वो न) विद्युत् के समान (सं चक्रदः) शब्दों के देने वाले हैं। और (इन्दो) हे परमेश्वर ! आप (गाः) ज्ञानेन्द्रियों के (समर्वतः) और कर्मेन्द्रियों के (दुरः) द्वारों को (राये) ऐश्वर्यार्थ (नः) हमारे लिये (विवृधि) खोल दें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पर कृपा करता है, उन पुरुषों की ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय की शक्तियों को बढ़ाता है। तात्पर्य यह है कि उद्योगी पुरुष वा, यों कहो कि सत्कर्मी पुरुषों की शक्तियों को परमात्मा बढ़ाता है। आलसी और दुराचारियों की नहीं ॥३॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥४॥

पदार्थः—(सोमासः) सौम्य स्वभाव वाला (वाजिनः) बलरूप (अश्वया) गतिशील तथा (गव्या) प्रकाशस्वरूप (शुक्रासः) ज्ञानस्वरूप (वीरया) वीरों को

Scanned by CamScanner

उत्पन्न करने वाला (आशवः) गतिशील परमात्मा है, उसको, उपासक लोग (प्रासृक्षत) अपना उपास्य बनाते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं, कि हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को अपना उपास्य बनाओ ॥४॥

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।

पवन्ते वारे अव्यये ॥५॥

पदार्थः—(शुंभमानाः) सब भूषणों का भूषक (मृज्यमानाः) सबको शुद्ध करनेवाला (गभस्त्योः) प्रकाशस्वरूप (वारे) वरणीय पदार्थों में (अव्यये) अव्यय रूप से जो विराजमान है, और (ऋतायुभिः) सचाई को चाहने वाले लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा (पवन्ते) उनको पवित्र करता है ॥५॥

भावार्थः—जो लोग सत्य के अभिलाषी हैं, उनको परमात्मा सदैव पवित्र करता है। क्योंकि परमात्मा भक्तों पर और सत्याभिलाषियों पर अपनी कृपा करके उनका उद्धार करता है ॥५॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।

पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६॥

पदार्थः—(ते सोमाः) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (दिव्यानि) द्युलोक के (पार्थिवा) पृथिवी लोक के (अंतरिक्ष्या) अंतरिक्ष लोक के (विश्वा) सब (वसु) धन (दाशुषे) जिज्ञासु वेदानुयायियों को (आ पवन्ताम्) दें ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, परमात्मा उनको सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।

सूर्यस्येव न रश्मयः ॥७॥

पदार्थः—(विश्ववित्) हे सम्पूर्ण संसार के जानने वाले परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) तुम्हारी (सर्गाः) सृष्टियें (प्रासृक्षत) जो रची गई हैं, वे (सूर्यस्येव) सूर्य की (रश्मयः) किरणों के समान (न) इस काल में शोभा को प्राप्त हो रहीं हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा के कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड सूर्य की रश्मियों के समान देदीप्यमान हो रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी

Scanned by CamScanner

ज्योति से अनन्त ब्रह्माण्डों को प्रकाशित करता है, उस प्रकार अन्य भी तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरों को प्रकाश करने वाले परमात्मा की रचना में अनन्त हैं। इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि "कोऽद्धा वेत्ति कमिह प्रवोचत्" इत्यादि मन्त्रों में यह वर्णन किया है कि परमात्मा की रचना के अन्त को कौन जान सकता है। और कौन इसको पूर्ण रूप से कथन कर सकता है ॥७॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।

समुद्रः सोम पिन्वसे ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन् ! (दिवस्परि) द्युलोक के ऊपर (केतुं कृण्वन्) सूर्य तथा चन्द्रमा को आपने केतुरूप बनाया है। और (विश्वा-रूपा) सम्पूर्ण रूपों को (अभ्यर्षसि) पवित्र बनाया है। (समुद्रः) जिससे सब आनन्द मिलते हैं उसका नाम यहाँ समुद्र है (पिन्वसे) वह आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों को हमारे लिये देते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा ने अपनी रचना में सूर्य तथा चन्द्रमा को प्रकाश के केतु बनाकर संसार की शोभा को बढ़ाया है। और आनन्द का सागर होने से परमात्मा का नाम समुद्र है ॥८॥

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।

अक्रान्देवो न सूर्यः ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (देवः) आप प्रकाश-स्वरूप हैं। और (विधर्मणि) सब अधिकरणों का (अक्रान्) आप अतिक्रमण करते हैं। (पवमान) सबको पवित्र करते हुए (वाचमिष्यसि) आप वेदरूपी वाणी की इच्छा करते हैं। (हिन्वानः) आप सर्वप्रेरक हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सूर्य का दृष्टान्त देकर परमात्मा को स्वतः-प्रकाश वर्णन किया है।

यद्यपि वास्तव में सूर्य स्वतःप्रकाश नहीं है, तथापि लोक की प्रसिद्धि से सूर्य को स्वतःप्रकाश मान कर यहां सूर्य का दृष्टान्त दिया गया है। वास्तव में परमात्मा निरपेक्ष स्वतःप्रकाश है ॥९॥

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती ।

सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(इन्दुः) परमात्मा स्वतःप्रकाश है । (पविष्ट) सबको पवित्र करने वाला है । (चेतनः) चिद्रूप है (कवीनां प्रियः) विद्वानों का प्रिय है । (मती) बुद्धि-रूप है । (अश्वं) सर्वोपरि विद्युदादि शक्तियों को (सृजत्) उसने रचा है । और वह परमात्मा (रथीरिव) महारथी के समान तेजस्वी होकर विराजमान है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को चेतनस्वरूप वर्णन करने के लिये चेतन शब्द स्पष्ट आया है । जो लोग यह कहा करते हैं, कि वेद में परमात्मा को ज्ञानस्वरूप कहने वाले शब्द नहीं आते, उनको इस मन्त्र से शिक्षा लेनी चाहिये ॥१०॥

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥

पदार्थः—हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे आनन्द की (ऊर्मिः) लहरें (यः) जो (देवावीः) दिव्य हैं, वे (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरणों में (पर्यक्षरत्) सब ओर से बहती हैं । आप (ऋतस्य) सचाई के (योनिमासीदन्) धाम में निवास करते हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदयों को अपनी सुधामयी वृष्टि से सिंचित कर देता है ॥११॥

स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥१२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (इन्द्राय पीतये) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये आप (आ) सब ओर से (मदः) आनन्द की वृष्टि करें । (यः) जो आनन्द (देववीतमः) देवताओं की तृप्ति करने वाला है और (पवित्रे) पवित्र अन्तः-करणों में जिसका संचार होता है (सः) उस आनन्द को (नः) हम लोगों को (अर्ष) दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा का वह आनन्द जो देवताओं के लिये तृप्तिकारक है, अर्थात् जिसके अधिकारी दिव्य गुण वाले सदाचारी पुरुष हैं, वह आनन्द केवल कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों को ही उपलब्ध हो सकता है, अन्यों को नहीं । इसलिये सबको चाहिये कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बनकर उस आनन्द की प्राप्ति का यत्न करे ॥१२॥

Scanned by CamScanner

इषे पंवस्व धारंया मृज्यमांनो मनीषिभिः।
इन्दों रुचाभि गा इंहि ॥१३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे ऐश्वर्ययुक्त परमात्मन्! आप (इषे) ऐश्वर्य के लिये (पवस्व) हमको योग्य बनाएँ। और (मनीषिभिः) बुद्धिमानों से (अभि मृज्यमानः) उपास्यमान आप (धारया) अपने आनन्द की वृष्टि से (गाः) हमारी इन्द्रियों को पवित्र करें। (रुचा) अपने प्रकाशस्वरूप से (इहि) आकर हमारे अन्तःकरण को पवित्र कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—जो लोग शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करते हैं, परमात्मा उनकी शक्तियों को बढ़ाता है। और उनकी इन्द्रियों को विमल करके ऐश्वर्यप्राप्ति के योग्य बनाता है ॥१३॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनांय गिर्वणः।
हरें सृजान आशिरम् ॥१४॥

पदार्थः—(हरे) हे दुष्टों की शक्तियों को हरने वाले परमात्मन्! आप हमको (वरिवः) ऐश्वर्यसम्पन्न करें। (गिर्वणः) आप वैदिक वाणियों द्वारा उपासना करने योग्य हैं। और (पुनानः) पवित्र करने वाले हैं। आप संसार के लिये (आशिरं) मंगल (सृजानः) करते हुए (जनाय) अपने भक्त के लिये (ऊर्जं) बल (कृधि) करें ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा दुष्टों की शक्तियों को हर लेता है, श्रेष्ठों को अभ्युदय दे कर बढ़ाता है ॥१४॥

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्।
द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को (देववीतये) ब्रह्मप्राप्ति के लिये (याहि) प्राप्त हों (यतः) क्योंकि आप (निष्कृतं द्युतानः) स्वाभाविक दीप्तिमान् हैं तथा (वाजिभिः) उपासक लोगों से उपासना किये जाते हैं। और (पुनानः) सबको पवित्र करते हैं। इसलिये कर्मयोगी का लक्ष्य आपही बनें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मयोगी यहाँ उपलक्षणमात्र है। तात्पर्य यह है कि कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी अथवा अन्य कोई उपासक हो, इन सब को एकमात्र ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिये, किसी अन्य की नहीं ॥१५॥

Scanned by CamScanner

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।
धिया जूता असृक्षत ॥१६॥

पदार्थः—(धिया) संस्कृत बुद्धि से (जूताः) उपासना किया हुआ (आशवः) गतिशील (अच्छ) निर्मल परमात्मा (समुद्र) द्रवीभूत मन में (प्रासृक्षत) ध्यान को लक्ष्य बनाता है। उक्त परमात्मा (इन्दवः) सब प्रकार ऐश्वर्य वाला है। तथा (हिन्वानासः) सबकी प्रेरणा करने वाला है ॥१६॥

भावार्थः—सर्वप्रकाशक और सबका प्रेरक परमात्मा, संयमी पुरुषों के ध्यान का विषय होता है, अन्यों के नहीं ॥१६॥

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१७॥

पदार्थः—उक्त परमात्मा (ऋतस्य योनि) सत्यता के स्थान को (आ) भली-भांति (अग्मन्) प्राप्त होता है। वह परमात्मा (मर्मृजानासः) सबको पवित्र करने वाला है। (आयवः) गतिशील है (इन्दवः) प्रकाशस्वरूप है। तथा (वृथा समुद्रम्) अन्तरिक्ष में भी अनायास गमन करने वाला है ॥१७॥

भावार्थः—उक्त सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा विना परिश्रम के ही अन्तरिक्षादि लोकों में गमन कर सकता है, अन्य नहीं ॥१७॥

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा ।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मयुः) भक्तों को प्राप्त होने वाले आप (नः) हम लोगों के (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) धनों को (ओजसा) बल के सहित (परियाहि) सब ओर से प्राप्त कराइये। और (नः) हम लोगों के (वीरवत्) वीर पुत्रों की और (शर्म) शील की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जो लोग सदाचारी हैं और सदाचार से अपने शील को बनाते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१८॥

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः ।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ऋक्वभिः) ऋत्विक् लोगों से (यत्) जब (वह्निः) हवन की अग्नि (एतशः) जो दिव्य शक्तिसम्पन्न है (मिमाति) प्रज्वलित की जाती है, तब (युजानः) यज्ञ में युक्त होनेवाला परमात्मा जो (समुद्रे) भक्तिभाव से नम्रीभूत अन्तःकरणों में (प्राहितः) स्थिर रहता है, वह (पदं) अपने पद को धारण करता है ।।१९।।

भावार्थः—याज्ञिक लोग जब यज्ञ करते हैं, तब उनके नम्रीभूत अन्तःकरणों में परमात्मा निवास करता है । यज्ञ शब्द के अर्थ यहाँ उपासनात्मक यज्ञ के हैं । यों तो जपयज्ञ, योगयज्ञ, कर्मयज्ञ इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञों में यज्ञ शब्द आता है, जिनके करने वाले ऋत्विक् कहलाते हैं, परन्तु यहां ऋत्विक् शब्द का अर्थ उपासक है । जो ऋतु-ऋतु में अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक भाव में उपासना करते हैं, उनको यहां ऋत्विक् कहा गया है ।।१९।।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति ।

जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥

पदार्थः—(यत्) जब (आशुः) अति गतिशील परमात्मा (ऋतस्य हिरण्ययं योनिं) हिरणमयी यज्ञवेदी को (आसीदति) प्राप्त होता है, तब (अप्रचेतसः) असमाहित लोगों के अन्तःकरणों को (जहाति) छोड़ देता है ।।२०।।

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि ज्ञान से प्रकाशित अंतःकरणों को परमात्मा अपनी शक्ति से विभूषित करता है, अज्ञानावृत अन्तःकरणों को नहीं । इसीलिये यहां "अप्रेचतसः, जहाति" यह लिखा है । वास्तव में परमात्मा न किसी स्थान को छोड़ते हैं, न पकड़ते हैं ।।२०।।

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।

मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१॥

पदार्थः—(प्रचेतसो वेनाः) प्रकृष्ट ज्ञान वाले विज्ञानी लोग (अभ्यनूषत) परमात्मा की उपासना करते हैं और (इयक्षंति) उपासनात्मक यज्ञ से परमात्मा का यजन करते हैं । (अविचेतसः) अज्ञानी लोग (मज्जन्ति) डूबते हैं ।।२१।।

भावार्थः—जो लोग शुद्ध मन वाले हैं, वे परमात्मा के तत्वज्ञान से मुक्ति के भागी होते हैं । और अज्ञानी लोग बार-बार जन्म लेते हैं, और मरते हैं, परन्तु फिर भी परमात्मा के तत्त्व को नहीं पाते । इसी लिये उनका यहाँ डूबना दिखलाया है ।।२१।।

Scanned by CamScanner

इन्द्रा॑येन्दो म॒रुत्व॑ते॒ पव॑स्व॒ मधु॑मत्तमः ।

ऋ॒तस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ॥२२॥

पदार्थः – (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मरुत्वते इन्द्राय) ज्ञानयोगी और कर्मयोगी के लिये (पवस्व) आप अपने आनन्द की वृष्टि करें । क्योंकि आप (मधुमत्तम) आनन्दमय हैं । इस लिये उक्त विद्वानों को आप आनन्द का प्रदान करें । और (ऋतस्य योनिमासदम्) यज्ञवेदी को आकर विभूषित करें ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी और ज्ञानयोगी के हृदयमण्डप को विभूषित करता है, और उनके सत्यव्रतात्मक यज्ञ को सदैव सुशोभित करता है ॥२२॥

तं त्वा॒ विप्रा॑ वचो॒विदः॒ परि॑ष्कृण्वन्ति वे॒धसः॑ ।

सं त्वा॑ मृजन्त्या॒यवः॑ ॥२३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तं त्वा) उक्त गुणसम्पन्न आपको (वचोविदो विप्राः) वेदवाणी के जानने वाले मेधावी लोग (परिष्कृण्वंति) वर्णन करते हैं । और (वेधस आयवः) कर्मकांडी लोग (त्वा) आपको (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं॥२३॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी हैं, तथा योगसाधनरूपी कर्मों द्वारा परमात्मा को अपने ध्यान का विषय बनाते हैं, वे परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं ॥२३॥

रसं॑ ते मि॒त्रो अ॑र्य॒मा पिब॑न्ति॒ वरु॑णः कवे ।

पव॑मानस्य म॒रुतः॑ ॥२४॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सब को पवित्र करने वाले जो आप हैं, ऐसे आपके (रसं) रस को (मित्रः) समदर्शी विद्वान् (वरुणः) विज्ञानादि गुणों से सृष्टि को आच्छादन करने वाले (मरुतः) कर्मयोगिगण (ते कवे) तुम जो सर्वज्ञ हो, ऐसे आपके रस को (अर्यमा) न्यायकारी लोग (पिबन्ति) पान करते हैं ॥२४॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी है, वही उस परमात्मा के आनन्द को पान कर सकता है, अन्य नहीं । तात्पर्य यह है, कि परमात्मा के समान परमात्मा का आनन्द भी सर्वत्र परिपूर्ण है । परन्तु विना उक्त उपदेश से, वा यों कहो, कि सर्वोपरि साधन के विना उसके आनन्द का कोई भी उपभोग नहीं कर सकता । इसी लिये यहां उक्त प्रकार के योगियों का कथन किया है, कि उक्त योगी ही उसके आनन्द को भोगते हैं ॥२४॥

Scanned by CamScanner

त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि ।

इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५॥

पदार्थः—(पुनानः) सबको पवित्र करने वाले ! (सोम) सब के उपास्यदेव परमात्मन् ! (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक ! (त्वम्) तुम (विपश्चितं) ज्ञान-विज्ञान को देने वाली (वाचं) जो वाणी है (सहस्रभर्णसं) और अनन्त प्रकार के भूषणों के समान जिसकी शोभा है, ऐसी वाणी को (इष्यसि) चाहते हो ॥२५॥

भावार्थः—वेदवाणी के समान कोई अन्य भूषण ज्ञानका ज्ञापक नहीं है। वह सहस्रों प्रकार के भूषणों की शोभा को धारण किये हुए है। जो पुरुष इस विद्याभूषण को धारण करता है, वह सर्वोपरि दर्शनीय बनता है ॥२५॥

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् ।

पुनान इन्दवा भर ॥२६॥

पदार्थः—(उतो) और (सहस्रभर्णसं) अनेक प्रकार के भूषणों की शोभा वाली (मखस्युवं) जो विविध प्रकार के धनों को देने वाली है, ऐसी (वाचं) वाणी का (पुनानः) सबको पवित्र करने वाले ! (सोम) परमात्मन् ! (इन्दो) सर्वप्रकाशक! (आभर) हमको सब प्रकार से प्रदान करिये ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा से प्रार्थना है, कि उक्त प्रकार का विद्याभूषण हमको प्रदान करें ॥२६॥

पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।

प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥

पदार्थः—(पुनानः) हे सब को पवित्र करने वाले ! (पुरुहूत) सर्वपूज्य ! (इन्दो) सर्वप्रकाशक ! (प्रियः) सब के प्रिय परमात्मन् ! (एषां जनानां) इन उपासक पुरुषों के (समुद्रं) द्रवीभूत अन्तःकरण को (आविश) अपनी अभिव्यक्ति से शुद्ध करिये ॥२७॥

भावार्थः—जो लोग विद्या और विनय से सम्पन्न हैं, उनके अन्तःकरण को परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ॥२७॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।

सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सोमाः**) सर्वोत्पादक (**शुक्राः**) बलस्वरूप (**गवाशिरः**) इन्द्रियागोचर परमात्मा (**वविद्युतत्या**) अपनी उज्ज्वल ज्योति से (**रुचा**) जो ज्ञानदीप्ति वाली है (**परिस्तोभंत्या**) और जो सर्वोपरि शोभा वाली है (**कृपा**) ऐसी कृपादृष्टि से हमारा कल्याण करें ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा जिन लोगों पर अपनी कृपादृष्टि करता है, उनका कल्याण अवश्यमेव होता है ॥२८॥

हिन्वानो हेतृभिर्यत वाजं वाज्यक्रमीत् ।

सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥

पदार्थः—(**हेतृभिः**) उपासक लोगों से (**हिन्वानः**) उपासना किया हुआ परमात्मा (**यतः**) अपने प्रयत्न से (**वाजी**) सर्वोपरि बलवाला (**वाजं**) बल को (**अक्रमीत्**) जीतता है (**वनुषः**) मनुष्य (**सीदंतः**) युद्ध में प्रविष्ट होकर (**यथा**) जैसे अन्य बलों को जीतता है, इस प्रकार परमात्मा सब बलों को जीतता है ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा ने इस मन्त्र में बल का उपदेश किया है, कि जिस प्रकार योद्धा सेनापति अपने बल के गर्व से अन्य सेनाधीशों को जीत कर स्वाधीन कर लेता है, इसी प्रकार सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को अपने वशीभूत किये हुए हैं ॥२९॥

ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।

पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥

पदार्थः—(**ऋधक् सोम**) हे अद्वितीय परमात्मन् ! आप (**संजग्मानः**) सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा (**दिवः**) प्रकाशस्वरूप हैं । (**कविः**) सर्वज्ञ हैं । आप (**स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिये (**पवस्व**) हमको पवित्र करें (**सूर्यः**) हे परमात्मन् ! (**दृशे**) ज्ञानकी वृद्धि के लिये आप हमारे हृदय में आकर विराजमान हों ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञान का उपदेश किया है कि हे उपासक जनो ! आप अपने ज्ञानकी वृद्धि के लिये सर्वोपरि शक्ति से अपने मंगलकी उपासना सदैव करते रहें ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६४वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेद के ९वें मण्डल में ७वें अष्टक का पहला
अध्याय समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

* ओ३म् *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।

यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥१॥

—: ❀ :—

अथ त्रिंशदृचस्य पंचषष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४, २६ गायत्री । २, ११, १४, १५, २६, ३० विराड्गायत्री । ३, ६ ८, १६, २०, २७, २८ निचृद्गायत्री । ४, ५ पादनिचृद्गायत्री । १७,२३ ककुम्मती गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब परमात्मा का ध्यानविषय निरूपण करते हैं ॥

हि॒न्वन्ति॒ सूर॒मुस्र॑यः॒ स्वसा॑रो जा॒मय॒स्पति॑म् ।

म॒हामिन्दुं॑ मही॒युवः॑ ॥१॥

पदार्थः—(पतिं) जो सबका रक्षक है, तथा (महामिन्दुं) सर्वोपरि जो सब-प्रकाशक है (सूरं) ऐसे परमात्मा को (स्वसारः) बुद्धिवृत्तियाँ (जामयः) ज्ञानरूप बुद्धि-वृत्तियाँ (उस्रयः) परमात्मा को विषय करने वाली (महीयुवः) ब्रह्मविषयिणी उक्त प्रकार की वृत्तियाँ (हिन्वन्ति) उसका साक्षात्कार करतीं हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! तुम जगज्जन्मादिहेतुभूत महाशक्ति को विषय करने वाली संस्कृत बुद्धियों को उत्पन्न करो, ताकि इन्द्रियागोचर उस सूक्ष्मशक्ति का तुम ध्यान द्वारा साक्षात्कार कर सको ॥१॥

पव॑मान रु॒चारु॑चा दे॒वो दे॒वेभ्य॒स्परि॑ ।

विश्वा॒ वसू॒न्या वि॑श ॥२॥

पदार्थः—(देवेभ्यस्परि देवः) जो सब देवों से उत्तम देव है, तथा जो परमात्मा (रुचा रुचा पवमानः) अपनी ज्ञानदीप्ति से सब को पवित्र करता है, ऐसा

Scanned by CamScanner

परमेश्वर (**विश्वा वसूनि**) सब ऐश्वर्यों के साथ (**आविश**) मेरे अन्तःकरण में आकर निवास करे ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वोपरि देव इस लिये कथन किया गया है, कि उस दिव्यशक्ति के आगे सब शक्तियाँ तुच्छ हैं। इसीलिये अन्यत्र भी वेद में कहा गया है कि "एषो देवः प्रदिशोनुसर्वः" यह सर्वोपरि देव सर्वत्र परिपूर्ण है, यहां उसी स्वजातीय विजातीय स्वगतभेदशून्य देव से यह प्रार्थना की गई है, कि हे प्रभो ! आप आकर हमारे हृदयों को शुद्ध करें ॥२॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।

इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सब को पवित्र करने वाले ! आप (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**सुष्टुतिं वृष्टिं**) सुन्दर स्तुति रूप वेद की वृष्टि को (**दुवः**) प्रसन्नता के लिये (**आपवस्व**) दीजिये। और मुझ (**संयतं**) संयमी को (**इषे**) ऐश्वर्य (**आपवस्व**) दीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा संयमी जनों को ऐश्वर्य प्रदान करता है, और जो लोग दिव्यगुणसम्पन्न हैं, उनको ही सुधामयी वृष्टि से परमात्मा सिञ्चित करता है।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा की कृपाओं के पाने के लिये प्रथम मनुष्य को स्वयं पात्र बनना चाहिये। अर्थात् मनुष्य अधिकारी बनके उसके ऐश्वर्यों का पात्र बने ॥३॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

पवमान स्वाध्यः ॥४॥

पदार्थः—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले हे जगदीश ! आप (**भानुना**) अच्छे अर्थ को प्रकाश करने से (**वृषाहि**) अवश्य वेदरूप वाणी की वर्षा करने वाले (**असि**) हैं। (**स्वाध्यः**) अच्छी बुद्धि वाले हम लोग (**द्युमन्तं**) स्वयंप्रकाश (**त्वा**) आप की (**हवामहे**) स्तुति करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, उन्हीं के परिश्रम सफल होते हैं। इस अभिप्राय से यह वर्णन किया है, कि परमात्मा उद्योगी पुरुषों के उद्योगों को सफल करें ॥४॥

Scanned by CamScanner

आ पंवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।

इहो ष्विन्दवा गंहि ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (सुवीर्य) हमारे पराक्रम को (आपवस्व) सब प्रकार से पवित्र करें । (मंदमानः) आप आनन्दस्वरूप हैं । और (स्वायुधः) आप स्वयम्भू हैं (इह उ) यहां ही (सु) भली-भांति (आगहि)हमको आकर अनुग्रहण करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के आह्वान करने का तात्पर्य स्वकर्माभिमुख करने का है, अर्थात् आप हमारे कर्मों के अनुकूल फल प्रदान करें । परमात्मा सर्वव्यापक है, इसलिये एक स्थान से उठकर किसी दूसरे स्थान में जाना उसका नहीं हो सकता । इस प्रकार बुलाने का तात्पर्य सर्वत्र हृदयदेश में अवगत करने का समझना चाहिये, कुछ अन्य नहीं ॥५॥

यदुद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः ।

द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥६॥

पदार्थः—(यत्) जिस कारण आप (अद्भिः) सत्कर्मों से (परिषिच्यसे) पूजित होते हैं, अतः (गभस्त्योः मृज्यमानः) स्वशक्तियों से जो शुद्ध है, और (द्रुणा) अपनी शक्ति से (सधस्थं) जीवात्मा को (अश्नुषे) व्याप्त करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष सत्कर्म करता है, उसकी आत्मा को परमात्मा स्वशक्तियों से विभूषित करता है ॥६॥

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत ।

महे सहस्रचक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(व्यश्ववत्) कर्मयोगी के समान (सहस्रचक्षसे) अनन्त शक्ति सम्पन्न (सोमाय) परमात्मा को (प्रगायत) आप लोग गान करें जो परमात्मा (महे) सर्वपूज्य और (पवमानाय) सब को पवित्र करने वाला है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम उस पूर्ण पुरुष की उपासना करो, जो सर्वशक्तिसम्पन्न और सब संसार का हर्ता, धर्ता तथा कर्ता है । इसी अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि सूर्य चन्द्रमा आदि सब पदार्थों का कर्ता एकमात्र परमात्मा है ॥७॥

Scanned by CamScanner

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥

पदार्थः—(यस्य) जिस परमात्मा का (वर्णं) स्वरूप (मधुश्चुतं) आनन्द देने वाला है, उस (हरिं) पाप को हरण करने वाले (इन्दुं) स्वतःप्रकाश परमात्मा को (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (हिन्वन्ति) उपासक लोग ध्यान का विषय बनाते हैं। (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पीतये) तृप्ति के लिये इसी प्रकार की उपासना उचित समझनी चाहिये, अन्य नहीं ॥८॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निरोध करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे ही कर्मयोगी कहला सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

सखित्वमा वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! जो आप (विश्वा) सम्पूर्ण (धनानि) धन (जिग्युषः) स्वाधीन करने वाले हैं (तस्य ते) उस आप के (सखित्वं) मैत्रीभाव को (वाजिनः) हम उपासक लोग (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के साथ मैत्रीभाव का उपदेश है। तात्पर्य यह है, कि जो सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से मित्रता का भाव रखते हैं, वे लोग परमात्मा के प्रियगुणों को अपने में अवश्यमेव धारण करते हैं ॥९॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

विश्वा दधान ओजसा ॥१०॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (वृषा) आप सब कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पवस्व) हमको पवित्र करें। (मरुत्वते) ज्ञान और क्रियाकुशल विद्वानों के लिये (मत्सरः) आप आनन्दमय हैं (च) और (विश्वाः) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों को (ओजसा) अपने आत्मिकबल से (दधानः) आप धारण किये हुए हैं ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें दुःख का लेश भी नहीं। उसके आनन्द को ज्ञानी तथा विज्ञानी कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥१०॥

Scanned by CamScanner

तं त्वां धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।

हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११॥

पदार्थः—(**ओण्योः**) द्युलोक और पृथिवी लोक के (**धर्तारं**) धारण करने वाले जो आप हैं (**तं त्वां**) उक्त गुणसम्पन्न आप को (**पवमान**) जो सब को पवित्र करने वाले और (**स्वःदृशं**) जो सब लोकलोकान्तरों के ज्ञाता हैं, ऐसे (**वाजिनं**) सर्वशक्ति-सम्पन्न आप को (**वाजेषु**) सब यज्ञों में (**हिन्वे**) हम लोग आह्वान करते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो लोग योगयज्ञ, ध्यानयज्ञ, विज्ञानयज्ञ, संग्रामयज्ञ और ज्ञानयज्ञ इत्यादि सब यज्ञों में एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते हैं, वे लोग अवश्यमेव कृतकार्य होते हैं। तात्पर्य यह है, कि परमात्मा की सहायता विना किसी भी यज्ञ की पूर्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्यों को चाहिये, कि वे सदैव परमात्मा की सहायता लेकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करें ॥११॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।

युजं वाजेषु चोदय ॥१२॥

पदार्थः—(**हरिः**) हे सम्पूर्ण बलों को स्वाधीन रखने वाले परमात्मन् ! आप (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से हमको (**पवस्व**) पवित्र करें। जो आनन्द की वृष्टि (**चित्तः**) अद्भुत है (**अया**) और कर्मशीलता देने वाली है। और (**विपा**) शुभकार्यों में प्रेरणा करने वाली है, (**अनया**) उससे (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें (**वाजेषु**) यज्ञों में (**युजं**) युक्त मुझको (**चोदय**) सत्कर्म की प्रेरणा करें ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मी बनने के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुभकर्मों में लगाता है ॥१२॥

आ नं इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः ।

अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (**विश्वदर्शतः**) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक हैं और (**महीमिषं**) सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**अस्मभ्यं**) हम लोगों के (**गातुवित्**) सम्पूर्ण ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता हैं (**नः**) हमको (**आपवस्व**) सब प्रकार से पवित्र करिए ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि, हे मनुष्यो ! तुमको अपनी पवित्रता की प्रार्थना केवल उसी देव से करनी चाहिये, जो सब ब्रह्माण्डों का ज्ञाता और सर्वोत्पादक है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा ।

एन्द्रस्य पीतये विश ॥१४॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (धाराभिः) आनन्द की वृष्टि द्वारा (इन्द्रस्य पीतये) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (कलशाः) उसके अन्तःकरण में (आविश) सब ओर से प्रवेश करें । और (ओजसा) अपने प्रकाश से कर्मयोगी को (अनूषत) विभूषित करें ॥१४॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म करने में तत्पर रहते हैं, अर्थात् उद्योगी हैं, परमात्मा उनको अपने प्रकाश से परमोद्योगी बनाता है ॥१४॥

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।

स पवस्वाभिमातिहा ॥१५॥

पदार्थः—(यस्य) जिस (ते) आपके (मद्यं) आह्लादकारक (तीव्रं) उत्कट (रसं) रस को कर्मयोगी लोग (अद्रिभिः) उद्योग रूप शक्तियों से (दुहन्ति) पूर्ण रूप से दुहते हैं, (सः) वह (अभिमातिहा) विघ्नों के हनन करने वाले आप (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥१५॥

भावार्थः—कर्मयोगियों के सब विघ्नों को हनन करने वाला परमात्मा, उनके उद्योग को सफल करता है ॥१५॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।

अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६॥

पदार्थः—(राजा) परमात्मा (मेधाभिः) बुद्धि से (ईयते) प्राप्त होता है । (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है, (मनावधि) यज्ञों में पवित्रता देने वाला है तथा (अन्तरिक्षेण यातवे) परलोक यात्रा में सहायक है ॥१६॥

भावार्थः—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक इत्यादि सब यज्ञों में परमात्मा ही यज्ञदेव है, और याजकों को पवित्र करने वाला है । तथा परलोकयात्रा में जीव का एकमात्र सहारा परमात्मा ही है । उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा की उपासना एकमात्र संस्कृत बुद्धि द्वारा ही करनी चाहिये ॥१६॥

आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।

वहा भगत्तिमूतये ॥१७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (भर्गात्त) हमारी भक्ति की (ऊतये) रक्षा के लिये हे परमात्मन् ! (न आवह) आप हमको प्राप्त हों। और (गवां) इन्द्रियों की (शतग्विनं) सहस्रगुणी (पोषं) पुष्टि को (स्वश्वं) जो गतिशील है, ऐसी पुष्टि आप हमको दें ।।१७।।

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की अनन्य भक्ति करते हैं, परमात्मा उनकी सब प्रकार से रक्षा करता है। और उनकी इन्द्रियों को सहस्र प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न करता है। अर्थात् ज्ञान विज्ञानादि शक्तियों से उनकी सहस्र प्रकार की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। इसी का नाम इन्द्रियों की सहस्र-शक्ति है ।।१७।।

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।

सुष्वाणो देववीतये ।।१८।।

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (नः) हमको (आभर) सब प्रकार के अभ्युदयों से आप भरपूर करें। आप सबके (सुस्वानः) उत्पत्तिस्थान हैं। और (सहः) शत्रुबलनाशक (जुवः) शीघ्रगतिवाले आप (वर्चसे) प्रकाश के लिये (रूपं न) रूप हमको दें ।।१८।।

भावार्थः—परमात्मा जिन पुरुषों में दैवी सम्पत्ति के गुण देता है, उनको तेजस्वी बनाता है। और सब प्रकार के ऐश्वर्यों का भण्डार बनाकर उनको सर्वोपरि बनाता है ।।१८।।

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।

सीदञ्छ्येनो न योनिमा ।।१९।।

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (श्येनः) विद्युत् के (न) समान गतिशील हैं। (द्रोणानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में (रोरुवत्) गतिशील होकर आप सर्वत्र विराजमान हैं। और (द्युमत्तमः) आप स्वयंप्रकाश हैं। (योनिं) हमारे हृदय-स्थान में (आसीदन्) विराजमान होकर (अभ्यर्ष) हमारे हृदय को शुद्ध करें ।।१९।।

भावार्थः—परमात्मा स्वयंप्रकाश है, और उसी के प्रकाश से सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं ।।१९।।

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।

सोमो अर्षति विष्णवे ।।२०।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सोमः) सर्वपूज्य परमात्मा (इंद्राय वायवे) कर्मयोगी विद्वानों के लिये (मरुद्भ्यः) पदार्थविद्यावेत्ता विद्वानों के लिये (वरुणाय) अपने विद्या बल से सबको आच्छादन करने वाले विद्वान् के लिये और (विष्णवे) ज्ञानयोगी विद्वान् के लिये (अप्सा अर्षति) अपनी ज्ञानरूपी गति से प्राप्त होता है ॥२०॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोग कर्मयोग इत्यादि योगों से परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, उनको परमात्मा अपनी ज्ञानगति से अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२०॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (तोकाय) संतानों के लिये (सहस्रिणं) अनन्त प्रकार के धन (विश्वतः) सब ओर से (दधत्) धारण कराएँ । और (अस्मभ्यं) हमको सब प्रकार का ऐश्वर्य दें । तथा (आपवस्य) सब प्रकार से पवित्र करें ॥२१॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा से अभ्युदय-प्राप्ति की प्रार्थना की गई है ॥२१॥

अब सोमनामक परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥२२॥

पदार्थः—(ये सोमासः) जो सौम्यस्वभाव वाले विद्वान् (परावति) परब्रह्मरूप शक्ति में और (ये) जो (अर्वावति) प्रकृतिरूप शक्ति में, (ये) जो (वा) और (अदः शर्यणावति) इस संसार रूप शक्ति में, (सुन्विरे) निपुण किये गए हैं, इन सब विद्वानों को परमात्मा पवित्र करें ॥२२॥

भावार्थः—इस मंत्र का यह तात्पर्य है, कि परमात्मा सब प्रकार के विद्वानों को पवित्र करता है ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥

पदार्थः—(**ये**) जो विद्वान् (**आर्जीकेषु कृत्वसु**) सत्कर्मों में और (**ये**) जो विद्वान् (**पस्त्यानां मध्ये**) गृहकर्मों में चतुर हैं, (**ये वा**) और जो (**जनेषु पञ्चसु**) पांच प्रकार के मनुष्यों में शिक्षा दे सकते हैं, वे सब हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥२३॥

भावार्थः—इस मंत्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन किया है। पांच प्रकार के मनुष्यों की विद्या का तात्पर्य यहां यह है कि, जो विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में उपदेश कर सकते हैं, और पांचवें उन मनुष्यों में जो सर्वथा असंस्कारी हैं, अर्थात् दस्युभाव को प्राप्त हैं, इन सबको सुधार सकते हैं, वे प्रजा के लिये सदैव कल्याणकारी होते हैं ॥२३॥

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।

सुवाना देवास इन्दवः ॥२४॥

पदार्थः—(ते) वे विद्वान् (नः) हमारे लिये (**वृष्टिं**) वृष्टि को (**दिवस्परि**) द्युलोक से बरसायें। (इंदवः) ऐश्वर्य वाले (**देवासः**) दिव्य गुण सम्पन्न विद्वान् (**सुवीर्यं**) पराक्रम को (**सुवानाः**) पैदा करते हुए (**आपवन्तां**) हमको सब प्रकार से पवित्र करें ॥२४॥

भावार्थः—द्युलोक से वृष्टि करने का तात्पर्य यहां हिमालय आदि-दिव्य स्थानों से जल की धाराओं से सींच देने का है। जो विद्वान् व्यवहार विषय के सब विद्याओं के वेत्ता होते हैं, वे अपने विद्याबल से प्रजा में सुवृष्टि करके अद्भुत पराक्रम को उत्पन्न कर देते हैं। उक्त विद्वानों से शिक्षा लेकर सुरक्षित होने का उपदेश परमात्मा ने किया है ॥२४॥

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।

हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥

पदार्थः—(**हरिः**) परमात्मा (**हर्यतः**) विद्वानों को चाहने वाला (**जमदग्निना**) अंतःचक्षुसे (**गृणानः**) ग्रहण किया हुआ जो (**अधित्वचि**) शरीर में (**गोः**) इन्द्रियों की (**हिन्वानः**) रचना करने वाला है, वह (**पवते**) ज्ञान द्वारा हमको पवित्र करता है ॥२५॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा से इस बात की प्रार्थना की है, कि आप सर्वोपरि विद्वान् उत्पन्न करके हमारा कल्याण करें ॥२५॥

Scanned by CamScanner

प्र शुक्रासों वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृंञ्जत ॥२६॥

पदार्थः—(शुक्रासः) वीर्यवाले (वयोजुवः) अन्नादिकों की विद्या जानने वाले (श्रीणानाः) विद्या द्वारा संस्कृत हुए उक्त प्रकार के विद्वान् ऋत्विक् लोगों द्वारा (मृंजत) वरण किये जाते हैं। (न) जैसे कि (अप्सु हिन्वानासः) जलों में शुद्ध किये हुए (सप्तयः) इन्द्रियों के सात द्वार (प्र) शुभ गुणों को देते हैं ॥२६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे जीवो ! जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के सप्तद्वार जल में शुद्ध किये हुए सुन्दर ज्ञान के साधन बनते हैं, इसी प्रकार यज्ञों में वर्णन किये हुए विद्वान् ज्ञान द्वारा तुम्हारे कल्याणकारी होते हैं ॥२६॥

तं त्वां सुतेष्वाभुवों हिन्विरे देवतांतये ।
स पंवस्वानयां रुचा ॥२७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तं) उक्त गुणसम्पन्न (त्वा) आपको (सुतेषु) सुन्दर करने वाले यज्ञों में (आभुवः) ऋत्विक् लोग (देवतातये) विघ्नों के विनाश के लिये (हिन्विरे) आपकी उपाससा करते हैं। (सः) वह उक्तगुणसम्पन्न आप (अनया रुचा) पूर्वोक्त ज्ञान की शक्ति से (पवस्व) हमको पवित्र करें ॥२७॥

भावार्थः—जो परमात्मा अपने ज्ञानप्रदीप से भक्तों के हृदय को पवित्र करते हैं, वे हमारे अन्तःकरण को पवित्र करें ॥२७॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८॥

पदार्थः—(मयोभुवं) जो सब सुखों के देने वाले आप हैं, (पुरुस्पृहं) जो सब पुरुषों में भजनीय हैं (पांतं) सर्वरक्षक हैं, (दक्षं) सर्वज्ञ हैं, (वह्नि) प्रकाशस्वरूप हैं, उक्तगुण सम्पन्न (ते) आपको (अद्य) आज (आवृणीमहे) हम सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो उपासक उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा की उपासना करते है, वे सब प्रकार से शुद्ध होकर परमात्मभाव को प्राप्त होते हैं ॥२८॥

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मंनीषिणम् ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे परमात्मन् ! **(मंद्रं)** जो आप सर्वोपरि स्तुति करने योग्य हैं, **(वरेण्यं)** वरण करने योग्य हैं, **(विप्रं)** मेधावी हैं, **(मनीषिणं)** मन के स्वामी हैं, **(पुरुस्पृहं)** सब पुरुषों से कामना करने योग्य हैं, **(पांतं)** सब के रक्षक हैं, ऐसे आपको **(आ)** "आवृणीमहे" हम लोग सब प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥२९॥

भावार्थः—उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा का वरण करना, अर्थात् सब प्रकार से स्वीकार करना इस मन्त्र में बताया गया है। "आ" शब्द यहाँ प्रत्येक गुणसम्पन्न परमात्मा को भली भाँति वर्णन करने के लिये आया है ॥२९॥

आ र॒यिमा सु॑चे॒तुन॒मा सु॑क्रतो त॒नूष्वा ।

पान्त॒मा पु॑रु॒स्पृह॑म् ॥३०॥

पदार्थः—**(सुक्रतो)** हे सर्वयज्ञाधिपते परमात्मन् ! आप **(रयिं)** धन का **(सुचतनं)** और सुन्दर ज्ञान को **(तनूषु)** हमारी संतानों में **(आ)** सब प्रकार से दें। आप **(पुरुस्पृहं)** सबके उपास्य देव हैं। **(पांतं)** सबको पवित्र करने वाले हैं **(सुक्रतो)** हे शोभन कर्मों वाले परमात्मन् ! आप ही हमारे उपास्यदेव हैं ॥३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सर्वरक्षक पतितपावन परमात्मा के गुणों का वर्णन किया गया है। और उसको एकमात्र उपास्यदेव माना है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह ६५वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिंशदृचस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—३० शतं वैखानसा ऋषिः ॥ १—१८, २२—३० पवमानः सोमः । १९–२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्गायत्री । २, ३, ५–८, १०, ११, १३, १५—१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४, २२, २७ विराड् गायत्री । ९, १२, २१, २८, २९ निचृद्गायत्री १८ पादनिचृदनुष्टुप् । स्वरः—१—१७, १९–३० षड्जः । १८ गान्धारः ॥

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

पव॑स्व विश्वचर्षणे॒ऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।

सखा॒ सखि॑भ्य॒ ईड्यः॑ ॥१॥

पदार्थः—**(विश्वचर्षणे)** हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! **(विश्वानि, काव्या)** सम्पूर्ण कवियों के भाव को **(अभि)** सब ओर से प्रदान करके हमको आप **(पवस्व)** पवित्र

Scanned by CamScanner

करें । और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये आप (सखा) मित्र हैं (ईड्यः) तथा सर्व-पूज्य हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा से मित्र के समान प्रेम करते हैं, अर्थात् जिनको परमात्मा मित्र के समान प्रिय लगता है, उनको परमात्मा कवित्व की अद्भुत शक्ति देता है ॥१॥

ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी ।

प्रतीची सोम तस्थतुः ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (ताभ्यां) ज्ञान और कर्म दोनों द्वारा (विश्वस्य) सम्पूर्ण विश्व का (राजसि) प्रकाश करते हैं । (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (ये धामनी) जो ज्ञान कर्म (प्रतीची) प्राचीन हैं, वे (तस्थतुः) हममें विराजमान हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों में विराजमान है । ज्ञान, क्रिया और बल, यह तीनों प्रकार के उसके प्राचीन धाम है, जिनसे वह सबको प्रेरणा करता है ॥२॥

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।

पवमान ऋतुभिः कवे ॥३॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन्! (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले! आप (ऋतुभिः)वसन्तादि ऋतुओं के परिवर्तन से संसार में नये-नये भाव उत्पन्न करते हैं । और (यानि, ते) जो तुम्हारे (धामानि)लोकलोकान्तर (परि) सब ओर हैं, उनको (विश्वतः) सब प्रकार से (सोमासि) आप उत्पन्न करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उत्पत्ति, स्थिति, तथा प्रलय तीनों प्रकार की क्रियाओं का हेतु है । अर्थात् उसी से संसार की उत्पत्ति, और उसी में स्थिति और उसी से प्रलय होता है ॥३॥

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या ।

सखा सखिभ्य ऊतये ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (विश्वानि) सब पदार्थ (वार्या) वरणीय (अभि) सब ओर से आप हमें दें । और (इषः) ऐश्वर्य को (जनयन्) पैदा करते हुए (पवस्व)आप हमको पवित्र करें (सखिभ्यः) मित्रों की (ऊतये) रक्षा के लिये (सखा) आप मित्र हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें सब प्रकार के आनन्दों से विभूषित करता है ॥४॥

तव॑ शु॒क्रासो॑ अ॒र्चयो॑ दि॒वस्पृ॒ष्ठे वि त॑न्वते ।

प॒वित्रं॑ सोम॒ धाम॑भिः ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**धामभिः**) आप अपनी शक्तियों से (**पवित्रं**) पवित्र हैं । (**तव**) तुम्हारी (**शुक्रासः**) बल वाली (**अर्चयः**) प्रकाश की लहरें (**दिवस्पृष्ठे**) द्युलोक के ऊपर (**वितन्वते**) विस्तृत हो रहीं हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की ज्योति सर्वत्र दीप्तिमती है, उसके प्रकाश से एक रेणु भी खाली नहीं । द्युलोक में उसका प्रकाश इस प्रकार फैला हुआ है, जैसे मकड़ी के जाले के तन्तुओं के आतान-वितानका पारावार नहीं मिलता, इसी प्रकार उसका पारावार नहीं ॥

अथवा यों कहो कि मयूरपिच्छ की शोभा के समान उसके द्युलोक की अनन्त प्रकार की शोभा है । जिसको परमात्मज्योति ने देदीप्यमान किया है ॥५॥

तवे॒मे स॒प्त सिन्ध॑वः प्र॒शिषं॑ सोम॒ सिस्र॑ते ।

तुभ्यं॑ धावन्ति धे॒नवः॑ ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**तव**) तुम्हारे (**इमे**) ये (**सप्त सिन्धवः**) सात प्रकार के (**धेनवः**) वाणियों के प्रवाह (**प्रशिषं**) प्रशासन को (**सिस्रते**) अनुसरण करते हैं । और (**तुभ्यं**) तुम्हारे लिये ही (**धावन्ति**) प्रतिदिन गमन करते हैं ॥६॥

भावार्थः परमात्मा के शासन में वेदादिवाणियों के प्रवाह बहते हैं । अथवा यों कहो, कि ज्ञानेन्द्रियों के सप्तछिद्रों द्वारा प्राण सिन्धु के समान प्रतिक्षण क्रिया को प्राप्त हो रहे हैं । अथवा यों कहो, कि सम्पूर्ण भूत, सिन्धु, आदि नदियों के समान उसी से निकल कर उसी के स्वरूप में प्रतिदिन स्रवित होते हैं ॥६॥

प्र सो॑म याहि॒ धार॑या सु॒त इन्द्रा॑य मत्स॒रः ।

दधा॑नो॒ अक्षि॑ति॒ श्रवः॑ ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**धारया**) आनन्द की वृष्टि से (**प्रयाहि**) आप हमको आकर प्राप्त हों । आप (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य के लिये (**सुतः**) प्रसिद्ध हैं, और

Scanned by CamScanner

(मत्सरः) आनन्दस्वरूप हैं, तथा (अक्षिति) अक्षय (श्रवः) यशको (दधानः) आप धारण किये हुए हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा का यश अक्षय है, इस लिए अन्यत्र भी वेदने वर्णन किया है, कि "यस्य नाम महद्यशः' जिसका सबसे बड़ा यश है, वह परमात्मा निराकार भाव से सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥७॥

समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः ।
विप्रमाजा विवस्वतः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (विप्रं) सर्वज्ञ (त्वा) आप को (सप्तजामयः) ज्ञानेन्द्रियों के सात गोलक (धीभिः) बुद्धिद्वारा (समु) भली-भांति (अस्वरन्) शब्द करते हुए (विवस्वतः) यज्ञ कर्ता के (आजा) यज्ञ में (हिन्वतीः) प्रेरणा करते हैं ॥८॥

भावार्थः—उपासक लोग बुद्धिवृत्तियों द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। वा यों कहो कि यमनियमादि सात अंगों द्वारा समाधिकी सिद्धि करते हैं। अर्थात् समाधि साध्य पदार्थ है, और सात उसके साधन हैं ॥८॥

मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि ।
रेभो यदज्यसे वने ॥९॥

पदार्थः—हे जगदीश ! (रेभः) शब्दगम्य (त्वा) आपको (अग्रुवः) कर्मयोगी जन (अव्ये) रक्षक तथा (अधिष्वणि) शब्दगम्य और (जीरौ) शत्रुनाशक (वने) भजनीय आपको (यत्) जब (संमृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं, तब आप (अज्यसे) उनके साक्षात्कार के विषय होते हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वरक्षक परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है, कि कर्मयोगी लोग अपने कर्मण्यतायोग से परमात्मपरायण होकर, परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥९॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१०॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ ! (वाजिन्) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (ते) आप की (सर्गाः) अनन्त प्रकार की सृष्टियें इस प्रकार (असृक्षत) उत्पन्न होतीं हैं (न) जैसे कि (अर्वन्तः) विद्युत् शक्तियां अनेक प्रकार से (श्रवस्यवः) प्रवाहित होतीं हैं ॥१०॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को निमित्तकारण वर्णन किया है, कि परमात्मा इस सृष्टि का निमित्तकारण है, उपादान कारण प्रकृति है, और निमित्तकारण परमात्मा है, इसी से यहां विद्युत् का दृष्टान्त दिया है ॥१०॥

यहाँ सर्वाधिकरणत्व से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।

अवावशन्त धीतयः ॥११॥

पदार्थः—जिस परमात्मा ने इस संसार को (अच्छ) निर्मल और (कोशं) सर्वनिधान तथा (मधुश्चुतं) आनन्ददायक (असृग्रम्) रचा है उसी (अव्यये) अविनाशी तथा (वारे) वरणीय परमात्मा में (धीतयः) सृष्टियें (अवावशंत) निवास करतीं हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र सब लोकलोकान्तरों का अधिकरण है ॥११॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।

अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥

पदार्थः—(धेनवो न) जैसे वेदवाणियां (अस्तं) स्थानरूप (समुद्र) जिससे शब्द उत्पन्न होते हैं, ऐसे (अच्छ) निर्मल परमेश्वर को (आग्मन्) भली भांति प्राप्त होतीं हैं, उसी प्रकार (इन्दवः) प्रकाश करने वाली (गावः) सत्कर्मियों की इन्द्रियवृत्तियाँ (ऋतस्य योनिं) सत्य स्थान परमात्मा को भली भांति प्राप्त होतीं हैं ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र से यह सिद्ध किया है, कि परमात्मा एकमात्र शब्दगम्य है। अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा की वेदवाणी ही उसको विषय करती है। अन्य प्रमाणों का विषय सुगमता से परमात्मा नहीं ॥१२॥

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।

यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥

पदार्थः—(नः) हमारे (महे रणे) ज्ञानरूप यज्ञ के लिये (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन्! आपने (गोभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हमारे शरीर का (वासयिष्यसे) निर्माण किया है। और (यत्) जब (सिंधवः) स्यन्दनशील कर्मेन्द्रियाँ (आपः) कर्मों को (प्रार्षन्ति) प्राप्त होतीं हैं, तब हमारे इस बृहत् यज्ञ की पूर्ति होती है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञान और कर्म का समुच्चय कथन किया है, कि जब ज्ञान और कर्म दोनों मिलते हैं, तब ही यज्ञ की पूर्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥१३॥

अस्यं ते सख्ये वयमियंक्षन्तस्त्वोतंयः ।

इन्दों सखित्वमुंश्मसि ॥१४॥

पदार्थः—(अस्य ते सख्ये) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट आपके मैत्रीभाव में (वयं) हम लोग (इयक्षंतः) आपका यजन करते हैं। (त्वोतयः) आप से सुरक्षित हुए हम लोग (इन्दो) हे प्रकाशरूप परमात्मन् ! आपकी (सखित्वं) मित्रता को (उश्मसि) चाहते हैं ॥१४॥

भावार्थः—परमात्मा के साक्षात्कार से जब मनुष्य अत्यन्त सन्निहित हो जाता है, तव ब्रह्म के सत्यादि गुणों के धारण करने से उसमें ब्रह्मसाम्य हो जाता है। उसी का नाम ब्रह्ममैत्री है। इसी भाव का कथन इस मन्त्र में किया है, कि हे परमात्मन् ! हम तुम्हारे मैत्रीभाव को प्राप्त हों ॥१४॥

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।

एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (आपवस्व) हमको सव ओर से पवित्र करें (महे) बड़े (नृचक्षसे) ज्ञानकी वृद्धि के लिये और (गविष्टये) इन्द्रियों की शुद्धि के लिये और (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) जठराग्नि में (आविश) प्रवेश करें ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि मैं कर्मयोगी, तथा ज्ञानयोगियों के हृदय में अवश्यमेव निवास करता हूँ। यद्यपि परमात्मा सर्वत्र है, तथापि परमात्मा की अभिव्यक्ति जैसी ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के हृदय में होती है, वैसी अन्यत्र नहीं होती। इसी अभिप्राय से यहां कर्मयोगी के हृदय में विराजमान होना लिखा गया है। इसी अभिप्राय से "वैश्वानरस्तद्धर्मव्यपदेशात्" इस सूत्र में परमात्मा को "वैश्वानर" अग्निरूप से कथन किया गया है ॥१५॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणांमिन्द ओजिष्ठः ।

युध्वा सञ्छश्वंज्जिगेथ ॥१६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (महानसि) बड़े हैं। और (उग्राणां) तेजस्वियों में (ज्येष्ठः) बड़े हैं। (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (ओजिष्ठः)

Scanned by CamScanner

सर्वोपरि ओजस्वी हैं । और आप (युध्वासन्) अपने से प्रतिकूलशक्तियों से युद्ध करते हुए (शश्वत्) निरन्तर (जिगेथ) जीतते हैं ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्यचन्द्रमादिकों की रचना करता है, अर्थात् उत्पत्तिसमय में विनाशरूपी सब विरोधी शक्तियों को जीतता है । इस प्रकार परमात्मा सर्वविजयी कथन किया गया है । किसी युद्धविशेष के अभिप्राय से नहीं ॥१६॥

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः ।

भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (शूरेभ्यः) शूरवीरों से (शूरतरः) अत्यन्त शूरवीर है, और (भूरिदाभ्यः) अत्यन्त, दानशीलों से (मंहीयान्) अत्यन्त दानशील है (चित्) और (उग्रेभ्यः) जो अत्यन्त बल वाले हैं, उनसे (ओजीयान्) अत्यन्त बल वाला है, ऐसे परमात्मा की हम उपासना करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह वर्णन किया है, कि परमात्मा अजर, अमर तथा अविनाशी है । जैसा कि "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि" इत्यादि मन्त्रों में परमात्मा को बलस्वरूप कथन किया गया है । इसी प्रकार इस मन्त्र में भी परमात्मा को बलस्वरूप कथन किया है ॥१७॥

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् ।

वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वम्) तुम को हम (युज्याय) योग्य (सख्याय) सख्य के लिये (वृणीमहे) वरण करें । तुम कैसे हो ? (सूरः) सर्वप्रेरक हो, (इषः) सब ऐश्वर्य देने वाले हो । और (तोकस्य) पुत्र के (तनूनां) शरीर से उत्पन्न पौत्रादिकों के (साता) देने वाले हो । उक्त गुणसम्पन्न आपको (आवृणीमहे) हम भली भाँति स्वीकार करते हैं ॥१८॥

भार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वोपरि मित्ररूप से कथन किया गया है । वस्तुतः मित्र शब्द के अर्थ स्नेह करने के हैं । वास्तव में परमात्मा के बराबर स्नेह करने वाला अन्य कोई नहीं है । इसी भाव को "त्वं वा अहमस्मि भवो देवते अहम् वा त्वमसि" इस उपनिषद् में भली भाँति वर्णन किया है, कि तू मैं, और मैं तू हूँ । अर्थात् मैं आपके निष्पापादि गुणों को धारण करके शुद्धात्मा बनूं ॥१८॥

Scanned by CamScanner

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बांधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप (**आयूंषि**) हमारी आयु को (**पवसे**) पवित्र करते हैं (**च**) और (**नः**) हमारे लिये (**इषं**) ऐश्वर्य और (**ऊर्जं**) बल (**आसुव**) दें । तथा (**दुच्छुनां**) विघ्नकारी राक्षसों को हमसे (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) करें ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने विघ्नकारी राक्षसों से बचने का उपदेश किया है, कि हे पुरुषो ! तुम विघ्नकारी अवैदिक पुरुष जो राक्षस हैं, उनके हटाने में सदैव तत्पर रहो ॥१९॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

तमीमहे महागयम् ॥२०॥

पदार्थः—(**अग्निः**) ज्ञानस्वरूप (**ऋषिः**) सर्वव्यापक परमात्मा (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला है (**पांचजन्यः**) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को शुभ मार्ग में चलाने वाला (**पुरोहितः**) वैदिक लोगों का एकमात्र उपास्य (**महागयं**) वेदराशिरूप **धन** को देने वाला है (**तं**) उसको (**ईमहे**) हम लोग प्राप्त हों ॥२०॥

भावार्थः—जो परमात्मा सर्वगत परिपूर्ण और नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त-स्वभाव है, जिसकी उपासना से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों बल, वीर्य-सम्पन्न होकर ऐश्वर्य के उपलब्ध करने का सर्वोपरि हेतु बनते हैं । हम एकमात्र उक्त गुण सम्पन्न परमात्मा को ही अपना उपास्य समझें ॥२०॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।

दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१ ।

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**पवस्व**) आप हमको पवित्र करें । आप (**स्वपाः**) शोभन कर्मों वाले हैं (**अस्मे**) हममें आप (**वर्चः**) ब्रह्मतेज दें । और (**मयि**) मुझमें (**रयिं**) ऐश्वर्य (**सुवीर्यं**) और सुन्दर बल (**पोषं**) तथा पुष्टि को (**दधत्**) धारण कराएँ ॥२१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनमें सब प्रकार के ऐश्वर्यों को धारण कराता है ॥२१॥

Scanned by CamScanner

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
सूरो न विश्वदर्शतः । २२॥

पदार्थः—(पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (स्रिधः अति) दुष्टों को अतिक्रमण करता है। और (सुष्टुतिं) सद्गुणसम्पन्न पुरुषों को (अभ्यर्षति) प्राप्त होता है, वह परमात्मा (सूरो न) सूर्य की तरह (विश्वदर्शतः) स्वतःप्रकाश है ॥२२॥

भावार्थः—जो पुरुष संयमी बनकर ईश्वरपरायण होते हैं, परमात्मा उनपर अवश्यमेव कृपा करता है ॥२२॥

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः ।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥

पदार्थः—(इन्दुः) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (हितः) सब का हितकारक तथा (अत्यः) सतत गमनशील है, और (विचक्षणः) सर्वज्ञ (प्रयस्वान्) तर्पक (सः) वह जगदीश (प्रयसे) ब्रह्मानन्द के लिये (आयुभिः) कर्मयोगियों से (मर्मृजानः) ध्यान किया गया उनके साक्षात्कार को प्राप्त होता है ॥२३॥

भावार्थः—योगी लोग जब परमात्मा का ध्यान करते हैं, तब परमात्मा उन्हें आत्मस्वरूपवत् भान होता है। इसी अभिप्राय से योगसूत्र में कहा है कि "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" समाधिवेला में उपासक के स्वरूप में परमात्मा की स्थिति होती है ॥२३॥

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४॥

पदार्थः—तब (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (बृहत्) बड़े (शुक्रं) बलरूप (ऋतं ज्योतिः) सत्यरूप प्रकाश को (अजीजनत्) पैदा करता है। और (कृष्णा) काले (तमांसि) अंधियारे को (जंघनत्) नाश करता है ॥२४॥

भावार्थः—परमात्माके साक्षात्कारसे अज्ञान की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है। अथवा यों कहो कि "सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति" उस समय योगी सद्रूप ब्रह्म के साथ सह अवस्थान को प्राप्त होता है। अर्थात् उस समय सद्रूप ब्रह्म से भिन्न और कुछ प्रतीत नहीं होता। इसी अभिप्राय से योगसूत्र में लिखा है, कि "ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा" उस समय सद्रूप ब्राह्मी प्रज्ञा हो जाती है। ऋत, सत्य यह पर्याय शब्द हैं ॥२४॥

Scanned by CamScanner

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥

पदार्थः—उस समय (पनमानस्य) पवित्र करने वाले (जंघ्नतः) अज्ञानों के नाश करने वाले तथा (हरेः) पापों के हरण करने वाले (अजिरशोचिषः) सर्वत्रगति तेज वाले परमात्मा की (चन्द्राः) आह्लादक (जीराः) ज्योतियें (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं ॥२५॥

भावार्थः—जब योगीजन उस परमात्मा को लक्ष्य बनाकर उसका ध्यान करते हैं, तब अपूर्व ज्योति उत्पन्न होती है। वा यों कहो, कि अजर, अमर, भाव देने वाला ब्रह्मज्ञान उस समय मनुष्य की बुद्धि को प्रकाशित करता है। इसी का नाम ब्राह्मी प्रज्ञा है। इसी अभिप्राय से गीता में कृष्णजी ने कहा है, कि "एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति" हे अर्जुन ! यह ब्राह्मी स्थिति है, इसको पाकर पुरुष फिर मोह को प्राप्त नहीं होता ॥२५॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६॥

पदार्थः—(पवमानः) पवित्र करने वाला तथा (रथीतमः) गतिशील परमात्मा (शुभ्रेभिः) अपनी ज्योति से (शुभ्रशस्तमः) सर्वोपरि प्रकाशक है। ऐसा ईश्वर (हरिश्चन्द्रः) सबको आनन्द देने वाले (मरुद्गणः) विद्वानों का एकमात्र उपास्य है ॥२६॥

भावार्थः—विद्वान् लोग नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमात्मा की उपासना करते हैं, किसी अन्य की नहीं ॥२६॥

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२७॥

पदार्थः—(वाजसातमः) आध्यात्मिक बल देने वाला परमात्मा जो (रश्मिभिः) अपनी शक्तियों से (व्यश्नवत्) सबको स्वाधीन किये हुए है, वह (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला ईश्वर (स्तोत्रे) वेदाध्ययनशीलों में (सुवीर्यं) ब्रह्मवर्चस को (दधत्) प्रदान करता है ॥२७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—स्वयंज्योति परमात्मा से ही विद्वानों को ब्रह्मवर्चस मिलता है। इसलिए एकमात्र उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिए ॥२७॥

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥२८॥

पदार्थः—(सुवानः) सबको उत्पन्न करने वाला तथा (इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (प्राक्षाः) आनन्द की वृष्टि करता है। तथा (पुनानः) पवित्र करने वाला जगदीश (इन्द्रं) कर्मयोगी को (पवित्रमव्ययं) पवित्र अव्यय भाव को देता हुआ, तथा उनके अन्तःकरणों में (आ) निवास करता हुआ (अति) "अत्येति" अज्ञान का नाश करता है ॥२८॥

भावार्थः—यद्यपि मनुष्यमात्र के हृदय में परमात्मा विराजमान है, उससे एक अणुमात्र भी खाली नहीं, तथापि कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के हृदय में योगज सामर्थ्य से अधिक अभिव्यक्ति समझी जाती है। इस अभिप्राय से परमात्मा का आवेश यहां योगीजनों के हृदय में कथन किया गया है ॥२८॥

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।

इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९॥

पदार्थः—(एष सोमः) यह परमात्मा (गवां) इन्द्रियों की (अधित्वचि) मनोरूप शक्ति में (अद्रिभिः) इन्द्रिय वृत्तियों द्वारा साक्षात्कार किया जाता है। (इन्द्रं) कर्मयोगी के कर्मक्षेत्र में (जोहुवत्) प्राणापान की गति को हवन करता है और कर्मयोगी को कर्मक्षेत्र में (क्रीडति) क्रीड़ा कराता है ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही कर्मयोगी जन प्राणापान की गति को रोक कर प्राणायाम करते हैं। और वही परमात्मा इस ब्रह्माण्डरूपी अद्भुत कर्मक्षेत्र में उनसे सर्वोपरि कर्म कराता है। इसमें "अधित्वचि" नाम मन का है, क्योंकि "इन्द्रियाणां शक्ति तनोतीतित्वक्" "त्वचि अधि इति अधित्वचि" "अधित्वचि" इससे यहां आध्यात्मिक यज्ञ का अभिप्राय है। सायणाचार्य ने यहां "अधित्वचि" इसके अत्यन्त घृणित अर्थ किये हैं। अर्थात् "गवामधित्वचि" इसका "अनुडुहचर्मणि" अर्थ किये हैं। सायणाचार्य के मत में अनुडुहचर्म बिछाकर उस के ऊपर सोम कूटा जाता था।

विचार करने से यह अर्थ योग्यता से भी विरुद्ध है, क्योंकि सोम किसी कड़ी चीज पर कूटा जा सकता है, न कि चमड़े पर। कुछ हो, परन्तु "गवामधित्वचि" इसके अनुड्हचर्म" अर्थ करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है ॥२६॥

यस्यं ते द्युम्नवत्पयः पर्वमानाभृतं दिवः ।

तेनं नो मृळ जीवसें ॥३०॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**यस्य**) जिस आपका (**द्युम्नवत् पयः**) दीप्तियुक्त ऐश्वर्य जो (**दिवः आभृतं**) द्युलोक से दुहा गया है, (**तेन**) उस ऐश्वर्य से (**नः**) हम लोगों के (**जीवसे**) जीवन के लिये (**मृड**) सुख दें ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा के ऐश्वर्यरूपी अमृत का जब तक मनुष्य पान नहीं करता, तब तक उसके ऐश्वर्य की वृद्धि कदापि नहीं होती। इसलिये अपने जीवन की वृद्धि के लिये इन्द्रियसंयम द्वारा ईश्वराज्ञा का पालन करता हुआ पुरुष सौ बरस जीने की इच्छा करे। इस अभिप्राय से वेद में अन्यत्र भी कहा है कि "जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शतम्" इत्यादि। इसी अभिप्राय से मनुधर्मशास्त्र में कहा है, कि "सदाचारेण पुरुषः शतवर्षाणि जीवति" ब्रह्मचर्यादि व्रतों से मनुष्य सैकड़ों बरस तक जीवित रहता है ॥३०॥

नवम मण्डल में यह छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वात्रिंशदृचस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—३ भरद्वाजः। ४–६ कश्यपः। ७–६ गोतमः। १०–१२ अत्रिः। १३—१५ विश्वामित्रः। १६–१८ जमदग्निः। १६—२१ वसिष्ठः। २२–३२ पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा ॥ देवताः–१-६, १३–२२, २८—३० पवमानः सोमः। १०—१२ पवमानः सोमः पूषा वा। २३, २४ अग्निः। २५ अग्निः सविता वा। २६ अग्निरग्निर्वा सविता च। २७ अग्निर्विश्वे देवा वा। ३१, ३२ पवमान्यध्येतृस्तुतिः ॥ छन्दः–१, २, ४, ५, ११–१३, १५, १६, २३–२५ निचृद्गायत्री। ३, ८ विराड्गायत्री। १० यवमध्यागायत्री। १६—१८ भुरिगार्ची विराड्गायत्री। ६, ७, ६, १४, २०–२२, २४, २६, २८, २६ गायत्री। २७ अनुष्टुप्। ३१, ३२ निचृदनुष्टुप् ३० पुरउष्णिक् ॥ स्वरः—१—२६ २८, २६ षड्जः। २७, ३१, ३२ गान्धारः। ३० ऋषभः ॥

अब गुणान्तरों से परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥

त्वं सो॑मासि धार॒युर्म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो अध्व॒रे।

पव॑स्व मंह॒यद्र॑यिः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (धारयुः) धारण शक्ति वाले हो । तथा (मंद्रः) तुम आनन्दप्रद हो । और (ओजिष्ठः) ओजस्वी हो । तथा आप (अध्वरे) यज्ञ में (मंहयद्रयिः) धन प्रदान करते हुए (पवस्व) हमारी रक्षा करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वाधार कथन किया है। और सम्पूर्ण धनों का दातृरूप से वर्णन किया है ॥१॥

त्वं सु॒तो नृ॒माद॑नो दध॒न्वान्म॑त्स॒रिन्त॑मः ।

इन्द्रा॑य सू॒रिरन्ध॑सा ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (मत्सरितमः) अत्यन्त आह्लादजनक हैं। और (सुतः) स्वयम्भू हैं। तथा (नृमादनः) आप सर्वानन्द-जनक हैं। और (दधन्वान्) सबके धारण करने वाले हैं, और (सूरिः) सर्वोत्पादक हैं। तथा (अंधसा) अपने ऐश्वर्य से सब को ऐश्वर्यशाली बनाते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगी पुरुषों को अपने ऐश्वर्य से ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

त्वं सु॑ष्वा॒णो अद्रि॑भिर॒भ्य॑र्ष॒ कनि॑क्रदत् ।

द्यु॒मन्तं॒ शुष्म॑मुत्त॒मम् ॥३॥

पदार्थः—(त्वं) आप (कनिक्रदत्) वेदरूपी वाणियों द्वारा (सुष्वाणः) स्तूयमान हैं। (द्युमन्तं) दीप्ति वाला (उत्तमं) सबसे अच्छे (शुष्मं) बलको (अद्रिभिः) अपनी आदरणीय शक्तियों से (अभ्यर्ष) प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा वेदवाणियों के द्वारा ज्ञानरूपी बल प्रदान करता है ॥३॥

इन्दु॑र्हिन्वा॒नो अ॑र्षति ति॒रो वारा॑ण्य॒व्यया॑ ।

हरि॒र्वाज॑मचिक्रदत् ॥४॥

पदार्थः—(इन्दुः) स्वयंप्रकाश (हिन्वानः) सर्वप्रेरक परमात्मा (तिरः) अज्ञान का तिरस्कार करके (वाराणि) वरण करने योग्य (अव्यया) नित्य ज्ञानों को (अर्षति)

Scanned by CamScanner

देता है। (हरिः) पूर्वोक्त परमेश्वर ज्ञान देने के लिये (वाजं) बलपूर्वक (अचिक्रदत्) आह्वान करता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान को निवृत्त करके ईश्वर के सद्गुणों के धारण का उपदेश किया गया है ॥४॥

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभंगा ।

वि वाजान्त्सोम गोमंतः ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) सर्वैश्वर्यसम्पन्न ! (सोम) परमात्मन् ! (अव्यं) अव्यय (विश्रवांसि) विशेष यश को तथा (विसौभगा) विशेष सौभाग्य को और (गोमतो विवाजान्) ऐश्वर्यवाले विशेष बल को (व्यर्षसि) आप देते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा जिस पुरुष को अपने ऐश्वर्य का पात्र समझता है, उसे अनन्त प्रकार के बल, सौभाग्य तथा यश का प्रदान करता है ॥५॥

आ न इन्दो शतग्विनं र॒यिं गोमन्तमश्विनम् ।

भरा सोम सहस्रिणम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (शतग्विनं) सैकड़ों प्रकार की शक्ति वाले (गोमन्तं) तथा ऐश्वर्ययुक्त (अश्विनं) सर्वत्र व्यापक (सहस्रिणं) हजारों प्रकार के (रयिं) धन को (नः) हमको (आभर) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों का प्रदान करने वाला है ॥३॥

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।

इन्द्रं यामेभिराशत ॥७॥

पदार्थः—(पवमानासः) पवित्र करने वाला तथा (इन्दवः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न और (आशवः) व्यापक परमात्मा (यामेभिः) अपनी अनन्त शक्तियों से (तिरः) अज्ञानों का तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र (इन्द्रं) कर्मयोगी को (आशत) प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोग वा कर्मयोग द्वारा अपने आप को ईश्वर के ज्ञान का पात्र बनाते हैं, उन्हें परमात्मा अपने अनन्त गुणों से प्राप्त होता है। अर्थात् वह परमात्मा के सच्चिदादि अनेक गुणों का लाभ करता है ॥७॥

Scanned by CamScanner

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः।
आयुः पवत आयवे ॥८॥

पदार्थः—(ककुहः) महान् (सोम्यः) सौम्य स्वभाव (इन्दुः) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (आयुः) सर्वत्र गन्ता (रसः) रसस्वरूप (पूर्व्यः) अनादि परमात्मा (आयवे) सर्वत्र गति वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवते) पवित्र करता है ॥८॥

भावार्थः—इन्द्र शब्द के अर्थ यहां केवल कर्मयोगी नहीं, किन्तु कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी दोनों के हैं। तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष कर्म वा ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं, उनके लिये परमात्मा सदैव सुलभ है ॥८॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्।
अभि गिरा समस्वरन् ॥९॥

पदार्थः—(उस्रयः) ज्ञानी लोग (पवमानं) पवित्र करने वाले (मधुश्चुतं) आनन्द की वृष्टि करने वाले (सूरं) परमात्मा की (गिरा) वेदवाणियों से (समस्वरन्) स्तुति करते हुए (अभिहिन्वन्ति) सब ओर से साक्षात्कार करते हैं ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् लोग वेदवाणियों द्वारा पूर्वोक्त परमात्मा की स्तुति करते हैं ॥९॥

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०॥

पदार्थः—(अजाश्वः) नित्यघन वाला (पूषा) सर्वपोषक परमात्मा (नः) हम लोगों का (अविता) पालन करने वाला हो। (यामनि यामनि) सर्वदा (कन्यासु) कमनीय पदार्थों में (नः) हम लोगों को (आभक्षत्) ग्रहण करे ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा ईश्वरपरायण लोगों के लिये सदैव कल्याणकारी होता है ॥१०॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(अयं सोमः) पूर्वोक्त परमात्मा (कपर्दिने) कर्मयोगी को (घृतं) अपने प्रेम से (मधु न) मधु के समान (पवते) मधुर बनाता है। और (नः) हम लोगों को (कन्यासु) कमनीय पदार्थों में (आभक्षत्) ग्रहण करता है ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगियों को कमनीय पदार्थों का प्रदान करता है ॥११॥

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥

पदार्थः—(आघृणे) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (अयं) यह (सुतः) संस्कृत (ते) आपका (शुचि) शुद्ध स्वभाव (घृतं न) स्नेह की तरह (पवते) पवित्र करता है। और (नः) हम लोगों को (कन्यासु) अपने कल्याणकारक गुणों में (आभक्षत्) ग्रहण करता है ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मसुखोपलब्धि के लिए सत्कर्म करते हैं, उन्हें परमात्मा मंगलमय बनाता है ॥१२॥

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया ।
देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (कवीनां) कवियों के मध्य में आप (वाचोजन्तुः) वेदवाणियों के उत्पादक हैं। और (देवेषु) विद्वानों को (रत्नधा असि) विद्यारूप रत्न धारण कराते हैं। ऐसे आप (धारया) अपनी सुधामयी वृष्टि से (पवस्व) पवित्र करिये ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा ही वस्तुतः आदिकवि है। उसकी कवित्व-शक्ति का अनुकरण करके अन्य कवियों ने अपने-अपने भावों को प्रकट किया है ॥१३॥

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (श्येनः) जैसे विद्युत् (वर्म) विग्रहवत् वस्तु का (विगाहते) अवगाहन करती है, और (अभिद्रोणा) प्रत्येक विग्रहवद्वस्तु के अभिमुख (कनिक्रदत्) शब्दायमान होकर प्राप्त होती है, इस प्रकार (कलशेषु) प्रत्येक स्थान में (आधावति) आप विराजमान होते हैं ॥१४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—विद्युत् निराकार होकर भी सबसे तेजस्वी, ओजस्वी और शब्दायमान है। इसी प्रकार निराकार परमात्मा तेजस्वी ओजस्वी तथा शब्दयोनि होकर विराजमान है। यहाँ विद्युत् का दृष्टान्त अत्यन्त बल और निराकार के अभिप्राय से है किसी और अभिप्राय से नहीं ॥१४॥

परि॑ प्र सो॑म ते॒ रसोऽस॑र्जि क॒लशे॑ सु॒तः ।

श्ये॒नो न त॒क्तो अ॑र्षति ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (श्येनो न) जैसे विद्युत् (अर्षति) सर्वत्र गमन करती है, तथा (ते) आपका (सुतः) स्वतःसिद्ध (तक्तः) सर्वत्र गमनशील (रसः) आनन्द (परि) चारों ओर (कलशे) पवित्र अन्तःकरणों में (प्रासर्जि) स्थिर होता है ॥१५॥

भावार्थः—जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी सर्वत्र व्यापक हैं ॥१५॥

पव॑स्व सोम म॒न्दय॒न्निन्द्रा॑य मधु॒मत्त॑मः ॥१६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमत्तमः) अत्यन्त आनन्दमय हैं, अतः (मंदयन्) आनन्दित करते हुए (इन्द्राय) उद्योगी को (पवस्व) मंगलमय भावों से पवित्र करिये ॥१६॥

भावार्थः—उद्योगी पुरुष को परमात्मा उत्साहित करके पवित्र करता है ॥१६॥

अस॑ृग्रन्दे॒ववी॑तये वाज॒यन्तो॒ रथा॑ इव ॥१७॥

पदार्थः—(देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (वाजयंतः) बल वाले (रथा इव) रथों की तरह उद्योगी लोग (असृग्रन्) रचे जाते हैं ॥१७॥

भावार्थः—"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" (कठ. १।२।३।) इस वाक्य में जैसे शरीर को रथ बताया है, इसी प्रकार यहां भी रथ का दृष्टान्त है। तात्पर्य यह है, कि जिन पुरुषों के शरीर दृढ़ होते हैं, वा यों कहो कि परमात्मा पूर्वकर्मानुसार जिन पुरुषों के शरीरों को दृढ़ बनाता है, वे कर्मयोग के लिये अत्यन्त उपयोगी होते हैं ॥१७॥

ते सु॒तासो॑ म॒दिन्त॑माः शु॒क्रा वा॒युम॑सृक्षत ॥१८॥

पदार्थः—(ते) तुम्हारे (सुतासः) संस्कृत (मदिन्तमाः) आह्लादजनक (शुक्राः) स्वभाव (वायुं) कर्मयोगी को (असृक्षत) उत्पन्न करते हैं ॥१८॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—तात्पर्य यह है, कि जिसको परमात्मा उत्तम शील देता है, वही कर्मयोगी बनता है, अन्य नहीं ॥१८॥

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।

दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥१९॥

पदार्थः—(**ग्राव्णा**) जिज्ञासुओं से (**तुन्नः**) आविर्भाव को प्राप्त हुए तथा (**अभिष्टुतः**) सब प्रकार से स्तुति किये हुए (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**पवित्रं**) उनके पवित्र अन्तःकरणों को (**गच्छसि**) प्राप्त होते हैं। और (**स्तोत्रे**) उक्त स्तोता लोगों के लिये आप (**सुवीर्यम्**) सुन्दर बल को (**दधत्**) उत्पन्न करते हैं ॥१९॥

भावार्थः—उपासक लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा उनके लिये सुन्दर बल प्रदान करता है ॥१९॥

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।

रक्षोहा वारमव्ययम् ॥२०॥

पदार्थः—(**एषः**) उक्त परमात्मा (**तुन्नः**) जो अज्ञाननिवृत्ति द्वारा आविर्भाव को प्राप्त हुआ है, और (**अभिष्टुतः**) सब प्रकार से स्तुति किया गया है, वह (**पवित्रं**) पवित्र अन्तःकरण को (**अति गाहते**) प्रकाशित करता है। और (**रक्षोहा**) दुष्टों का विघातक तथा (**अव्ययं**) अविनाशी और (**वारं**) भजनीय है ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के दण्डदातृत्व और अविनाशित्वादि धर्मों का कथन किया गया है ॥२०॥

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।

पवमान वि तज्जहि ॥२१॥

पदार्थः—(**पवमान**) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप (**मामिह**) मुझको इस संसार में (**यद्**) जो (**भयं**) भय (**विंदति**) प्राप्त है (**च**) और (**यद्**) जो विघ्न (**अंति**) मेरे समीप तथा (**दूरके**) दूर हैं (**तत्**) उनको (**विजहि**) सर्वथा नाश करें ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से भय और विघ्नों के नाश करने की प्रार्थना की गई है ॥२१॥

Scanned by CamScanner

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।

यः पोता स पुनातु नः ॥२२॥

पदार्थः—(**सः**) वह परमात्मा (**नः**) हम लोगों को (**पवमानः**) पवित्र करने वाला तथा (**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा है, और (**पवित्रेण**) अपने पवित्र धर्मों से (**यः**) जो (**पोता**) सबको पवित्र करने वाला है (**सः**) वह (**नः**) हमको (**अद्य**) अब (**पुनातु**) पवित्र करे ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस अपूर्वता का उपदेश किया गया है, कि उपासनाकाल में उपासक अपनी पवित्रता का अनुसन्धान करे। और उस की न्यूनता देख कर उसकी याचना परमेश्वर से अवश्यमेव करे ॥२२॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।

ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥२३॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**यत्**) जो (**ते अन्तः**) तुममें (**पवित्रं**) पवित्र (**आविततं**) विस्तृत (**अर्चिषि**) ज्योतियें हैं,–(**तेन**) उनसे (**ब्रह्म**) हे परमात्मन् ! (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२३॥

भावार्थः—ब्रह्म शब्द के अर्थ यहाँ परमात्मा के हैं। सायणाचार्य ने इसके अर्थ शरीर के किए हैं, जो कि वेदाशय से सर्वदा विरुद्ध है ॥२३॥

यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः ।

ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**ते**) आप का (**यत्**) जो (**पवित्रं**) पवित्र (**अर्चिवत्**) सूर्यादिकों में तेज है (**तेन**) उससे (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये। तथा (**ब्रह्मसवैः**) अपने ब्रह्म भाव से (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्यादि सब दिव्य पदार्थों का प्रकाशक है, और उसी के प्रकाश से प्रकाशित होकर सब तेजोमय प्रतीत होते हैं ॥२४॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।

मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**सवितः**) हे सर्वोत्पादक ! आप (**उभाभ्यां**) ज्ञानयोग तथा कर्मयोग द्वारा (**मां**) मुझको (**विश्वतः**) सब ओर से (**पुनीहि**) पवित्र करिये (**च**) और (**पवित्रेण**) पवित्र (**सवेन**) ब्रह्मभाव से मुझे पवित्र करिये ॥२५॥

भावार्थः—जो लोग अपने में ज्ञानयोग और कर्मयोग की न्यूनता समझते हैं, वे परमात्मा से ज्ञानयोग तथा कर्मयोग की प्रार्थना करें ॥२५॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।

अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

पदार्थः—(**सोम**) परमात्मन् ! (**अग्ने**) हे ज्ञानस्वरूप ! (**सवितः**) हे सर्वोत्पादक ! (**देव**) हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (**त्वं**) आप (**त्रिभिः**) तीन (**धामभिः**) शरीरों से (**वर्षिष्ठैः**) जो श्रेष्ठ हैं, तथा (**दक्षैः**) दक्षतायुक्त हैं, उनसे (**नः**) हम लोगों को (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सूक्ष्म, स्थूल, और कारण इन तीनों शरीरों की शुद्धिकी प्रार्थना है । प्रलयकाल में जीवात्मा जब प्रकृतिलीन होकर रहता है उसका नाम कारणशरीर है । तथा जिसके द्वारा जन्मान्तर को प्राप्त होता है उसका नाम सूक्ष्मशरीर है । और तीसरा स्थूलशरीर है । इन तीनों शरीरों की पवित्रता का उपदेश यहां किया गया है ॥२६॥

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।

विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मां ॥२७॥

पदार्थः—(**देवजनाः**) विद्वान् जन (**मां**) मुझको उपदेश द्वारा (**पुनंतु**) पवित्र करें । (**वसवः**) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण (**धिया**) अपनी शुभबुद्धि द्वारा (**पुनन्तु**) पवित्र करें (**विश्वे देवाः**) हे विद्वानो ! (**मां**) मुझको आप लोग (**पुनीत**) पवित्र करें तथा (**जातवेदः**) हे परमात्मन् ! (**मा**) मुझको (**पुनीहि**) पवित्र करिये ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने विद्वानों के उपदेशों द्वारा पवित्रता का उपदेश किया है, कि हे जीवो ! तुम अपने विद्वानों से तथा ब्रह्मचारिगणों से सदैव सद्बुद्धिका ग्रहण किया करो ॥७॥

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।

देवेभ्यं उत्तमं हविः ॥२८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः – (सोम) हे परमात्मन् ! आप (प्यायस्व) हमको वृद्धियुक्त करें। तथा (विश्वेभिरंशुभिः) अपने सम्पूर्ण भावों से द्रवीभूत होकर (प्रस्यन्दस्व) कृपायुक्त हों। तथा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (उत्तमं हविः) उत्तम दानरूपी भावों का प्रदान करें ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा ही एकमात्र तृप्ति का कारण है। वह अपने ज्ञान के प्रदान से हमको तृप्त करे ॥२८॥

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।

अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९॥

पदार्थः—(प्रियं) सबको प्रसन्न करने वाले (पनिप्नतं) वेदादि शब्दराशि के आविर्भावक (युवानं) सदा एकरस (आहुतीवृधं) जो अपनी प्रकृतिरूपी आहुति से बृहत् हैं, उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा को (नमः) नम्रतादि भावों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए हम लोग (उपागन्म) प्राप्त हों ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा नम्रतादि भावों का उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम नम्रतादि भावों को धारण करते हुए, उक्त प्रकार की प्रार्थनाओं से मुझको प्राप्त हो ॥४९॥

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।

आखुं चिदेव देव सोम ॥३०॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (देव) दिव्यगुणसम्पन्न ! (अलाय्यस्य) सर्वत्र व्याप्त शत्रु का जो (परशुः) अस्त्र है (तं) उस (आखुंचित्) सर्वघातक अस्त्र को (ननाश) नाश करिये। (देव) हे परमात्मन् ! (आपवस्व) आप मुझको पवित्र करें ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा, जिनमें दैवी सम्पत्ति के गुण समझता है, उनको वृद्धियुक्त करता है, और जिनमें आसुरी भाव के अवगुण देखता है, उनका नाश करता है ॥३०॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।

सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥

पदार्थः—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वरस्तुतिरूप ऋचाओं को (अध्येति) पढ़ता है (सः) वह (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं से (संभृतं) स्पष्ट किए हुए (रसं) ब्रह्म-

न्द को (अश्नाति) भोगता है । और (सर्वं) सम्पूर्ण (मातरिश्वना स्वदितं) वायु से स्वादुकृत (पूतं) पवित्र पदार्थों को (अश्नाति) भोगता है ।।३१।।

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के पवित्र गुणों का सहारा लेते हैं, वे ब्रह्मानन्द रस का पान करते हैं । और उनके लिए वायु के पवित्र किये हुए पदार्थ, मधुर रसों के प्रदाता होते हैं । तात्पर्य यह है, कि वायु फलों में एक प्रकार का माधुर्य उत्पन्न करता है । उस माधुर्य के भोक्ता पुण्यात्मा ही हो सकते हैं, अन्य नहीं ।।३१।।

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।।३२।।

पदार्थः—(यः) जो जन (पावमानीः) परमेश्वरस्तुतिरूप ऋचाओं को (अध्येति) पढ़ता है (तस्मै) उसके लिये (ऋषिभिः) मन्त्रद्रष्टाओं से (सम्भृतं) स्पष्टीकृत (रसं) रस का और (क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्) दूध, घी, मधु, और जल का (सरस्वती) ब्रह्मविद्या (दुहे) दोहन करती है ।।३२।।

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के शरणागत होते हैं, उनके लिये मानो (सरस्वती) ब्रह्मविद्या स्वयं दुहने वाली बन कर दूध, घी, मधु और नाना प्रकार के रसों का दोहन करती है । वा यों कहो कि माता के समान (सरस्वती) विद्या नाना प्रकार के रसों को अपने विज्ञानमय स्तनों से पान कराती है ।।३२।।

नवम मण्डल में यह सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ दशर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१० वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः ।। पवमानः सोमो देवता ।। छन्दः–१, ३, ६, ७ निचृज्जगती । २, ४, ५, ९, जगती । ८ विराड्जगती । १० त्रिष्टुप् ।। स्वरः–१—९ निषादः । १० धैवतः ।।

अब ईश्वर के उपासकों के गुण वर्णन करते हैं ।।

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ।।१।।

पदार्थः—(इन्दवः) परम विद्वान् (मधुमंतः) मीठे उपदेशों वाले (देवं) परमात्मा के (अच्छ) प्रति (प्रासिष्यदंत) नम्रीभूत होकर जाते हैं । (गावः, धेनवः, न) जैसे प्रकाश करने वाली वाणियाँ(वचनावन्तः) सदुपदेश वाली(बर्हिषदः) प्रतिष्ठा वाली

Scanned by CamScanner

(ऊधभिः) ज्ञानरूपी अमृत को धारण करने वाली (उस्रियाः) सुदीप्ति वाली (परिस्रुतं) व्याप्तिशील (निर्णिजं) शुद्ध ज्ञान को (आधिरे) धारण कराती हैं, इसी प्रकार उक्त विद्वान् ज्ञान को धारण कराते हैं, ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के मार्ग का उपदेश करने वाले विद्वान्, वाग्धेनु के समान सद् ज्ञान का उपदेश करते हैं। जिस प्रकार सद्वाणी सद्ज्ञान को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञाता विद्वान् सत्का उपदेश करके सच्चे ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥१॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।

तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥

पदार्थः—(हरिः) दुर्गुण दूर करने वाला (उपारुहः) उन्नति शील(सः) पूर्वोक्त विद्वान् (रोरुवत्) बलपूर्वक उपदेश करता हुआ, तथा (श्रथयन्) सत्यानृतका विभेद करता हुआ, जिज्ञासु को (स्वादते) सत्कारी बनाता है। और (पूर्वाः) अनादिसिद्ध परमात्मा की स्तुति को (अभ्यचिक्रदत्) विधान करता है। और (देवः) दिव्यगुण युक्त विद्वान् (शर्याणि) अज्ञानों का (तिरः) तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र ज्ञान को (परियन्) प्रकाशित करता हुआ (उरु) बडे(ज्रयः) कर्मयोगी को (निदधते) धारण कराता है। तथा (वरं) वरणीय पदार्थ को (आ) (आदधते) देता है ॥२॥

भावार्थः—सदुपदेश द्वारा अज्ञानों को निवृत्त करना पूर्ण विद्वान् का ही काम है। पूर्ण विद्वान् के उपदेश से मनुष्य ज्ञानी और विज्ञानी बनकर मनुष्यजन्म के फल को उपलब्ध करता है ॥२॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।

मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥

पदार्थः—(यो मदः) जो आनन्द का वर्धक कर्मयोगी (यम्या) युगल (संयती) परस्पर संबद्ध पृथिवीलोक और द्युलोक के ज्ञान को (विममे) उत्पन्न करता है। और (साकं) साथ ही (पयसा वृधा) ऐश्वर्य से बढ़ा हुआ (अक्षिता) अक्षीण द्युलोक (रजसी) जो आकर्षणशील है, उसको ज्ञान द्वारा (विवेविदत्) व्यक्त करता है। तथा (अभिव्रजन्) अव्याहत गति होता हुआ (अक्षितं पाज आददे) क्षयरहित बल को देता है ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी विद्वान् के उपदेश से ही मनुष्य को पृथिवीलोक और द्युलोक का ज्ञान होता है। और उसी के सदुपदेश से अक्षय बल मिलता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

(ऊधभिः) ज्ञानरूपी अमृत को धारण करने वाली (उस्रियाः) सुदीप्ति वालीं (परिस्रुतं) व्याप्तिशील (निर्णिजं) शुद्ध ज्ञान को (आधिरे) धारण करातीं हैं, इसी प्रकार उक्त विद्वान् ज्ञान को धारण कराते हैं, ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के मार्ग का उपदेश करने वाले विद्वान्, वाग्धेनु के समान सद् ज्ञान का उपदेश करते हैं। जिस प्रकार सद्वाणी सद्ज्ञान को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार सम्यग्ज्ञाता विद्वान् सत्का उपदेश करके सच्चे ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥१॥

स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥

पदार्थः—(हरिः) दुर्गुण दूर करने वाला (उपारुहः) उन्नति शील(सः) पूर्वोक्त विद्वान् (रोरुवत्) बलपूर्वक उपदेश करता हुआ, तथा (श्रथयन्) सत्यानृतका विभेद करता हुआ, जिज्ञासु को (स्वादते) संस्कारी बनाता है। और (पूर्वाः) अनादिसिद्ध परमात्मा की स्तुति को (अभ्यचिक्रदत्) विशाल करता है। और (देवः) दिव्यगुण युक्त विद्वान् (शर्याणि) अज्ञानों का (तिरः) तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र ज्ञान को (परियन्) प्रकाशित करता हुआ (उरु) बड़े(ज्रयः) कर्मयोगी को (निदधते) धारण कराता है। तथा (वरं) वरणीय पदार्थ को (आ) (आदधते) देता है ॥२॥

भावार्थः—सदुपदेश द्वारा अज्ञानों को निवृत्त करना पूर्ण विद्वान् का ही काम है। पूर्ण विद्वान् के उपदेश से मनुष्य ज्ञानी और विज्ञानी बनकर मनुष्यजन्म के फल को उपलब्ध करता है ॥२॥

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविदद‌भिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥३॥

पदार्थः—(यो मदः) जो आनन्द का वर्धक कर्मयोगी (यम्या) युगल (संयती) परस्पर संबद्ध पृथिवीलोक और द्युलोक के ज्ञान को (विममे) उत्पन्न करता है। और (साकं) साथ ही (पयसा वृधा) ऐश्वर्य से बढ़ा हुआ (अक्षिता) अक्षीण द्युलोक (रजसी) जो आकर्षणशील है, उसको ज्ञान द्वारा (विवेविदत्) व्यक्त करता है। तथा (अभिव्रजन्) अव्याहत गति होता हुआ (अक्षितं पाज आददे) क्षयरहित बल को देता है ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी विद्वान् के उपदेश से ही मनुष्य को पृथिवीलोक और द्युलोक का ज्ञान होता है। और उसी के सदुपदेश से अक्षय बल मिलता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह (मेधिरः) प्राज्ञ कर्मयोगी (मातरा) सब जीवों की माता के समान द्युलोक में तथा पृथिवीलोक में (विचरन्) विचरता हुआ और (अपः) कर्मरूपी योग का (वाजयन्) बल प्रदान करता हुआ (पदं) कर्मयोग के पद को (स्वधया) अनुष्ठानरूप क्रिया से (पिन्वते) पुष्ट करता है। (अंशुः) ज्ञानरूप प्रकाश से प्रदीप्त विद्वान् (यवेन) अपने भव और अप्ययरूप योग से (पिपिशे) योगाङ्ग को धारण करता है। (यतः) जिससे कर्मयोगी (जामिभिर्नृभिः) परस्पर संगति बांध कर चलने वाले जिज्ञासु द्वारा (संनसते) अपने कर्तव्य का पालन करता है। और (शिरः) पतित पुरुषों की (रक्षते) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—कर्मयोगी का यह कर्तव्य है, कि वह अकर्मण्यतादोषग्रस्त मनुष्यों में उद्योग उत्पन्न करके उनमें जागृति उत्पन्न करे ॥४॥

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥५॥

पदार्थः—वह कर्मयोगी (दक्षेण मनसा) समाहित मन से (ऋतस्य कविः संजायते) सचाई का कथन करने वाला होता है। (यमा) देवने उसे (परः) सर्वोपरि (निहितः) सुरक्षित (गर्भः) गर्भस्थानीय बनाया। (यूना संता) कर्मयोग तथा ज्ञानयोग को पूर्ण करते हुए ज्ञानयोगी और कर्मयोगी यह (ह) प्रसिद्ध दोनों (गुहाहितं) अन्तःकरणरूपी गुहा में निहित परमात्मा को (प्रथमं) सबसे पहिले (विजज्ञतुः) जानते हैं। जो परमात्मा (जनिम) सब की उत्पत्ति का स्थान तथा (नेमं) सबको नियम में रखने वाला और (उद्यतं) सर्वोपरि बलस्वरूप है ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा सूक्ष्मरूप से सबके अन्तःकरण में विराजमान है, उसको कर्मयोगी और ज्ञानयोगी ही सुलभता से लाभ कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

पदार्थः—(मंद्रस्य) आनन्दस्वरूप परमात्मा के (रूपं) रूप को (मनीषिणः) मेधावी लोग (विविदुः) जानते हैं। जो परमात्मा (परावतः) सब लोक लोकान्तरों

की (अभरत्) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाला है। और (श्येनः) जो विद्युत् के समान (यदंषः) सर्वव्यापक है, (तं) उस (ऋग्मियं) स्तवनीय (अंशुं) प्रकाशस्वरूप (सुवृषं) बढ़े हुए (उशंतं) कान्ति वाले (परियंतं) सर्वव्यापक परमात्मा का हम लोग (नदीषु) वेदवाणियों से (आमर्जयन्त) साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थः—आनन्दमय परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोग और ज्ञानयोग द्वारा संस्कृत बुद्धि से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी अभिप्राय से कहा है, कि "दृश्यते त्वग्रया बुद्धचा सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" कि उसको सूक्ष्मबुद्धि से सूक्ष्मदर्शी ही देख सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

अब प्रसंग संगति से परमात्मप्राप्ति का वर्णन करते हैं ॥

त्वां मृंजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (सुतं) स्वयंसिद्ध (त्वां) तुमको (दश योषणः) धृत्यादि धर्म के दस साधन (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं। (सोम) हे परमात्मन्! तुम (मतिभिः) ज्ञानयोगी तथा (धीतिभिः) कर्मयोगी (ऋषिभिः) ऋषियों से (हितं) साक्षात्कार किये जाते हो। तथा तुम (अव्यः) सर्वरक्षक हो। (उत) और (वारेभिर्देवहूतिभिर्नृभिः) सर्वोपरि वरणीय योगी मनुष्यों द्वारा (सातये) अज्ञाननिवृत्ति के लिये (वाजं) बल को (यतः) जिस हेतु (आदर्षि) देते हो अतः तुम सर्वोपरि उपासनीय हो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगियों को अनन्त बल देता है। इसलिये मनुष्य को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी अवश्य बनना चाहिये ॥७॥

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

पदार्थः—(मनीषाः स्तुभः) शुभ बुद्धियां (परिप्रियन्तं) सब को प्राप्त होने वाले (वय्यं) विद्वानों से काम्यमान (सुषंसदं) शोभन स्थिति वाले (सोमं) परमात्मा को (अभ्यनूषत) वर्णन करती हैं। (यो धारया) जो अपने अमृत की धारा से (मधुमान्) आनन्दमय है, तथा (ऊर्मिणा) आनन्द की लहर द्वारा (दिवः) द्युलोक से (वाचं) वेदवाणी को (इयर्ति) देता है, वह परमात्मा (रयिषाट्) समस्तैश्वर्यदाता तथा (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित है ॥८॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा अपनी दिव्यशक्ति से पवित्र वेदवाणी का प्रकाश करता है। और स्वयं अमरणधर्मा होकर जगज्जन्मादि का हेतु है ॥८॥

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥९॥

पदार्थः—(**अयं सोमः**) यह परमात्मा (**दिवः**) द्युलोक के (**विश्वं**) सम्पूर्ण (**रजः**) ऐश्वर्य को (**इयर्ति**) देता है। और (**कलशेषु**) समस्त अन्तःकरणों में (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**आसीदति**) विराजमान है। तथा (**अद्रिभिः**) इन्द्रिय वृत्तियों से (**अद्भिर्गोभिः**) ज्ञान और कर्मों द्वारा (**मृज्यते**) साक्षात्कार किया जाता है। और (**सुतः**) स्वयंसिद्ध (**इन्दुः**) परमैश्वर्यवान् (**पुनानः**) पवित्रकर्ता परमात्मा (**प्रियं**) प्रियकारक (**वरिवः**) वरणीय ऐश्वर्य को ज्ञानयोगी और कर्मयोगियों को (**विदत्**) देता है ॥९॥

भावार्थः—ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी को परमात्मा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य देता है ॥९॥

एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! (**परिषिच्यमानः**) ज्ञानयोग और कर्मयोग से साक्षात्कृत आप (**नः**) हम लोगों को (**चित्रतमं**) नानाविध (**वयः**) बल को (**दधत् एव**) अवश्य धारण कराते हुए (**पवस्व**) पवित्र करें। तथा (**अद्वेषे द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवीलोक को द्वेष से रहित होने की (**हुवेम**) हम लोग प्रार्थना करते हैं। और (**देवाः**) दिव्यगुणसम्पन्न विद्वान् (**अस्मे**) हम लोगों में (**सुवीरं रयिं**) सुन्दर वीरों वाले ऐश्वर्य को (**धत्त**) धारण करायें ॥१०॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों की सङ्गति में रहते हैं, उनके लिये परमात्मा नानाविध ऐश्वर्यों को देता है। और द्युलोक और पृथिवीलोक उनके द्वेषियों से सर्वथा रहित हो जाता है। अर्थात् वे मित्रता की दृष्टि से सबको देखते हैं ॥१०॥

नवम मण्डल में यह अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ दशर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य १--१० हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पादनिचृज्जगती । २—४, ६ जगती । ७, ८ निचृज्जगती । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् ॥ स्वरः--१-८ निषादः । ६, १० गान्धारः ॥

अब ईश्वर के साक्षात्कार के साधनों का निरूपण करते हैं ॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥१॥

पदार्थः—(धन्वन्) धनुष में (न) जैसे (इषुः) बाण (प्रतिधीयते) रखे जाते हैं उसी प्रकार हे जिज्ञासो ! तुमको ईश्वर में (मतिः) बुद्धि को लगाना चाहिये और (न) जैसे (वत्सः) बछड़ा (मातुः) गाय के (ऊधनि) स्तनों के पान के लिये (उपसर्जि) रचा गया है उसी प्रकार तुम भी ईश्वर की उपासना के लिये रचे गए हो । और (अस्य) इस जिज्ञासु के (व्रतेषु) सत्यादि व्रतों में (सोमः) परमात्मा (इष्यते) उपास्य रूप से कहा गया है । (वत्सस्य) बछड़े के (अग्रे) आगे (आयती) उपस्थित (उरुधारेव) गौ (दुहे) जैसे दुही जाती है, उसी प्रकार सन्निहित परमात्मा सब अभीष्टों का प्रदान करता है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार धन्वी, लक्ष्यभेदन करने वाला मनुष्य इतस्ततः वृत्तियों को रोक कर एकमात्र अपने लक्ष्य में वृत्ति लगाता है, इसी प्रकार परमात्मोपासकों को चाहिये, कि वे सब ओर से वृत्ति को रोक कर एकमात्र परमात्मा की उपासना करें ॥१॥

उपोमतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

पदार्थः—(पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (प्रघ्नताम्) शूर-वीरों के (सन्तनिः) शरों के (इव) समान रुद्र रूप है । और साधु पुरुषों के लिये (द्रप्सः) गतिशील परमात्मा (मधुमान्) मधु के समान मीठा है अर्थात् शान्तिप्रद है । (वारम्) जो उसका कृपापात्र भक्त जन है उसको (पर्यर्षति) सब प्रकार से प्राप्त होता है । और (अन्तरासनि) भक्त पुरुषों के अन्तःकरण में (मन्द्राजनी) आह्लाद उत्पन्न करने वाली (मतिः) बुद्धि (चोदते) उत्पन्न होती है । जिससे (मधु सिच्यते) आनन्द की वृष्टि की जाती है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शान्त भाव से परमात्मा के नियमानुकूल चलते

Scanned by CamScanner

हैं, परमात्मा उन्हें शान्ति रूप से उनके कर्मानुकूल फल देता है। और जो परमात्मनियमों का उल्लंघन करते हैं, उनके लिये परमात्मा दण्ड देता है। इसी अभिप्राय से यहां शूरवीरों के बाणों के समान परमात्मा को कथन किया गया है। जैसा कि "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" उठे हुए वज्र की तरह परमात्मा भयप्रद है ॥२॥

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥३॥

पदार्थः—(वधूयुः) प्रकृति का स्वामी (हरिः) परमात्मा (अक्रान्) दुष्टों को अतिक्रमण करता है। (यजतः) याग करने वाला जो (संयतः) संयमी पुरुष है (मदः) उसको आह्लाद उत्पन्न करने वाला है। (नृम्णा) बलस्वरूप है तथा (शिशानः) सर्वगत है (महिषः) और अत्यन्त तेजस्वी के (न) समान विराजमान है। वह परमात्मा (अदितेः) पृथिव्यादि तत्वों के (ऋतंयते) तत्त्व को जानने वाले पुरुष के लिये (अव्यः) जो रक्षा करने वाला है (त्वचि) उसके अन्तःकरण में (परिपवते) सब ओर से विराजमान होता है। तथा (नप्तीः) उसकी सन्ततियों को (श्रथ्नीते) सफल करता है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष संयमी बनकर निष्काम यज्ञ करते हैं, उन पुरुषों के लिये परमात्मा शुभ सन्तानें और शुभ फलों को उत्पन्न करता है ॥३॥

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥४॥

पदार्थः—(उक्षा) ब्रह्मचर्यादि बलस्वरूप पुरुष ही (मिमाति) सर्वज्ञाता हो सकता है। उस (निष्कृतं) परिष्कृत पुरुष को (धेनवः) इन्द्रियें (प्रतियन्ति) प्राप्त होती हैं। (देवस्य देवीः) दिव्य परमात्मा की दिव्यशक्तियाँ (उपयन्ति) उसी को प्राप्त होतीं हैं। वही (अर्जुनं) बड़े-बड़े योद्धाओं को (अत्यक्रमीत्) अतिक्रमण करता है। (वारं) उस सर्ववरणीय (अव्ययं) इन्द्रियविकार रहित (अत्कं न) कवच की तरह (निक्तं) यश से उज्ज्वल की (सोमः) परमात्मा (पर्यव्यत) चारों ओर से रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचारी बनकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार के बल अपने में उत्पन्न करता है, वह परमात्मा के सामर्थ्य का पात्र होता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥५॥

पदार्थः—(अमर्त्यो हरिः) अमरणधर्मा परमात्मा तथा (निर्णिजानः) शुद्ध (अमृक्तेन रुशता) अपने स्वाभाविक तेज से (वाससा) अपनी शक्तिरूपी आच्छादन द्वारा (दिवस्पृष्ठं) द्युलोक के पृष्ठ को, जिसमें (चम्वोर्नभस्मयम्) द्युलोक और पृथिवी-लोक की (कृतोपस्करणम्) अन्तरिक्ष रूपी बिछौना है उसको (बर्हणा) अपनी प्रकृति रूपी पुच्छ से (निर्णिजे) पुष्ट करता है और (परिव्यत) सब ओर से इस ब्रह्माण्ड को आच्छादित करता है ॥५॥

भावार्थः—अजरामरादि भावयुक्त परमात्मा अपने प्रकृतिरूपी पुच्छसे सब संसार को आच्छादित किये हुए हैं ॥५॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥६॥

पदार्थः—(मत्सरासः) सर्वाह्लादक (प्रसुपः) सबका निवासस्थान परमात्मा (ततं तंतुं) विस्तृत प्रकृतिरूप तन्तु के (साकं) साथ (ईरते) गति करता है। उससे (आशवः) गमनशील (सर्गासः) सृष्टियाँ (सूर्यस्य रश्मय इव) सूर्य की किरणों के समान (द्रावयित्नवः) क्षरणशील उत्पन्न होतीं हैं। उक्त परमात्मा (इन्द्रादृते) उद्योगी के अतिरिक्त (किंचन धाम) अन्य किसी के अन्तःकरण को (न पवते) नहीं पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थः—उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा के द्वारा सूर्य की रश्मियों के समान अनन्त प्रकार की सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं ॥६॥

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! आप (अस्मे) हमारी (निवेशे) स्थिति में (नः) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) मनुष्य तथा पशुओं के (शं) कल्याणकारी हों। तथा हमारी (कृष्टयः) बुद्धियाँ (तिष्ठन्तु) शुभ हों। (मदासः) आनन्दमय (आशवः) व्यापक आपके यश को (गातुं) गानकर इस प्रकार जिज्ञासु लोग आपके स्वरूप में (आशत) लीन हों, जैसे (सिन्धोरिव) समुद्र के (प्रवणे निम्ने) निम्न प्रवाह में (वृषच्युताः) वेग से बहने वाली नदियां मिलती हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा करुणासिन्धु है। जिस प्रकार क्षुद्र नदियां समुद्र में मिलकर महासागर हो जाती हैं, इसी प्रकार उक्त परमात्मा को मिलकर उपासक महत्त्व को धारण करता है ॥७॥

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।

यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वसुमत्) ऐश्वर्यसम्पन्न (हिरण्यवत्) स्वर्णादिधन के स्वामी (गोमत्) गवाद्यैश्वर्यवाले (अश्ववत्) विद्युदादि शक्तियों के स्वामी (यवमत्) अन्नधनाद्यैश्वर्ययुक्त आप (सुवीर्य) सुन्दर पराक्रम को (नः) हम लोगों को (आपवस्व) सब ओर से दें। (यूयम्) आप (हि) निश्चय करके (मम) मेरे (पितरः स्थन) पालन करने वाले हो। और (वयस्कृतः) ऐश्वर्य के देने वाले आप (दिवः) द्युलोक के (मूर्धानः) मुखरूप (प्रस्थिताः) विराजमान हैं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥८॥

एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।

सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥९॥

पदार्थः—(पवमानासः) पवित्र करने वाले (एते) ये (सुताः) संस्कृत (सोमाः) सौम्यस्वभाव (रथाइव) संग्रामों में महारथी के समान (पवित्रं) पवित्र (सातिमच्छ) संग्राम के अभिमुख जाने वाले (इन्द्रं) कर्मयोगी को (प्रययुः) प्राप्त हों। उक्त स्वभाव (हरितः) पापों को हरण करते हुए (अव्यं) कायरता को (प्रतियन्ति) दूर करते हैं। और (वव्रिं) जराका (हित्वी) नाश करके (वृष्टिं) आनन्द की वृष्टि को (अच्छ) देते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शील की प्रार्थना है। जिस शुभ शील से मनुष्य ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥६॥

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।

भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्दो) ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (सुमृळीक) कर्मयोगी को सुख देने वाले (अनवद्य) निन्दारहित (रिशादाः) बाधकों के नाशक आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (पवस्व) पवित्रता का प्रदान करें। और (गृणते) स्तुति करने वाले

Scanned by CamScanner

कर्मयोगी के लिये (चन्द्राणि) आल्हाद देने वाले (वसूनि) धनों को (भर) प्रदान करें। आप (देवैः) दिव्य धनों के सहित (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (नः) हम लोगों के लिये (प्रावतं) प्राप्त करायें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगी के लिये ऐश्वर्यप्रदान का वर्णन किया गया है ॥१०॥

नवम मण्डल में यह उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य १–१० रेणुर्वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ३ त्रिष्टुप् । २, ६, ९, १० निचृज्जगती । ४, ५, ७, जगती । ८ विराड्जगती ॥ स्वरः--१, ३ धैवतः । २, ४—१० । निषादः ॥

अब पचीस प्रकार के तत्त्वों का वर्णन करते हैं ॥

त्रिर॑स्मै स॒प्त धे॒नवो॑ दुदुह्रे स॒त्यामा॒शिरं॑ पू॒र्व्ये व्यो॑मनि ।
च॒त्वार्य॒न्या भुव॑नानि नि॒र्णिजे॒ चारू॑णि चक्रे॒ यदृ॒तैरव॑र्धत ॥१॥

पदार्थः—(पूर्व्ये व्योमनि) महदाकाश में (अन्या) प्रकृति से भिन्न (चत्वारि भुवनानि) चार तत्त्व (यत्) जो कि (चारूणि) सुन्दर हैं, वे (निर्णिजे) शुद्धि के लिये (ऋतैः) प्रकृति के सत्य द्वारा (चक्रे) परमात्मा ने रचे हैं। (अस्मै) इस कार्य के लिये (धेनवः)वेदवाणियां (त्रिःसप्त) अहङ्कार से लेकर पंचभूतों तक २१ तत्त्वों द्वारा (दुदुह्रे) पूर्ण करती हैं। और उससे (सत्यामाशिरं) सत्य हैं कारण जिनके ऐसे क्षीरादि रसों को (अवर्धत) बढ़ाती हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृतिरूपी उपादान-कारण से इस संसार को उत्पन्न किया। और वह इस प्रकार कि प्रकृति से महत्तत्व, और महत्तत्व से अहङ्कार और अहंकार से पञ्चतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध इनसे पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एवं पञ्च-भूत अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार आदि इन २१ प्रकृतियों से परमात्मा ने संसार को उत्पन्न किया। महत्तत्व को यहाँ इस लिये नहीं गिना, कि वह वैदिक-लोगों के मन्तव्य में एक प्रकार की प्रकृति ही है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति इस संसार का परिणामी उपादान-कारण है। अर्थात् प्रकृति के परिणाम से इस संसार की रचना हुई है। और परमात्मा कूटस्थ नित्य है। उसका किसी प्रकार से परिणाम वा परिवर्तन नहीं होता है ॥१॥

Scanned by CamScanner

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः॥२॥

पदार्थः—(भिक्षमाणः) प्रकृतिरूपी तत्व को लाभ करता हुआ (चारुणोऽमृतस्य) सुन्दर अमृत के देने वाले (उभे द्यावा) द्युलोक और पृथिवीलोक को (काव्येन) अपनी चतुराई से (विशश्रथे) व्यक्त करता है। (सः) वह परमात्मा (तेजिष्ठा अपः) तेजस्वी जलमयपरमाणुओं के (मंहना) महत्त्व से (परिव्यत) आच्छादन करता है। (यदि देवस्य) अगर दिव्य ज्ञान के (श्रवसा) महत्त्व से (सदः) सद्रूपब्रह्म को (विदुः) जानें, तो उक्त परमात्मा के कर्तृत्व को जान सकते हैं॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के महत्व को जानते हैं, वे ही इस जगत् की अद्भुत सत्ता को जान सकते हैं, अन्य नहीं॥२॥

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मननां अगृभ्णत॥३॥

पदार्थः—(ते) वे (अमृत्यवः) मरणधर्मरहित (अदाभ्यासः) अदम्भनीय पूर्वोक्त तत्त्ववेत्ता लोग (अस्य) इस संसार के (केतवः) मौलिमणिस्थानी (सन्तु) हों। (उभे जनुषी) दोनों जन्मों को (अनु) लक्ष्य करके (देव्या नृम्णा) दिव्य कर्म (येभिः) जिनसे किये जाते हैं, वे ही लोग (पुनते) संसार को पवित्र करते हैं (च) और (आदित्) वे ही (मननाः) माननीय (राजानं) प्रकाशरूप परमात्मा को (अगृभ्णत) ग्रहण करते हैं॥३॥

भावार्थः—जो लोग लोक और परलोक को लक्ष्य रखकर शुभ कर्म करते हैं, वे ही परमात्मा के ज्ञानपात्र हो सकते हैं, अन्य नहीं॥३॥

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ॥४॥

पदार्थः—(मध्यमासु प्रमातृषु) ज्ञानेन्द्रियों में (प्रमे) प्रमाण के लिये (सचा) संगत (सः) वह परमात्मा (दशभिः कर्मभिः) पांच सूक्ष्मभूत और पाँच स्थूलभूतों से (मृज्यमानः) विराट् रूप से अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ सर्वत्र विराजमान है (व्रतानि पानः) व्रतों को धारण करने वाला मनुष्य (चारुणोऽमृतस्य) सुन्दर अमृत भाव के देने वाले (उभे विशौ) दोनों ज्ञान और कर्म जो हैं, उनको (नृचक्षाः) सर्वज्ञ पुरुष ही (अनुपश्यते) देखता है, अन्य नहीं॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो पुरुष तपश्चर्यादि कर्मों को करता है, वही पुरुष ज्ञान तथा कर्म के प्रभाव से सर्वत्राभिव्यक्त परमात्मा को ज्ञानदृष्टि से देख सकता है, अन्य नहीं ॥४॥

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥५॥

पदार्थः—(**मर्मृजान**) सर्वपूज्य (**दुर्मतीः शुरुधः**) दुष्ट प्रकृति वाले असुरों को (**आदेदिशानः**) शिक्षा देने वाला (**वृषा**) आनन्दका वर्षक (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों के (**अन्तर्हितः**) मध्य में विराजमान (**सः**) वह परमात्मा (**इन्द्रियाय**) इन्द्रियों के (**धायसे**) धारण करने वाले बल के लिये (**आहर्षते**) सर्वत्र विराजमान है। और (**शुष्मेण**) अपने बल से (**विबाधते**) दुष्टों को पीड़ा देता है। (**शर्यहेव**) जैसे बाणों से योद्धा अपने प्रतिपक्षी को मारता है, उसी प्रकार परमात्मा दुराचारी और विघ्नकारी राक्षसों को मारता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अपने सच्चिदानन्दरूप से सर्वत्रैव परिपूर्ण हो रहा है। और वह अपनी दमनरूप शक्ति से दुष्टों को दमन करके सत्पुरुषों का उद्धार करता है ॥५॥

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानदेति मरुतामिव स्वनः।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥६॥

पदार्थः—(**मातरा ददृशानः**) माता को देखता हुआ (**न**) जैसे (**नानदत्**) शब्द करके (**उस्रियः**) गोके सन्मुख (**एति**) जाता है, इसी प्रकार (**सः**) वह (**सुक्रतुः**) शोभनकर्मा उपासक (**मरुतां स्वन इव**) कर्मयोगी विद्वानों के शब्दों से (**ऋतं**) सत्य को (**जानन्**) जानता हुआ (**स्वर्णरं**) सर्वहितकारक (**प्रथमं**) अनादि (**कं**) सुखरूप परमात्मा की (**प्रशस्तये**) प्रशंसा के लिये (**अवृणीत**) उस परमात्मा को स्वीकार करता है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मामृतवर्षिणी धेनु के समान परमात्मा को कामधेनु समझकर उसकी उपासना करता है, वह अन्य किसी सुख की अभिलाषा नहीं करता ॥६॥

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—जिस कर्मयोगी की (**गव्ययी**) सत् असत् का निर्णय करने वाली (**त्वक्**) चैतन्यशक्ति (**निर्णिगव्ययी**) परिशोधन करने वाली और रक्षा करने वाली (**भवति**) होती है, उस (**सुकृतं**) सुकृती कर्मयोगी के हृदय को (**योनिं**) स्थान बनाकर (**तविष्यया**) वृद्धि की इच्छा से (**भीमः**) दुष्ट के भयदाता (**वृषभः**) कर्मों का वर्षक (**विचक्षणः**) सर्वज्ञ (**सोमः**) परमात्मा (**आनिषीदति**) निवास करता है। और (**हरिणी**) अविद्या की हरण करने वाली (**शृङ्गे**) दो दीप्तियों को (**शिशानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**रुवति**) शब्द स्पर्शादिकों के आश्रयभूत पञ्च तत्वों को उत्पन्न करता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा जीवरूपी शक्ति और प्रकृतिरूपी शक्ति दोनों का अधिष्ठाता है। वा यों कहो, कि उक्त दोनों दीप्तियों को उत्पन्न करके परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥७॥

शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥८॥

पदार्थः—(**सुकर्मभिः**) सुन्दर कर्मों से (**त्रिधातु**) कफ, वात, पित्तात्मक (**अरेपसं**) पापरहित (**तन्वं**) शरीर (**मित्राय वरुणाय वायवे**) अध्यापक, उपदेशक और कर्मयोगी बनने के लिये (**मधु क्रियते**) जिसने संस्कृत किया है, वह पुरुष (**अव्ये सानवि**) सर्वरक्षक परमात्मा के स्वरूप में (**न्यधाविष्ट**) स्थिर होता है। जो परमात्मा (**हरिः**) पापों का हरण करने वाला है, और (**शुचिः**) पवित्र है, तथा (**पुनानः**) पवित्र करने वाला है और (**जुष्टः**) प्रीति से सेव्य है ॥८॥

भावार्थ—जो लोग अपने इन्द्रियसंयम द्वारा वा यज्ञादि कर्मों द्वारा इस शरीर का संस्कार करते हैं, वे मानो इस शरीर को मधुमय बनाते हैं। जैसे कि "महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः" इत्यादि वाक्यों में यह कहा है, कि अनुष्ठान से पुरुष इस तनुको ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली बना लेता है। इसी भाव का उपदेश इस मन्त्र में किया गया है ॥८॥

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥९॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**देववीतये**) यज्ञादि कर्म के लिये (**पवस्व**) हमको पवित्र बनायें। और (**वृषा**) आनन्दवर्षक आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी को (**सोमधानं**) जो आप की स्थिति के योग्य मन (**हार्दि**) सर्वप्रिय है, उसमें (**आविश**)

Scanned by CamScanner

आकर प्रवेश करें। और जिस प्रकार (क्षेत्रवित्) मार्ग का जानने वाला पुरुष (विपृच्छते) मार्ग पूछने वाले को (दिश आह हि) शुभ मार्ग का उपदेश करता है, इसी प्रकार आप (नः) हम लोगों के (बाधात्) पीडन के (पुरा) पहले ही (दुरिता) पापों को (अति पारय) दूर करिये ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा जीवों को शुभ मार्ग का उपदेश करके आने वाले दुःखों से पहिले ही बचाता है ॥६॥

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्दो) परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् ! (नावा न) जैसे नाविकजन (सिन्धुं) नदी को (अतिपर्षि) पार करते हैं, ऐसे आप हमको संसार सागर से पार करें। (विद्वान् शूरो न) और जैसे विद्वान् शूरवीर (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (नः) हम लोगों के (निदः) निन्दकों को (अव स्पः) मारता है, इसी तरह आप दुष्टों को दमन कर श्रेष्ठों को उबारें। और (सप्तिर्न) जैसे सूर्य (वाजं) ऐश्वर्य को उत्पन्न करता हुआ (अभ्यर्ष) अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है, इसी प्रकार आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरं) हृदय में ज्ञानरूपी सत्ता से विराजमान होकर (आपवस्व) पवित्र करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्य के समान अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके हमारे हृदय में ज्ञानदीप्ति का प्रकाश करता है ॥१०॥

नवम मण्डल में यह सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड्जगती । २ जगती । ३, ५, ८ निचृज्जगती । ६ पादनिचृज्जगती । ९ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—८ निषादः। ९ धैवतः ॥

अब द्युभुवादि लोकों के अधिकरण रूप से परमात्मा का निरूपण करते हैं ॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पयं उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥१॥

पदार्थः— (सोमः) परमात्मा (शुष्मी) बल वाला (आसदं) सर्वत्र व्याप्त है। उपासक लोग (दक्षिणा) उपासना रूप दक्षिणा को (सृज्यते) परमात्मा को समर्पित करते हैं। (जागृविः) जागरणशील परमेश्वर (द्रुहोरक्षसः) द्रोह करने वाले राक्षसों को मारकर सज्जनों की (पाति) रक्षा करता है। और (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवी-लोक को (निर्णिजे) पोषण करता है। (हरिः) पापों का हरण करने वाला (ब्रह्म) परमात्मा (नभः) अन्तरिक्ष लोक को (पयः) परमाणु समूह से (उपस्तिरे) आच्छादित करता है। तथा (ओपशं) वही परमात्मा अन्तरिक्ष लोक को (कृणुते) सबको अवकाश देने वाला करता है ॥१॥

भावार्थः परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड को द्रवीभूत अथवा यों कहो कि वाष्परूप परमाणुओं से आच्छादित किया हुआ है उसी सर्वोपरि उपास्य देव की उपासक लोग अपनी उपासना रूप दक्षिणा से उपासना करें ॥१॥

प्र कृ॑ष्टिहेव॑ शूष ए॑ति॒ रोरु॑वदसु॒र्यं१॒ वर्णं॒ नि रि॑णीते अस्य॒ तम् ।
जहा॑ति व॒व्रिं पि॒तुरे॑ति निष्कृ॒तमु॑प॒प्रुतं॑ कृणुते नि॒र्णिजं॒ तना॑ ॥२॥

पदार्थः—(शूषः) इस संसार की उत्पत्ति करने वाला परमात्मा (कृष्टिहेव) योद्धा के समान (प्रेति) बड़े प्रभाव से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। और (असुर्यं) असुरों को (रोरुवत्) अत्यन्त रुलाता है। तथा (अस्य) इस जीवात्मा के (तं) पूर्वोक्त (वर्णं) आच्छादन करने वाली (वव्रिं) वृद्धावस्था को (जहाति) अतिक्रमण करता है। और (पितुः एति) पिता के भाव को प्राप्त होकर (निष्कृतं) कृतकार्य और (उपप्रुतं) पूर्ण (कृणुते) बना देता है। तथा (तना) इस शरीर को (निर्णिजं) सुन्दर रूप युक्त बना देता है। और (निरिणीते) निर्मुक्त करता है ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मज्ञान के पात्र हैं परमात्मा उनको पूर्ण ज्ञान देकर जरामरणादि भावों से निर्मुक्त करके अमृत बना देता है ॥२॥

अद्रि॑भिः सु॒तः प॑वते॒ गभ॑स्त्योर्वृषा॒यते॒ नभ॑सा॒ वेप॑ते म॒ती ।
स मो॑दते॒ नस॑ते॒ साध॑ते गि॒रा ने॑नि॒क्ते अ॒प्सु यज॑ते॒ परी॑मणि ॥३॥

पदार्थः—(सुतः) स्वयंसिद्ध स्वयम्भू परमात्मा (अद्रिभिः) चित्त वृत्तियों द्वारा साक्षात् किया हुआ (पवते) पवित्र करता है। और (गभस्त्योः) इस जीवात्मा की ज्ञानरूपी दीप्तियों को (वृषायते) बलयुक्त करता है। तथा (मती) वह ज्ञान-स्वरूप परमात्मा (नभसा वेपते) व्याप्त हो रहा है। (सः) वह (मोदते) आनन्दरूप से विराजमान है। और (नसते) सबका अङ्गी सङ्गी होकर विराजमान है। (गिरा)

Scanned by CamScanner

वेदरूपी वाणियों द्वारा उपासना किया हुआ (साधते) सिद्धि का देने वाला है। और (अप्सु) सत्कर्मों में प्रवेश करके (नेनिक्ते) मनुष्य को शुद्ध करने वाला है। तथा (परीमणि) रक्षाप्रधान यज्ञों में (यजते) सर्वत्र परिपूजित है ॥३॥

भावार्थः—जो परमात्मज्ञान के पात्र होते हैं, वे प्रथम स्वयं उद्योगी बनते हैं, फिर परमात्मा उनके उद्योग द्वारा उनको शुद्ध करके परमानन्द का भागी बनाता है ॥३॥

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥४॥

पदार्थः—(सहसः) क्षमाशील वह परमात्मा (मध्वः) सब को आनन्द देने वाला (द्युक्षं) ज्ञानरूपी दीप्तियों में स्थिर जीव को (हर्म्यस्य सक्षणि) जो शत्रुओं को हनन करने वाला है, तथा (पर्वतावृधं) जो हिमालय की तरह अपने सहायक लोगों से वृद्धि को प्राप्त है, ऐसे जीवात्मा को (परिषिंचति) परमात्मा ज्ञानरूपी वृष्टि से सिंचन करता है। तथा वह ऐसे जीवात्मा को ज्ञान दृष्टि से परिपूर्ण करता है। (यस्मिन्) जिसमें (गावः) इन्द्रियें (सुहुतादः) अपने शब्दस्पर्शादि भोग्य विषयों को भोगने की शक्ति रखती हैं। और (वरीमभिः) अपने महत्त्व से (ऊधनि) पयोधार पात्र के समान (अग्रियं) उस अग्रणी पुरुष के (मूर्धन्) मूर्धा को (आश्रीणन्ति) अभिषेक द्वारा शुद्ध करती हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपासक को ज्ञानी तथा विज्ञानी बनाकर उसका उद्धार करता है ॥४॥

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥५॥

पदार्थः—(दश) दश संख्या वाले (स्वसारः) स्वाभाविक गति वाले प्राण (अदितेः, उपस्थे) इस पार्थिव शरीर में (आजिगात्) इन्द्रियों की वृत्तियों को जीतते हैं। और (न) जैसे सारथी (रथं) रथ को (भुरिजोः) हाथों से (अहेषत) प्रेरणा देता है, इसी प्रकार परमात्मा शुभाशुभ कर्म द्वारा मनुष्यों के शरीररूपी रथ को प्रेरणा करता है। (अस्य) इस जीवात्मा के (मतुथाः) मनोरथों को जो (अजीजनन्) सफल करते हैं। तथा (यत्) जो (अपीच्यं) गूढ़ (पदं) पद हैं, वह इस जीवात्मा को प्रदान करते हैं। और (ईं) उक्त परमात्मा को (सं) भलीभांति प्राप्त होकर (उपज्रयति) अपने मनोरथों को सिद्ध कर लेता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में यह बतलाया गया है, कि मनुष्य प्राणायाम द्वारा संयमी बनकर उन्नतिशील बने ॥५॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
एं रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणयुक्त परमात्मा (**धियाकृतं**) संस्कृत बुद्धि से साक्षात्कार किया हुआ (**हिरण्ययं**) प्रकाशरूप (**श्येनो न योनिं सदनं**) अपने स्थिर स्थान घोंसले को प्राप्त होता है उसी तरह जैसे बाज (**आसदं**) स्थान को (**एषति**) प्राप्त होता है । (**ईं**) उक्त (**प्रियं**) सबके प्यारे परमात्मा को उपासक (**बर्हिषि**) हृदय में (**गिरा**) वेदवाणियों से (**आरिणन्ति**) स्तुति करते हैं । जैसे विद्युत् चराचर में व्याप्त हो जाती है, वैसे ही (**यज्ञियः**) परमात्मा (**देवान्**) दिव्यगुण वाले विद्वानों को (**अप्येति**) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहें, वे अपने हृदय में उसका ध्यान करें ॥६॥

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥७॥

पदार्थः—(**अरुषः**) प्रकाशस्वरूप (**वृषा**) आनन्द का वर्षक (**कविः**) सर्वज्ञ (**व्यक्तः**) स्फुट परमात्मा (**दिवः परा**) द्युलोक से भी परे है । तथा (**त्रिपृष्ठः**) त्रिकालज्ञ परमात्मा (**गाः**) उपासनारूपी वाणी को (**अभि**) लक्ष्य करके (**अनविष्ट**) स्थिर है । और वह परमेश्वर (**सहस्रणीतिः**) अनन्त शक्ति वाला है । और (**यतिः**) लोकमर्यादा का हेतु, और (**परायतिः**) सर्वत्र व्याप्त है । परमात्मा (**पूर्वी उषसः**) अनादि काल की उषाओं में (**रेभो न**) प्रकाशमान सूर्य के समान (**विराजति**) विराजमान है ॥७॥

भावार्थः—अनादि काल से परमात्मा अनेक उषाकालों को प्रकाशित करता हुआ सर्वत्र विद्यमान है ॥७॥

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥८॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**रूपं**) रूप को (**त्वेषं**) दीप्यमान (**कृणुते**) करता है । (**वर्णः**) वरणीय (**सः**) वह परमात्मा (**यत्र**) जिस (**समृता**) संग्राम में (**अशयत्**) स्थिर होता है (**अस्य**) उसमें (**स्रिधः**) दुष्टों को (**सेधति**) मारता है । (**दैव्यं जनं**)

दिव्यशक्ति वाले मनुष्य को वह (अप्साः) सत्कर्मों का दाता (संस्तुतो) सुन्दर स्तुति योग्य परमात्मा (स्वधया) अपने आनन्द से (याति) परिपूर्ण है। और (गोअग्रया) वेदवाणी से (संनसते) सर्वत्र संगत होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का वर्णन किया गया है, कि परमात्मा प्रत्येक रूप को प्रदीप्त करने वाला है। उसी की सत्ता से सम्पूर्ण पदार्थ स्थिर हैं। और स्वयं वह निर्लेप होकर इन सब चीजों में विराजमान है ॥८॥

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥९॥

पदार्थः—(उक्षेव) विद्युत् के समान (यूथा) गणों को (परियन्) प्राप्त होकर (अरावीत्) शब्दायमान होता है (सूर्यस्य) सूर्य को (त्विषीः) दीप्तिका (अध्यधित) धारण कराता है। (दिव्यः) दिव्य गुण वाला (सुपर्णः) चेतन (सोमः) परमात्मा (क्षां) पृथिवी का (अवचक्षत) निर्माण करने वाला है। वह परमात्मा (जाः) प्रजाको (क्रतुना) ज्ञानदृष्टि से (परिपश्यते) देखता है ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी ज्ञानदृष्टि से सम्पूर्ण पदार्थों को देखता है। और सूर्यादि लोकलोकान्तरों का प्रकाशक है ॥९॥

नवम मण्डल में यह इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ हरिमन्त ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३, ६, ७ निचृज्जगती । ४, ८ जगती । ५ विराड्जगती । ९ पादनिचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब परमात्मोपदेश निरूपण करते हैं ॥

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (उद्वाचं) सदुपदेश की (ईरयति) प्रेरणा करने वाला है। (मती) बुद्धि का (हिन्वते) प्रेरक है। और (पुरुष्टुतस्य) विज्ञानियों को (परिप्रियः) सर्वोपरि प्यारा परमात्मा (कतिचित्) अनन्त दान देता है। (अरुषो न) विद्युत् की तरह वह परमात्मा (युज्यते) युक्त होता है। ऐसे (हरिं) परमात्मा को

Scanned by CamScanner

उपासक (मृजन्ति) ध्यानविषय करते हैं । और उसका (संधेनुभिः) इन्द्रियों के द्वारा (कलशे) अन्तःकरणों में (अज्यते) साक्षात्कार किया जाता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग अपनी इन्द्रियों को संस्कृत बनाते हैं, अर्थात् शुद्ध मन वाले होते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥१॥

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

पदार्थः—(यदि) जब (बहवो मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (साकं) साथ ही (वदन्ति) उसका यशोगान करते हैं तब (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरे) अन्तःकरण में (सोमं) शान्ति रूप परमात्मा (दुहुः) परिपूर्ण रहते हैं और (सुगभस्तयो नरः) भाग्यवान् लोग (यदा) जब (मृजन्ति) उसका साक्षात्कार करते हैं । तब (सनीला-भिर्दशभिः) बलयुक्त दश इन्द्रियों से (काम्यं मधु) यथेष्ट आनन्द को लाभ करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जब कर्मयोगी लोग उस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, तब सामाजिक वल उत्पन्न होता है । अर्थात् बहुत से लोगों की संघति होकर परमात्मा के यश का गान करते हैं ॥२॥

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥३॥

पदार्थः—(अरममाणः) जितेन्द्रिय कर्मयोगी (गाः) इन्द्रियों का (अत्येति) अतिक्रमण करता है । (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्य की प्रिय दुहिता उषा के (अभि) सन्मुख (तिरोरवं) शब्दायमान होकर स्थिर होता है । और वह कर्मयोगी (द्वयीभिः स्वसृभिः) कर्मयोग की दोनों वृत्तियाँ जो एक मन से उत्पन्न होने के कारण स्वसृभाव धारण किये हुई हैं, और (जामिभिः) जो युगलरूप से रहती हैं, उनसे (संक्षेति) विचरता है । (विनङ्गृसः) स्तोता (अस्मै) उस कर्मयोगी के लिये (जोषमन्वभरत्) प्रीति से सेवन करता है ॥३॥

भावार्थः—जितेन्द्रिय पुरुष के यश को स्तोता लोग गान करते हैं । क्योंकि उनके हाथ में इन्द्रिय रूपी घोड़ों की रासें रहती हैं । इसी अभिप्राय से उपनिषत् में यह कहा है, कि "सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्" वही पुरुष इस संसाररूपी मार्ग को तै करके विष्णु के परम पद को प्राप्त होता है, अन्य नहीं ॥३॥

Scanned by CamScanner

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! परमात्मा (नृधूतः) सबको कम्पायमान करने वाला, और (अद्रिषुतः) संस्कृत इन्द्रियों की वृत्तियों से साक्षात्कार को जो प्राप्त है, तथा (बर्हिषि) यज्ञों में (प्रियः) जो प्रिय है, और जो जगदीश्वर (गवां पतिः) लोकलोकान्तरों का पति है, तथा (प्रदिवः) द्युलोक का (इन्दुः) प्रकाशक है । और (ऋत्वियः) त्रिकालज्ञ (पुरन्धिवान्) सर्वज्ञ तथा (मनुषः) मनुष्यों के लिये (यज्ञसाधनः) ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञादिकों का देने वाला वह (सोमः) परमात्मा (शुचिर्धिया) शुद्ध बुद्धि से साक्षात्कार किया हुआ (ते) तुमको (पवते) पवित्र करता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोक-लोकान्तरों का अधिपति परमात्मा है, उसको जब मनुष्य ज्ञानदृष्टि से लाभ कर लेता है, तब आनन्दित हो जाता है ॥४॥

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वो३ रासदद्धरिः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (ते) तुमको (अनुष्वधं) बल के लिये (सोमः) शान्तरूप परमात्मा (पवते) पवित्र करे । उक्त परमात्मा (नृबाहुभ्यां) मनुष्यों के ज्ञान और कर्म द्वारा (चोदितः) प्रेरणा किया हुआ, तथा (धारया) धारणा रूप बुद्धि से (सुतः) साक्षात्कार किया हुआ पवित्र करे । उक्त परमात्मा के पवित्र किये हुए तुम (क्रतूनाप्राः) कर्मों को प्राप्त हो । (अध्वरे) धर्मयुद्ध में (मतीः) अभिमानी शत्रुओं को तुम (समजैः) भलीभाँति जीतो । (वेर्न) जिस प्रकार विद्युत् (द्रुषत्) प्रत्येक गतिशील पदार्थों में स्थिर है, इसी प्रकार (हरिः) परमात्मा (चम्वोः) द्युलोक तथा पृथिवीलोक में (आसदत्) स्थिर है ॥५॥

भावार्थः—कर्मयोगी उद्योगी पुरुष धर्मयुद्ध में अन्यायकारी शत्रुओं पर विजय पाते हैं । और विद्युत् के समान सर्वव्यापक परमात्मा पर भरोसा रखकर इस संसार में अपनी गति करते हैं ॥५॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयतमृतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६॥

पदार्थः—(पुनर्भुवः) वारम्वार अभ्यास करने वाली (गावो मतयः) बुद्धिरूपी इन्द्रियवृत्तियां (संयतः) संयम को प्राप्त होती हुईं (ऋतस्य योना सदने) सचाई के

Scanned by CamScanner

यज्ञ में स्थिर (ईं) उक्त परमात्मा को (संयन्ति) प्राप्त कराती हैं। और (मनीषिणः) बुद्धिमान् (अपसः) कर्मयोगी (कवयः) स्तुति की शक्ति रखने वाले लोग (कवि) सर्वज्ञ (अंशुं) सर्वव्यापक तथा (स्तनयन्तं) सम्पूर्ण संसार का विस्तार करने वाले (अक्षितं) क्षयरहित परमात्मा का (दुहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग सर्वाधार और सर्वेश्वर परमात्मा के ज्ञान को लाभ करते हैं, वे ही उसके सचाई के यज्ञ के ऋत्विक् बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य वज्रः) रुद्ररूप परमात्मा (वृषभः) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला तथा (विभूवसुः) परिपूर्ण ऐश्वर्य वाला और (चारु मत्सरः) जिसका सर्वोपरि आनन्द है, वह उक्त (सोमः) परमात्मा (हृदे) हमारे हृदय को (पवते) पवित्र करे। (पृथिव्या नाभा) जो परमात्मा पृथिवी की नाभि में स्थिर है, और (महोदिवः) बड़े द्युलोक का (धरुणः) धारण करने वाला है तथा (अपामूर्मौ) जल की लहरों में और (सिन्धुषु) समुद्रों में (अन्तरुक्षितः) अभिषिक्त किया गया है। उक्त गुणविशिष्ट परमात्मा हमको पवित्र करे ॥७॥

भावार्थः—जो लोग उक्त गुण से विशिष्ट परमात्मा का उपासन करते हैं, और उसमें अटल विश्वास रखते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव पवित्र करता है। और जो हतविश्वास होकर, ईश्वर के नियम का उल्लंघन करते हैं, परमात्मा उनके मदको चूर्ण करने के लिए वज्र के समान उद्यत रहता है ॥७॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥८॥

पदार्थः—(सुक्रतो) हे शोभनयज्ञेश्वर परमात्मन्! (सः) वह पूर्वोक्त आप (तु) शीघ्र (पार्थिवं) पृथिवीलोक और (रजः) अन्तरिक्षलोक के (परि) चारों ओर (पवस्व) हमको पवित्र करें। और (आधून्वते स्तोत्रे) कम्पायमान हुए तथा स्तुति करते हुए मुझको (शिक्षन्) शिक्षा करते हुए आप पवित्र करें। और (सादनस्पृशः) घर के शोभाभूत (वसुनः) जो धन हैं उनसे (नः) हमको (मा निर्भाक्) वियुक्त मत करिये। इस लिये (पिशङ्गं) स्वर्णादियुत (बहुलं रयिं) बहुत धन को (वसीमहि) हम लोग प्राप्त हों ॥८॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे परमात्मन्! आपकी कृपा से हम लोग पृथिवी तथा अन्तरिक्ष लोक के चारों ओर परिभ्रमण करें और नाना प्रकार धनों को प्राप्त करें॥८॥

आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत्।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि॥९॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशरूप परमात्मन्! आप (शतदातु अश्व्यं) विद्युदादि सैकड़ों प्रकार के कलाकौशलयुक्त और (सहस्रदातु) सहस्रों प्रकार के (पशुमत् हिरण्यवत्) पशु और हिरण्यादियुत धन और (रेवतीरिषः) धनयुक्त ऐश्वर्य (बृहतीः) जो सबसे बड़े ह, उनको हमारे लिये (उपमास्व) निर्माण करिये। (पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! (स्तोत्रस्य) उक्त स्तुति के करने वाले (नः) हमको (अधिगहि) आप ग्रहण करें॥९॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने कर्मयोग और उद्योग के अनन्तर अपने कर्मों को ईश्वरार्पण कर देता है, अर्थात् निष्काम भाव से कर्मों को करता है, परमात्मा अवश्यमेव उसका उद्धार करता है॥९॥

नवम मण्डल में यह बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ नवर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ पवित्र ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २—७ निचृज्जगती। ८, ९ विराड्जगती॥ निषादः स्वरः॥

अब परमात्मा यज्ञकर्म का उपदेश करते हैं।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्॥१॥

पदार्थः—(सत्यस्य नावः) सचाई की नौकारूप उक्त यज्ञ (सुकृतं) शोभन कर्म वाले को (अपीपरन्) ऐश्वर्य से परिपूर्ण करते हैं। (स सोमः) उक्त परमात्मा ने (मूर्ध्नः) सर्वोपरि (त्रीन्) तीन लोकों के (आरभे) आरम्भ के लिये (असुरश्चक्रे) असुरों को बनाया। और (द्रप्सस्य) कर्मयज्ञ के (स्रक्वे) मूर्धास्थानी (धमतः) प्रतिदिन कर्म करने में तत्पर कर्मयोगियों को बनाया। उक्त कर्मयोगी (ऋतस्य योना) यज्ञ के कारण रूप कर्म में (समस्वरन्) चेष्टा करते हुए (समरन्तः) सांसारिक यात्रा करते हैं। उक्त कर्मयोगियों को परमात्मा ने (नाभयः) नाभिस्थानीय बनाया॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में असुरों के तीन लोकों का वर्णन किया है। और वे तीन लोक काम, क्रोध और लोभ हैं। इसी अभिप्राय से गीता में यह कहा है, कि "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥" और इनसे विपरीत कर्मयोगियों को यज्ञ की नाभि और यज्ञ का मुखरूप वर्णन किया है ॥१॥

अब असुरों की निन्दा करते हुए, और कर्मयोगियों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं ॥

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥

पदार्थः—(महिषाः) महान् पुरुष (सम्यञ्चः) संगति वाले (सम्यक्) भलीभाँति (सिन्धोरूर्मावधि) इस संसाररूपी समुद्र में (वेनाः) अभ्युदय की अभिलाषा करने वाले (अहेषत) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। और (अवीविपन्) दुष्टों को कम्पायमान करते हैं। (मधोर्धाराभिः) ऐश्वर्य की धाराओं से (जनयन्तः) प्रकट होते हुए तथा (अर्कमित्) अर्चनीय परमात्मा को प्राप्त होते हुए, (प्रियामिन्द्रस्य तन्वं) ईश्वर के प्रिय ऐश्वर्य को (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के महत्त्व को धारण करके महान् पुरुष बनते हैं, वे इस भवसागर की लहरों से पार हो जाते हैं। और परमात्मा के यश का गान करके, अन्य लोगों को भी अभ्युदयशाली बना कर, इस भवसागर की धार से पार कर देते हैं ॥२॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

पदार्थः—(पवित्रवन्तः) उक्त पुण्य कर्म वाले कर्मयोगी (परिवाचं) वेदरूपी वाणी का (आसते) आश्रयण करते हैं। (एषां) इन कर्मयोगियों का (प्रत्नः) प्राचीन (पिता) परमात्मा (व्रतं) इनके व्रत की (अभिरक्षति) रक्षा करता है। और उनके सामने (महः समुद्रं) इस बड़े संसाररूप सागर को (वरुणं) जो वरणरूप अपनी लहरों में डुबा लेने के लिये उद्यत है, उसको (तिरोदधे) परमात्मा तिरस्कार कर देता है। (धरुणेषु) उक्त कर्मयोग और ज्ञानयोगादि-साधनों में (आरभं) आरम्भ को (धीराः) धीरपुरुष (इव) ही (शेकुः) समर्थ होते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि पवित्र कर्मों वाले पुरुष ही वाग्मी बनते हैं। और वे ही इस भवसागर की लहरों से पार हो सकते हैं, अन्य नहीं। इसी अभिप्राय से उपनिषत् में यह कहा है, कि "कश्चिद्धीर आत्मानमैक्षत्" कि यह संसार छुरे की धार है। कोई धीर पुरुष ही इस धार का अतिक्रमण कर सकता है, सब नहीं। भवसागर की लहरें और छुरे की धार यह एक अत्यन्त उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए वाणी का अलंकार है ॥३॥

सहस्रंधारेऽव ते समंस्वरन्दिवो नाके मधुंजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपंदे पाशिनंः सन्ति सेतंवः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (ते) आपके (सेतवः) मर्यादारूप सेतु (पदेपदे सन्ति) पद-पद पर हैं। और वे मर्यादारूप सेतु (पाशिनः) पापियों के दण्डदाता हैं, (भूर्णयः) शीघ्रता करने वाले हैं और (न निमिषन्ति) उनके सामने कोई आँख उठा कर नहीं देख सकता। (अस्य) उस परमात्मा के (स्पशः) सारभूत (असश्चत.) अनन्त ज्योतियें हैं। हे परमात्मन्! आप (सहस्रधारे) अनन्त आनन्द-स्वरूप में (अव) हमारी रक्षा करें। और (दिवोनाके) द्युलोक के मध्य में (समस्वरन्) स्रवित होते हुए, आपके आनन्द (मधुजिह्वा) जो अत्यन्त आह्लादजनक हैं, वे हमको प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्द की सहस्रों धारें इस संसारमें इतस्ततः सर्वत्र बह रही हैं। जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओं को पालन करता है, वही उन आनन्दों का लाभ करता है, अन्य नहीं ॥४॥

पितुर्मातुरध्या ये समस्वंरन्नृचा शोचंन्तः सन्दहंन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रंद्विष्टामपं धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमंनो दिवस्परि ॥५॥

पदार्थः—जो लोग (पितुर्मातुः) पिता-माता की शिक्षा को पाकर सुशिक्षित हैं, और (ये) जो लोग (ऋचा) वेद की ऋचाओं के द्वारा (समस्वरन्) अपनी जीवन-यात्रा करते हैं (शोचन्तोऽव्रतान्) तथा शोकशील अव्रतियों का (संदहन्तः) भलीभांति दाह करने वाले हैं। और जो (मायया) अपनी अपूर्व-शक्ति से (इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति) ईश्वर की आज्ञा को भंग करने वाले राक्षसों का नाश करते हैं, और जो राक्षस (असिक्नीं) रात्रि के अन्धकार के समान (भूमनः) भूलोक और (दिवः) द्युलोक के

Scanned by CamScanner

(परि) चारों ओर (त्वचं) त्वचा के समान वर्तमान हैं, उनको नाश करने वाले पितृमान् और मातृमान् कहलाते हैं ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य इस संसार में चार प्रकार से शिक्षा का लाभ करता है । वे चार प्रकार यह हैं, कि माता, पिता, आचार्य, और गुरु । इसी अभिप्राय से उपनिषत् में कहा है, कि "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" ॥५॥

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥

पदार्थः—(अनक्षासः) अज्ञानी लोग (बधिराः) जो हितोपदेश को भी नहीं सुन सकते वे (ऋतस्य पन्थां) सचाई के मार्ग को (अपाहासत) छोड़ देते हैं । (दुष्कृतः) वे दुष्टाचारी इस भवसागर की लहर को (न तरन्ति) नहीं तर सकते । और (ये) जो (प्रत्नात्) प्राचीन (मानात्) आप्त-पुरुष से (अध्या) आये हुए उपदेशों को (समस्वरन्) पालन करते हुए (श्लोकयन्त्रासः) सत्पुरुषों की संगति में रहने वाले हैं तथा (रभसस्य मन्तवः) परमात्मा की आज्ञा मानने वाले हैं, वे इस भवसागर की लहर को तर जाते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो लोग आप्त-पुरुषों के वाक्यों पर विश्वास करते हैं, और सामाजिक-बल को धारण करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥६॥

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥

पदार्थः—(नृचक्षसः) कर्मयोगी और (सुदृशः) ज्ञानयोगी (स्वञ्चः) गतिशील और (स्पशः) बुद्धिमान् (अद्रुहः) किसी के साथ द्रोह न करने वाले हैं । तथा (इषिरासः) गमनशील (रुद्रासः) परमात्मा के न्याय पालन करने के लिये रुद्ररूप होते हैं (एषां) उक्तगुण-सम्पन्न पुरुषों का परमात्मा सदैव रक्षक होता है । और वे लोग (सहस्रधारे वितते) अनन्त आनन्दमय विस्तृत (पवित्रे) पवित्र परमात्मा में (वाचमापुनन्ति) अपनी वाणी को उसकी स्तुति द्वारा पवित्र करते हैं । उक्त प्रकार के विद्वान् ही (मनीषिणः) मनस्वी और (कवयः) क्रान्तदर्शी होते हैं ॥७॥

भावार्थः जो लोग परमात्मा के स्वरूप में चित्तवृत्ति को लगा कर

Scanned by CamScanner

अपने आपको पवित्र करते हैं, वे ही कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥७॥

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१ऽन्तरा दधे ।

विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥

पदार्थः— (ऋतस्य गोपाः) सचाई की रक्षा करने वाला (सुक्रतुः) शोभन कर्मों वाला कर्मयोगी (न दभाय) जो किसी से दबाया नहीं जाता (सः) वह (पवित्रा) अपने पवित्र (हृद्यन्ते) अन्तःकरण में (त्री) परमात्मा की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयरूप तीनों शक्तियों को (आदधे) धारण करता है। (विद्वान् सः) वह विद्वान् पुरुष (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (अभिपश्यति) देखता है ; और (कर्ते) कर्तव्य में (अव्रतान्) जो अव्रती (अजुष्टान्) और परमात्मा से वियुक्त हैं, उनको (अवविध्यति) मारता है ॥८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर अटल विश्वास रखने वाले हैं, वे किसी से दबाये नहीं जा सकते ॥८॥

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।

धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥

पदार्थः—(अप्रभुः) जो पुरुष कर्मयोगी नहीं है, वह (कर्तमवपदाति) कर्मरूप मार्ग से गिर जाता है। (अत्र) इस कर्म में (धीराश्चित्) कर्मयोगी पुरुष ही (तत्) उसके समक्ष (समिनक्षन्तः) गतिशील होकर (आशत) स्थिर होते हैं। (ऋतस्य) सचाई का (तन्तुः) विस्तार करने वाला (विततः) जो विस्तृत है, वह परमात्मा (वरुणस्य मायया) सबको वशीभूत रखने वाली अपनी शक्ति के साथ (पवित्रे) उसके पवित्र अन्तःकरण में और (जिह्वाया अग्रे) जिह्वा के अग्रभाग में (आ) निवास करता है ॥९॥

भावार्थः—जो कर्मयोगी और उद्योगी पुरुष हैं, उन्हीं के अन्तःकरण में परमात्मा निवास करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य चतुस्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—९ कक्षीवानृषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती । २, ६ विराड्जगती । ४, ७ जगती । ५, ९ निचृज्जगती । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—७, ९ निषादः । ८ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

अब अभ्युदय के अधिकारियों का निरूपण करते हैं ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

पदार्थः—(वने) भक्ति के विषय में (यत्) जब (जातः) तत्काल उत्पन्न (शिशुः) बालक के (न) समान यह जिज्ञासु पुरुष स्वाभाविक रीति से (चक्रदत्) रोता है, तब (स्वः) सुखस्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (अरुषः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सिषासति) उसके उद्धार की इच्छा करता है। (दिवोरेतसा) जो परमात्मा द्युलोक से लेकर लोक-लोकान्तरों के साथ अपनी शक्ति से (सचते) संगत है। और (पयोवृध) जो अपने ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त है, (तं) उस परमात्मा से (सप्रथः) विस्तृत अभ्युदय और (शर्म) निःश्रेयस सुख—इन दोनों को हम लोग (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जब पुरुष दूध पीने वाले बच्चे के समान मुक्तकण्ठ से परमात्मा के आगे रोता है, तब परमात्मा उसे अवश्यमेव ऐश्वर्य देता है ॥१॥

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

पदार्थः—(दिवो यः स्कम्भः) जो द्युलोक का सहारा है, और (धरुणः) पृथिवी का धारण करने वाला है, तथा (स्वाततः) विस्तृत (आपूर्णः) सर्वत्र परिपूर्ण (अंशुः) व्यापक परमात्मा (विश्वतः) सब ओर से (पर्येति) प्राप्त है (सः) वह परमात्मा (इमे मही रोदसी) इस भूलोक और अन्तरिक्ष लोक को (आवृता) अद्भुत कर्म से (यक्षत्) संगत करता है, और (समीचीने) संगत द्युलोक और भूलोक को वही परमात्म (दाधार) धारण करता है। वह (कविः) सर्वज्ञ परमेश्वर (इषः) ऐश्वर्यों को (सं) देता है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवी-लोकादिकों क लीलामात्र से धारण किया है, वही सब ऐश्वर्यों का दाता है। अन नहीं ॥२॥

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

Scanned by CamScanner

अब अभ्युदय के अधिकारियों का निरूपण करते हैं ॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

पदार्थः—(वने) भक्ति के विषय में (यत्) जब (जातः) तत्काल उत्पन्न (शिशुः) बालक के (न) समान यह जिज्ञासु पुरुष स्वाभाविक रीति से (चक्रदत्) रोता है, तब (स्वः) सुखस्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (अरुषः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सिषासति) उसके उद्धार की इच्छा करता है। (दिवोरेतसा) जो परमात्मा द्युलोक से लेकर लोक-लोकान्तरों के साथ अपनी शक्ति से (सचते) संगत है। और (पयोवृध) जो अपने ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त है, (तं) उस परमात्मा से (सप्रथः) विस्तृत अभ्युदय और (शर्म) निःश्रेयस सुख—इन दोनों की हम लोग (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जब पुरुष दूध पीने वाले बच्चे के समान मुक्तकण्ठ से परमात्मा के आगे रोता है, तब परमात्मा उसे अवश्यमेव ऐश्वर्य देता है ॥१॥

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

पदार्थः—(दिवो यः स्कम्भः) जो द्युलोक का सहारा है, और (धरुणः) पृथिवी का धारण करने वाला है, तथा (स्वाततः) विस्तृत (आपूर्णः) सर्वत्र परिपूर्ण (अंशुः) व्यापक परमात्मा (विश्वतः) सब ओर से (पर्येति) प्राप्त है (सः) वह परमात्मा (इमे मही रोदसी) इस भूलोक और अन्तरिक्ष लोक को (आवृता) अद्भुत कर्म से (यक्षत्) संगत करता है, और (समीचीने) संगत द्युलोक और भूलोक को वही परमात्मा (दाधार) धारण करता है। वह (कविः) सर्वज्ञ परमेश्वर (इषः) ऐश्वर्यों को (सं) देता है ॥२॥

भावार्थः—जिस परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवी-लोकादिकों को लीलामात्र से धारण किया है, वही सब ऐश्वर्यों का दाता है। अन्य नहीं ॥२॥

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(ऋग्मियः) स्तुतियोग्य (इत ऊतिः) सब प्रकार का रक्षक (यः) जो (नेता) नियन्ता है, और (अपां वृषा) सब प्रकार के कर्मों का फल देने वाला (उस्रियः) प्रकाश स्वरूप है (इतः) द्युलोक से उत्पन्न (वृष्टेः) वृष्टि आदिका (ईशे) ईश्वर है। (महि) सबसे बड़ा है, (प्सरः) सबका अत्ता है, (सुकृतं) शोभनकर्मा है। (सोम्यं) सौम्य स्वभाव वाला है। (अदितेः) उस ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (गव्यूतिः) इस जीवात्मा का मार्ग (मधु) मीठा और (उर्वी) विस्तृत होता है। और (ऋतं यते) सत्यरूप यज्ञ को प्राप्त होने वाले पुरुष के लिये वह परमात्मा शुभ करता है ॥३॥

भावार्थः—सन्मार्ग चाहने वाले पुरुषों को उचित है, कि वे सचाई का यज्ञ करने के लिये परमात्मा की शरण लें ॥३॥

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥

पदार्थः—जिस परमात्मा से (नभः) द्युमण्डल से (आत्मन्वत्) सारभूत (घृतं) जलादिक (दुह्यते) दुहे जाते हैं, और (ऋतस्य) जो सचाई की (नाभिः) नाभि है और (अमृतं) अमृतस्वरूप है वह (पयः) तृप्तिरूप परमात्मा (विजायते) सर्वत्र विराजमान है। (नरः) जो पुरुष उसकी उपासना करता है (तं) उसको (पेरवः) सर्वरक्षक शक्तियाँ (प्रीणन्ति) तृप्त करती हैं। और (समीचीनाः) सुन्दर (सुदानवः) दानशील शक्तियाँ उसके लिये (हितं) हित की (अवमेहन्ति) वृष्टि करती हैं ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिये अपनी दानशील शक्तियों से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों की वृष्टि करता है ॥४॥

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५॥

पदार्थः—(ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरों से (सचमानः) संगत (अंशुः) सर्वव्यापक परमात्मा (अरावीत्) सदुपदेश करता है। और (मनुषे) मनुष्य के लिये (देवाव्यं त्वचं) देवभाव को पैदा करने वाले शरीर को (पिन्वति) पुष्ट करता है। तथा (अदितेरुपस्थे) इस पृथिवी पर (गर्भं) नाना प्रकार के औषधियों के उत्पत्तिरूप गर्भ को (आदधाति) धारण कराता है। (येन) जिससे (तोकं) दुःख के नाश करने वाले (तनयं) पुत्र-पौत्र को (धामहे) हम लोग धारण करें ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा की कृपा से ही सुकर्मा-पुरुष को नीरोग और दिव्य शरीर मिलता है। जिससे वह सत्सन्तति प्राप्त कर इस संसार में अभ्युदयशाली बनता है ॥५॥

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥६॥

पदार्थः—(सहस्रधारे) अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यवाले (तृतीये) तीसरे अन्तरिक्ष लोक में (रजसि) जो रजोगुणविशिष्ट है, उसमें (प्रजावतीः) नाना प्रकार की प्रजा वाले ऐश्वर्य (सन्तु) हमको प्राप्त हों (असश्चतः) जो ऐश्वर्य जीव को अशक्त करने वाले न हों (ताः) वे शक्तियाँ (घृतश्चुतः) जो नाना प्रकार के स्निग्ध पदार्थों की देने वाली हैं (हविरमृतं भरन्ति) और हविरूप अमृत को देने वाली हैं। और (दिवोऽवो निहिताः) द्युलोक के नीचे रक्खी हुई हैं, जिनमें (चतस्रो नाभः) चार प्रकार की दीप्ति हैं, अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों प्रकार के फल संयुक्त हैं, वे शक्तियाँ परमात्मा हमें प्रदान करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा जिन पर प्रसन्न होता है, उनको चारों प्रकार के फलों का प्रदान करता है ॥६॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जब (सिषासति) मनुष्य सुखप्रद ऐश्वर्य को चाहता है, तब परमात्मा उसके लिए (श्वेतं रूपं कृणुते) ऐश्वर्ययुक्त रूप करता है। (मीढ्वान्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का देने वाला (सोमः) परमात्मा (भूमनः) सब लोक-लोकान्तरों का (वेद) ज्ञाता है। (स ईं) वह परमात्मा इस उपासक को (धिया) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (सचते) संगत होता है। और वह (दिवः) इस द्युलोक से (उद्रिणं) बहुत जल वाले (कवन्धं) वृष्टि को (अवदर्षत्) उत्पन्न करता है। और (प्रवत्) रुद्र (शमी) कर्म वाले (असुरः) राक्षसों को दण्ड (अभि) देता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग अनन्य-भक्ति द्वारा परमात्म-परायण होते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव तेजस्वी बनाता है। और जो दुष्कर्मा बनकर अन्याय करते हैं, परमात्मा उनको अवश्यमेव दण्ड देता है ॥७॥

अधं श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(अध) जब (श्वेतं कलशं) सत्व-गुण-विशिष्ट अन्तःकरण को (गोभिः) जो इन्द्रियवृत्तियों से (अक्तं) रञ्जित है (काष्मंन्) जो अत्यन्त शुद्ध हो गया है, उसमें (वाजी) बलवान् परमात्मा (आक्रमीत्) अपनी दीप्ति द्वारा प्रविष्ट होता है। उस परमात्मा का (ससवान्) भजन करता हुआ (मनसा देवयन्तः) मन से प्रकाश करते हुए, (गोनां) पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों के (शतहिमाय) सौ हेमन्त-ऋतु पर्यन्त अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य को (कक्षीवते) विद्वान् के लिये (हिन्विरे) प्रेरणा करता है ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष शुद्धिकी परा काष्ठा को पहुँच जाता है परमात्मा उस पर अवश्यमेव दया करता है ॥८॥

अद्भिः सोम पपृचानस्यं ते रसोऽव्यो वारं वि पंवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतयें ॥९॥

पदार्थः—(अद्भिः) सत्कर्मों से (पपृचानस्य) अभिव्यक्त (ते) आपका (रसः) आनन्द (अव्यः) जो सर्वरक्षक है, वह (वारं) वरणीय पुरुष के प्रति (विधावति) विशेषरूप से प्राप्त होता है। (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (सोम) परमात्मन्! आप (कविभिः) विद्वानों से (मृज्यमानः) साक्षात्कृत हैं। और (पवमान) पवित्र करने वाले हैं। और (मदिन्तम) सबको आह्लादकारक आप (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पीतये) तृप्ति लिये (स्वदस्व) प्रियकारक हों ॥९॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोग से अपने को पवित्र बनाते हैं, उनके लिये परमात्मा अवश्यमेव अपने ब्रह्मामृत का प्रदान करते हैं ॥९॥

नवम मण्डल में यह चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती। ५ विराड्-जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब ईश्वर को सूर्यादिकों के प्रकाशकस्वरूप से वर्णन करते हैं ॥

अभि प्रियाणिं पवते चनोंहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थः—(विचक्षणः) वह सर्वज्ञ परमात्मा (विष्वञ्चं) विविध प्रकार वाले

Scanned by CamScanner

इस संसार को (रथं) रम्य बनाकर (अध्यरुहत्) तथा सर्वोपरि होकर विराजमान हो रहा है। वह परमात्मा (बृहन्) बड़ा है। और (बृहतः सूर्यस्य) इस बड़े सूर्य के चारों ओर (आ) व्याप्त होता है। और (चनोहितः) सब का हितकारी परमात्मा (अभिप्रियाणि) सब का कल्याण करता हुआ, (पवते) पवित्र करता है। तथा (यह्वः) सबसे बड़ा है। (येषु नामानि) जिसमें अनन्त नाम हैं, वह परमात्मा (अधिवर्धते) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त है ।।१।।

भावार्थः—इस निखिल ब्रह्माण्ड का निर्माता परमात्मा सूर्यादि सब-लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक है। इसी अभिप्राय से कहा है, कि "न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः" अर्थात् परमेश्वर का प्रकाशक कोई नहीं, वही सबका प्रकाशक है ।।१।।

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ।।२।।

पदार्थः—(दिवः) द्युलोक के (रोचने) प्रकाश के लिये (तृतीयं) तीसरा (नाम) नाम (अधिदधाति) धारण करता है तथा (पुत्रः पित्रोः) सन्तान और सन्तानी भाव का (अपीच्यं) अधिकरण है। और (ऋतस्य जिह्वा)सचाई की जिह्वा है। तथा (पवते) सबको पवित्र करता है। (मधु) मधुर (प्रियं) प्रिय वचनों का (वक्ता) कथन करने वाला है। और (अदाभ्यः) अदम्भनीय वह परमात्मा (अस्या धियः) इन कर्मों का अधिपति है ।।२।।

भावार्थः—जीव के शुभाशुभ सब कर्मों का अधिपति परमात्मा है। उसी प्रकाशस्वरूप परमात्मा से सब द्युभुवादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाश होता है ।।२।।

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ।।३।।

पदार्थः—(त्रिपृष्ठः) भूः, भुवः, स्वः, यह तीन लोक हैं पृष्ठस्थानी जिसके वह परमात्मा (उषसः) उषाकालका प्रकाशक होकर (अधिविराजति) विराजमान है। (ऋतस्य) सचाई का (दोहनाः) दोहन करने वाले (ईं) इस परमात्मा को (अभ्यनूषत) उपासक-गण उपासना द्वारा विभूषित करते हैं। (हिरण्यये कोशे) प्रकाशरूप अन्तःकरण में (येमानः) सम्पूर्ण नियमों का कर्ता वह परमात्मा (अचिक्रदत्) शब्दायमान

Scanned by CamScanner

होता हुआ (नृभिः) उपासक लोगों से स्तुति किया गया निवास करता है (कलशान्) उनके अन्तःकरणों को (अवद्युतानः) निरन्तर प्रकाश करता हुआ (आ) विराजमान है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उषा के प्रकाशित सूर्यादिकों का भी प्रकाशक है। और वह पुण्यात्माओं के स्वच्छ अन्तःकरण को हिरण्मय पात्र के समान प्रदीप्त करता है। अर्थात् जो पुरुष परमात्मपरायण होना चाहे, वह पहिले अपने अन्तःकरण को स्वच्छ बनाये ॥३॥

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥४॥

पदार्थः—(रोदसी मातरा) इस संसार के मातापितावत् वर्तमान जो द्युलोक, और पृथिवीलोक हैं, उनको (प्ररोचयन्) प्रकाशित करता हुआ (च) और (मतिभिरद्रिभिः) ज्ञानरूपी चित्तवृत्तियों से (सुतः) संस्कृत और (चनोहितः) सबका हितकारी (शुचिः) शुद्धस्वरूप परमात्मा (समया) सब ओर से (रोमाण्यव्या) सब पदार्थों की रक्षा करता हुआ (विधावति) विशेषरूप से गति करता है। (दिवेदिवे) प्रतिदिन (मधोर्धारा) अमृतवृष्टि से (पिन्वमाना) पुष्ट करता है ।४॥

भावार्थः—द्युलोक और पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों का प्रकाशक परमात्मा अपनी सुधामयी वृष्टि से सदैव पवित्र करता है ॥४॥

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ये ते मदा आहनसः) जो आप के स्वभाव वाणी के समान उपदेश करते हैं (तेभिः) उनसे (विहायसः) हमारा आप आच्छादन करें। और (इन्द्रं) कर्मयोगी को (मघं दातवे) ऐश्वर्य देने के लिये (चोदय) प्रेरणा कीजिये। (सोम) हे परमात्मन् ! (नृभिः) उपदेशकों द्वारा (परिपुनानः) हमको पवित्र करते हुए (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (प्रधन्व) प्राप्त होइये। और (आशिरं) हमारे आश्रयकी (अभिवासय) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो लोग एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करते हैं, परमात्मा उनकी सर्वथा रक्षा करते हैं। क्योंकि सर्वनियन्ता और सबका अधिष्ठाता एकमात्र वही है। जैसा कि हम पूर्व भी अनेक स्थलों में लिख आये हैं, कि

Scanned by CamScanner

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" (तै० ३।१॥) "सर्वाणि वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्" (छा० १।६।१॥) ब्रह्मैवेदं विश्वम् (मु० २।२।११॥) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१॥) आत्मैवेदं सर्वम् (छा० ७।२५।२॥) पुरुष एवेदं सर्वम् (ऋ० ८।४।१७।१॥) स एव जातः स जनिष्यमाणः (यजु० ३२।४॥) नित्यो नित्यानाम् (कठ० ५।१३॥) नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् (मु० १।१।६॥) सत्यं ह्येव ब्रह्म (बृ० ५।४।१॥) ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् (श्वे० ३।२१॥) यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः (ऋ० १।७।१२।५॥) यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव (ऋ० ८।७।३।३॥) यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति (अथ० १०।८।४।१॥) ब्रह्मगामश्वं जनयन्त ओषधी र्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः । सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥ इत्यादि वेदोपनिषदों के वचनों में प्रसिद्ध है, कि परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है। अधिष्ठान, अधिकरण, आश्रय, ये एक ही वस्तु के नाम हैं। उसी परमात्मा ने इस चराचरात्मक संसार को उत्पन्न किया है। जिसको कोई आश्चर्य रूप से देख रहा है, कोई आश्चर्य रूप से सुन रहा है, और कोई इस गूढ़तत्त्व को न समझकर अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इसके कर्तृत्व का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। अर्थात् नास्तिक से नास्तिक भी जब इस बात-का विचार करता है, कि इस विविध-रचना-संयुक्त-विश्व को किसने उत्पन्न किया, तो उसकी दृष्टि भी किसी अद्भुत शक्ति पर ही ठहरती है॥ अस्तु —

ये विचार तो उन लोगों के हैं, जो ब्रह्म को तर्कगम्य मानते हैं। और जिन आस्तिक-लोगों के विचार में ब्रह्म शब्द-गम्य है, उनके लिये प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं। इसी लिये हमने, ऋ. मं० १०। सू. ६५। मं. ११ में यह स्पष्ट कर दिया कि, ब्रह्म ने जब इस संसार को पहिले सूक्ष्मावस्था में बनाया, और फिर स्थूलावस्था में मेघाकार, फिर पृथिवी, वनस्पति, ओषधि, और फिर गवाश्वादिरूप से इस संसार की सृष्टि की।

कई एक लोग उक्त मन्त्र के ये अर्थ करते हैं, कि 'दिवि रोहयन्तः' द्युलोक में आरोहण करते हुए, 'सूर्यं' सूर्यलोक को आरोहण करते हुए 'सुदानवः' दानशील लोग ब्रह्म — अन्न, गौ, अश्वादि सृष्टिको (जनयन्तः) पैदा करते भये। इस अर्थ को न केवल सायणाचार्य ने किया है किन्तु विलसन, ग्रीफ्थ,

Scanned by CamScanner

इत्यादि यूरोपियन-विद्वानों ने भी यही अर्थ किये हैं। और वे लोग हेतु यह देते हैं, कि 'जनयन्त' यह बहुवचन उक्त देवों में घट सकता है, ब्रह्म में नहीं। यदि उनसे यह पूछा जाय, कि 'आर्या व्रता विसृजन्त' इस वाक्य में व्रता का व्रतानि कैसे बना लिया और आर्या का श्रेष्ठानि कैसे बना लिया? तो उत्तर यही मिलेगा, कि वेद में इस लौकिकव्याकरण का बल नहीं चलता। यदि इसी प्रकार लौकिक व्याकरण का त्याग करना है, तो ब्रह्म को कर्ता रखकर यह अर्थ क्यों न किए जायँ, कि ब्रह्म ने सम्पूर्ण पृथिवी-पर्वतादि पदार्थों को उत्पन्न किया, इस उदाहरण से हमारा तात्पर्य व्याकरण की लघुता करने का नहीं। किन्तु जो लोग व्याकरण का अन्यथा उपयोग करके वेदार्थ को बिगाड़ते हैं, उनकी भूल दूर करने का है। इसी प्रकार मं० १ सू० २४ मं० ८ में 'पन्थानं' के स्थान में वेद में पन्थां है। और सूर्यस्य के स्थान में सूर्याय है। इसी प्रकार अनेक स्थलों में 'विप्रेभिः प्राचैः रथीः' इत्यादि अनेक प्रयोग ऐसे पाये जाते हैं, जो अज्ञों के गर्व को भञ्जन करके वैदिक साहित्य के गर्व को स्थिर करते हैं। अस्तु---

मुख्य प्रसंग यह है, कि 'आशिरम्' हमारे आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति करने वाला परमात्मा, हममें कर्मयोगियों को उत्पन्न करके, हमको कर्मयोगी तथा उद्योगी बनाये ॥५॥

नवम मण्डल में यह पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ॥

सप्तमाष्टक का द्वितीयाध्याय समाप्त हुआ॥

---

* ओ३म् *

अथ तृतीयोऽध्यायः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

—: ❁ :—

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराड्जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१ धैवतः । २—५ निषादः ॥

अब परमात्मा का सर्वाधाररूप से वर्णन करते हैं ॥

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥१॥

पदार्थः—(दिवः) द्युलोक का (धर्ता) धारणकर्ता परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करे (नृभिः) सब मनुष्यों का (कृत्व्यः) जो उपास्य है तथा (रसः) आनन्दस्वरूप है, और (दक्षः) सर्वज्ञ है। (देवानामनुमाद्यः) और विद्वानों का आह्लादक है। (हरिः) उक्त गुणयुक्त परमात्मा (सृजानः) सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करता हुआ (अत्यो न) विद्युत् के समान (वृथा) अनायास ही (सत्वभिः) प्राणियों द्वारा (पाजांसि) बलों को (कृणुते) करता है। और उक्त परमात्मा (नदीषु) प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों में (आ) व्याप्त है ॥१॥

भावार्थः—प्रत्येक प्राकृत पदार्थ में परमात्मा की सत्ता विद्यमान है और वही द्युलोकादि का अधिकरण है ॥१॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (मनीषिभिः) ज्ञानयोगियों द्वारा (अज्यते) ध्यान किया जाता है। (अपस्युभिः) कर्मयोगियों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा किया हुआ तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (शुष्मं) बल को (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ

Scanned by CamScanner

(शूरो न) शूरवीर के समान (गभस्त्योः) अपने कर्म और ज्ञानरूप शक्ति में (आयुधा) सृष्टि के करणोपकरणरूप आयुधों को (धत्ते) धारण करता है। (स्वः) वह सुख-स्वरूप परमात्मा (गविष्टिषु) प्रजाओं में (सिषासन्) विभाग करने की इच्छा से (रथिरः) गतिस्वरूप परमात्मा अपनी गति से सर्वत्र परिपूर्ण होता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मों के फल देने के अभिप्राय से सर्वत्र सृष्टि में अपनी न्यायरूपी-शक्ति से सम्पूर्ण प्रजा में विराजमान होकर कर्मों के यथा-योग्य फल देता है ॥२॥

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (पवमानः) सबको पवित्र करते हुए आप तथा (ऊर्मिणा) अपनी ज्ञान की लहरों से (तविष्यमाणः) सबकी वृद्धि चाहते हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (जठरेष्वाविश) अन्तःकरणों में आकर विराजमान हों। और (विद्युत्) बिजली (अभ्रेव) जिस प्रकार मेघों को प्रकाशित करती है, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को वृद्धियुक्त करती है, उस प्रकार (नः) हमको आप (प्रपिन्व) वृद्धियुक्त करें। और (धिया) कर्मों के द्वारा (वाजान्) बलों को (शश्वतो न) संप्रति निरन्तर (उपमासि) निर्माण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सत्कर्मों द्वारा मनुष्यों को इस प्रकार प्रदीप्त करता है, जिस प्रकार बिजली मेघ मण्डलों और द्यु तथा पृथिवी लोक को प्रदीप्त करती है। इसलिये उसकी ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करने के लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये ॥३॥

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥४॥

पदार्थः—(विश्वस्य राजा) सम्पूर्ण संसार का राजा परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है। (ऋतस्य) सत्यवक्ता कर्मयोगी का तथा (स्वर्दृशः) सुख के ज्ञाता के (धीतिं) कर्म को (अवीवशत्) चाहता है। और परमात्मा (ऋषिषाट्) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। तथा (यः) जो परमात्मा (सूर्यस्य) ज्ञान की रश्मियों से (मृज्यते) साक्षात् किया जाता है। और (मतीनां) समस्त ज्ञानों का (पिता) प्रदाता है। तथा (असमष्टकाव्यः) जो कवियों की वाणी से परे है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सब ज्ञानों का केन्द्र है। और उसको कोई

Scanned by CamScanner

ज्ञानविषय नहीं कर सकता। इसलिए वह अतीन्द्रिय है। अर्थात् 'यतो-वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" उसको वाणी और मन दोनों ही विषय नहीं कर सकते। अर्थात् वह वाणी का लक्ष्यार्थ है, वाच्यार्थ नहीं ॥४॥

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥५॥

पदार्थः—(त्वोतयः) आप से सुरक्षित होते हुए (यथा) जैसे (समिथे) संग्राम में (जेषाम) हम जीतें वैसा आप करें। (सः) वह (मत्सरिन्तमः) आनन्द के प्रदाता आप (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (पवसे) पवित्रता प्रदान करते हैं। आप (वृषा) कामनाओं के (यूथेव) दातृगण के समान (कोशं) ऐश्वर्य के कोश को (पर्यर्षसि) प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार (अपामुपस्थे) जलों के समीप (वृषभः) मेघमण्डल (कनिक्रदत्) गर्ज कर प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा हमारे ज्ञान-विज्ञानादि कोशों की रक्षा करने वाला है, और वह उद्योगी और कर्मयोगियों को सदैव पवित्र करता है ॥५॥

अष्टम मण्डल में यह छिहत्तरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती । ३ पादनिचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब वाणियों का सदाचार वर्णन करते हैं ॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥१॥

पदार्थः—(वाश्राः) शब्द करती हुई (धेनवः) वाणियाँ जो (पयसेव) जल-प्रवाह के समान (अभ्यर्षन्ति) चलती हैं वे वाणियाँ (ईं) इस (ऋतस्य) सत्य की (सुदुघाः) दोहन करने वाली हैं। और (घृतश्चुतः) माधुर्य को देने वाली हैं। (एषः) उक्त परमेश्वर (कोशं) अन्तःकरण में (मधुमान्) आनन्द-रूप से वर्तमान परमात्मा (प्राचिक्रवत्) साक्षी रूप से उपदेश करता है और वह (वपुष्टरः) सबका आदिबीज हैं, तथा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (वपुषः) शरीर का (वज्रः) वज्र है ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सब सचाइयों का आश्रय एकमात्र वाणी है। जो पुरुष वाणी को मीठी और सब कामनाओं की दोहन करने वाली बनाते हैं, वे इस संसार में सदैव सुख लाभ करते हैं ॥१॥

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥२॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (पूर्व्यः) अनादि है। और (पवते) सबको पवित्र करता है। जो (रजः) प्रकृति के रजोगुण को (तिरः) तिरस्कार करके (परिमथायत्) सबको मथन करता है (सः) वह (मध्वः) मधुरूप है। और (आयुवते) परमाणुरूप प्रकृति को आपस में मिलाने वाला है। (वेविजानः) गतिशील है। (कृशानोः) अपनी तेजरूप-शक्ति से (अस्तु) आक्षेप्ता-पुरुषों को (मनसा) अपनी मनन रूप-शक्ति से (बिभ्युषा) भय को देने वाला है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा प्रकृति के रजोरूप परमाणुओं का संयोग करके इस सृष्टि को उत्पन्न करता है ॥२॥

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो॒३न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥३॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्त विद्वान् (नः) जो हमारे (पूर्वासः) पूर्वज (उपरासः) और जो भविष्य में होने वाले हैं (इन्दवः) वे ज्ञानी (महे गोमते) बड़े ज्ञान के लिये और (वाजाय) बल के लिये (धन्वन्तु) उस परमात्मा को प्राप्त हों। और (ये) जो (ब्रह्म ब्रह्म) ब्रह्म प्राप्ति के लिये और (हविर्हविः) हवि के लिए (जुजुषुः) सेवन करते हैं, वे (चारवः) श्रेष्ठ लोगों के (न) समान (अह्यः) सुन्दर और (ईक्षेण्यासः) दर्शनीय होते हैं ॥३॥

भावार्थः—प्राचीन और अर्वाचीन अर्थात् पुराने और नये दोनों प्रकार के विद्वान् जो वेद को ईश्वरप्राप्ति के लिये पढ़ते हैं, और हवनादि यज्ञों को कर्म्मकाण्ड के लिए करते हैं, वे इस संसार में दर्शनीय और सदाचार फैलाने के हेतु होते हैं; अन्य नहीं ॥३॥

अयं नो विद्वान् वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥४॥

पदार्थः—(**अयं**) यह जो (**नः**) हमारे मध्य में विद्वान् है, वह (**वनुष्यतः**) हमारे शत्रुओं को (**सत्राचा मनसा**) समाहित मन से नाश कर सकता है। और वह (**इन्दुः**) प्रकाश-स्वरूप है (**पुरुष्टुतः**) तथा माननीय है। (**यः**) जो पुरुष (**इनस्य**) ईश्वर की (**सदने**) सन्निधि में (**गर्भं**) शिक्षा को (**आदधे**) धारण करता है, वह (**गवां**) इन्द्रियों के (**व्रजं**) फल को (**उरुब्जं**) जो सर्वोपरि है, उसको (**अभ्यर्षति**) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् ईश्वरीय ज्ञान पर विश्वास करता है, वह मनुष्य जन्म के फल को लाभ करता है ॥४॥

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।

असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थः—(**चक्रिः**) वह पुरुष अनुष्ठान-परायण होता है। और (**दिवः**) द्युलोक को (**पवते**) पवित्र करता है। (**कृत्व्यः**) और कर्तव्यशील (**रसः**) आनन्द-स्वरूप (**महान्**) बड़ा (**अदब्धः**) किसी से न दबाये जाने वाला परमेश्वर (**हुरुग्यते**) कुटिलता से चलने वाले पुरुष को (**वरुणः**) अपने विद्याबल से आच्छादन करता है। और (**असावि**) ज्ञानरूपी बल को उत्पन्न करता है (**मित्रः**) सर्व मित्र है (**वृजनेषु अत्यः**) सब विषयों में गमन कर सकता है। और (**यज्ञियः**) यज्ञ सम्बन्धी कर्म्मों में योग्य (**वृषयुः**) सब कामनाओं के (**यूथे**) देने वाले गण के (**न**) समान (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ, इस संसार में यात्रा करता है ॥५॥

भावार्थः—जो विद्वान् धीर-वीर दृढ़व्रती और अपने विद्याप्रभाव से कुटिल वा मायावी पुरुषों को दबाने की शक्ति रखता है वह इस मनुष्य-समाज में वृषभ के समान गर्जता हुआ, अपने सदाचारी-समाज की रक्षा करता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह सतत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१–५ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब सर्वनियामक परमात्मा के ऐश्वर्य का उपदेश करते हैं ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदद्पो वसानो अभि गा इयक्षति ।

गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थः—(**राजा**) सबका प्रकाशक परमात्मा (**वाचं**) वेदरूपी वाणी को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**प्रासिष्यदत्**) संसार को उत्पन्न करता है। और (**अपः**) कर्मों को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**गाः**) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के (**अभि**) सन्मुख (**इयक्षति**) गति करता है। जो पुरुष (**अस्य**) उस परमात्मा की (**तान्वा**) शक्ति से (**रिप्रं**) अपने दोषों को (**गृम्णाति**) ग्रहण कर लेता है, अर्थात् उनको समझ कर मार्जन कर लेता है, इस प्रकार (**अविः**) सुरक्षित होकर (**शुद्धः**) शुद्ध है तथा (**देवानां**) देवताओं के (**निष्कृतं**) पद को (**उपयाति**) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के जगत्कर्तृत्व में विश्वास करता है, वह उसकी उपासना द्वारा शुद्ध होकर देव पद को प्राप्त होता है ॥१॥

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

पदार्थः—(**वने**) भक्ति के मार्ग में (**कविः**) सर्वज्ञ परमात्मा (**नृभिः**) मनुष्यों द्वारा (**अज्यसे**) उपासना किया जाता है। वह (**नृचक्षाः**) सबका अन्तर्यामी है। (**ऊर्मिः**) आनन्द का समुद्र है। (**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**परिषिच्यसे**) लक्ष्य बनाये गये हो। (**ते**) तुम्हारी (**स्रुतयः**) शक्तियें (**हि**) क्योंकि (**पूर्वीः**) सनातन हैं। (**यातवे**) गतिशील कर्मयोगी के लिये (**सहस्रं**) अनन्त प्रकार की (**अश्वाः**) गतिशील (**चमूषदः**) सेना में स्थिर होकर (**हरयः**) विनाश को धारण करती हुई (**सन्ति**) कर्मयोगी को प्राप्त होती हैं ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की भक्ति में विश्वास करते हैं, परमात्मा उनके बल को अवश्यमेव बढ़ाता है। अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और संसार-रूप परमात्मा की शक्तियाँ कर्मयोगियों की आज्ञा-पालन करने के लिये आ उपस्थित होती हैं ॥२॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥३॥

पदार्थः—(**सोममभि**) परमात्मा के समक्ष (**समुद्रिया आसीना अप्सरसः**) अन्तरिक्ष की स्थिर-शक्तियाँ (**अक्षरत्**) क्षरण करती हुई (**मनीषिणं**) मनस्वी पुरुष के (**अन्तः**) अन्तःकरण में उद्बोधन करती हैं। (**ताः**) वे शक्तियाँ (**ईं**) इसको (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करती हैं। और उक्त परमात्मा से (**हर्म्यस्य**) सब सौन्दर्यों के साधन तथा

Scanned by CamScanner

(**सक्षर्णि**) सब आपत्तियों के संहारने वाले (**पवमानं**) सब को पवित्र करने वाले (**अक्षितं**) क्षयरहित पद की (**याचन्ते**) उपासक लोग याचना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—विद्युदादि अनन्तशक्तियाँ अन्तरिक्ष में स्थिर हैं, उसी अनन्त-शक्तिमद् ब्रह्म से लोग अक्षय-पद की याचना करते हैं ॥३॥

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

पदार्थः—(**सोमः**) परमात्मा (**गोजित्**) सब प्रकार की सूक्ष्मशक्तियों को जीतने वाला है। तथा (**रथजित्**) बड़े से बड़े वेग वाले पदार्थ को जीतने वाला है। और (**हिरण्यजित्**) बड़ी-बड़ी शोभाओं को जीतने वाला है। तथा (**स्वर्जित्**) सब सुखों को जीतने वाला है। और (**अब्जित्**) बड़े-बड़े वेग को जीतने वाला है। तथा (**सहस्रजित्**) अनन्त पदार्थों को जीतने वाला है (**यं**) जिस (**मदं**) आह्लादक (**स्वादिष्ठं**) ब्रह्मानन्द देने वाले (**द्रप्सं**) रसस्वरूप (**अरुणं**) प्रकाशस्वरूप (**मयोभुवं**) सुख देने वाले परमात्मा का (**देवासः**) विद्वद्गण (**नः**) हमारी (**पीतये**) तृप्ति के लिये (**चक्रिरे**) व्याख्यान करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के आगे इस संसार की सब शक्तियाँ तुच्छ हैं। अर्थात् वह सर्वविजयी है। उसी से विद्वान् लोग नित्यसुख की प्रार्थना करते हैं ॥४॥

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**पवमानः**) पवित्र (**अस्मयुः**) हमारे शुभ की इच्छा करने वाले आप (**सत्यानि**) सदुपदेशों को (**कृण्वन्**) करते हुए (**एतानि**) पूर्वोक्त समस्त (**द्रविणानि**) ऐश्वर्यों को (**अर्षसि**) देते हैं। और जो हमारे (**अन्तिके**) समीपवर्ती (**च**) तथा (**दूरके**) दूरवर्ती (**शत्रुं**) शत्रु हैं, उनको आप (**जहि**) नाश करें। (**यः**) जो (**उर्वी**) विस्तृत (**गव्यूतिः**) मार्ग है, उसे हमारे लिए खोल दें। और (**नः**) हमको (**अभयं**) भयरहित (**कृधि**) कर दीजिये ॥५॥

भावार्थः—शत्रु से तात्पर्य यहाँ अन्यायकारी मनुष्यों का है। वे मनुष्य दूरवर्ती वा निकटवर्ती हों, उन सबके नाश की प्रार्थना इस मन्त्र में परमात्मा से की गयी है ॥५॥

नवम मण्डल में यह अठत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ पञ्चर्चस्यैकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ४, ५ निचृज्जगती॥ निषादः स्वरः॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः॥१॥

पदार्थः—(अचोदसः) स्वतन्त्र परमात्मा जो किसी से प्रेरणा नहीं किया जाता वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो। वह परमात्मा (इन्दवः) सर्वैश्वर्य्ययुक्त है। और (सुवानासः) सर्वोत्पादक है (हरयः) दुष्टों के हरण करने वाला है (बृहत् दिवेषु) आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के यज्ञों में हमारी रक्षा करे (च) और (इषोऽरातयः) हमारे ऐश्वर्य्य के विनाशक (अर्य्यः) शत्रुओं को (विनशन्) नाश करके (नः) हमको ऐश्वर्य दे। और (नो धियः) हमारे कर्म्मों को (सनिषन्त) शुद्ध करे॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर अपने कर्म्मों का शुभ-रीति से अनुष्ठान करते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करते हैं। अर्थात् वे लोग आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के यज्ञों से अपनी तथा अपने समाज की उन्नति करते हैं॥१॥

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि॥२॥

पदार्थः—(मदच्युतः) सबको आनन्द देने वाला परमात्मा (इन्दवः) जो प्रकाशस्वरूप है वह (नः) हमको (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हो (वा) अथवा (धना) गो-हिरण्यरूपधन हमको प्रदान करे (येभिः) जिन धनों से हम (अर्वता) बल वाले शत्रुओं को (जुनीमसि) जीतें (कस्यचित्) किसी के (मर्तस्य) मनुष्य को (तिरः) तिरस्कार करके (परिह्वृतिं) पीड़ा देकर (वयं) हम लोग (धनानि) धनों को (विश्वधा) सदैव (भरेमहि) धारण न करे॥२॥

भावार्थः—मनुष्य को परमात्मा से सदैव इस प्रकार के बल की याचना करनी चाहिये कि वह किसी मनुष्य को अन्याय से पीड़ा देकर धन का सग्रह न करे किन्तु यदि धन संग्रह की इच्छा हो तो वह अपने शत्रुओं को पराजय करके धन का लाभ करे॥२॥

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः॥३॥

पदार्थः—**(उत)** अथवा **(स्वस्या अरात्याः)** अपना शत्रु हो **(उत)** अथवा **(अन्यस्या अरात्याः)** दूसरे का शत्रु हो, दोनों प्रकार के शत्रु हिंसनीय होते हैं **(हि)** क्योंकि **(सः)** वह **(वृकः)** हिंसक रूप है **(धन्वन् न तृष्णा)** जिस प्रकार बाधा देने वाली तृष्णा **(समरीत)** आकर प्राप्त होती है **(तानभि)** उस तृष्णा को **(सोम)** हे परमात्मन्! तुम **(जहि)** नाश करो **(पवमान)** हे सबके पवित्र करने वाले! **(दुराध्यः)** हे इन्द्रियागोचर परमात्मन्! आप इस कामना-रूप तृष्णा का नाश करें ।।३।।

भावार्थः—हे परमात्मन्! आप, जो दुराराध्य शत्रु हैं, अर्थात् दुःख से वशीभूत होने वाले हैं उनका हनन करें। यहाँ शत्रु से तात्पर्य्य कामरूप शत्रु का भी है। इसी अभिप्राय से गीता में कृष्णजी ने कहा है, कि "पापमानं जहि-ह्येनं ज्ञानावज्ञाननाशनम्" कि ज्ञान और विज्ञान को नाश करने वाले इस पापी काम को नाश करो ।।३।।

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा वप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ।।४।।

पदार्थः—**(मनीषिणः)** मेधावी लोग **(त्वा)** तुमको **(हस्तैः)** ज्ञानयोग कर्मयोगादि साधनों द्वारा **(दुदुहुः)** साक्षात्कार करते हैं। और उनकी **(अद्रयः)** चित्तवृत्तियाँ **(गोरधित्वचि)** अपने मन में **(अप्सु)** कर्म्मों के लिये **(त्वा)** तुमको **(वप्सति)** ग्रहण करती हैं। हे सोम! **(ते)** तुम्हारे **(दिविनाभा)** लोक-लोकान्तरों के बन्धनरूप द्युलोक में **(यः)** जो पुरुष **(आददे)** तुमको ग्रहण करता है, वह **(परमः)** सर्वोत्कृष्ट होता है। और **(ते)** तुम्हारे **(पृथिव्याः)** पृथिवीलोक के **(सानवि)** उच्चशिखर में **(क्षिपः)** रखा हुआ **(रुरुहुः)** उत्पन्न होता है ।।४।।

भावार्थः—जो लोग चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, वे परमात्मा की विभूति में सर्वोपरि होकर विराजमान होते हैं ।।४।।

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ।।५।।

पदार्थः—**(इन्दो)** हे परमैश्वर्य्ययुक्त परमात्मन्! **(ते)** तुम्हारा **(सुपेशसं)** रूप **(सुभ्वं)** सुन्दर है। **(अभिश्रियः)** तुम्हारे उपासक लोग **(प्रथमा)** मुख्य **(रसं)** आनन्द को **(तुञ्जन्ति)** ग्रहण करते हैं। **(पवमान)** हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! **(निदंनिदं)** प्रत्येक निन्दक को आप **(नितारिषः)** नाश करते हैं। और **(ते)** तुम्हारा

Scanned by CamScanner

(शुष्मः) बल (प्रियः) जो सबके प्रिय करने वाला है (मदः) और आनन्द देने वाला है, वह (आविः) प्रकट हो ॥५॥

भावार्थः परमात्मा का आनन्द परमात्मयोगियों के लिये सदैव आह्लादक है। और दुराचारि-दुष्टों के लिये परमात्मा का बल नाश का हेतु है। इस लिये परमात्म-परायण पुरुषों को चाहिये कि वे सदैव परमात्मा के नियमों के पालन में तत्पर रहें ॥५॥

नवम मण्डल में यह उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१, ४ जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब परमात्मा के ऐश्वर्य को प्रकारान्तर से निरूपण करते हैं ॥

सोम॑स्य॒ धारा॑ पवते नृ॒चक्ष॑स ऋ॒तेन॑ दे॒वान्ह॑वते दि॒वस्परि॑ ।

बृह॒स्पते॑ र॒वथे॑ना॒ वि दि॑द्युते समु॒द्रासो॒ न सव॑नानि विव्यचुः ॥१॥

पदार्थः—(नृचक्षसः) परमात्मा के उपासक लोगों के लिये (सोमस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा की (धारा) आनन्दमय वृष्टि (पवते) पवित्र करती है। और (देवान्) विद्वान् लोगों को (ऋतेन) शास्त्रीय सत्यद्वारा (दिवस्परि) सब ओर से (पवते) परमात्मा पवित्र करता है। (बृहस्पतेः) वाणियों के पति विद्वान् को परमात्मा (रवथेन) शब्द से पवित्र करता है। (न) जिस प्रकार (समुद्रासः) अन्तरिक्ष लोक (सवनानि) यज्ञों का (विव्यचुः) विस्तार करते हैं, इसी प्रकार शब्द विद्या के वेत्ता विद्वान् परमात्मा के ऐश्वर्य्य का विस्तार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि प्रथम शब्दब्रह्म का ज्ञाता बने, फिर मुख्य ब्रह्म का ज्ञाता बनकर लोगों को सदुपदेश दे ॥१॥

यं त्वा॑ वाजिन्न॒घ्न्या अ॒भ्यनू॑षता॒योह॑तं॒ योनि॒मा रो॑हसि द्यु॒मान् ।

म॒घोना॒मायुः॑ प्रति॒रन्महि॒ श्रव॒ इन्द्रा॑य सोम पवसे॒ वृषा॒ मदः॑ ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मघोनां) उपासकों की (आयुः) आयु के (प्रतिरन्) बढ़ाने वाले हैं। और (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (महिश्रवः) बड़े बल के देने वाले हैं। तथा (मदः) सब के आह्लादक हैं और (वृषा) सब कामनाओं की वृष्टि

Scanned by CamScanner

करने वाले हैं। और (पवसे) पवित्र करते हैं। हे परमात्मन्! (वाजिन्) हे बलस्वरूप! (यं त्वा) जिस आपको (अघ्न्याः) प्रकृत्यादि अविनाशी शक्तियाँ (अभ्यनूषत) विभूषित करती हैं। (अयोहतं) आप हिरण्यमय (योनिं) स्थान को (आरोहसि) व्याप्त किये हुए हैं। और (द्युमान्) प्रकाशस्वरूप हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा इस हिरण्यमय प्रकृति-रूपी ज्योति या अधिकरण है। वा यों कहो, कि इस हिरण्यमय प्रकृति ने उसके स्वरूप को आच्छादन किया है। इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है, कि 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' कि हिरण्यमय-पात्र से परमात्मा का स्वरूप ढका हुआ है ॥२॥

इन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।

प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥३॥

पदार्थः—(श्रवसे) सर्वोपरि बल के लिये (सुमंगलः) मंगलरूप है। (ऊर्जं वसानः) सबका प्राणाधार होकर विराजमान हो रहा है। (मदिन्तमः) सब का आनन्दकारक है (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (कुक्षा) अन्तःकरण में (पवते) पवित्रता प्रदान करता है (सः) वह (प्रत्यङ्) सर्वव्यापक है। और (विश्वा भुवना) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को (अभिपप्रथे) रचता है। (हरिः) वह अनन्त बलयुक्त (क्रीलन्) क्रीड़ा करता हुआ और (अत्यः) सर्वव्यापक होकर और (वृषा) आनन्द का वर्षक होकर (स्यन्दते) अपनी व्यापक शक्ति द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥३॥

भावार्थः—सब का प्राणाधार और सर्वव्यापक परमात्मा आनन्द का वर्षक है और अपनी व्यापकशक्ति से सर्वत्र परिपूर्ण हो, सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को रचता है ॥३॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।

नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥४॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (मधुमत्तमं) अत्यन्त आनन्द के प्रदाता (तं त्वा) पूर्वोक्त तुमको (नरः) ऋत्विगादि लोग (दुहते) दुहते हैं। और (दश क्षिपः) पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियों की (ग्रावभिः) शक्तियों से (सुतः) सिद्ध किये हुए (सोम) हे परमात्मन्! आप (नृभिः) मनुष्यों से साक्षात्कार किये जाते हैं। (सहस्रजित्) अनन्त प्रकार की आसुरीय शक्तियों को तिरस्कृत करने वाले आप (विश्वान् देवान्) सम्पूर्ण विद्वानों को (आपवस्व) पवित्र करें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्य पवित्र करते हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

तं त्वा॑ ह॒स्तिनो॒ मधु॑मन्त॒मद्रि॑भिर्दु॒हन्त्य॒प्सु वृ॑ष॒भं दश॒ क्षिपः॑ ।

इन्द्रं॑ सोम मा॒दय॒न्दैव्यं॒ जनं॒ सिन्धो॑रि॒वोर्मिः पव॑मानो अर्षसि ॥५॥

पदार्थः—(तं त्वा) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आपको जो (वृषभं) जो सब कामनाओं की वृष्टि करता है (अद्रिभिः) अपनी शक्तियों से (दशक्षिपः) दश प्राण (हस्तिनः) स्वच्छता युक्त (अप्सु) कर्म्म विषयक (दुहंति) दुहते हैं परमात्मन् ! (इन्द्रं दैव्यं जनं) दिव्यगुण सम्पन्न कर्म्मयोगी को (मादयन्) आनन्द देते हुए (सिंधोरिवोर्मिः) समुद्र की लहरों के समान (पवमानः) पवित्र करते हुए (अर्षसि) प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म्मयोग वा ज्ञानयोग द्वारा अपने आपको परमात्मा की कृपा का पात्र बनाते हैं, परमात्मा उन्हें सिन्धु की लहरों के समान अपने आनन्द-रूपी वारि से सिञ्चित करता है ॥५॥

नवम मण्डल में यह अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१-३ निचृज्जगती । ४ जगती । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः १—४ निषादः । ५ धैवतः ॥

अब ईश्वर के ज्ञान के अधिकारियों का निरूपण करते हैं ॥

प्र सोम॑स्य पव॑मानस्यो॒र्मय॒ इन्द्र॑स्य यन्ति ज॒ठरं॑ सु॒पेश॑सः ।

द॒ध्ना यदी॒मुन्नी॑ता य॒शसा॒ गवां॑ दा॒नाय॒ शूर॑मु॒दम॑न्दिषुः सु॒ताः ॥१॥

पदार्थः—(पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (सोमस्य) परमात्मा के ज्ञान की (ऊर्मयः) लहरें (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगी के (जठरं) अन्तःकरण को (प्रयन्ति) प्राप्त होती हैं। जो लहरें (सुपेशसः) सुन्दर हैं और (गवां) इन्द्रियों के (दानाय) सुन्दर ज्ञान देने के लिये (दध्ना यदीमुन्नीताः) सहायक-संस्कार द्वारा (यशसा) बल से (उदमंदिषुः) आनन्द में (सुताः) संस्कार किये हुए (शूरं) शूरवीर कर्मयोगी को प्रदीप्त करती हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा के सदुपदेश ज्ञानयोगी को पवित्र करते हैं और उसके उत्साह को प्रतिदिन बढ़ाते हैं ॥१॥

अच्छा॒ हि सोमः॑ क॒लशाँ॒ असि॑ष्यद॒दत्यो॒ न वोळ्हा॑ र॒घुव॑र्तनि॒र्वृषा॑ ।

अथा॑ दे॒वाना॑मु॒भय॑स्य॒ जन्म॑नो वि॒द्वाँ अ॑श्नोत्य॒मुत॑ इ॒तश्च॒ यत् ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**देवानां**) कर्म्मयोगी और विज्ञानयोगी आदि जो विद्वान् हैं, उनके (**उभयस्य**) दोनों (**जन्मनः**) ज्ञान और कर्म्म को (**विद्वान्**) जानता हुआ (**सोमः**) सौम्यस्वभाव परमात्मा (**कलशान्**) उनके अन्तःकरणों को (**अत्यः**) अतिशीघ्रगामी (**वोल्हा**) विद्युत् के (**न**) समान (**अच्छा सिस्यन्दत्**) भलीभांति सिञ्चन करता है। वह परमात्मा (**रघुवर्तनिः**) सूक्ष्म से सूक्ष्म है। और (**वृषा**) सब कामनाओं का प्रदाता है। जो पुरुष (**अमुतः**) इसी जन्म में उसके महत्त्व को जान लेता है, वह (**अश्नोति**) ब्रह्मानन्द को भोगता है। (**च**) और (**यत्**) जो आनन्द (**इतः**) इसी ज्ञानयोग से मिलता है, अन्य किसी साधन से नहीं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य की उन्नति के लिए इस लोक में ज्ञान और कर्म्म दो ही साधन हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि, वह इन दोनों मार्गों का अवलम्बन करे ॥२॥

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥३॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन्! (**पवमानः**) आप सबको पवित्र करने वाले हैं। (**इन्दो**) सर्वप्रकाशक! आप (**नः**) हमको (**वसु**) सब प्रकार के धन को (**आकिर**) दें। (**मघवा**) आप सब ऐश्वर्य्य के स्वामी हैं इसलिये हमारे (**महो राधसः**) अत्यन्त धन के (**भव**) प्रदाता बने रहें। परमात्मन्! आप हमको अपने (**सुचेतुना**) पवित्र ज्ञान से (**शिक्ष**) शिक्षा दें। और (**वयोध**) आप सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों को धारण करने वाले हैं। (**वसवे**) ऐश्वर्य के पात्र मेरे लिये आप ऐश्वर्य प्रदान करें। और (**गयं**) धन को (**अस्मदारे**) हमसे (**मा परासिचः**) मत दूर करें ॥३॥

भावार्थः—ईश्वरोपासकों को चाहिये, कि ईश्वर की प्राप्ति के हेतु ईश्वर के परम ऐश्वर्य्य का कदापि त्याग न करें। और ईश्वर से भी सदा यही प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आप हमको ऐश्वर्य्य से कदापि वियुक्त न करें ॥३॥

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (**नः**) हमको (**पूषा**) धर्म्मोपदेश द्वारा पुष्टि करने वाला विद्वान् (**पवमानः**) पथ्यापथ्य बताकर पवित्र करने वाला विद्वान् (**सुरातयः**) दानशील विद्वान् (**मित्रः**) सबसे मैत्री करने वाला विद्वान् (**वरुणः**) सबको वशीभूत

करने वाला विद्वान् (बृहस्पतिः) वाणियों के पति (मरुतः) ज्ञानयोगी (वायुः) कर्म्मयोगी (अश्विना) कर्म्म और ज्ञानयोगी दोनों (त्वष्टा) कार्य्य करने में समर्थ विद्वान् (सविता) उत्तमोत्तम पदार्थों का निर्माता विद्वान् (सुयमा) सबको नियम में रखने वाला विद्वान् (सरस्वती) ज्ञान को सर्वोपरि भूषणरूप से धारण करने वाला विद्वान् ये सब पूर्वोक्त विद्वान् (नः) हमको (आगच्छन्तु) प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है, कि हे मनुष्य ! तुम सामाजिक उन्नति के लिये पूर्वोक्त विद्वानों का संग्रह करो। ताकि तुम सब विद्याओं में निपुण होकर संसार में अभ्युदयशाली बनो ॥४॥

उभे द्यावा पृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानञ्जुषन्त ॥५॥

पदार्थः—(पवमानं) सबको पवित्र करने वाले परमात्मा को (उभे द्यावा पृथिवी) पृथिवीलोक और द्युलोक (विश्वमिन्वे) जो विस्तृत रूप से व्याप्त है (अर्यमा देवः) और न्याय करने वाला राजा (अदितिः) अज्ञान का खण्डन करने वाला विद्वान् (विधाता) सब नियमों का विधान करने वाला (भगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (नृशंसः) पदार्थों के गुणों का वर्णन करने वाला (उर्वन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष की विशाल विद्या को जानने वाला (विश्वे देवाः) ये सब देव (जुषन्त) सेवन करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की विभूति द्युलोक पृथिवीलोक अन्तरिक्ष लोक ये सब लोक-लोकान्तर हैं ! और इन सब लोक-लोकान्तरों के ज्ञाता विद्वान् भी परमात्मा की विभूति हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती। २ निचृज्जगती। ३ जगती। ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ निषादः। ५ धैवतः ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) जो सर्वोत्पादक प्रभु (अरुषः) प्रकाशस्वरूप (वृषा) सद्गुणों की वृष्टि करने वाला (हरिः) पापों के हरण करने वाला है, वह (राजेव) राजा के

समान (वस्मः) दर्शनीय है। और वह (गाः) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों के चारों ओर (अभि अचिक्रदत्) शब्दायमान हो रहा है। वह (वारं) वरणीय पुरुष को जो (अव्ययं) दृढ़भक्त है उसको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (पर्य्येति) प्राप्त होता है। (न) जिस प्रकार (श्येनः) विद्युत् (घृतवन्तं) स्नेहवाले (आसदं) स्थानों को (योनिं) आधार बनाकर प्राप्त होता है। इसी प्रकार उक्त गुण वाले परमात्मा ने (असावि) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया ॥१॥

भावार्थः—"सूते चराचरं जगदिति सोमः" जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है उसका नाम सोम है। यह शब्द 'षूङ् प्राणि गर्भविमोचने' से सिद्ध होता है। और उसी धातु से असावियत् प्रयोग है। जिसके अर्थ किसी वस्तु को उत्पन्न करने के हैं। और सायणाचार्य्य ने जो इसके अर्थ सोम के कूटे जाने के किये हैं वह कदापि ठीक नहीं हो सकते क्योंकि सोम तो यहाँ कर्त्ता है कर्म्म नहीं। और यदि कोई यह कहे कि यहाँ कर्म्म में प्रत्यय है तो सोम में तृतीया क्यों नहीं तो इसका उत्तर यह है कि यह वैदिक प्रयोग है ॥१॥

क॒विर्वे॒धस्या॒ पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒ न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि ।
अ॒प॒से॒धन्दु॑रि॒ता सो॑म मृळय घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (वेधस्या) उपदेश करने की इच्छा से आप (माहिनं) महापुरुषों को (पर्येषि) प्राप्त होते हो। और आप (अत्यः) अत्यन्त गतिशील पदार्थ के (न) समान (अभिवाजं) हमारे आध्यात्मिक यज्ञ को (अभ्यर्षसि) प्राप्त होते हैं। आप (कविः) सर्वज्ञ हैं (मृष्टः) शुद्ध स्वरूप हैं (दुरिता) हमारे पापों को (अपसेधन्) दूर करके (सोम) हे सोम! (मृळय) आप हमको सुख दें। और (घृतं वसानः) प्रेम-भाव को उत्पन्न करते हुए (निर्निजं) पवित्रता को (परियासि) उत्पन्न करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सर्वज्ञ परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन्! आप हमको शुद्ध करें। और सब प्रकार के सुख प्रदान करें। यहाँ सोम के लिए कवि शब्द आया है। सायण के मत में यहां सोमलता को ही कवि=सर्वज्ञ कथन किया गया है। वास्तव में वेदों में कवि शब्द जड़ के लिए कहीं भी नहीं आता। इतना ही नहीं किन्तु "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः (य० ४०।८) इत्यादि वाक्यों में कवि शब्द परमात्मा के लिए आया है। इस प्रकार उक्त मन्त्र में कवि शब्द से परमात्मा का ग्रहण करना चाहिये, जड़ सोम का नहीं ॥२॥

Scanned by CamScanner

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥३॥

पदार्थः—(वीते अध्वरे) पवित्र यज्ञों में (ग्रावभिः) रक्षा से आप (नसते) प्राप्त होते हैं। (उत) और (गाः) पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों में (अभिसरन्) गति करते हुए (आपः) सर्वव्यापक आप (स्वसारः) स्वयंगतिशील होकर विराजमान होते हैं। आप कैसे हैं (पर्जन्यः) सबके तर्पक हैं और (पिता) सबके रक्षक हैं और (महिषस्य पर्णिनः) बड़े से बड़े गतिशील पदार्थों के नियन्ता हैं और (पृथिव्या नाभा) पृथिव्यादि लोक लोकान्तरों के केन्द्र होकर (गिरिषु) सब पदार्थों में (क्षयं दधे) रक्षा को उत्पन्न करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक है और पर्जन्य के समान सबका तृप्तिकारक है। उसी परमात्मा से सब प्रकार की शान्ति रक्षा उत्पन्न होती है ॥३॥

अब परमात्मा सदाचार का उपदेश करता है ॥

जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥४॥

पदार्थः—(गर्भ) हे गर्भ ! 'गृह्णातीति गर्भः' हे सद्गुणों के ग्रहण करने वाले जीवात्मन् ! (ते) तुमको (ब्रवीमि) मैं कहता हूँ कि (शृणुहि) तुम सुनो। (पज्रायाः) जिस प्रकार पृथिवी की (पत्यौ, अधि) पर्जन्यरूप पति में अत्यन्त प्रीति होती है (जाया इव) जैसे कि सदाचारिणी स्त्री की अपने पति में प्रीति होती है। वैसे ही सब स्त्रियों को अपने-अपने पतियों में प्रीति करनी चाहिए। ऐसा करने पर (मंहसे) प्रत्येक अधिकारी के लिये सुख की प्राप्ति होती है। (अनिन्द्यः) सब दोषों से दूर होकर (वृजने) अपने लक्ष्यों में सावधान होकर (सोम) हे सौम्यस्वभाव जीवात्मन् ! (जागृहि) तुम जागो। और (अन्तर्वाणीषु) विद्यारूपी वाणी में (प्रचरासु) जो सबमें प्रचार पाने योग्य है उसमें (जीवसे) अपने जीने के लिये जागृति को धारण करो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीव ! तुमको अपने कर्त्तव्य में सदैव जागृत रहना चाहिए। जो पुरुष अपने कर्त्तव्य में नहीं जागता उसका संसार में जीना निष्फल है। यहां सोम शब्द का अर्थ

Scanned by CamScanner

जीवात्मा के हैं। जैसे कि "स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्" (ब्र० सू० २।३।५॥) यहां ब्रह्मसूत्र के अनुसार प्रकरण भेद से अर्थ का भेद हो जाता है इसी प्रकार यहां शिक्षा देने के प्रकरण में सोम नाम जीवात्मा का है ॥४॥

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे जीवात्मन् ! (यथा) जैसे (पूर्वेभ्यः) पूर्व जन्मों के लिये (शतसाः) सैकड़ों (सहस्रसाः) हजारों प्रकार के (वाजं) बलों को (पर्ययाः) तुम प्राप्त हुए (एवा) इसी प्रकार (नव्यसे) इस नवीन जन्म के लिये (सुविताय) अभ्युदयार्थ (तव व्रतं) तुम्हारे व्रत को (अनु आपः) सत्कर्म्म (सचंते) सङ्गत हों। इसलिये आप (पवस्व) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे जीवो ! तुम्हारे पूर्व जन्म बहुत व्यतीत हुए हैं तुम इस नूतन जन्म में सत्कर्म करके अभ्युदयशाली और तेजस्वी बनो। यहां पूर्व और उत्तर जन्मों का कथन सृष्टि को प्रवाह-रूप से अनादि मानकर है। और यही भाव "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इस मन्त्र में वर्णन किया गया है ॥५॥

नवम मण्डल में यह बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती । २, ५ विराड्जगती । ३ जगती ॥ निषादः स्वरः ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के पति परमात्मन् ! (ते) तुम्हारा स्वरूप (पवित्रं) पवित्र है। और (विततं) विस्तृत है। (प्रभुः) आप सबके स्वामी हैं। और (विश्वतः, गात्राणि) सब मूर्तपदार्थों के (पर्येषि) चारों ओर व्यापक हैं। (अतप्ततनूः) जिसने अपने शरीर से तप नहीं किया (तदामः) वह पुरुष कच्चा है। वह तुम्हारे आनन्द को (न अश्नुते) नहीं भोग सकता (शृतास इत्) अनुष्ठानी पुरुष ही (वहन्तः) तुमको प्राप्त हो सकते हैं। वे (तत्) तुम्हारे आनन्द को (समाशत) भोग सकते हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में तप का वर्णन स्पष्ट रीति से किया गया है। जो लोग तपस्वी हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं। यहां शरीर का तप एक उपलक्षणमात्र है। वास्तव में आध्यात्मिकादि सब प्रकार के तपों का यहां ग्रहण है ॥१॥

तपो॑ष्पवित्रं वित॑तं दिवस्पदे शोच॑न्तो अस्य तन्त॑वो व्य॑स्थिरन् ।

अव॑न्त्यस्य पवीतारमाशवो॑ दिवस्पृष्ठमधि॑ तिष्ठन्ति चेत॑सा ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (**दिवस्पदे**) द्युलोक में आपका (**तपोः**) तपोरूपी (**पवित्रं**) पवित्र (**विततं**) विस्तृतपद विराजमान है। (**अस्य**) उस पद की (**तन्तवः**) किरणें (**शोचन्तः**) दीप्तिवालीं (**व्यस्थिरन्**) स्थिर हैं। (**अस्य**) इस पदके (**पवितारं**) उपासक की (**आशवः**) इस पद के आनन्द (**अवन्ति**) रक्षा करते हैं। उक्त पद के उपासक (**दिवस्पृष्ठमधि**) द्युलोक के शिखर पर (**चेतसा**) अपने बुद्धिबल से (**तिष्ठन्ति**) स्थिर होते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का उपदेश किया है कि संसार में तप ही सर्वोपरि है। जो लोग तपस्वी हैं वे सर्वोपरि उच्च पद को ग्रहण करते हैं। इसलिए हे मनुष्यो तुम तपस्वी बनो ॥२॥

अरू॑रुचदुषसः॒ पृश्नि॑रग्रिय उक्षा॑ बिभर्ति भुव॑नानि वाजयुः ।

मा॒या॒विनो॑ ममिरे अस्य मा॒यया॑ नृ॒चक्ष॑सः पि॒तरो॒ गर्भ॒मा द॑धुः ॥३॥

पदार्थः—पूर्वोक्त परमात्मा (**उषसः**) सूर्य्य के प्रभामण्डल को (**अरूरुचत्**) प्रकाश करता है। और (**पृश्निः**) 'प्राश्नुते सर्वमिति पृश्णिः' प्रलयकाल में जो सबको भक्षण करे उसका नाम पृश्णि है। (**उक्षा**) 'उक्षतीति उक्षा' इति महन्नामसु-पठितम्—(नि० रु० ३—१३—३)। जो इस सम्पूर्ण संसार को अपने प्रेमवारि से सिञ्चित करे उस महान् पुरुष का नाम उक्षा है। (**भुवनानि बिर्भात**) वह सब भुवनों का भरण-पोषण करता है। (**वाजयुः**)सब बलों का आधार है।(**अस्य मायया**) उसकी शक्ति से (**मायाविनो ममिरे**) मायावी लोक मर जाते हैं। (**नृचक्षसः**) वह सर्वज्ञ (**पितरः**) सबको उत्पन्न करने वाला (**गर्भ**) इस संसाररूपी गर्भ को (**आदधुः**) धारण करता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह प्रकाशस्वरूप है। और लोक-लोकान्तरों का अधिष्ठान है। सब बलों का केन्द्र है और सब मायावियों की माया को मर्दन करने वाला है। तात्पर्य्य यह है कि उसी पूर्ण पुरुष की उपासना से पुरुष तपस्वी बन सकता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥४॥

पदार्थः—(गां धरतीति गन्धर्वः) जो पृथिव्यादि लोक-लोकान्तरों को धारण करे उसका नाम यहाँ गन्धर्व है। (इत्था) इति सत्यनामसु पठितं (नि० ३-१३-१०)। वह सत्यरूप परमात्मा (देवानां जनिमानि) विद्वानों के जन्म को (रक्षति) रक्षा करता है। (अद्भुतः) बड़ा है। अद्भुत इति महन्नामसु पठितं (नि० ३—१३—१३) (निधापतिः) सब शक्तियों का पति (निधया) अपनी शक्ति से (रिपुं) अपने से प्रतिकूल शक्ति वाले शत्रु को (गृभ्णाति) स्वाधीन करता है। (अस्य मधुनः पदं) इस आनन्दमय परमात्मा के पद को (सुकृत्तमाः) पुण्यात्मा लोग (भक्षं) भोग्य बना कर (आशत) स्थिर होते हैं। और उक्त उपासकों की (पाति) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थः—(तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः) उस विष्णु के परमपद को सदा विद्वान् लोग देखते हैं। उसी व्यापक परमात्मा के परमपद का इस मन्त्र में वर्णन किया है कि उस परमपद के उपासक लोग ब्रह्मानन्द को भोगते हैं अन्य नहीं ॥४॥

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (हविः) आप हवि हैं। (हविष्मः) और हवि वाले हैं। (महि) बड़े हैं। (दैव्यं) दिव्यरूप वाला (नभः) यह विस्तृत आकाश (सद्मः) आप का गृह है। इसमें (वसानः) निवास करते हुए (अध्वरं) अहिंसारूप यज्ञ को (परियासि) प्राप्त होते हैं। (राजा) आप सर्वत्र विराजमान हो रहे हैं। (पवित्ररथः) पवित्र गति वाले (वाजमारुहः) सब प्रकार के बलों को धारण किये हुए हैं। (सहस्रभृष्टिः) अनन्त प्रकार की पवित्रताओं को धारण किये हुए हैं (बृहत्श्रवः) सर्वोपरि यशको धारण किये हुए आप (जयसि) सबको जय करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सहस्रशक्तियों वाला वर्णन किया है। जैसे कि 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मन्त्र में वर्णन किया गया है। उस अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा की उपासना करके जो पुरुष तपस्वी बनते हैं वे इस भवनिधि से पार होते हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड्जगती । ४ जगती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, ४ निषादः । २, ५ धैवतः ॥

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥१॥

पदार्थः—(देवमादनः) हे विद्वानों के आनन्द के वर्द्धक परमात्मन् ! (विचर्षणिरप्सा) हे कर्म्मों के द्रष्टा ! (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (वरुणाय) विज्ञानी के लिये (वायवे) ज्ञानी के लिये (पवस्व) आप पवित्रता प्रदान करें । और (नः) हमको (अद्य) इस समय (वरिवः) धनयुक्त करें । और (उरुक्षितौ) इस विस्तृत भूमण्डल में (जनं) इस जनको (दैव्यं) दिव्य बनाकर (गृणीहि) अनुग्रह करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! आप ज्ञानी-विज्ञानी बनकर कर्म्मों के नियन्ता देव से यह प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप अपने ज्ञान द्वारा हमको अविनाशी बनाएँ; और हमारी दरिद्रता मिटा कर आप हमको ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥१॥

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्य्यः) सूर्य्य के (उषसं) उषा के (न) समान (सिषक्ति) संयुक्त करता है । और (अभिष्टये) ऐश्वर्य्य के लिये (संचृतं) प्रकाशों से सयुक्त और (विचृतं) अज्ञानों से रहित (कृण्वन्) करता हुआ (आतस्थौ) आकर हमारे हृदय में विराजमान हो । (यः) जो परमात्मा (अमर्त्यः) अविनाशी है । और (विश्वानि भुवनानि) सब लोक-लोकान्तरों के (परि, अर्षति) चारों ओर व्यापक है । वह (सोमः) सोमगुणसम्पन्न परमात्मा हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने ज्ञानी-विज्ञानी लोगों को सूर्य्य की प्रभा के समान वर्णन किया । तात्पर्य्य यह है कि ज्ञान-विज्ञान द्वारा ही पुरुष तेजस्वी और सूर्य्य के समान प्रभाकर बन सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (दैव्यं जनं) दिव्यगुण वाले (इन्द्रं) कर्म्मयोगी को (मादयन्) आनन्द करता हुआ (उपावसुः) स्थिर होता है। (यः) जो परमात्मा (गोभिः) पृथिव्यादिकों की सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओं से लेकर (ओषधिषु आ) ओषधियों तक (आसृज्यते) सब ब्रह्माण्डों को रचता है। और (देवानां) विद्वानों के (सुम्ने) सुख के लिये (इषयन्) इच्छा करता हुआ (विद्युता) विद्युत् रूपी शक्ति से सबको पवित्र करता है। और (धारयासुतः) सुधामय है ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष ईश्वरी विद्या को प्राप्त होकर संसार की रक्षा करना चाहते हैं, परमात्मा उनके सुख की सदैव वृद्धि करता है ॥३॥

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

पदार्थः—(सहस्रजित्) अनन्त शक्तिसम्पन्न परमात्मा विद्वानों की (इषिरां) ज्ञानप्रद (वाचं) वाणी को (उषर्बुधं) जो उषाकाल में जगाने वाली है। उसको (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (पवते) पवित्र बनाता है। (एष स्यः सोमः) वह परमात्मा (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप है। और (समुद्रं) अन्तरिक्ष को (उदियर्ति) वर्षणशील बनाता है। और (वायुभिः) अपनी ज्ञानरूपी शक्तियों से (इन्द्रस्य) ज्ञानयोगी के (हार्दि) हृदयव्यापी (कलशेषु) हृदय-आकाश में (सीदति) स्थिर होता है ॥४॥

भावार्थः—"समुद्रमिति अन्तरिक्षनामसु पठितं" (नि० रु० २।१०।५॥) "समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रं" जिससे जलों का प्रवाह वहे उसका नाम यहां समुद्र है। तात्पर्य्य यह है कि जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष लोक को वर्षणशील और पृथ्वीलोक को दृढ़ता प्रदान की है, वह लोक-लोकान्तरों का पति परमात्मा अपनी ज्ञानगति से कर्मयोगी के हृदय में आकर विराजमान होता है ॥४॥

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (पयोवृधं) ज्ञान से वृद्धि को प्राप्त जो आप हैं (त्यं) उस आपको (गावः) इन्द्रियें (पयसा) ज्ञान द्वारा (अभि श्रीणन्ति) सेवन करतीं हैं। और (सोमं) सोमगुणविशिष्ट आपको (स्वर्विदं) जो आप देवताओं के लक्ष्यस्थानीय हैं, आपको (मतिभिः) ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा (पवते) विद्वान लोग साक्षात्कार

Scanned by CamScanner

करते हैं। (धनञ्जयः) आप धनञ्जय हैं। सम्पूर्ण धनों के जेता हैं। (कृत्व्यः) सब शक्तियों के केन्द्र हैं। (रसः) आनन्दरूप हैं। (विप्रः) मेधावी हैं। (कविः) सर्वज्ञ हैं। (काव्येन स्वर्चनाः) अपनी सर्वशक्ति से सब लोक-लोकान्तरों के प्रलयकर्त्ता हैं ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न है। उसका ज्ञानयोगी अपने चित्तवृत्ति-निरोधरूपी योग द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥५॥

नवम मण्डल में यह चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य १—१२ वेनो भार्गव ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, १० विराड्जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४, ६ पादनिचृज्जगती। ८ आर्चीस्वराड्जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१० निषादः। ११, १२ धैवतः ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१॥

पदार्थः—(इन्दवः) कर्म्मयोगी इस संसार में (द्रविणस्वन्तः) ऐश्वर्य वाले होकर (इह) इस यज्ञ में (सन्तु) विराजमान हों। और (द्वयाविनः) झूठ सच का विवेक न करने वाले मायावी पुरुष (ते रसस्य) तुम्हारे आनन्द का (मा मत्सत) मत लाभ उठावें (सोम) हे जगत्कर्त्ता परमात्मन्! (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (सुषुतः) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (परिस्रव) ज्ञान द्वारा उसके हृदय में आकर विराजमान होओ। और (रक्षसा सह) राक्षसों द्वारा किये हुए कर्म्मयोगियों के रोगादिक (अपभवतु) दूर हों ॥१॥

भावार्थः—जो लोग सत्यासत्य में विवेक नहीं कर सकते और असत्य को त्यागकर दृढ़तापूर्वक सत्य का ग्रहण नहीं कर सकते वे सदैव सत्यानृत के सागर में गोते खाते रहते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह सत्यासत्य का विवेक करके सत्यग्राही बनें ॥१॥

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! (समर्ये) वैदिक यज्ञों में आप (अस्मान्) हमको (चोदय) प्रेरणा करें। आप (देवानां) विद्वानों के

(वक्षोऽसि) प्रेरक हैं। (हि) क्योंकि (प्रियोमदः) आनन्द के प्यारे हैं। (शत्रूञ्जहि) आप अन्यायकारी शत्रुओं का नाश करें और (अम्या) सब प्रकार से हमको प्राप्त हों (अन्वनायतः) उपासक के (सोमं) स्तुति को (पिब) आप ग्रहण करें। और (नोमृधः) हमारे यज्ञों से विघ्नकारियों को (अव जहि) दूर करें ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होकर परमात्मा के स्वरूप में ध्यान द्वारा प्रविष्ट होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ग्रहण करता है ॥२॥

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः।

अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते॥३॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (अदब्धः) किसी से दबाये नहीं जा सकते। और (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप हैं। (पवते) पवित्र करते हैं। (इन्द्रस्य) प्रकाशयुक्त विद्युदादि पदार्थों में (आत्मा भवसि) व्यापकरूप से विराजमान हो रहे हैं। और (धासिरुत्तमः) उत्तमोत्तम गुणों को धारण करा रहे हैं। (बहवो मनीषिणः) बहुत से ज्ञानी विज्ञानी लोग (अभिस्वरन्ति) आपकी स्तुति करते हैं। और (अस्य भुवनस्य) इस संसार के (राजानं) प्रकाशक आपको (निंसते) मानते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को आत्मा शब्द से वर्णन किया है। अर्थात् "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा" जो सर्वत्र व्यापक हो उसका नाम आत्मा है। यहां सर्वोत्पादक सोम परमात्मा को व्यापकरूप से वर्णन किया है। जो लोग सोमशब्द को जड़लता वाचक ही मानते हैं उनको इस मन्त्र से शिक्षा लेनी चाहिये कि सोम यहां सर्वव्यापक परमात्मा का नाम है ॥३॥

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।

जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः॥४॥

पदार्थः—(सहस्रनीथः) आप सहस्राक्ष हैं। (शतधारा) अनेक प्रकार के आनन्दों के स्रोत हैं। (अद्भुतः) आश्चर्य्यमय हैं। (इन्द्राय इन्दुः) ऐश्वर्य्य के प्रकाशक हैं। (काम्यं मधु) कामनारूप मधुरता को (पवते) पवित्र करने वाले हैं। और (क्षेत्रं जयेन) इस विस्तृत ब्रह्माण्ड को वशीभूत करते हुए और (अपः) कर्म्मों को वशीभूत करते हुए (नो गातुं) हमारी उपासना को (उरुं कृणु) विस्तृत करें। (सोम) हे परमात्मन्! आप सब प्रकार के आनन्दों को (मीढ्वः) सिञ्चन करने वाले हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा में ज्ञान की अनन्तशक्तियें हैं। और आनन्द की अनन्तशक्तियें हैं। बहुत क्या? सब आनन्दों की वृष्टि करने वाला एकमात्र परमात्मा ही है। इस लिए उपासकों को चाहिये कि उस सर्वैश्वर्य्यप्रद परमात्मा की उपासना करें ॥४॥

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यव्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (**कनिक्रदत्**) स्वसत्तासे गर्जते हुए (**कलशे**) विद्वानों के अन्तःकरण में (**गोभिः**) अन्तःकरण की वृत्तियों से (**अज्यसे**) साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं। (**अव्ययं**) अपने अव्यय स्वरूप के (**समया**) साथ (**वारं**) वरणीय ज्ञान के पात्र को (**अर्षसि**) प्राप्त होते हैं। (**मर्मृज्यमानः**) साक्षात्कार को प्राप्त (**अत्यो न**) गतिशील पदार्थों के समान (**सानसिः**) उपासनायोग्य आप (**इन्द्रस्य**) कर्म्मयोगी के (**जठरे**) अन्तःकरण में (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् आप (**समक्षरः**) भली-भाँति विराजमान होते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का अविनाशीभाव जब मनुष्य के हृदय में आता है तो मनुष्य मानो ईश्वर के समीप पहुँच जाता है। इसी का नाम परमात्मप्राप्ति है। वास्तव में परमात्मा किसी के पास चल कर नहीं आता। और न किसी से दूर जाता। इसी अभिप्राय से वेद में लिखा है कि "तद्दूरे तद्वन्तिके" अर्थात् वह अज्ञानियों से दूर और ज्ञानियों के समीप है ॥४॥

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थः—(**अदाभ्यः**) हे अदम्भनीय परमात्मन्! (**बृहस्पतये**) वाणियों के पति विद्वान् के लिये आप (**मधुमान्**) मीठे हैं। (**मित्राय**) सर्वमित्र (**वरुणाय**) वरणीय (**वायवे**) ज्ञानयोगी के लिये (**स्वादुः**) सर्वप्रिय बना कर (**पवस्व**) हमको पवित्र करें। और (**इन्द्राय**) कर्म्मयोगी के लिये आप हमको (**स्वादुः**) प्रिय बनायें और (**सुहवीतुनाम्ने**) कर्म्मयोगी के लिये आप हमको पवित्र बनायें ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा का उपासन करते हैं उनकी कुटिलतायें ज्ञानयोग से दग्ध हो जाती हैं। इसलिये वे सर्वप्रिय हो जाते हैं ॥६॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥७॥

पदार्थः—(मदिरास इन्दवः) आनन्द के वर्द्धक और ज्ञान के प्रकाशकस्वभाव (इन्द्रमाविशन्ति) कर्म्मयोगी को आकर प्राप्त होते हैं। जो कर्म्मयोगी (सुस्तुति) सुन्दर स्तुति करने वाला है। उसको (पवमानः) परमात्मा के पवित्रभाव (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होते हैं। उसको (कलशे) अन्तःकरण में (दशक्षिपः) दशप्राण (अत्यं) गतिशील परमात्मा को (मृजन्ति) साक्षात्कार करते हैं। (विप्राणां मतयः) विज्ञानी पुरुषों की बुद्धियें (वाच ईरते) उस परमात्मा में वाणियों का प्रयोग करती हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना से मनुष्य को सुन्दर शील मिलता है, जिस शील के द्वारा मनुष्य सद्विद्या को प्राप्त होकर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है ॥७॥

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वी गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।

माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

पदार्थः—(पवमानः) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (सुवीर्यमुर्वी) बल के देने वाले विस्तृत मार्ग को जो (गव्यूतिं) इन्द्रियों का ज्ञानमार्ग है उसको देकर हे परमात्मन् ! आप (महि) महत् (सप्रथः) सब प्रकार से बड़ा (शर्म्म) सुख (अभ्यर्ष) दें। (इन्दो) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! (परिषूतिरीशत) किसी का द्वेषी (नः) हमको (माकिः) मत करो। और (त्वया) तुम्हारे से उत्पन्न किये हुए (धनं धनं) सब धन को (जयेम) हम जीतें ॥८॥

भावार्थः—जिन लोगों के ऐश्वर्य्यसम्बन्धी इन्द्रिय विशाल होते हैं वह किसी के साथ द्वेष नहीं करते। और बुद्धिबल से ही सब ऐश्वर्य उनके अधीन हो जाते हैं ॥८॥

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः।

राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥९॥

पदार्थः—(कविः) सर्वज्ञ परमात्मा (दिवोरोचना) द्युलोक के प्रकाशक नक्षत्रों को (अरूरुचत्) प्रकाश करता है। वह परमात्मा (विचक्षणः) विविध पदार्थों का द्रष्टा है। और (वृषभः) बल वाला है। (अधिद्यामस्थात्) द्युलोक को आश्रित करके स्थिर है। (राजा) सबका प्रकाशक है। और (पवित्रमत्येति) सर्वोपरि पवित्र है (रोरुवद्दिवः) जो द्युलोक को भी शब्दायमान कर रहा है। (पीयूषं) उस अमृतमय को (नृचक्षसः) विज्ञानी लोग (दुहते) परिपूर्ण करते हैं ॥९॥

भावार्थः—द्युलोक के नक्षत्रादिकों का प्रकाशक स्वयंप्रकाश परमात्मा

Scanned by CamScanner

ही है। उसी से सूर्य्यचन्द्रादिकों का प्रकाश होता है। वही स्वतः प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पीयूषं) अमृत का धाम है। उसी से नित्यसुख मुक्ति की इच्छा करनी चाहिये ॥९॥

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।

अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१०॥

पदार्थः—(गिरिष्ठां) वाण्यादिकों के प्रकाशक (उक्षणं) सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मा को (वेनाः) याज्ञिक लोग (दुहन्ति) परिपूर्णरूप से साक्षात्कार करते हैं। जो याज्ञिक (असश्चतः) कामनाओं में संसक्त नहीं। (मधुजिह्वा) मधुर बोलने वाले (दिवो नाके) आध्यात्मिक यज्ञों में जो स्थिर हैं। वे (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (आ आप्नुवन्ति) सब ओर से प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (मधुमन्तं) आनन्द स्वरूप है। और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (सिन्धोरूर्म्मा) वाष्परूप परमाणुओं को (वावृधानं) जो बढ़ाने वाला है। और (अप्सु द्रप्सं) जो सब रसों में सर्वोपरि रस है ॥१०॥

भावार्थः—याज्ञिकलोग जो नित्य मुक्तिसुख की इच्छा करते हैं वे आनन्दमय परमात्मा का अपने पवित्र अन्तःकरण में ध्यान करते हैं। जिस प्रकार जलादि पदार्थों के सूक्ष्मरूप परमाणु इस विस्तृत नभोमण्डल में व्याप्त हो जाते हैं इसी प्रकार परमात्मा के अपहत पापादि धर्म्म उनके रोम-रोम में व्याप्त हो जाते हैं। अर्थात् वे सर्वाङ्ग से पवित्र होकर परमात्मा के भावों को ग्रहण करते हैं ॥१०॥

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।

शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११॥

पदार्थः—(वेनानां) उपासक लोगों की (पूर्वीः, गिरः) बहुत सी वाणियें (अकृपन्त) उसकी स्तुति करती हैं। जो (नाके) सुख में (सुपर्णम्) अपनी स्वसत्ता से (उपपप्तिवांसम्) शब्दायमान होता है। 'शिशुम् श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले इति शिशुः परमात्मा,' जो प्रलयकाल में पदार्थों को सूक्ष्म करे उसका नाम यहां शिशु है। उस परमात्मा को (रिहन्ति) जो प्राप्त होते हैं। (मतयः) सूक्ष्मबुद्धि वाले (पनिप्नतम्) जो शब्दायमान है (हिरण्ययम्) प्रकाशस्वरूप है। और (शकुनम्) 'शक्नोति सर्वं कर्तुमिति शकुनं,' जो सर्वशक्तिमान् हो उसका नाम यहां शकुन है। (क्षामणिस्थाम्) जो क्षमा में स्थिर है ॥११॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा विद्वानों की वाणी द्वारा मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित होता है। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सदुपदेश द्वारा उसका ग्रहण करें ॥११॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥

पदार्थः—(विश्वा, रूपा प्रतिचक्षाणोऽस्य) इस सूर्य्यमण्डल की प्रतिचक्षाणरूपा, नाना प्रकार के रूपों को प्रख्यात करता हुआ परमात्मा (अधि, नाके, अस्थात्) सर्वोपरि सुख में विराजमान है। (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि है। और (शुक्रेण) अपने बल से और (शोचिषा) अपनी दीप्ति से (भानुः) सूर्य्य को भी (व्यद्यौत्) प्रकाशित करता है। और (रोदसी मातरा) अन्य लोकलोकान्तरों का निर्माण करता हुआ द्यावापृथिवी को (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करने वाला है। (शुचिः) पवित्र है। और (गन्धर्वः) सर्वलोकलोकान्तरों का अधिष्टाता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा अपने प्रकाश से सूर्य्यचन्द्रादिकों का प्रकाशक है। और सम्पूर्ण विश्व का निर्माता विधाता और अधिष्ठाता है, उसी की उपासना सब लोगों को करनी चाहिये ॥१२॥

नवम मण्डल में यह पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टचत्वारिंशदृचस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—१० आकृष्टामाषाः। ११—२० सिकता निवावरी। २१—३० पृश्नयोऽजाः। ३१—४० त्रय ऋषिगणाः। ४१—४५ अत्रिः। ४६—४८ गृत्समदः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३५, ४०, जगती। २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७, विराड्जगती। ३—५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६, निचृज्जगती। १४, १५, २८, २९, ४३, ४८, पादनिचृज्जगती। २४ आर्चीजगती। ४५ आर्चीस्वराड्जगती॥ निषादः स्वरः॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥१॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (ते) तुम्हारे (धीजवः) ज्ञानके (आशवः) प्राणरूपभाव (रघुजा इव त्मना) विद्युत् के समान शीघ्र-

गति करने वाले (मदाः) और आनन्दरूप (प्रार्षन्ति) अनायास प्रतिदिन गति कर रहे हैं। और वे भाव (दिव्याः) दिव्य हैं (सुपर्णाः) चेतनरूप हैं (मधुमन्तः) आनन्दरूप हैं (इन्दवः) प्रकाशरूप हैं। (मदिन्तमासः) आह्लादक हैं। वे उपासक के (कोशं) अन्तःकरण में (पर्यासते) स्थिर होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग पदार्थान्तरों से चित्तवृत्ति को हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं उनके अन्तःकरण को प्रकाशित करने के लिये परमात्मा दिव्यभाव से आकर उपस्थित हो जाते हैं ॥१॥

प्र ते मदा॑सो मदि॒रास॑ आ॒शवोऽसृ॑क्षत॒ रथ्या॑सो॒ यथा॑ पृथ॑क् ।

धे॒नुर्न व॒त्सं पय॑सा॒भि व॒ज्रिण॒मिन्द्र॒मिन्द॑वो॒ मधु॑मन्त ऊ॒र्मय॑ः ॥२॥

पदार्थः—(वज्रिणम्, इन्द्रम्) विद्युत् की शक्ति रखने वाले कर्मयोगी के लिये (धेनुः) गौ (न) जैसे (वत्सं) अपने बच्चे को (पयसा) दुग्ध के द्वारा (अभिगच्छति) प्राप्त होती है। इसी प्रकार (इन्दवः) परमात्मा के प्रकाशरूपस्वभाव (मधुमन्तः) जो जो आनन्दमय हैं। (ऊर्मयः) और समुद्र की लहरों के समान गतिशील हैं। वे (मदासः) आह्लादक (मदिरासः) उत्तेजक (आशवः) व्याप्तिशील स्वभाव (ते) तुम्हारे लिये (प्रासृक्षत) रचे गये हैं। (यथा) जैसे (रथ्यासः) रथ की गति के लिये अश्वादिक (पृथक्) भिन्न-भिन्न रचे गये हैं इसी प्रकार (ते) तुम्हारे लिये हे उपासक उक्त स्वभाव रचे गये हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपासक ! तुम्हारे शरीररूपी रथ के लिये ज्ञान के विचित्र भाव घोड़ों के समान, जिस प्रकार घोड़े रथ को गतिशील बनाते हैं इसी प्रकार, विज्ञानी पुरुष की चित्तवृत्तियें उसके शरीर को गतिशील बनाती हैं ॥२॥

अत्यो॒ न हि॑या॒नो अ॒भि वाज॑मर्ष॒ स्व॒र्वित्कोशं॑ दि॒वो अद्रि॑मातरम् ।

वृषा॑ प॒वित्रे॒ अधि॒ सानो॑ अ॒व्यये॒ सोम॑ः पुना॒न इ॑न्द्रि॒याय॒ धाय॑से ॥३॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (इन्द्रियायधायसे) धन के धारण कराने के लिये (अव्यये) अविनाशी (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (अधिसानो) जो सर्वोपरि विराजमान है ऐसे पवित्र आत्मा के लिए (वृषा) सब कामनाओं की तृप्तिकर्ता परमात्मा (स्वर्वित्) जो सर्वज्ञ है (अत्यः) गतिशील पदार्थ के (न) समान (हियानः) प्रेरणा करने वाला परमात्मा (वाजम्) यशके (अभि) सन्मुख (अर्ष) गति करता है (दिवो अद्रिमातरम्) द्युलोक से मेघका निर्माता (कोशम्) निधिको उत्पन्न करता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा विद्युदादि पदार्थों के समान गतिशील है। और प्रकाशमात्र के आधार निधियों का निर्म्माता है। वही परमात्मा पवित्र अन्तःकरण वाले पुरुष को ऐश्वर्य्यसम्पन्न करता है ॥३॥

प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरृषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥४॥

पदार्थः—(पवमान) हे परमात्मन् (ते) तुम्हारी (आश्विनीः) व्याप्तियां (धीजुवः) जो मन के वेग के समान गतिशील और (दिव्याः) दिव्यरूप हैं।(धरीमणि) आपको धारण करने वाले अन्तःकरण में (पयसासृग्रन्) अमृत बहाती हुई गमन करती है। (वेधसः) कर्म्मों का विधान करने वाले (ऋषिषाण) ज्ञानी (ये) जो (त्वा) तुमको (मृजन्ति) विवेक करके जानते हैं। वे ऋषि (स्थाविरी) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले आपको (अन्तः) अन्तःकरण में (प्रासृक्षत) ध्यान का विषय बनाते हैं ॥४॥

भावार्थः- जो लोग दृढ़ता से ईश्वर की उपासना करते हैं, परमात्मा उनके ध्यान का विषय अवश्यमेव होता है। अर्थात् जब तक पुरुष सब ओर से अपनी चित्तवृत्तियों को हटाकर एकमात्र ईश्वरपरायण नहीं होता तब तक वह सूक्ष्म से सूक्ष्म परमात्मा उनकी बुद्धि का विषय कदापि नहीं होता। इसी अभिप्राय से कहा कि 'दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः', वह सूक्ष्मदर्शियों की सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही देखा जाता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (विश्वस्य भुवनस्य) सम्पूर्ण भुवनों के (पतिः) स्वामी हैं। और (धर्मभिः) अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावादि धर्म्मों के द्वारा (राजसि) विराजमान हैं। (व्यानशिः) और सर्वत्र व्यापक होकर (पवसे) सबको पवित्र करते हो। (विश्वचक्षः प्रभोः) हे सर्वत्र जगत्स्वामिन् ! (ते) तुम्हारी (ऋभ्वसः) बड़ी (केतवः) शक्तियें (परियन्ति) सर्वत्र विद्यमान हैं। और (ते सतः) तुम्हारी सत्ता से (विश्वा धामानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो यह संसार के पति हैं, वह अपहत पाप्मादि धर्म्मों से सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। सायणादि भाष्यकार 'धर्म्मभिः' के अर्थ भी सोम

Scanned by CamScanner

के वहने के करते हैं। यदि कोई इनसे पूछे कि, अस्तु धर्म्म के अर्थ वहन ही सही पर 'पतिर्विश्वस्य भुवनस्य' इस वाक्य के अर्थ जड़ सोम में कैसे संगत होते हैं। क्योंकि एक लताविशेष वस्तु सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का पति कैसे हो सकती है। वास्तव में बात यह है कि मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थों को छोड़कर इनको केवल भौतिक अर्थ ही प्रिय लगते हैं ॥५॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥६॥

पदार्थः—(ध्रुवस्य) इस ध्रुव परमात्मा को (सतः) जो सर्वत्र विद्यमान है और (पवमानस्य) जोकि सब को पवित्र करने वाला है। उसको (रश्मयः) ज्योतियें (उभयतः) दोनों लोकों में (परियन्ति) प्राप्त होती हैं। वे ज्योतियें (केतवः) सर्वोपरि होने से केतु के समान हैं। (यदि) जब (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (हरिः) परमात्मा (अधिमृज्यते) साक्षात्कार किया जाता है। तब (सत्ता) उसकी सत्ता (नि) निरन्तर (कलशेषु योना) अन्तःकरणस्थानों में (सीदति) विराजमान होती है ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष अपने अन्तःकरणों को सत्कर्म द्वारा शुद्ध बनाते हैं, उन्हीं के अन्तःकरणों में परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है, अन्यों के नहीं ॥६॥

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥७॥

पदार्थः—(यज्ञस्य केतुः) ज्ञानयज्ञ, कर्म्मयज्ञ, ध्यानयज्ञ, योगयज्ञ, इत्यादि यज्ञों का परमात्मा केतु है। (पवते) सबको पवित्र करने वाला है। और (स्वध्वरः) अहिंसाप्रधान यज्ञों वाला है। (सोमः) वह सोमस्वभाव परमात्मा (देवानां) विद्वानों के (निष्कृतम्) संस्कृत अन्तःकरणों को प्राप्त होता है। (सहस्रधारः) अनन्तशक्ति-सम्पन्न है। और (कोशम्) ज्ञानी पुरुष के अन्तःकरण को (पर्य्यर्षति) प्राप्त होता है। वह परमात्मा (पवित्रं) प्रत्येक पवित्रता को (अत्येति) अतिक्रमण करता है। अर्थात् सर्वोपरि पवित्र है। (वृषा) वह बलस्वरूप है। और (रोरुवत्) सर्वत्र शब्दायमान है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी अनन्तशक्ति से सर्वत्र विराजमान है, यद्यपि वह सर्वत्र विद्यमान है तथापि उसकी अभिव्यक्ति विद्वानों के अन्तःकरण में ही होती है, अन्यत्र नहीं ॥७॥

Scanned by CamScanner

राजा समुद्रं नद्यो३॒॑ वि गा॑हते॒ऽपामू॒र्मिं स॑चते॒ सिन्धु॑षु श्रि॒तः ।
अध्य॑स्था॒त्सानु॒ पव॑मानो अ॒व्ययं॒ नाभा॑ पृथि॒व्या ध॒रुणो॑ म॒हो दि॒वः ॥८॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोक और (**महोदिवः**) इस बड़े द्युलोक का (**धरुणः**) आधार है। (**पवमानः**) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (**नद्यः**) सब समृद्धियों को और (**अव्ययं समुद्रम्**) इस अविनाशी अन्तरिक्ष को (**विगाहते**) विगाहन करता है।(**अपामूर्मिम्**) जल की लहरें रूप नदियों को (**सिन्धुषु**) महासागरों में (**सचते**) संगत करता है। (**श्रितः**) वह सबका आश्रय होकर (**अध्यस्थात्**) विराजमान हो रहा है। और (**सानुनाभा**) उच्च से उच्च शिखरों के मध्य में भी विराजमान है ॥८॥

भावार्थः—यद्यपि स्थूलदृष्टि से यह पृथिव्यादिलोक अन्य पदार्थों के अधिष्ठान प्रतीत होते हैं तथापि सर्वाधिकर्म्म एकमात्र परमात्मा ही है क्योंकि सब लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाला और नदियों को सागरों के साथ संगत करने वाला और ग्रह उपग्रहों को सूर्य्यादि बड़ी-बड़ी ज्योतियों में संगत करने वाला एकमात्र परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है कोई अन्य वस्तु नहीं ॥८॥

दि॒वो न सानु॑ स्त॒नय॑न्नचिक्रद॒द्द्यौश्च॒ यस्य॑ पृथि॒वी च॒ धर्म॑भिः ।
इन्द्र॑स्य स॒ख्यं प॑वते वि॒वेवि॑द॒त्सोमः॑ पुना॒नः क॒लशे॑षु सीदति ॥९॥

पदार्थः—जो परमात्मा (**दिवःसानु**) द्युलोक के उच्च शिखर को (**स्तनयन्**) विस्तार करने की (**न**) नाईं (**अचिक्रदत्**) गर्ज रहा है। (**च**) और (**यस्य धर्मभिः**) जिसके धर्मों से (**द्यौः**) द्युलोक और (**पृथिवी**) पृथिवीलोक स्थिर है, वह परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**सख्यं**) मैत्रीभाव को (**पवते**) पवित्र करता है तथा (**विवेविदत्**) प्रसिद्ध करता है। वह (**सोमः**) परमात्मा (**पुनानः**) हमको पवित्र करता हुआ (**कलशेषु**) हमारे अन्तःकरणों में (**सीदति**) विराजमान होता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात का निरूपण किया है कि द्युलोक और पृथ्वी-लोक किसी चेतन वस्तु के सहारे से स्थिर हैं। और उस चेतन में भी जगत्कर्तृत्वादि-धर्मों से इनको धारण किया है। वेद में इतना स्पष्ट ईश्वरवाद होने पर भी सायणादि-भाष्यकार इन मन्त्रों को जड-सोमलता में लगाते हैं और ऐसे मिथ्या अर्थ करना ब्राह्मण और उपनिषदों से सर्वथा विरुद्ध है। देखो "सा च प्रशासनात्" (१।३।११) 'इस सूत्र में

महर्षिव्यास ने "शतपथ" ब्राह्मण के आधार पर यह लिखा है, कि "एतस्य वा अक्षरस्य वा गार्गि! द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः" (वृ० ३।८।६।) इस अक्षर की आज्ञा में हे गार्गि! द्यु-लोक और पृथ्वी लोक स्थिर हैं। इससे स्पष्ट-सिद्ध है यहाँ ईश्वर का वर्णन है जड सोम का नहीं ॥६॥

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।

दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥

पदार्थः—वह परमात्मा (यज्ञस्य) यज्ञ की (ज्योतिः) ज्योति है। और (मधु) आनन्दरूप है। (प्रियं पवते) जो उससे प्रेम करते है उन्हें पवित्र करता हैं। (देवानां) सब लोक-लोकान्तरों का (पिता) पालन करने वाला और (जनिता) उत्पन्न करने वाला है। (विभूवसुः) और अत्यन्त ऐश्वर्यवाला है। (स्वधयोरपीच्यं) तथा द्यावा-पृथिवी के अन्तर्गत (रत्नं) रत्नों को (दधाति) धारण करता है। और वह परमात्मा (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप है। तथा (मत्सरः) सबको आनन्द देने वाला है। और (इन्द्रियः) ऐश्वर्ययुक्त है तथा (रसः) आनन्दस्वरूप है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को नानाविध रत्नों का धाता, विधाता और निर्माता, कथन किया है। अर्थात् वह सृष्टि का धारण करने वाला है, वही पालन करने वाला है और वही प्रलय करने वाला है। इस मन्त्र में "मत्सर" और मदादिक जो नाम आये हैं वे परमात्मा के गौरव को कथन करते हैं। आधुनिक संस्कृत में मद मत्सरादि नाम बुरे अर्थों में आने लगे हैं वेद में इनके ये अर्थ न थे। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि आधुनिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत में बड़ा भेद है ॥१०॥

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।

हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥

पदार्थः—(अभिक्रन्दन्) स्वसत्ता से गर्जता हुआ (कलशं) इस ब्रह्माण्ड को (वाज्यर्षति) बलपूर्वक गति देनेवाला है। और (दिवः) द्युलोक का (पतिः) स्वामी है। तथा (शतधारः) अनन्त प्रकार के आनन्दों का स्रोत है। तथा (विचक्षणः) सर्व-द्रष्टा और (हरिः) सब शक्तियों को स्वाधीन रखने वाला है। और (मित्रस्य) प्रेम-पात्र लोगों के (सदनेषु) अन्तःकरणों में (सीदति) विराजमान होता है। तथा (मर्मृजानः) सबको शुद्ध करता हुआ (अविभिः, सिन्धुभिः) वह कृपासिन्धु (वृषा) अपनी कृपारूप वृष्टि से सबको सिञ्चित करता है ॥११॥

Scanned by CamScanner

भावा:—उपासकों को चाहिये कि अपने मनोरूप मन्दिर को इस प्रकार से मार्जित करें जिससे परमात्मा का निवास-स्थान बनकर मन उनकी उपासना का मुख्य साधन बने ॥११॥

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२॥

पदार्थः—जो परमात्मा (वाचोऽग्रियः) वेदरूपी वाणियों का मुख्य कारण है । और (गोषु) अपनी सत्ता से लोक-लोकान्तरों में (गच्छति) प्राप्त है । (सिन्धूनां) प्रकृति की वाष्परूप अवस्था से (अग्रे) पहले (पवमानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) सर्वत्र प्राप्त है । ऐसे परमात्मा को उपासक (वाजस्याग्रे) धनादि ऐश्वर्यों से पहले (महाधनं) महाधन रूप उक्त परमात्मा को (भजते) सेवन करता है । ऐसे उपासक को (स्वायुधः) अनन्तप्रकार की शक्तिवाला (सोतृभिः) अपनी संस्कृत करने वाली शक्तियों के द्वारा (वृषा) बलस्वरूप परमात्मा (पूयते) पवित्र करता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पञ्चतन्मात्राओं के आदिकारण अहङ्कार और महत्तत्त्व तथा प्रकृति से भी पहले विराजमान था। उसी ने इस शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि गुण युक्त संसार का निर्माण किया है । जिन विचित्र शक्तियों से परमात्मा इन सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का निर्माता है उनसे हमारे हृदय को शुद्ध करे ॥१२॥

अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् (ते) तुम्हारे लिये (शुचिः) शुद्धस्वरूप (सोमः) परमात्मा(पवते) पवित्रता देने वाला है । (कवे) हे व्याख्याता(तव क्रत्वा धिया)तुम्हारे सुन्दर कर्म्मों के द्वारा (रोदसी अन्तरा) इस ब्रह्माण्ड में तुम्हे शुभफल देता है । और (अयं, मतवान्) यह सर्वज्ञ परमात्मा (शकुनो यथा) जिस प्रकार विद्युत् (हितः) हितकर होकर (अव्ये) रक्षायुक्त पदार्थ में (ससार) प्रविष्ट हो जाता है । एवं (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (ऊर्मिणा) अपने प्रेमी की वेगरूप शक्तियों से सबको पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा कर्म्मों के द्वारा शुभफलों का प्रदाता है । इस लिये मनुष्यों को चाहिये कि वे उत्तम कर्म्म करें । ताकि उन्हें कर्म्मानुसार उत्तम फल मिले ॥१३॥

Scanned by CamScanner

द्रापिं वसा॑नो यज॒तो दि॑वि॒स्पृश॑मन्तरिक्ष॒प्रा भुव॑ने॒ष्वर्पि॑तः ।
स्व॑र्जज्ञा॒नो नभ॑सा॒भ्य॑क्रमीत्प्र॒त्नम॑स्य पि॒तर॒मा वि॑वासति ॥१४॥

पदार्थः—(द्रापिम्) जो अपने कवचरूपी कर्म्मों के द्वारा (वसानः) शारीरिक यात्रा करता है। (यजतः) उस कर्म्मशील (दिविस्पृशम्) सत्कर्म्मों द्वारा उच्च पुरुष को (अन्तरिक्षप्रा) अन्तरिक्ष की पूर्ति करने वाला परमात्मा (भुवनेष्वर्पितः) जो सर्वत्र व्याप्त है। (स्वर्जज्ञानः) स्वर्गादि लोकों को उत्पन्न करने वाला (नभसा) सूक्ष्म सूत्रात्मा द्वारा (अक्रमीत्) चेष्टा करता है। (अस्य पितरं) इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड का जो पिता है (प्रत्नं) और जो कि प्राचीन है। उसको उपासक पुरुष (आविवासति) अपना लक्ष्य बनाकर ग्रहण करता है ॥१४॥

भावार्थः—स्वर्गलोक के अर्थ यहां सुख की अवस्था विशेष के हैं ॥१४॥

सो अ॑स्य वि॒शे महि॒ शर्म॑ यच्छति॒ यो अ॑स्य॒ धाम॑ प्रथ॒मं व्या॑न॒शे ।
प॒दं यद॑स्य पर॒मे व्यो॑म॒न्यतो॒ विश्वा॑ अ॒भि सं या॑ति सं॒यतः॑ ॥१५॥

पदार्थः—(सः) उक्त परमात्मा (अस्य) जिज्ञासु के (विशे) शरणागत होने पर (महि) बड़ा (शर्म्म) सुख (यच्छति) उसको देता है। (यः) जो जिज्ञासु (अस्य धाम) इसके स्वरूप को (प्रथमं) पहले (व्यानशे) प्रविष्ट होकर ग्रहण करता है। और (यत्) जो (अस्य) इस परमात्मा का (पदं) स्वरूप है। (परमे व्योमनि) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म महदाकाश में फैला हुआ है, उसको ग्रहण करता है। (अतः) इसलिये (विश्वा) सब प्रकार से (संयतः) संयमी जिज्ञासु होकर (सत्कर्म्माण्यभि) सत्कर्मों को (संयाति) प्राप्त होता है ॥१५॥

भावार्थः—'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः', इत्यादि विष्णु के स्वरूप निरूपण करने वाले मन्त्रों में विष्णु के स्वरूप का वर्णन है। वही वर्णन यहां पद शब्द से किया है। पद के अर्थ किसी अंग विशेष के नहीं किन्तु स्वरूप के हैं ॥१५॥

प्रो अ॑यासी॒दिन्दु॒रिन्द्र॑स्य निष्कृ॒तं सखा॒ सख्यु॒र्न प्र मि॑नाति सं॒गिर॑म् ।
मर्य॑ इव युव॒तिभिः॒ सम॑र्षति॒ सोमः॑ क॒लशे॑ श॒तया॑म्ना प॒था ॥१६॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (निष्कृतं) संस्कृत अन्तःकरण को (प्रो अयासीत्) भली-भांति प्राप्त होता है। और (सख्युः) सखा के (न) समान (सखा) मित्र होता है। और (संगिरं) सम्पूर्ण शक्तियों को

(प्रमिनाति) प्रमाणित कर देता है। (युवतिभिरिव) युवती स्त्रियों के द्वारा जैसे (मर्य्यः) मर्य्यादा स्थिर की जाती है। (कलशे) इस ब्रह्माण्डरूपी कलश में (शतयाम्ना पथा) सैकड़ों शक्तियों वाले रास्ते से परमात्मा (सखर्षति) भली-भांति गति कर रहा है ॥१६॥

भावार्थः—जिस प्रकार स्त्रियां अपने सदाचार से मर्यादा को बान्धती हैं, वा यों कहो कि मर्यादापुरुषोत्तम पुरुषों को उत्पन्न करके मर्यादा बान्धती हैं इसी प्रकार परमात्मा वेद मर्यादारूप वैदिक पथ से महापुरुषों को उत्पन्न करके मर्यादा बान्धते हैं ॥१६॥

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (प्र वो धियः) तुम्हारा ध्यान करने वाले (मन्द्रयुवः) तुम्हारा आनन्द चाहने वाले (विपन्युवः) उपासक लोग (पनस्युवः) स्तुति की कामना करते हुए (संवसनेषु) उपासनास्थानों में (अक्रमुः) प्रवेश करते हैं। और (सोमं) सर्वोत्पादक परमात्मा में (मनीषा) चित्त की सूक्ष्मवृत्ति द्वारा (अभ्यनूषत) सब प्रकार से निवास करते हैं (स्तुभो) जैसे उपास्य के (अभि) अभिमुख (धेनवः) इन्द्रियों की वृत्तियां (पयसा) वेग से (अशिश्रयुः) उसका आश्रय लेती हैं, इसी प्रकार उपासक की चित्तवृत्तियाँ ईश्वर की ओर झुक जाती हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो पुरुष समाहृत चित्त से ईश्वर का ध्यान करते हैं उन की चित्तवृत्तियाँ प्रबल प्रवाह से ईश्वर की ओर झुक जाती हैं ॥१७॥

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (नः) हमारे (संयतं) सम्बन्धी और (पिप्युषीम्) वृद्धियुक्त (इषं) ऐश्वर्य को (अस्रिधं) जो अक्षय हो, ऐसे धन से (आपवस्व) सब ओर से हमको पवित्र करें। (या) जो कि (नः) हमारे सम्बन्ध में (त्रिरहन्) भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में (असश्चुषी) प्रतिबन्ध रहित (क्षुमत्) बहुत ऐश्वर्य वाले (वाजवत्) बलवाले (मधुमत्) मधुरता युक्त (सुवीर्यं) बल करने वाले ऐश्वर्य को आप (दोहते) परिपूर्ण करें ॥१८॥

भावार्थः—स्वनियमानुकूल चलने वाले पुरुषों के लिये परमात्मा अक्षय धन को प्रदान करते हैं ॥१८॥

Scanned by CamScanner

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतिरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९॥

पदार्थः—परमात्मा (मनीषिभिः) सदुपदेशकों से उपदेश किए हुए (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ (कलशान्) कर्मयोगियों के अन्तःकरणों की (अवीवशत्) कामना करता है। जो परमात्मा (दिवः) द्युलोक के (सिन्धूनां) स्यन्दनशील सूक्ष्म तत्त्वों का (क्राणा) कर्ता है और (अह्नः) दिन की (उषसः) ज्योतियों का (प्रतरीता) वर्द्धक है। (सोमः) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (विचक्षणः) सर्वज्ञ परमेश्वर, (मतीनां) उपासकों की कामनाओं की (वृषा) पूर्ति करने वाला उक्त परमात्मा हम लोगों को (पवते) पवित्र करे ॥१९॥

भावार्थः—जो लोग सदुपदेशकों के सदुपदेश को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते हैं, उनके अन्तःकरणों को परमात्मा अवश्यमेव पवित्र करता है ॥१९॥

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२०॥

पदार्थः—(मनीषिभिः) विद्वानों से उपदेश किया हुआ (पूर्व्यः) अनादिसिद्ध परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है। जो परमात्मा (कविभिः) विद्वानों द्वारा (यतः) ग्रहण किया हुआ है, वह (कोशान्) प्रकृति के कोशों को (अचिक्रदत्) शब्दादि द्वारा प्रसिद्ध करता है। वह (मधु) आनन्दयुक्त परमात्मा (त्रितस्य) सत्व रज और तमो गुण की साम्यावस्थारूप प्रकृति पुञ्ज को (नाम जनयन्) नामरूप में विभक्त करता हुआ (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (वायोः) तथा ज्ञानयोगी के साथ (सख्याय) मैत्री (कर्तवे) करने के लिये (क्षरत्) अपने आनन्द को प्रवाहित करता है ॥२०॥

भावार्थः—कर्मयोगी और ज्ञानयोगी लोग परमात्मगुणों के धारण करने से परमात्मा के साथ एक प्रकार की मैत्री उत्पन्न करते हैं। अर्थात् "अहं वा त्वासि भगवो देवेत्त्वं वा अहमस्मि" कि "मैं, तू," और "तू मैं" इस प्रकार की अहंग्रह उपासना द्वारा अर्थात् अभेदोपासना द्वारा परमात्मा का ध्यान करते हैं ॥२०॥

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अयं**) पूर्वोक्त परमात्मा अपनी शक्तियों से (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ और (**उषसः**) उषाकाल का (**विरोचयत्**) प्रकाश करता हुआ (**सिन्धुभ्यः**) स्यन्दनशीला प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों से (**लोककृत्**) संसार का करने वाला (**अभवत्**) हुआ (**उ**) यह दृढ़ताबोधक है। (**अयं त्रिः सप्त**) यह परमात्मा प्रकृति के एकविंशति महत्तत्त्वादि तत्त्वों को (**दुदुहानः**) दोहन करता हुआ (**आशिरं**) ऐश्वर्य को उत्पन्न करके (**सोमः**) यह जगदुत्पादक परमात्मा (**चारुमत्सरः**) जो अत्यन्त आह्लादक है वह (**हृदये**) हमारे हृदय में (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न किया और महत्तत्त्व से जो अहंकारादि एकविंशति गण है उसी का यहाँ "त्रिः सप्त" शब्द से गणन है किसी अन्य का नहीं ॥२१॥

पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमात्मन् ! (**दिव्येषु धामसु**) द्युलोकादि स्थानों में (**सृजानः**) उक्त सृष्टि को रचने वाले आप (**पवस्व**) पवित्र करें। (**इन्दो**) हे प्रकाश-स्वरूप ! (**पवित्रे कलशे**) पवित्र अन्तःकरणों में (**आसीदन्**) स्थिति करते हुए आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी की (**जठरे**) सत्तास्फूर्ति देने वाली जठराग्नि में (**कनिक्रदत्**) गर्जते हुए (**नृभिर्यतः**) मनुष्यों के स्थान के विषय आप (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यं**) सूर्य का (**आरोहय**) आश्रय लें ॥२२॥

भावार्थः—परमात्मा सूर्य-चन्द्रमादिकों का निर्माण करता हुआ इस विविध प्रकार की रचना का निर्माण करके प्रजा को उद्योगी बनाने के लिये कर्मयोगी की कर्म्माग्नि को प्रदीप्त करता है ॥२२॥

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के कर्मप्रदीप्त (**जठरेषु**) अग्नि में (**आविशन्**) प्रवेश करते हुए (**अद्रिभिः सुतः**) वज्र से संस्कार किये हुए कर्मयोगी को (**पवसे**) पवित्र करते हैं। (**आ**) और (**पवित्रे**) उसके पवित्र अन्तःकरण में (**अभवः**) निवास करें। (**नृचक्षाः**) तुम सर्वद्रष्टा हो (**विचक्षणः**) तथा सर्वज्ञ हो। (**सोम**) हे जगदुत्पादक ! आप (**अङ्गिरोभ्यः**) प्राणायामादि द्वारा

Scanned by CamScanner

(गोत्रं) कर्मयोगी के शरीर की रक्षा करें और उसके विघ्नों को (अपावृणोः) दूर करें ॥२३॥

भावार्थः—"गौर्वाग्गृहीता अनेनेति गोत्रं शरीरम्" जो वाणी को ग्रहण करे उसका नाम यहां गोत्र है। इस प्रकार यहां शरीर और प्राणों का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है। और सायणाचार्य ने गोत्र के अर्थ यहां मेघ के किये हैं और "अङ्गिरोभ्यः" के अर्थ कुछ नहीं किये हैं। यदि सायणाचार्य के अर्थों को उपयुक्त भी माना जाय तो अर्थ ये बनते हैं हे सोमलते ! तुम अङ्गिरादि ऋषियों से मेघों को दूर करो इस प्रकार सर्वथा असंबद्ध प्रलाप हो जाता है। वास्तव में यह प्रकरण कर्मयोगी का है और उसी को प्राणों की पुष्टि के द्वारा विघ्नों को दूर करना लिखा है ॥२३॥

त्वां सोम पर्वमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (पवमानं त्वां) सर्वपूज्य तुझको (स्वाध्यः) सुकर्म्मा लोग (विप्रासः) जो मेधावी हैं। और (अवस्यवः) आपकी उपासना की इच्छा करने वाले हैं। वे (अन्वमदन्) आपकी स्तुति करते हैं। (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप! (त्वां) तुझको (सुपर्णः) बोधयुक्त उपासक (आभरत्) उपासना द्वारा ग्रहण करता है। तुम कैसे (दिवस्परि) कि द्युलोक की भी मर्य्यादा को उल्लङ्घन करके वर्त्तमान हो। और (विश्वाभिर्मतिभिः) सम्पूर्ण ज्ञानों से (परिष्कृतम्) अलंकृत हो ॥२४॥

भावार्थः—जो लोग विद्या द्वारा अपनी बुद्धिका परिष्कार करते हैं वे ही परमात्मा की विभूति को जान सकते हैं, अन्य नहीं ॥२४॥

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५॥

पदार्थः—(अव्ये वारे) वरणीय पुरुष को (ऊर्मिणा) प्रेमसे (पुनानं) पवित्र करने वाले (हरिम्)परमात्मा को (सप्त धेनवः) इन्द्रियों की सात वृत्तियां (अभिनवन्ते) प्राप्त होती हैं (अपामुपस्थे) कर्म्मों की अध्यक्षता में जो (कविं) सर्वज्ञ है। उसको (अध्यायवः) उपासक लोग जो (महिषाः) महाशय हैं वे (ऋतस्य योना) सच्चाई के स्थान में (अभ्यहेषत) उपासना करते हैं ॥२५॥

भावार्थः—सदसद्विवेकी लोग अन्य उपास्य देवों की उपासना को

Scanned by CamScanner

छोड़कर सब कर्म्मों के अधिष्ठाता परमात्मा की ही एकमात्र उपासना करते हैं, किसी अन्य की नहीं ॥२५॥

इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥

पदार्थः—(यज्यवे) यज्ञ करने वाले यजमानों के लिये परमात्मा (विश्वानि सुपथानि) सब रास्तों को (कृण्वन्) सुगम करता हुआ (मृधः) उनके विघ्नों को (अतिगाहते) मर्द्दन करता है। और (पुनानः) उनको पवित्र करता हुआ और (निर्निजं) अपने रूप को (गाः कृण्वानः) सरल करता हुआ (हर्य्यतः) वह कान्तिमय परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ (अत्यो न) विद्युत् के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ (वारं)वरणीय पुरुष को (पर्य्यर्षति) प्राप्त होता है ॥२६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं, परमात्मा उनके लिये सब रास्तों को सुगम करता है ॥२६॥

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥

पदार्थः—(उदन्युवः) प्रेम की (ताः) वे (शतधाराः) सैकड़ों धारायें (असश्चतः) जो नानारूपों में (अभिश्रियः) स्थिति को लाभ कर रही हैं। वे (हरिं) परमात्मा को (अवनवन्ते) प्राप्त होती हैं। (गोभिरावृतं) प्रकाशपुञ्ज परमात्मा को (क्षिपः) बुद्धिवृत्तियाँ (मृजन्ति) विषय करती हैं। जो परमात्मा (दिवस्तृतीये पृष्ठे) द्युलोक के तीसरे पृष्ठ पर विराजमान है और (रोचने) प्रकाशस्वरूप है, उसको बुद्धिवृत्तियाँ प्रकाशित करती हैं ॥२७॥

भावार्थः—द्युलोकादिकों के प्रकाशक परमात्मा को मनुष्य ज्ञान की वृत्तियों से ही साक्षात्कार करता है, अन्यथा नहीं ॥२७॥

तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥२८॥

पदार्थः—(तव दिव्यस्य, रेतसः) तुम्हारे दिव्य सामर्थ्य से (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजा उत्पन्न हुई हैं। (त्वं) तुम (विश्वस्य भुवनस्य) सम्पूर्ण सृष्टि के (राजसि) राजा होकर विराजमान हो। (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्!

Scanned by CamScanner

(इदं विश्वं) ये सम्पूर्ण संसार (ते वशे) तुम्हारे वश में है। (अथ) और (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वं प्रथमं) तुम ही पहले (धामधाः) सबके निवास स्थान (असि) हो ॥२८॥

भावार्थः—परमात्मा सबका अधिकरण है। इसलिये सब भूतों का निवास स्थान वही है ॥२८॥

त्वं संमुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि।

त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥

पदार्थः—(विश्ववित् कवे) हे सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता परमात्मन् (त्वं) तुम (समुद्रोऽसि) समुद्र हो "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः" जिसमें सब भूत उत्पत्ति स्थिति प्रलय को प्राप्त हों उसका नाम यहां समुद्र है। (तव विधर्म्मणि) तुम्हारी विशेष सत्ता में (इमाः पञ्च प्रदिशः)। इन पांचों भूतों के सूक्ष्म पञ्च तन्मात्र विराजमान हैं। और (त्वं द्याञ्च) आप द्युलोक को(पृथिवीञ्च) और पृथिवी लोक को अति (जभ्रिषे) भरण-पोषण करते हैं। और हे पवमान परमात्मन् ! (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (तव ज्योतींषि) तुम्हारी ज्योति है।

भावार्थः—सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का हेतु होने से परमात्मा का नाम समुद्र है। उसी सर्वाधार सर्वनिधि महासागर से इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होती है। किसी अन्य से नहीं ॥२९॥

त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे।

त्वामुशिजः प्रथमा अंगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

पदार्थः—(त्वं) तुम (पवित्रे विधर्म्मणि) अपने पवित्र स्वरूप में (देवेभ्यो रजसः) दिव्यगुण युक्त रजोगुण के परमाणुओं से इस संसार को उत्पन्न करते हो। (सोम) हे परमात्मन् (पवमानः) सबको पवित्र करने वाले (पूयसे) तुम पवित्र करते हो। (त्वामुशिजः) तुमको विज्ञानी लोगों ने (प्रथमाः) पहले (अगृभ्णत) ग्रहण किया। (तुभ्य इमाः) तुम्हारे लिये ये (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर (येमिरे) अपने आपको समर्पित करते हैं ॥३०॥

भावार्थः—परमात्मा ही सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों की उत्पत्ति का कर्ता है। और उसी की विभूति को सब लोक-लोकान्तर प्रदीप्त कर रहे हैं ॥३०॥

Scanned by CamScanner

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१॥

पदार्थः—(रेभः) शब्दब्रह्म का आधार परमात्मा (वारमव्ययं) वरणीय उपासक को (प्र, अत्येति) भलीभांति प्राप्त होता है। जो परमात्मा (वृषा) बलों का दाता है (स हरिः) वह सबको स्वसत्ता में लीन करने वाला परमात्मा (वनेषु) उपासनाओं में (अवचक्रदत्) शब्दायमान होता है (धीतयः) उपासक लोग (वावशानाः) उसकी उपासना में मग्न हुए हुए (समनूषत) भलीभांति उसकी स्तुति करते हैं। (पनिप्नतम्) उस शब्द ब्रह्म के आदि कारण ब्रह्म को, जो (शिशुं) सबका लक्ष्य स्थान है। उसको (मतयः) सुमति लोग (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—जो लोग चित्तवृत्ति को अन्य प्रवाहों से हटाकर एकमात्र परमात्मा का ध्यान करते हैं वही परमात्मा को भलीभांति साक्षात्कार करते हैं, अन्य नहीं ॥३१॥

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (यथाविदे) यथार्थ ज्ञानी के लिये (त्रिवृतं) ३ प्रकार के ब्रह्मचर्य्य को (तन्वानः) विस्तार करता हुआ (तन्तुं परिव्यत) सन्ततिरूप तन्तु का विस्तार करता है। (सः) और वह परमात्मा (सूर्य्यस्य रश्मिभिः) सूर्य्य की किरणों द्वारा प्रकाश करता हुआ (ऋतस्य प्रशिषः) सच्चाई की प्रशंसा (नवीयसीः) जो कि नित्य नूतन है, उसको (नयन्) प्राप्त कराता हुआ (जनीनां) मनुष्यों के (निष्कृतं) संस्कृत अन्तःकरण को (उपयाति) प्राप्त होता है। (पतिः) वही परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पति है ॥३२॥

भावार्थः—परमात्मा इस संसार में प्रथम मध्यम उत्तम—तीन प्रकार की ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा का निर्माण करता है। उन कृतब्रह्मचर्य्य पुरुषों से शुभ सन्तति का प्रवाह संसार में प्रचलित होता है ॥३२॥

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥

पदार्थः—(हरिः) परमात्मा (पुनानः) सब को पवित्र करता हुआ (वाचं

जनयन्) वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करता हुआ (उपावसुः) सब धनों का आधार (परिषिच्यते) विद्वानों द्वारा उपासना किया जाता है। (सहस्रधारः) वह अनन्त-शक्तिमान् है। (सिन्धूनां राजा) और स्यन्दनशील सब पदार्थों का राजा है और (दिवः) द्युलोक का (पतिः) पति है। (ऋतस्य पथिभिः) सच्चाई के रास्तों से (कनिक्रदत्) वह शब्दायमान ब्रह्म (याति) अपने भक्तों के प्रति गति करता है। तथा (पवते) उनको पवित्र करता है ॥३३॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी वेदरूपी वाणी को उत्पन्न करके सदा उपदेश करता है। परमात्मानुयायी पुरुषों को चाहिये कि उसकी आज्ञानुसार अपना जीवन बनावें ॥३३॥

पव॑मान॒ मह्य॒र्णो वि धा॑वसि॒ सूरो॒ न चि॒त्रो अव्य॑यानि॒ पव्य॑या।

गभ॑स्तिपू॒तो नृभि॒रद्रि॑भिः सु॒तो म॒हे वाजा॑य॒ धन्या॑य धन्वसि ॥३४॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! आप (मह्यर्णः) गतिस्वरूप हैं, (विधावसि) अपनी गति से सबको गमन कराते हैं। (सूरः न) जैसे सूर्य्य (चित्रः) नानावर्णविशिष्ट (अव्ययानि) रक्षायुक्त पदार्थों को (पव्यया) अपनी शक्ति से पवित्र करते हैं। इसी प्रकार (गभस्तिपूतः) आपकी रोशनी से पवित्र हुए आपके उपासक (अद्रिभिर्नृभिः) आपको साक्षात्कार करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (सुतः) आपकी उपासना करते हैं (महेवाजाय) तब आप बड़े ऐश्वर्य के लिये और (धन्याय) धन के लिये (धन्वसि) ऐश्वर्य्यप्रद होते हैं ॥३४॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य्य अपनी किरणों द्वारा स्वाश्रित पदार्थों को प्रकाशित करता है इसी प्रकार परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति से अपने भक्तों का प्रकाशक है ॥३४॥

इष॒मूर्जं॑ पवमाना॒भ्य॑र्षसि श्ये॒नो न वंसु॑ क॒लशे॑षु सीदसि।

इन्द्रा॑य म॒द्वा मद्यो॒ मदः॑ सु॒तो दि॒वो वि॑ष्ट॒म्भ उ॑प॒मो वि॑चक्ष॒णः ॥३५॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन्! आप (इषं) ऐश्वर्य्य और (ऊर्जं) बल को (अभ्यर्षसि) देते हैं। (श्येनो न) जिस प्रकार बिजली (वंसु कलशेषु) निवासयोग्य स्थानों में स्थिर होती है। इसी प्रकार आप (सीदसि) पवित्र अन्तःकरणों में स्थिर होते हैं। (इन्द्राय) आप कर्म्मयोगी के लिये (मद्वा) आनन्द करने वाले (मद्यः) और आनन्द के हेतु हैं। (मदः) स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। (सुतः) स्वयंसिद्ध हैं। (दिवो विष्टम्भः) द्युलोक के आधार हैं। (उपमः) और द्युलोक की उपमावाले हैं। (विचक्षणः) सर्वोपरि प्रवक्ता हैं ॥३५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा द्युम्वादि लोकों का आधार है और उसी के आधार में चराचर सृष्टि की स्थिति है। और वेदादि विद्याओं का प्रवक्ता होने से वह सर्वोपरि विचक्षण है ॥३५॥

सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥

पदार्थः—(सप्त स्वसारः) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से गति करने वाली इन्द्रियों की ७ वृत्तियां (अभिमातरः) जो ज्ञानयोग्य पदार्थ को प्रमाणित करती हैं, वे (शिशुं) सर्वोपास्य परमात्मा को (नवं) जो नित्य नूतन है, (यज्ञानं) और स्फुट है (जेन्यं) सबका जेता (विपश्चितं) और सबसे बड़ा विज्ञानी है उसको विषय करती हैं। जो परमात्मा (अपां) जलों का (गन्धर्वं) और पृथिवी का धारण करने वाला है, (दिव्यं) दिव्य है, (नृचक्षसं) सर्वान्तर्य्यामी है (सोमं) सर्वोत्पादक है। उसकी (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) सम्पूर्ण भुवनों के ज्ञान के लिये विद्वान् लोग उपासना करते हैं ॥३६॥

भावार्थः—परमात्मा का ध्यान इसलिये किया जाता है कि परमात्मा अपहतपाप्मादि गुणों को देकर उपासक को भी दिव्य दृष्टि दे। ताकि उपासक लोक-लोकान्तरों के ज्ञान को उपलब्ध कर सके। इसी अभिप्राय से योग में लिखा है कि 'भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात्' परमात्मा में चित्तवृत्ति का निरोध करने से लोक-लोकान्तरों का ज्ञान होता है ॥३६॥

ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (ईशानः) आप ईश्वर हैं। (इमा भुवनानि) इन सब भुवनों को (वीयसे) चलाते हैं। (हरितः) हरणशील शक्तियां (सुपर्ण्यः) जो चेतन हैं, उनको (युजानः) नियुक्त करते हैं। (ताः) वे (ते) तुम्हारी शक्तियां (मधुमद्घृतं) मीठा प्रेम हमारे लिये (क्षरन्तु) बहायें। (पयः) और दुग्धादि स्निग्ध पदार्थ प्रदान करें। (सोम) हे परमात्मन् ! (तव व्रते) तुम्हारे नियम में (कृष्टयः) सब मनुष्य (तिष्ठन्तु) स्थिर रहें ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के नियम में स्थिर रहने का वर्णन है जैसा कि 'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' इत्यादि मन्त्रों में व्रत की

Scanned by CamScanner

प्रार्थना है। यहां भी परमात्मा के नियमरूप व्रत के परिपालन की प्रार्थना है ॥३७॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पर्वमान वृषभ ता वि धावसि ।

स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (नृचक्षाः असि) मनुष्यों के कर्म्मों के भिन्न-भिन्न फल देनेवाले हो और (पवमान) हे पवित्र करने वाले (विश्वतः) सब प्रकार से (वृषभ) हे अनन्तशक्तियुक्त परमात्मन् (ता विधावसि) उन शक्तियों से आप हमको शुद्ध करें (सः) उक्त शक्तियुक्त आप (नः) हमको (पवस्व) पवित्र करें। आप (वसुमत्) ऐश्वर्य्य वाले और (हिरण्यवत्) प्रकाश वाले हे । (वयं) हम (भुवनेषु) इस संसार में (जीवसे) जीने के लिये (स्याम) उक्त ऐश्वर्य्ययुक्त हों ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को कर्मों के साक्षीरूप से वर्णन किया है ॥३८॥

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।

त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (गोवित्) आप विज्ञानी हैं, ज्ञान से (पवस्व) हमको पवित्र करें ! (वसुवित्) ऐश्वर्य्य से सम्पन्न हैं, ऐश्वर्य्य से हमको पवित्र करें ! (हिरण्यवित्) प्रकाशस्वरूप हैं, प्रकाश से हमको पवित्र करें ! (रेतोधाः) आप प्रजा के बीजस्वरूप सामर्थ्य को धारण करने वाले हैं। (भुवनेषु अर्पितः) और सब संसार में व्याप्त हैं। (त्वं) तुम (सुवीरोऽसि) सर्वोपरि बलयुक्त हो। (सोम) सर्वोत्पादक हो (विश्ववित्) सर्वज्ञाता हो। (तं त्वां) उक्तगुणयुक्त आपको (विप्राः) विद्वान् लोग (उपगिरेम) उपासना करते हुए (आसते) स्थित होते हैं ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को ज्ञान, प्रकाश और क्रिया इत्यादि अनन्तगुणों के आधाररूप से वर्णन किया है, कि इसी आशय को लेकर 'स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया' इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में परमात्मा को ज्ञान बल क्रिया का आधार वर्णन किया है ॥३९॥

उन्मध्व ऊर्मिर्वननां अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।

राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥

पदार्थः—(**मध्वः**) मीठी (**ऊर्मिर्वननाः**) लहरों वाली वेदवाणी (**उदतिष्ठिपत्**) तुम आश्रय किये हो। तथा (**राजा**) तुम सबको प्रकाश देनेवाले हो। और (**पवित्ररथः**) आप पवित्र गतिवाले हैं, तथा (**वाजमारुहत्**) ऐश्वर्यरूपी शक्ति को आश्रय किये हुए हो और (**सहस्रभृष्टिः**) अनन्त शक्तियों से इस संसार को पालन करनेवाले हो। तथा (**बृहच्छ्रवः**) बड़े यशवाले हो। और (**जयति**) सर्वोत्कृष्टता से वर्तमान हो। उक्तगुणसम्पन्न आपको (**अपोवसानः**) कर्म्मयोगी (**महिषः**) महापुरुष (**विगाहते**) साक्षात्कार करता है ॥४०॥

भावार्थः—महिष शब्द के अर्थ यहां महापुरुष के हैं। 'महिष इति महन्नामसु पठितम्' (नि० अ०। ३। खं० १३)॥ महिष यह निरुक्त में महत्त्व का वाचक है। महापुरुष यहां कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को माना है। उक्त पुरुषों में महत्त्व परमात्मा के सद्गुणों के धारण करने से आता है, इसलिये इनको महापुरुष कहा है ॥४०॥

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१॥

पदार्थः—(**सः**) पूर्वोक्त कर्मयोगी (**भन्दनाः**) वन्दना (**उदियर्ति**) करता है जो वन्दना (**अहर्दिवि**) सर्वदा (**प्रजावतीः**) शुभ प्रजा को देनेवाली है तथा (**विश्वायुः**) सम्पूर्ण आयु को देनेवाली है। और (**विश्वाः**) सब प्रकार की (**सुभराः**) पूर्तियों की करने वाली है। (**ब्रह्म**) वेद (**प्रजावत्**) जो सदुपदेश द्वारा शुभ प्रजाओं को देने वाला है और (**रयिं**) धन और (**अश्वपस्त्यं**) अन्य गतिशील पदार्थों को देनेवाला है। (**पीतः**) नित्य तृप्त (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (**इन्द्रं**) कर्मयोगी को तथा (**अस्मभ्यं**) हमारे लिये उक्त ऐश्वर्य (**याचतात्**) दें ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ऐश्वर्य्य की प्रार्थना करते हुए वेदों के सदुपदेशरूपी महत्त्व का वर्णन किया है ॥४१॥

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२॥

पदार्थः—(**सः सोमः**) उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा (**अह्नामग्रे**) इस दिन रात से पहले (**हर्यतो हरिः**) हरण करनेवाली शक्तियों का हरण करने वाला था। (**मदः**) आनन्दस्वरूप था और (**अनुद्युभिः**) द्युभ्वादि लोकों को (**चेतसा**) अपनी चैतन्यरूपशक्ति से (**प्रचेतयते**) गीतशील करने वाला था। (**द्वाजना**) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी

दोनों पुरुषों को (यातयन्) वेदविधि से प्रेरणा करके (अन्तरीयते) इस द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में गतिशील है (च) और (नरा) उक्त दोनों पुरुषों को (शंसं) प्रशंसनीय (दैव्यं) दिव्य (च) और (धर्तरि) धारणाविषय में सर्वोपरि बनाता है ॥४२॥

भावार्थः—वह परमात्मा इस प्रकृति की नानाविध शक्तियों का संयोजन करता हुआ कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों प्रकार के पुरुषों को प्रशंसनीय बनाता है ॥४२॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

पदार्थः—(अञ्जते) उक्त परमात्मा अपने ज्ञान द्वारा गति का हेतु है । और (व्यञ्जते) पूर्वकृत कर्मों के द्वारा जीवों के विविध प्रकार के जन्मों का हेतु है । तथा (समञ्जते) स्वयं न्यायशील होकर गति का हेतु है इसलिये सम्यग्गति कराने वाला कथन किया गया है और (क्रतुं) यज्ञरूप परमात्मा को (रिहन्ति) उपासक लोग ग्रहण करते हैं । जो परमात्मा (मधुना) अपने आनन्द से (अभ्यञ्जते) सर्वत्र प्रकट है । और (सिन्धोरुच्छ्वासे) जो सिन्धु की उच्च लहरों में (पतयन्तं) गिरा हुआ मनुष्य है (उक्षणं) और बलस्वरूप है (हिरण्यपावाः) और सदसद्विवेकी है और (पशुं) जो ज्ञानदृष्टि से देखता है "पशुः पश्यतेरिति निरुक्तम्" (३ । १६) उक्त पुरुष को परमात्मा (आसु) अपने आर्द्रभाव से अर्थात् कृपादृष्टि से (गृभ्णते) ग्रहण करता है ॥४३॥

भावार्थः—परमात्मा पतितोद्धारक है, जो पुरुष अपने मन्द कर्मों से गिरकर भी उद्योगी बना रहता है, परमात्मा उसका अवश्यमेव उद्धार करता है ॥४३॥

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४॥

पदार्थः—हे ज्ञानीपुरुषो ! (विपश्चिते) सर्वज्ञ परमात्मा के लिये (पवमानाय) जो सबको पवित्र करने वाला है, आप (गायत) गान करें जो (धारा न) धारा के समान (मही) बड़े (अत्यन्धः) ऐश्वर्य को (अर्षति) देने वाला है । जिसको जानकर पुरुष (अहिः) सांप की (जूर्णां त्वचं न) जीर्ण त्वचा के समान (अतिसर्पति) त्याग कर गमन करता है (अत्यो न) विद्युत् के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ।

Scanned by CamScanner

(असरत्) सर्वत्र गतिशील होता है । और (वृषा) सब कामनाओं की वृष्टि करता है तथा (हरिः) सब विपत्तियों को हर लेता है ।।४४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की उपासना का कथन किया गया है कि, हे उपासक लोगो तुम उस सर्वज्ञ पुरुष की उपासना करो जो सर्वोपरि विज्ञानी और पतितोद्धारक है । इस मन्त्र में विपश्चित्, शब्द परमात्मा के लिये आया है । और पहले पहल 'विपश्चित्' शब्द मेधावी के लिए वेद में ही आया है। इसी का अनुकरण आधुनिक कोषों में भी किया गया है ।।४४।।

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ।।४५।।

पदार्थः—जो परमात्मा (अग्रेगः) सबसे पहले गति करने वाला है, तथा (राजा) सबका स्वामी है और (अप्यः) सर्वगत है (तविष्यते) वह स्तुति किया जाता है। (अह्नां विमानः) सूर्यचन्द्रमादिकों का निर्माता है (भुवनेष्वर्पितः) सबलोकों में स्थिर है और (हरिः) हरणशील है तथा (घृतस्नुः) प्रेमको चाहने वाला है, तथा (सुदृशीकः) सुन्दर है। (अर्णवः) सुखों का समुद्र है (ज्योतीरथः) ज्योतिःस्वरूप है। और (ओक्यः) सब का निवासस्थान है। वह परमात्मा (राये) ऐश्वर्य के लिये (पवते) हमें पवित्र करे ।।४५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वाधिकरणरूप से वर्णन किया है, जैसा कि "यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः" (ऋ० ।१०।१२।६।) में यही वर्णन किया है कि सर्व लोकलोकान्तर उसी में निवास करते हैं ।।४५।।

असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ।।४६।।

पदार्थः—जो परमात्मा (दिवःस्कम्भः) द्युलोक का आधार है और (त्रिधातुर्भुवनानि) प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य जो लोक हैं उनको (पर्यर्षति) चलाने वाला है। और (मदः) आनन्दस्वरूप है तथा (उद्यतः) अपनी सत्ता से सदैव जीवित-जागृत है (असर्जि) उसने इन लोकलोकान्तरों को रचा। (अंशुं) उस गतिशील (पनिप्नतं) शब्दायमान परमात्मा को (मतयः) बुद्धिमान् (गिरा) वेदवाणी द्वारा (रिहन्ति) साक्षात्कार करते हैं। कब-कब (यदि) जब-जब (निर्णिजं) उस शुद्धस्वरूप को (ऋग्मिणः) स्तोता लोग स्तुति द्वारा (ययुः) प्राप्त होते हैं ।।४६।।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब उपासक शुद्ध भाव से उसका स्तवन करता है तो उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होती है ॥४६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (यद्) जब आप (गोभिः) ज्ञानी पुरुषों द्वारा (चम्वोः) आध्यात्मिक वृत्तियों की सेना के सम्बन्ध में (समज्यसे) उपासना किये जाते हो तब आप (आसुवानः) सर्वव्यापक (सोम) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन् ! (कलशेषु) उपासकों के अन्तःकरणों में (सीदसि) विराजमान होते हो। और (ते धाराः) तुम्हारी प्रेम की धारायें (अत्यण्वानि) जो सूक्ष्म हैं (संयतः) संयमी पुरुष को (पुनानस्य) जो सदुपदेश द्वारा सबको पवित्र करने वाला है उसको (यन्ति) प्राप्त होती हैं जो प्रेमधारायें (रंहयः) गतिशील हैं ॥४७॥

भावार्थः—जब उपासक बाह्य वृत्तियों का निरोध करके अन्तर्मुख होकर परमात्मा का ध्यान करता है तो वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥४७॥

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (क्रतुवित्) कर्मों के वेत्ता हैं (नः) हमको आप (पवस्व) पवित्र करें। (उक्थ्यः) आप सर्वोपासनाओं के आधार हैं। और (अव्यः) रक्षक हैं। तथा (वारे) वरणीय पुरुष में (प्रियं मधु) प्यारे आनन्द को (परिधाव) दें। (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! (अत्रिणो विश्वान् रक्षसः) सम्पूर्ण हिंसक राक्षसों को आप (जहि) मारें (सुवीराः) सुन्दर सन्तान वाले हम (विदथे) बड़े-बड़े यज्ञों में (बृहद्वदेम) आपकी अत्यन्त स्तुति करें ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राक्षसों से तात्पर्य यज्ञविघ्नकारी दुष्टाचारियों से है, क्योंकि 'रक्षन्ति येभ्यस्ते राक्षसाः' जिनसे रक्षा की जाय उनका नाम यहां राक्षस है; तात्पर्य यह कि सब विघ्नों से बचाकर परमात्मा हमारे यज्ञों की पूर्ति करें ॥४८॥

नवम मण्डल में यह छियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ नवर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य १—९ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५—७, ९, त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

इस सूक्त में ऋषि विप्रादि नामों से परमात्मा का ही वर्णन है ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तु) शीघ्र (प्रद्रव) गमन करो और गमन करके (कोशं) कर्म्मयोगी के अन्तःकरण को (परिनिषीद) ग्रहण करो (नृभिः) और मनुष्यों से (पुनानः) पूज्यमान आप (वाघं) बलकी (अभ्यर्ष) वृष्टि करो (अश्वं) विजली के (न) समान (त्वा वाजिनं) बलस्वरूप आपकी (मर्जयन्तः) उपासना करते हुए उपासक लोग (अच्छ बर्हिः) यज्ञ के प्रति आप की (रशनाभिः) उपासना द्वारा (नयन्ति) आपका साक्षात्कार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—यहां 'वाजी' नाम बलवान् का है,बलस्वरूप परमात्मा से यहां हृदय की शुद्धि की प्रार्थना की गई है । जो लोग 'वाजी' के अर्थ घोड़ा करके वेदों के अर्थों को उच्चभाव से गिराकर निन्दक बना देते हैं वे अत्यन्त भूल करते हैं 'वाज शब्द के अर्थ (अन्न, ऐश्वर्य्य, और बल) ही हैं इसलिये 'मे वाजिनं परिपश्यति पक्वम्' इत्यादि मन्त्रों में ऐश्वर्य के परिपक्व करने का अर्थ है, घोड़ा मारने का नहीं ॥१॥

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (दिवः) द्युलोक के (विष्टम्भः) आधार हैं तथा (पृथिव्याः) पृथिवी के (धरुणः) धारण करने वाले हैं । (सुदक्षः) चतुर तथा (देवानां जनिता) सूर्य्यादि दिव्य ज्योतियों के उत्पादक हैं ! (वृजिनं) व्यसनों से (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए (पिता) पिता के समान (अशस्तिहा) राक्षसों को हनन करने वाले हैं और (इन्दुः) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । (देवा) दिव्यरूप हैं (स्वायुधः) सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । उक्त गुणों वाले आप (पवते) हमको पवित्र करें ॥२॥

भावार्थः—यहाँ सुदक्षादि नामों से उक्त परमात्मा का प्रकारान्तर से वर्णन किया है ॥२॥

Scanned by CamScanner

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थः—(**ऋषिः**) 'ऋषति जानात्यतीन्द्रियार्थमिति ऋषिः' जो अतीन्द्रियार्थ को जाने उसका नाम यहां ऋषि है तथा (**विप्रः**) जो मेधावी है (**पुर एता जनानां**) और जो मनुष्यों के हृदय में पहिले ही प्राप्त है और (**ऋभुः**) अनन्तशक्तिसम्पन्न तथा (**धीरः**) धीर है और (**काव्येन**) अपनी सर्वज्ञता से (**उशना**) सर्वत्र देदीप्यमान है। (**सश्चित्**) वही परमात्मा। (**यदासां**) जो प्रकृति की शक्तियों के (**गोनां**) जो दीप्तिवाली हैं उनके (**अपीच्यं**) भीतर (**गुह्यं नाम**) सर्वोपरि गुह्य रहस्य (**निहितं**) रखा है उसको परमात्मा ही (**विवेद**) जानता है ॥३॥

भावार्थः—'ऋषति सर्वत्र गच्छति व्यापकत्वेन सर्वं व्याप्नोति इति ऋषिः' परमात्मा जो सर्वत्र व्यापक है उसका नाम यहां ऋषि है, यहां ऋषि, विप्र, इत्यादि नामों से परमात्मा का वर्णन किया है। किसी जड़ वस्तु का नहीं ॥३॥

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे जगदीश्वर ! (**सोमः**) आप सोमस्वभाव हैं। और (**वृषा**) सब कामनाओं के देनेवाले हैं तथा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरणों में आप (**पर्यक्षाः**) आनन्द की वृष्टि करनेवाले हैं। (**वृष्णे**) हे व्यापक परमात्मन् ! (**एषः स्यः**) वह यह (**ते**) तुम्हारा (**मधुमान्**) मधुरतादि गुणों को देनेवाला (**शतसाः सहस्रसाः**) सैकड़ों और हजारों शक्तियों को रखनेवाला (**भूरिदावा**) जो अनन्तप्रकार की कामनाओं को देनेवाला (**शश्वत्तमम्**) निरन्तर फल उत्पन्न करनेवाला (**बर्हिः**) जो यज्ञ है तथा (**वाजी**) बलयुक्त है उसको आप (**अस्थात्**) अपनी सत्ता से सुशोभित करते हैं ॥४॥

भावार्थः—'बर्हिः इति अन्तरिक्षनामसु पठितम्' (नि० अ० । २ । खं० १ ।) बर्हिः शब्द के मुख्यार्थ अन्तरिक्ष के हैं। जिस प्रकार अन्तरिक्ष नानाप्रकार की ज्योतियों का आधार और अनन्त प्रकार कामनारूप वृष्टियों का आधार है, इसी प्रकार यज्ञ भी अन्तरिक्ष के समान विस्तृत है। यहां रूपकालङ्कार से यज्ञ को बर्हिः रूप से वर्णन किया है ॥४॥

Scanned by CamScanner

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५॥

पदार्थः—(एते) पूर्वोक्त (सोमाः) परमात्मा के सौम्यस्वभाव (गव्या) गतिशील (सहस्रा) सहस्रशक्तियोंवाले (महे) बड़े (वाजाय अमृताय) यज्ञ के लिये जो (श्रवांसि) ऐश्वर्यरूप हैं (पवित्रेभिः) पवित्र अन्तःकरणों से जो (पवमानाः) पवित्रता वाले हैं वे उक्त स्वभावों को (श्रवस्यवः) यश की इच्छा करनेवाले उपासक लोग (पृतनाजः) जो युद्धों में जेता बनने की इच्छा करते हैं, वे (अत्याः न) शीघ्रगामिनी विद्युत् की शक्तियों के समान (असृग्रन्) धारण करें ॥५॥

भावार्थः—जो लोग संसार में विजेता बनना चाहें वे परमात्मा के विचित्र भावों को धारण करें, जिस प्रकार सत्पुरुष के भावों को धारण करने से पुरुष सत्पुरुष बन सकता है इसी प्रकार उस आदिपुरुष परमात्मा के गुणों के धारण करने से उपासक सत्पुरुष महापुरुष बन सकता है। इसका नाम परमात्मयोग है ॥५॥

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥६॥

पदार्थः—(हि) क्योंकि परमात्मा (पुरुहूतः) सबका उपास्यदेव है। (जनानां) मनुष्यों के (विश्वा) सब (भोजना) भोग्यपदार्थों को (पूयमानः) पवित्र करनेवाला (पर्यसरत्) उपासकों के हृदय में आकर विराजमान होता है। (अथ) और (श्येनभृतः) विद्युत् की शक्तियों को धारण करनेवाला परमात्मा (प्रयांसि) सब ऐश्वर्यों को (आभर) पूर्ण करे और आप (रयिं) धन को (तुञ्जानः) देनेवाले हैं और आप हमको (वाजं) बल (अभ्यर्ष) सब प्रकार से दें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वैश्वर्य्यप्रदातारूप से वर्णन किया है ॥६॥

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (सुवानः) सर्वत्र आविर्भूत (सोमः) जो सौम्यस्वभावयुक्त है वह (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (सृष्टः) रचे हुए (सर्गः) सृष्टियों के (न) समान (अर्वा) गतिशील जो परमात्मा है वह (पर्यदधावत्) उपासकों की ओर अपनी ज्ञानदृष्टि से आता है। (न) जिस प्रकार (तिग्मे) तीक्ष्ण (शृङ्गे)

Scanned by CamScanner

अज्ञान के विदारण में (शिशानः) मग्न हुआ (महिषः) महापुरुष होता है अथवा (शूरः) शूरवीर (न) जैसे (सत्वा) स्थितिवाला होकर (गव्यन् गाः) बड़े ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ अपने लक्ष्य की ओर (अभि) जाता है, इसी प्रकार उपासकों को ज्ञानदृष्टि से लक्ष्य बनाता है ॥७॥

भावार्थः—जो लोग श्रवणमननादि साधनों के द्वारा अपने अन्तःकरण को ज्ञान का पात्र बनाते हैं, परमात्मा उनके अन्तःकरण को अवश्यमेव ज्ञान से भरपूर करता है ॥७॥

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।

दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्मयोगिन् ! (सोमस्य) सौम्यगुणविशिष्ट परमात्मा की (धारा) ज्ञानकी धारा (ते) तुमको (पवते) पवित्र करे (न) जिस प्रकार (दिवः) द्युलोक से (अभ्रैः) अभ्रों के द्वारा (विद्युत्) बिजली (स्तनयन्ती) शब्द करती हुई विस्तार पाती है इसी प्रकार परमात्मा की ज्ञानज्योति तुममें विस्तार को प्राप्त हो । (एषा) उक्तधारा (परमादद्रेः) सबको विदीर्ण करनेवाला जो परमात्मा है उसके (अन्तः) स्वरूप में (कूचित्सती) किसी एक स्थान में गूढ़ हुई (ऊर्वे) गूढ़ देश में जो (गाः) अपनी सत्ता को (विवेद) लाभ कर रही है वह (आययौ) उपासक के अन्तःकरण में स्थिर होती है ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा अपने भक्त के हृदय में अपने भावों का प्रकाश करता है ॥८॥

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।

पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥९॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (इन्द्रेण) कर्मयोगी के साथ (सरथं) मैत्रीभाव को (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (गोनां राशिं) ज्ञानरूपी शक्तियों के भण्डार को (परियासि) प्राप्त होते हैं । (उतस्म) अपि च(पूर्वीः) अनादिकाल के जो (बृहतीः) बड़े (इषः) ऐश्वर्य हैं उनके (जीरदानो) आप देनेवाले हैं । (शचीवः) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् (उपष्टुत्) आप स्तुतियोग्य हैं (ताः) उन ऐश्वर्यादि शक्तियों की आप हमें शिक्षा प्रदान करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा शुभ शिक्षाओं का उपदेश करता है और ऐश्वर्य प्रदान के भावों का प्रकाश करता है ॥९॥

नवम मण्डल में यह सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथाष्टर्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य १—८ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ५ त्रिष्टुप् ॥स्वरः–१ पञ्चमः । २—८ धैवतः ॥

अ॒यं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्वे॒ तुभ्यं॑ पवते॒ त्वम॑स्य पाहि॒ त्वं ।
त्वं ह॒ यं च॑कृ॒षे त्वं व॑वृ॒ष इन्दुं॒ मदा॑य॒ युज्या॑य॒ सोम॑म् ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे कर्म्मयोगिन् ! (तुभ्यं सुन्वे) तुम्हारे संस्कार के लिये (अयं सोमः) यह सोम परमात्मा (तुभ्यं पवते) तुमको पवित्र करता है। (त्वं) तुम (अस्य) इसकी आज्ञा को (पाहि) पालन करो। (त्वं) तुम (यं) जिस (इन्दुं) प्रकाश-रूप (सोमं) परमात्मा की (चकृषे) उपासना करते हो वह (त्वं) तुम्हारे (ववृषे) वरण करने के लिये और (मदाय) आनन्द देने के लिये स्वीकार करता है। इसलिये तुम (युज्याय) अपनी सहायता के लिये (सोमं) सोमरूप परमात्मा की उपासना करो ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा को शुद्धभाव से वर्णन करते हैं परमात्मा उनको अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥१॥

स ई॒ं रथो॒ न भु॑रि॒षाळयो॑जि म॒हः पु॒रूणि॑ सा॒तये॒ वसू॑नि ।
आदीं॒ विश्वा॑ नहु॒ष्या॑णि जा॒ता स्व॑र्षाता॒ वन॑ ऊ॒र्ध्वा न॑वन्त ॥२॥

पदार्थः—(सः ईम्)यह सोम (रथो न) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (भुरिषात्) सबको गति करानेवाला है और सब पदार्थों को उत्पत्तिसमय में (अयोजि) मिलाता है। (पुरूणि वसूनि) बहुत से धनों को (सातये) सुख देने के लिये (आदीं) निश्चय जो (नहुष्याणि) मनुष्यत्व के योग्य हैं उनको देता है (वनेस्वर्षाता) संग्राम में (विश्वा) जो बहुत से (जाताः) शत्रु उत्पन्न हो गये हैं वे (ऊर्ध्वा आनवन्त) नीचे हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा हमको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करे और हमारे अन्यायकारी प्रतिपक्षियों को दूर करे ॥२॥

वा॒युर्न यो नि॒युत्वाँ॑ इ॒ष्टया॑मा॒ नास॑त्येव॒ हव॒ आ शम्भ॑विष्ठः ।
वि॒श्ववा॑रो द्रविणो॒दा इ॑व॒ त्मन्पू॒षेव॑ धी॒जव॑नोऽसि सोम ॥३॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (वायुर्न) वायु के समान (नियुत्वान्) वेगवाला है। (इष्टयामा) स्वेच्छाचारी गमनवाला है, और (नासत्येव) विद्युत् के समान (शम्भ-

विष्टः) अत्यन्त सुख के देने वाला है । (विश्ववारः) सबके वरण करने योग्य है । (पूषेव) पूषा के समान पोषक है । (सवितेव, धीजवनः असि) सूर्य्य के समान मनोरूप वेगवाला है । उक्तगुणसम्पन्न हे सोम ! आप हमारी रक्षा करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्वोक्तगुणसम्पन्न परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हमारे अन्तःकरण को शुद्ध करें ॥३॥

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (इन्द्रो न) इन्द्र के समान (महाकर्म्माणि) बड़े-बड़े कर्म्मों को (चक्रिः) करता है । (वृत्राणां हन्ता असि) अज्ञानों के तुम हनन करनेवाले हो । (सोम) हे सोम (पूर्भित्) अज्ञानरूपी ग्रन्थियों को भेदन करनेवाले हो (पैद्वो न) और विद्युत् के समान (अहिनाम्नां) अन्धकारों के (हन्ता) हनन करनेवाले हो । (विश्वस्य दस्योः) सम्पूर्ण दस्युओं के आप (हन्ता, असि) हनन करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा सब प्रकार के अज्ञानों का नाश करनेवाला है, उसकी कृपा से उपासक में ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है जिससे वह विद्युत् के समान तेजस्वी बनकर विरोधी शक्तियों का दलन करता है ॥४॥

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो सोम (सृज्यमानः अग्निर्न) उत्पन्न की हुई अग्नि के समान (वने) वन में (पाजांसि) बलों को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (नदीषु) अन्तरिक्षों में (पाजांसि) जल के बलों को (वृथा कृणुते) व्यर्थ कर देता है । (जनो न) जिस प्रकार मनुष्य (युध्वा) युद्ध करके (महतः उपब्दिः) बड़ा शब्द करता हुआ (इयर्ति) प्रेरणा करता है । इसी प्रकार (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला (सोमः) सोम (ऊर्म्मिम्) आनन्द की लहरों को बहाता है ॥५॥

भावार्थः—अग्नि जिस प्रकार सब तेजों को तिरस्कृत करके अपने में मिला लेता है अर्थात् विद्युदादि तेज, जैसे अन्य तुच्छ तेजों को तिरस्कृत कर देता है इसी प्रकार परमात्मा के समक्ष सब तेज तुच्छ हैं अर्थात् परमात्मा ही सब ज्योतियों की ज्योति होने से स्वयंज्योति है ॥५॥

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः – (एते सोमाः) उक्त परमात्मा के सोमादि गुण (वाराण्यव्या) वरणीय और रक्षणीय दिव्यादिव्य पदार्थों को, (कोशासः) पात्रों को (अभ्रवर्षाः न) मेघ की वर्षा के समान परिपूर्ण कर देते हैं। और (वृथा) जैसे अनायास ही (समुद्रं) अन्तरिक्ष को (सिन्धवः) स्यन्दनशील प्रकृति के सत्वादिक गुण प्राप्त होते हैं इसी प्रकार (नीचीनं) नीचाई की ओर (सुतासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए गुण (कलशां अभि) शुद्ध अन्तःकरणों की ओर (असृग्रन्) भलीभांति गमन करते हैं ॥

भावार्थः—जिन पुरुषों का अन्तःकरण पवित्र है, अर्थात् जिन्होंने श्रवण मनन तथा निदिध्यासन द्वारा अपने अन्तःकरणों को शुद्ध किया है, परमात्मा के ज्ञान का प्रवाह उनके अन्तःकरणों की ओर ही प्रवाहित होता है ॥६॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥

पदार्थः—(शुष्मी) सबको शोषण करने के कारण परमात्मा का नाम शुष्मी है। हे बलस्वरूप परमात्मन् ! (मारुतं) विद्वानों के गण को (शर्धो न) बल के समान (पवस्व) आप पवित्र करें। (यथा) जैसे (दिव्या, विट्) दिव्य प्रजाओं का (अनभिशस्ता) सुख देनेवाला राजा पवित्र होता है इसी प्रकार (आपो न) सत्कर्मों के समान (मक्षु) शीघ्र (सुमतिः भव) हमारे लिये सुमति उत्पन्न करें (सहस्राप्साः) अनन्त शक्तियोंवाले आप (पृतनाषाट्) अनाचारियों को युद्ध में नाश करनेवाले परमात्मन् ! (यज्ञो न) आप हमारे लिये यज्ञ के समान हों ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा का बल सब बलों में से मुख्य है इसीलिये 'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते' (ऋ० । मं० १० । २१ । २) इत्यादि मन्त्रों में जिसको सर्वोपरि बलस्वरूप कथन किया गया है वह हमको बल प्रदान करे ॥७॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते वरुणस्य राज्ञः) तुम सब वस्तुओं को अपनी शक्ति में रखनेवाले श्रेष्ठतम राजा हो। (ते) तुम्हारे (नु) निश्चय करके (व्रतानि) व्रतों को हम धारण करें। (सोम)हे परमात्मन् ! (तव धाम) तुम्हारा स्वरूप (बृहद्गभीरं) बहुत गम्भीर है। और (शुचिस्त्वमसि) तुम नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव हो।

Scanned by CamScanner

(प्रियो, न) प्रिय के समान हो **(मित्रो न)** मित्र के समान हो। **(वक्षाय्य:)** मान्य हो **(अर्य्यमा इवासि, सोम)** हे सोम परमात्मन् ! आप न्यायकारी हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने व्रतपालन का उपदेश किया। जो पुरुष व्रती होकर परमात्मा के नियम का पालन करता है वह परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य नवाशीतितमस्य सूक्तस्य १—७ उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुण धारण करने रूपी योग का वर्णन करते हैं।

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥१॥

पदार्थः—(वह्निः) [वहति प्रापयतीति वह्निः] जो उत्तम गुणों को प्राप्त कराये उसका नाम यहां वह्नि है। परमात्मा **(पथ्याभिः)** शुभ मार्गों द्वारा **(अस्यान्)** शुभ स्थानों को प्राप्त कराता है। **(प्रोस्यः)** वह परमात्मा **(दिवः)** द्युलोक की **(वृष्टिः)** वृष्टि के **(न)** समान **(पवमानः)** पवित्र करनेवाला है **(अक्षाः)** वह परमात्मा सर्वद्रष्टा है **(सहस्रधारः)** अनन्त शक्तियों से युक्त है **(अस्मे)** हमारे लिये **(न्यसदत्)** विराजमान होता है। **(मातुरुपस्थे)** माता की गोद में **(च)** और **(वने)** वन में **(सोमः)** वह परमात्मा **(आ)** सब जगह पर आकर हमारी रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थः—जिस प्रकार माता की गोद में पुत्र सानन्द विराजमान होता है इसी प्रकार उपासक लोग उसके अंक में विराजमान हैं।

तात्पर्य यह है कि ईश्वरविश्वासी भक्तों को ईश्वर पर इतना विश्वास होता है कि वे माता के समान उसकी गोद में विराजमान होकर किसी दुःख का अनुभव नहीं करते ॥१॥

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वासं ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (सिन्धूनां) प्रकृत्यादि पदार्थों का (राजा) स्वामी है। और (वासः) सर्व निवास स्थानों का (अवसिष्ट)आच्छादन करता है। (रजिष्ठां ऋतस्य नावं) सबसे सुखाली जो कर्म्मों की नौका है। उसमें (आरुहत्) चढ़ाकर (अप्सु) कर्म्मों के सागर से पार करता है। (द्रप्सः) वह आनन्दस्वरूप परमात्मा (ववृधे) सदैव वृद्धि को प्राप्त है। (श्येनजूतः) विद्युत् के समान दीप्तिमती वृत्ति से ग्रहण किया हुआ परमात्मा ध्यान का विषय होता है। (ईम्) इसको (पिता) सत्कर्म्मों द्वारा यज्ञ का पालन करनेवाला यजमान (दुहे) परिपूर्णरूप से दुहता है। अर्थात् अपने हृदयङ्गत करता है। (पितुर्जाम्) सदुपदेशक से आविर्भाव को प्राप्त हुए इस परमात्मा को (दुहे) मैं प्राप्त करता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी बन कर परमात्मा की आज्ञा के अनुसार परमात्मा के नियमों का पालन करता है वह परमात्मा के साक्षात्कार को अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥२॥

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

पदार्थः—(सिंहं) जो सिंह के समान है, (मध्वः) आनन्दस्वरूप है, (अयासं) जो अनायास ही (हरि)सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाला है,(अरुषं) दीप्तिवाला (दिवः) जो द्युलोक का [पति] है (अस्य) उस परमात्मा के ज्ञान को (युत्सु शूरः) जो ज्ञानयज्ञादिरूप युद्ध में शूरवीर है (प्रथमः) जो सबसे अग्रगण्य है वह पाता है। (अस्य पृच्छते) और जो इसके ज्ञान को पूछता है, उस जिज्ञासु के लिये (अस्य चक्षसा) इसका कथन करनेवाला (गाः) उस ज्ञान का उपदेश करता है। और (उक्षा) सब कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाला परमात्मा (परिपाति) उसकी रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनकी अपने ज्ञान के द्वारा रक्षा करता है ॥२॥

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥४॥

पदार्थः—(मधुपृष्ठं)जो सैन्धवघनवत् सर्व ओर से आनन्दमय है (घोरमयासं) जिसका प्रयत्न घोर है। अर्थात् भयानक है और (अश्वं) जो गतिरूप है (ऊरुचक्रे रथे) अत्यन्त वेगवाली द्रुतगति में (युञ्जन्ति) जिसने नियुक्त किया है। (स्वसारः)

Scanned by CamScanner

'स्वयं सरन्तीति स्वसार: इन्द्रियवृत्तय:' स्वाभाविक गतिशील इन्द्रियों की वृत्तियां (जामय:) जो मन से उत्पन्न होने के कारण परस्पर बन्धुपन का सम्बन्ध रखती है (सनाभय:) चित्त से उत्पन्न होने के कारण सनाभि सम्बन्ध रखने वाली चित्तवृत्तियां (मर्जयन्ति) उक्त परमात्मा को विषय करती हैं । और (वाजिनं) उस बलस्वरूप को (ऊर्जयन्ति)विषय करके उपासक को अत्यन्त आध्यात्मिक बल प्रदान करती हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में जामिनाम चित्तवृत्ति का है, क्योंकि वृत्ति मन से उत्पन्न होती है और मन से उत्पन्न होने के कारण अन्यवृत्तियाँ भी उसके साथ सम्बन्ध रखने के कारण जामि कहलाती हैं । उक्त वृत्तियाँ जब परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं तो उपासक में आत्मिकबल उत्पन्न होता है अर्थात् शारीरिक आत्मिक सामाजिक तीनों प्रकार के बल की उत्पत्ति का कारण एकमात्र परमात्मा है कोई अन्य नहीं ॥४॥

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

पदार्थः—(चतस्रः) पृथिवी जल तेज और वायु की चारों शक्तियां (ईं) इस परमात्मा को जो(घृतदुहः)स्नेह से दोहन करनेवाली हैं । वे (सचन्ते) संगत होती हैं । (समाने धरुणे)एक अधिकरण में (अन्तः निषत्ताः) व्याप्यव्यापकता का संबंध रख कर (ताः) वे शक्तियां (ईम्) इस परमात्मा को (अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं । (नमसा) ऐश्वर्य्य से (पुनानाः) पवित्र करती हुई (ताः) वे शक्तियां (पूर्वीः) जो अनन्त हैं वे (ईम्) इस परमात्मा को (परिषन्ति) सर्व ओर से विभूषित करती हैं ॥५॥

भावार्थः—प्रकृति की परमाणुरूप शक्तियों से ईश्वर का ऐश्वर्य विभूषित हो रहा है । इन सब शक्तियों का केन्द्र एकमात्र परमात्मा ही है । उसी एकमात्र परब्रह्म में ये उत्पत्ति स्थिति प्रलय करती हैं अर्थात् आविर्भाव का नाम उत्पत्ति और सूक्ष्मरूप से विराजमान होने का नाम प्रलय है ॥५॥

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

पदार्थः—(दिवोविष्टम्भः) जो द्युलोक का सहारा है (धरुणः पृथिव्याः) और पृथिवी का आधार है (उत) और (विश्वाः, क्षितयः)सब लोकलोकान्तर (अस्य, हस्ते) उस परमात्मा के हस्तगत हैं । (उत्सः) वह सब लोगों का उत्पत्तिस्थान है परमात्मा (गृणते ते)स्तुति करनेवाले उपासक के लिये (नियुत्वान्, असत्) ज्ञानप्रद हो (मध्वः)

Scanned by CamScanner

जो परमात्मा आनन्दस्वरूप है (अंशुः) सर्वव्यापक है वह (इन्द्रियाय) कर्म्मयोगी के लिये (पवते) पवित्रता दे ॥६॥

भावार्थः—द्यु भ्वादिलोकों का अधिकरण एकमात्र वही परमात्मा है अर्थात् उसी परमात्मा के सहारे सब ब्रह्माण्डों की स्थिति है इस प्रकार यहां परमात्मा को अधिकरणरूप से वर्णन किया है ॥६॥

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वृत्रहा) अज्ञान के नाश करनेवाले (इन्द्राय) कर्मयोगी को (देववीतिं) जो देवताओं के यज्ञ को प्राप्त है (वन्वन्नवातः) और जो गम्भीर है उसको (अभि पवस्व) सब ओर से आप पवित्र करिये । (शग्धि) सबकी याचना को पूर्ण करनेवाले (महः) सबसे बड़े और (पुरुश्चन्द्रस्य रायः) सब आह्लादकों के आह्लादक जो आनन्दस्वरूप आप हैं, आपकी कृपा से (सुवीर्यस्य) सब बलों के हमलोग (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थः—हे परमात्मन् आपकी कृपा से हम सब लोकलोकान्तरों के पति हों ॥७॥

नवम मण्डल में यह नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य नवतितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, त्रिष्टुप् । २, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१॥

पदार्थः—(हिन्वानः) शुभ कर्मों में प्रेरणा करते हुए (रोदस्योर्जनिता) द्युलोक और पृथिवीलोक को उत्पन्न करते हुए (रथोन) गतिशील विद्युदादि पदार्थों के समान (वाजं) बल को (सनिष्यन्) देते हुए (अयासीत्) आकर आप हमारे हृदय में विराजमान हों, हे परमात्मन् ! आप (आयुधा) बलप्रद शस्त्रों को (संशिशानः) तीक्ष्ण करते हुए (इन्द्रं गच्छन्) कर्मयोगी को प्राप्त होते हुए (विश्वावसु) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (हस्तयोः) हाथों में (आदधानः) धारण करते हुए (प्रायासीत्) हमारी ओर आयें ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो-जो विभूतिवाली वस्तु हैं उन सब में परमात्मा का तेज विराजमान है इसलिये यहां परमात्मा के आयुधों का वर्णन किया है वास्तव में परमात्मा किसी आयुध को धारण नहीं करता, क्योंकि वह निराकार है ॥१॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥२॥

पदार्थः—(**त्रिपृष्ठं**) तीनों सवनोंवाले ब्रह्मचर्य को धारण किये हुए (**वृषणं**) बलशील कर्मयोगी के उपदेश के लिये आप (**वयोधां**) बल को धारण करानेवाले (**आंगूषाणां**) बलदायक वाणी के प्रयोग करने वाले हैं ऐसे स्तोता लोगों की वाणी में(**अवावशंत**) निवास करते हुए (**वना वसानः**) सब प्रकार की सूक्ष्मशक्तियों को धारण करते हुए (**वरुणः**) सबको स्वशक्ति से आच्छादन करते हुए और (**सिंधून् न**) समुद्र के समान (**विरत्नधाः**) नाना प्रकार के रत्नों को धारण करते हुए आप (**वार्याणि**) उत्तम धनों को (**दयते**) कर्मयोगियों के लिये देते हैं ॥२।

भावार्थः–यहां तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य्य का वर्णन अर्थात् ब्रह्मचर्य्य प्रथम २४वें वर्ष तक, दूसरा ३६ और तीसरा ४० वर्ष तक; इनको प्रथम मध्यम-उत्तम कहते हैं । जो पुरुष उक्त प्रकार के ब्रह्मचर्यों को धारण करते हैं उनको परमात्मा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥

पदार्थः—(**शूरग्रामः**) जो शूरवीरों के समुदायवाले हैं (**सर्ववीरः**) और स्वयं भी सब प्रकार से वीर हैं और (**सहावान्**) धैर्यवान् हैं । तथा (**जेता**) सबको जीतने वाले हैं (**धनानि सनिता**) और जो ऐश्वर्योपार्जन में लगे हुए हैं उनको आप (**पवस्व**) पवित्र करें । आप (**तिग्मायुधः**) तीक्ष्ण शस्त्रोंवाले हैं और (**क्षिप्रधन्वा**) शीघ्रगति शस्त्रों वाले हैं । और (**समत्सु**) संग्राम में (**अषाळहः**) परशक्ति को न सहनेवाले हैं । और (**पृतनासु**) परसेना में (**साह्वान्**) धुरन्धर (**शत्रून्**) शत्रुओं के (**जेता**) जीतने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—यहां परमात्मा के रुद्रधर्म का निरूपण किया है । रुद्रधर्म को धारण करने वाला परमात्मा वीरों के अनन्त, सङ्घों में शक्ति उत्पन्न करके संसार से पाप की निवृत्ति करता है । उस अनन्त शक्तियुक्त परमात्मा

Scanned by CamScanner

के प्रतितीक्ष्ण शस्त्र हैं जिससे वह अन्यायकारियों की सेना को विदीर्ण करता है ॥३॥

उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥४॥

पदार्थः—(उरुगव्यूतिः) विस्तृत मार्गोंवाले आप (समीचीने) धर्म की राह में (अभयानि कृण्वन्) अभय प्रदान करते हुए (आपवस्व) हमको पवित्र करें । आप (पुरन्धी) सम्पूर्ण संसार के धारण करने वाले हैं । और (अपः) शुभ कर्मों की (सिषासन्) शिक्षा करते हुए (उषसः) उषाकाल की (स्वर्गाः) रश्मियों को (संचिक्रदः) अपने वैदिक शब्दों से विस्तृत करते हैं । (महः) हे सर्वपूज्य परमात्मन् ! (अस्मभ्यं) हमको (वाजान्) बलों को दें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के उपदेश किये हुए शुभ मार्गों पर चलते हैं परमात्मा उनको शुभ मार्गों की प्राप्ति कराता है ॥४॥

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥५॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (वरुणं) सबको आच्छादन करने की शक्ति रखनेवाले विद्वान् को आप (मत्सि) तृप्त करें । (मित्रं) और स्नेह की शक्ति रखने वाले विद्वान् को (मत्सि) तृप्त करें । (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (पवमान) सबको पवित्र करनेवाले ! परमात्मन् ! (विष्णुं) सब विद्याओं में व्याप्तिशील विद्वान् को और (इन्द्रं) कर्मयोगी को (मत्सि) आप तृप्त करें । (शर्धः) रुद्ररूप जो विद्वानों का गण है उसे (मत्सि) तृप्त करें (देवान्) शान्त्यादि दिव्यगुणयुक्त विद्वानों को (मत्सि) तृप्त करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (महां) सर्व पूज्य आप (मदाय) आनन्द के लिये (इन्द्रं) कर्मयोगी को (मत्सि) तृप्त करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगी के क्रियाकौशल की पूर्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप कर्मयोगी को सब प्रकार से निपुण करिये ॥५॥

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (राजेव) आप सबको प्रदीप्त करनेवाले और सर्व-

Scanned by CamScanner

स्वामी हैं । (क्रतुमान्) कर्मों के अधिष्ठाता हैं (विश्वा, अमेन) सम्पूर्ण बल से (दुरिता, घनिघ्नत्) समस्त पापों को दूर करते हुए (पवस्व) हमको पवित्र करें (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (सूक्ताय वचसे) सुन्दरवाणियों के कथन करने को (वयोधाः) ऐश्वर्य देनेवाले (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी भावों से (सदा) सदैव (नः) हमको (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना की गई है ॥६॥

नवम मण्डल में यह नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकनवतितमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य १—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१,२,६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब चिरजीवी होने का कथन करते हैं ॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

पदार्थः—(मनीषी) जो परमात्मपरायण पुरुष है, और (प्रथमः) गुणों में श्रेष्ठ होने से मुख्य है । (मनोता) जो सर्वप्रिय है वह (धिया) अपनी बुद्धि से (आजौ) आध्यात्मिकयज्ञ में ज्ञान की आहुति प्रदान करे (यथा) जैसे (रथ्ये) कर्म्मरूपी यज्ञ में (वक्वा) वक्ता पुरुष वाणीरूपी कर्म्म को (असर्जि) करता है (अव्ये, अधिसानो) सर्वरक्षक परमात्मरूप यज्ञकुण्ड में (दश स्वसारः) दश प्राणों को (अधि) उक्त यज्ञ के विषय में (अजन्ति) डालते हैं । जिस प्रकार (सदनानि) सुन्दर वेदियों के (अच्छ) प्रति (वह्निं) वह्नि को लक्ष्य बनाकर हवन किया जाता है । इस प्रकार आध्यात्मिक यज्ञ में परमात्मा को वह्निस्थानीय बनाकर हवन किया जाता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन किया गया है जो लोग भलीभांति प्राणायाम करते हैं वे आध्यात्मिकयज्ञ करते हैं ॥१॥

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥२॥

पदार्थः—(अद्भिः) कर्म्मों के द्वारा ['अप इति कर्म्म नामसु' पठितम्-निघण्टौ—२=१] (गोभिः) ज्ञान के द्वारा (अविभिः) रक्षा से (मर्मृजानः) जिसका संशोधन किया गया है । ऐसा यज्ञ (मर्त्येभिर्नृभिः) मनुष्यों से किया हुआ (अमृतः)

Scanned by CamScanner

अमृत होता है जो यज्ञ (विव्यस्य जनस्य) ज्ञानी पुरुष के (कव्यैः) हवनों के द्वारा (अभिसुवानः) उत्पन्न हुआ (इन्दुः) दीप्तिवाला होता है। और (वीती) देवमार्ग के लिये होता है और यह उक्त यज्ञ (नहुष्येभिः) मनुष्यों के द्वारा किया हुआ उत्तम फलवाला होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग सत्कर्मों के द्वारा कर्मयज्ञ का सम्पादन करते हैं वे उत्तम सुख के भागी होते हैं ॥२॥

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

पदार्थः—(वृषा) कामनाओं की वृष्टि करनेवाला परमात्मा (वृष्णे) कर्म्मयोगी के लिये (रोरुवद्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (अस्मै) इस कर्म्मयोगी के लिये (अंशुः) सर्वव्यापक और (पवमानः) सब को पवित्र करने के लिये परमात्मा (रुशद्) दीप्ति देता हुआ (गोः) इन्द्रियों के (पयः) सारभूत ज्ञान को (ईर्ते) प्राप्त होता है। जिस से (सहस्रं ऋक्वा) अनन्त प्रकार की वाणियों का वक्ता (वचोवित्) वाणियों का ज्ञाता (पथिभिः) वाणियों के रास्ते से जो (अध्वस्मभिः) हिंसारहित हैं। (सूरः) विज्ञानी (अण्वं) सूक्ष्म पदार्थों के तत्व को (वियाति) प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—जो लोग वेदवाणियों का अभ्यास करते हैं वे सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द्र ऊर्णुहि वि वाजान्।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥४॥

पदार्थः—[और वह कर्म्मयोगी] (रक्षसः) राक्षसों की (दृळ्हा सदांसि) दृढ़ सभाओं को (चिद्) भी (रुजा) अपनी नाशकशक्ति से नष्ट कर देता है। और (विवाजान्) न्यायकारी बलयुक्त पुरुषों की शक्तियों को (इन्दो) हे प्रकाशमान परमात्मन्! तुम (ऊर्णु हि) आच्छादन करो। और (उपरिष्टात्) जो ऊपर की ओर से आते हैं। अथवा (दूरात्) दूर देश से जो आते हैं। (एषां) इन राक्षसों के (उपनायं) स्वामी को (तुजता वधेन) तीक्ष्ण वध से [नाश करो] ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुष शमदमादि साधनसम्पन्न होकर परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उनके सब विघ्नों को दूर करता है और उनके विघ्नकारी राक्षसों को दमन करके उनके मार्ग को सुगम करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

पदार्थः—(विश्ववार) हे विश्ववरणीय परमात्मन् ! (सप्रत्नवत्) आप प्राचीन हैं । (नव्यसे) हमको नूतन जन्म देने के लिये हमारे लिये (प्राचः, पथः) प्राचीन रास्तों को (सूक्ताय कृणुहि) सरल कीजिये । (पुरुकृत्) हे बहुत कर्म्म करने वाले (पुरुक्षाः) हे शब्दब्रह्म के उत्पादक परमात्मन्! (ये दुःसहासः)जो राक्षसों के सहने योग्य नहीं (वनुषा) और जो हिंसारूप हैं (बृहन्तः) बड़े हैं । (तान्) उन (ते) तुम्हारे भावों को यज्ञ में (अश्याम) हम प्राप्त हों ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा के स्वभाव अर्थात् परमात्मा के सत्यादि धर्मों को राक्षस लोग धारण नहीं कर सकते उनको केवल दैवीसम्पत्तिवाले ही धारण कर सकते हैं अन्य नहीं । इस मन्त्र में देवभाव के दिव्यगुणों का और राक्षसों के दुर्गुणों का वर्णन है ॥५॥

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्न सूर्यं दृशये रिरीहि ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (एव पुनानः) इस प्रकार पवित्र करते हुए आप (अपः) अन्तरिक्षलोक (स्वर्) स्वर्गलोक और (गाः) पृथिवीलोक (अस्मभ्यं) हमारे लिये दें । (तोका) पुत्र और (तनयानि) पौत्र (भूरि) बहुत से प्रदान करें । और(नः) हमारे लिये (शं) कल्याण हो । (उरुक्षेत्रं) और विस्तृत क्षेत्र हों । (सोम) हे परमात्मन् ! (उरु ज्योतींषि) बहुतसी ज्योतियें (नः) हमारे लिये हों । और (ज्योक्) चिरकाल तक (सुर्य्यं दृशये) इस तेजोमय सूर्य्य के देखने के लिये (रिरीहि) सामर्थ्य-युक्त बनायें ॥६॥

भावार्थः—जो लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं परमात्मा उनके लिये सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य १—६ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥१॥

पदार्थः—(सुवानः) सर्वव्यापक (हरिः) हरणशील (अंशुः) सूत्रात्मा परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (रथो न) गतिशील पदार्थों के समान (परिसर्जि) साक्षात्कार किया जाता है (सनये) जो परमात्मा उपासना के लिये (हियानः) प्रेरणा करता है। और (इन्द्रियम्) कर्म्मयोगी को (श्लोकम्) शब्द संघात को (आपत्) उत्पन्न करता है (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (प्रयोभिः) अपने आशीर्वादों से (देवान्, प्रति) देवताओं के लिये (अजुषत) प्रेम को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थः—जो लोग शुद्ध अन्तःकरण से परमात्मा की उपासना करते हैं परमात्मा उनके अन्तःकरण में पवित्र ज्ञान प्रादुर्भूत करता है ॥१॥

अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥२॥

पदार्थः—(नृचक्षाः) सबका द्रष्टा (कविः) और सर्वज्ञ (नाम दधानः)इत्यादि नामों को धारण करनेवाला परमात्मा (अस्य, योनौ) कर्म्मयोगी के अन्तःकरण में (पवित्रे) जो साधनों द्वारा पवित्रता को प्राप्त है। उसमें (अच्छासरत्) भलीभांति प्राप्त होता है। (होतेव) जिस प्रकार होता (सदने) यज्ञ में (सीदन्) प्राप्त होता हुआ (चमूषु) बहुत से समुदायों में स्थिर होता है। इसी प्रकार (उपेम्) इसके समीप (सप्तर्षयः) पांच प्राण, मन और बुद्धि (विप्राः) जो मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं (अग्मन्) वह आकर प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्मयोगी है उसके पांचों प्राण- मन तथा बुद्धि वशीकृत होते हैं। उक्त साधनों द्वारा परमात्मा का अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार करता है ॥२॥

प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥३॥

पदार्थः —(सुमेधाः) शोभन प्रज्ञावाला और (गातुवित्) मार्ग के जाननेवाला (विश्वदेवः) जिसका ज्ञान सर्वत्र विद्यमान है। (सोमः)सर्वोत्पादक परमात्मा(पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ परमात्मा (नित्यं) सदैव (सदः) उस स्थान को (एति)

Scanned by CamScanner

प्राप्त होता है । जिस स्थान में (विश्वेषु काव्येषु) सम्पूर्ण प्रकार की रचनाओं में (रन्ता) रमण करनेवाला योगी (पञ्चधीरः) पांच प्रकार के (जनान्) प्राणों को (अनुयतते) लगाता है और लगातार अर्थात् प्राणायाम करके (भुवत्) रमणशील होता है ॥३॥

भावार्थः—योगीपुरुष प्राणायाम द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है । इसी अभिप्राय से यह कथन किया है कि योगी को परमात्मा प्राप्त होता है । वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापक है उसका जाना आना कहीं नहीं होता ॥३॥

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एकाद॒शासः॑ ।

दश॑ स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑ मृजन्ति त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ॥४॥

पदार्थः—(विश्वेदेवाः) सम्पूर्ण देव जो (त्रय एकादशासः) ३×११=३३ हैं । वे (निण्ये) अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं । (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्ये) वे (तव) तुम्हारे लिये (दश स्वधाभिः) पांच सूक्ष्मभूत और पांच स्थूलभूतों का (स्वधाभिः) सूक्ष्मशक्तियों द्वारा (अधिसानौ) तुम्हारे सर्वोपरि उच्चस्वरूप में (अव्ये) जो सर्वरक्षक है उसमें (मृजन्ति) संशोधन करनेवाले हैं । और (त्वां) तुझको (सप्तयह्वीः नद्यः) जो बड़ी सात नाड़ियां हैं उनके द्वारा प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में योगविद्या का वर्णन किया है और सप्तनद्यः से तात्पर्य सात प्रकार की नाड़ियों का है जिनको इड़ापिंगलादि नाड़ियों के सुषमणानामों से कथन किया है । तात्पर्य यह है कि योगीपुरुष उक्त नाड़ियों के द्वारा संयम करके परमात्मयोगी बने अर्थात् परमात्मा में युक्त हो ॥४॥

तन्नु स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु॒ यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ स॒न्नस॑न्त ।

ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे कर॒भीक॑म् ॥५॥

पदार्थः—(पवमानस्य) जो सबको पवित्र करने वाला परमात्मा है उसका (सत्यं) सत्य का स्थान (नु) निश्चय करके (तत्) वह है (यत्र) जिसमें (विश्वे) सब (कारवः) उपासक (सन्नसन्त) संगत होते हैं । (अह्ने) प्रकाशक के लिये (यत्) जो ज्योति है (उ) और (लोकमकृणोत्) जो ज्योति ज्ञानरूप प्रकाश को उत्पन्न करती है और (मनुं) विज्ञानी पुरुष की (प्रावत्) रक्षा करती है उस ज्योति से (दस्यवे) अज्ञानी, असंस्कारी, वा अवैदिक, पुरुष के लिये (अभीकं) निर्भयता (कः) कौन कर सकता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा के सद्रूपका वर्णन किया और उक्त परमात्मा को सब ज्योतियों का प्रकाशक माना है ॥५॥

परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥६॥

पदार्थः—(होता) उक्त परमात्मा का उपासक (पशुमन्ति सद्मेव) ज्ञानागार के समान (परियाति) उसको प्राप्त होता है (राजा न) जैसे कि राजा (सत्यः) सत्य का अनुयायी (समितीः) सभा को (इयानः) प्राप्त होता हुआ प्रसन्न होता है इसी प्रकार विद्वान् ज्ञानागार को प्राप्त होकर प्रसन्न होता है। (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (कलशां) अन्तःकरणों को (अयासीत्) प्राप्त होता है। (न) जैसे कि (महिषो मृगः) बलवाला (वनेषु) वनों में प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का वर्णन है कि जिस प्रकार राजा लोग सत्यासत्य की निर्णय करनेवाली सभा को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार, विद्वान् लोग भी न्याय के निर्णय करने वाली सभाओं को प्राप्त होकर संसार का उद्धार करते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राजा लोग अपने न्यायरूपी सत्य से संसार का उद्धार करते हैं इसी प्रकार विद्वान् लोग अपने सदुपदेशों द्वारा संसार का उद्धार करते हैं ॥६॥

नवम मंडल में यह बानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रिनवतितमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य १—५ नोधा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥

पदार्थः—(अत्यो वाजी) बलवाले विद्युदादि पदार्थ (न) जैसे (ननक्षे) व्याप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार (सूर्यस्य द्रोणं) सूर्य मण्डल का जो प्रभाकलश है तथा (जाः) उसीकी जो दिशा उपदिशायें हैं। उनमें (हरिः) हरणशील परमात्मा (पर्यद्रवत्) सर्वत्र परिपूर्ण है। उस पूर्ण परमात्मा को (साकमुक्षः) एक समय में (मर्जयन्तः) विषय करती हुई (स्वसारः) स्वयं सार-शील (दश धीः) १० प्रकार की इन्द्रिय-

वृत्तियां (धीतयः) जो ध्यानद्वारा परमात्मा को विषय करने वाली हैं, और (धनुत्रीः) मन की प्रेरक हैं वे परमात्मा के स्वरूप को विषय करती हैं ॥१॥

भावार्थः—योगी पुरुष जब अपने मनका निरोध करता है तो उसकी इन्द्रियरूप वृत्तियाँ परमात्मा का साक्षात्कार करती हैं ॥१॥

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।

मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

पदार्थः—(वृषा) कर्म्मयोगी जो (पुरुवारः) बहुत लोगों को वरणीय है। वह (अद्भिः) सत्कर्म्मों द्वारा (दधन्वे) धारण किया जाता है। जो कर्म्मयोगी (वावशानः) परमात्मा की कामना वाला है और (मातृभिः) अपनी इन्द्रियवृत्तियों से (शिशुः) सूक्ष्म करने वाले के (न) समान (संदधन्वे) धारण करता है (न) जिस प्रकार (योषां) स्त्री को (मर्य्यः) मनुष्य धारण करता है इस प्रकार (उस्रियाभिः) ज्ञान की शक्तियों के द्वारा कर्म्मयोगी परमात्मा की विभूतियों को धारण करता है। और जो परमात्मा की (निष्कृतंयन्) ज्ञानका विषय हुआ-हुआ (कलशे) उस कर्म्मयोगी के अन्तःकरण में (संगच्छते) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार ऐश्वर्यप्रद प्रकृतिरूपी विभूतिको उद्योगी पुरुष धारण करता है इसी प्रकार प्रकृतिकी नानाशक्तिरूपविभूतिको कर्मयोगी पुरुष धारण करता है ॥२॥

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

पदार्थः—(सुमेधाः) सर्वोपरि विज्ञानवाला (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (धाराभिः) अपनी अनन्तशक्तियों के ऐश्वर्य से (सचते) सर्वत्र संगत होता है। (उत) और (अघ्न्याया ऊधः) गौवों के दुग्धाधार स्तनमण्डल को (प्रपिप्ये) अत्यन्त वृद्धियुक्त करता है। और (गावश्चमूषु) गौवों की सेना में (पयसा) दुग्धसे (अभिश्रीणन्ति) संयुक्त करता है। और (निक्तैर्वसुभिर्न) शुभ्रधनों के समान (मूर्धानं) उस परमात्मा के मुख्य स्थानीय ऐश्वर्य्य को हम लोग प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात की प्रार्थना है कि परमात्मा गो, अश्वादि उत्तम धनों का हमको प्रदान करे ॥३॥

स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।

रथिरायतामुशती पुरंन्धिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (रयिं) धन (अश्विनं) कर्मयोगियों और ज्ञानयोगियों के लिये (वावशानः) धारण किये हुए आप (रव) प्रदान करो (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (देवेभिः) दिव्यशक्तियों के द्वारा (नः) हमको (वसूनां) धनों की (रयिरायतामुशती) अत्यन्त बलवती शक्ति (पुरन्धिः) जो बड़े-बड़े पदार्थों के धारण करने वाली है वह (अस्मद्यक्) हमारे लिये आप दें ॥४॥

भावार्थः—जिन पुरुषों पर परमात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है उनको धनादि ऐश्वर्य की हेतु सर्व शक्तियों से परिपूर्ण करता है ॥४॥

नू नो र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑ पुना॒नो वा॒ताप्यं॒ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।

प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायुः॑ प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सु॒र्जग॑म्यात् ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (नु) निश्चय करके (नः) हमारे लिये (रयिं) ऐश्वर्य (उपमास्व) आप दें और (नृवन्तं) लोकसंग्रह वाले मुझको (पुनानः) पवित्र करते हुए आप(वाताप्यं) प्रेमरूप (विश्वश्चन्द्रं) जो विश्व को प्रसन्न करने वाला ऐश्वर्य है, वह मुझे दें । और (वन्दितुः) इस उपासक की आप के द्वारा (प्रतारि)वृद्धि हो और (आयुः) आयु हो । (धियावसु) सम्पूर्ण ज्ञानों के निधि जो आप हैं (प्रातः) उपासना काल में (मक्षु) शीघ्र (जगम्यात्) आकर हमारी बुद्धि में आरूढ़ हों ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रकाशस्वरूप परमात्मा से ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है ॥५॥

नवम मण्डल में यह तिरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य १—५ कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः–१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ४ अष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा को सर्वैश्वर्य्य का धाम निरूपण करते हैं ।

अधि॒ यद॑स्मिन्वा॒जिनी॑व॒ शुभः॒ स्पर्ध॑न्ते॒ धियः॒ सूर्ये॒ न विशः॑ ।

अ॒पो वृ॑णा॒नः प॑वते कवी॒यन्व्र॒जं न प॑शु॒वर्ध॑नाय॒ मन्म॑ ॥१॥

पदार्थः—(सूर्य्ये) सूर्य्य के विषय में (न) जैसे (विशः) रश्मियें प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार (धियः) मनुष्यों की बुद्धियां (स्पर्धन्ते) अपनी-अपनी उत्कट

Scanned by CamScanner

शक्ति से विषय करती हैं। (अस्मिन् अधि) जिस परमात्मा में (वाजिनीव) सर्वोपरि बलों के समान (शुभः) शुभ बल है। वह परमात्मा (अपोवृणानः) कर्म्मों का अध्यक्ष होता हुआ (पवते) सबको पवित्र करता है। (कवीयन्) कवियों की तरह आचरण करता हुआ (पशुवर्धनाय) सर्वद्रष्टृत्वपद के लिये (व्रजं, न) इन्द्रियों के अधिकरण मन के समान [व्रजन्ति इन्द्रियाणि यस्मिन् तद्व्रजम्] (मन्म) जो अधिकरणरूप है, वही श्रेय का धाम है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। जो लोग उसके साक्षात् करने के लिये अपनी चित्तवृतियों का निरोध करते हैं परमात्मा उनके ज्ञान का विषय अवश्यमेव करता है ॥१॥

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (द्विता) जीव और प्रकृतिरूप द्वैत को (व्यूर्ण्वन्) आच्छादन करता हुआ (अमृतस्य धाम) अमृतका धाम है। उस (स्वर्विदे) सर्वज्ञ के लिये (भुवनानि) सम्पूर्ण लोकलोकान्तर (प्रथन्त) विस्तीर्ण होते हैं। वह परमात्मा (धियः पिन्वानाः) विज्ञानों से भरा हुआ (स्वसरे) अपने स्वरूप में (न) जैसे कि (गावः) इन्द्रियाँ (ऋतयन्तीः) यज्ञ की इच्छा करती हुई सब ओर से (अभिवावश्रे) शब्द करती हैं। अथवा (इन्दुं) प्रकाशरूप परमात्मा की कामना करती हैं। इसी प्रकार जिज्ञासु लोग उस परमात्मा की कामना करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के द्वैतवाद का वर्णन किया है ॥२॥

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥३॥

पदार्थः—(यत्) जो परमात्मा (कविः) सर्वज्ञ है (काव्या भरते) कवियों के भाव को पूर्ण करने वाला है। जिसमें (शूरो न) शूरवीर के समान (रथः) क्रियाशक्ति है (विश्वाभुवनानि) सम्पूर्ण भुवन जिसमें स्थिर है। (देवेषु) सब विद्वानों में (यशः) जिसका यश है। (मर्ताय भूषन्) सब मनुष्यों को विभूषित करता हुआ (दक्षायरायः) जो चातुर्य्य का और धन का (पुरुभूषु) स्वामी है। और (नव्यः) नित्य नूतन है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वज्ञ है और अपनी सर्वज्ञता से सब के ज्ञान में प्रवेश करता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥४॥

पदार्थः—वह परमात्मा (श्रिये जातः) ऐश्वर्य के लिये सर्वत्र प्रकट है । और (श्रियं निरियाय) श्रीके लिये ही सर्वत्र गतिशील है । और (श्रियं) ऐश्वर्य को और (वयः) आयु को (जरितृभ्यः) उपासकों के लिये (दधाति) धारण करता है । (श्रियं वसानाः) श्रीको धारण करता हुआ (अमृतत्वमायन्) अमृतत्व को विस्तार करता हुआ (सत्या समिथा) सत्यरूपी यज्ञों के करनेवाला होता है । (मितद्रौ) सर्वत्र गतिशील परमात्मा में (सत्या भवन्ति) ब्रह्मयज्ञ चित्तकी स्थिरता के हेतु होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो परमात्मोपासक हैं उनको परमात्मा सब प्रकार का ऐश्वर्य देता है ॥४॥

इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥५॥

पदार्थः—(इषम्) ऐश्वर्य्य और (ऊर्जम्) बल (अभ्यर्ष) हे परमात्मन् ! आप दें । और (अश्वम्) क्रियाशक्ति और (गाम्) ज्ञानरूपी शक्ति—इन दोनों को आप (उरुज्योतिः) विस्तृतज्योति (कृणुहि) करें और (देवान्) विद्वान् लोगों को (मत्सि) तृप्त करें ।(विश्वानि हि सुषहा) सम्पूर्ण सहनशीलशक्तियाँ निश्चय करके आप में हैं । (तानि) वे शक्तियाँ तुमको विभूषित करती हैं । (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (तुभ्यम्) तुमसे मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम (शत्रून्) अन्यायकारी दुष्टों को (बाधसे) निवृत्त करने के लिये समर्थ हो । (सोम) हे परमात्मन् ! आप हममें भी इस प्रकार का बल दीजिये ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्तशक्तिरूप है । जब वह अपने भक्तों को पात्र समझता है तो सब प्रकारके अन्यायकारियों को दमन करके सुनीति और धर्म का प्रचार संसार में फैला देता है । तात्पर्य यह है कि जो लोग परमात्मा की दया का पात्र बनते हैं उन्हीं के शत्रुभूत दुष्ट दस्युओं का परमात्मा दमन करता है अन्यों का नहीं ॥५॥

नवम मण्डल में यह चौरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्य १—५ प्रस्कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ संस्तारपंक्तिः । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । स्वरः—१, ३—५ धैवतः । २ पञ्चमः ॥

Scanned by CamScanner

कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) हरणशील शक्तियों वाला परमात्मा (सृज्यमानः) साक्षात्कार को प्राप्त होता है तब (वनस्य) भक्त के (जठरे) अंतःकरण में (सीदन्) ठहरता हुआ और (पुनानः) उसको पवित्र करता हुआ विराजमान होता है । (यतः) जिसलिये (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (निर्णिजं कृणुते) साक्षात्कार किया जाता है । तब (गाः) इन्द्रियों को शुद्ध करके (मतिर्जनयत) अच्छे प्रकार की बुद्धि उत्पन्न करता है (स्वधाभिः) स्वशक्तियों के द्वारा और (कनिक्रन्ति) पुनः शब्दायमान के समान साक्षात्कार को प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापक है उसके लिये विराजमान होना और न विराजमान होना कथन नहीं किया जा सकता । विराजमान होना यहां साक्षात्कार के अभिप्राय से कथन किया गया है ॥१॥

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥२॥

पदार्थः—(हरिः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (सृजानः) साक्षात्कार को प्राप्त हुआ (ऋतस्य, पथ्यां) वाक्द्वारा मुक्तिमार्ग की (इयर्ति) प्रेरणा करता है । (अरितेव नावम्) जैसा कि नौका के पार लगाने के समय में नाविक प्रेरणा करता है । और (देवानां देवः) सब देवों का देव (गुह्यानि) गुप्त (नामाविष्कृणोति) संज्ञाओं को प्रकट करता है (बर्हिषि प्रवाचे) वाणीरूपी यज्ञ के लिये ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा ने ब्रह्मयज्ञ के लिये बहुतसी संज्ञाओं को निर्माण किया, अर्थात्—शब्दब्रह्म जो वेद है उसका निर्माण अर्थात्—आविर्भाव संज्ञा संज्ञिभाव पर निर्भर करता है । इसीलिये संज्ञासंज्ञिभाव को रहस्यरूप से कथन किया गया है ॥२॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥३॥

पदार्थः—(उशतीः) शोभावाली स्तुतियाँ (उशन्तम्) शोभावाले को (संविशन्ति) प्राप्त होती हैं जैसे कि (ततुराणाः) शीघ्र करने वाले लोगों की (मनीषा) बुद्धियाँ (प्रेरते) प्रेरणा करती हैं । इसी प्रकार (सोमम्) परमात्मा को (अच्छ) भली भांति प्राप्त होती हैं । (च) और (अपामिवोर्मयः) जैसे कि जलों की लहरें जलों को

सुशोभित करती हैं । इसी प्रकार परमात्मा की विभूतियाँ परमात्मा को सुशोभित करती हैं । (च) और (नमस्यन्ति) परमात्मा की विभूतियाँ सत्कार करती हैं । और (उपयन्ति) उसको प्राप्त होती हैं। ।३॥

भावार्थः—इसमें परमात्मा की विभूतियों का वर्णन है कि परमात्मा की विभूतियाँ परमात्मा के भावों का प्रतिक्षण द्योतन करती हैं जिनसे परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।

तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥४॥

पदार्थः—(तं मर्मृजानम्) उस भक्तों द्वारा उपासित परमात्मा को (सानौ) सर्वोपरि शिखरपर (महिषं न) महापुरुष के समान विराजमान को (अंशुम्) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है, (उक्षणम्) जो सर्वोपरि बलप्रद है । (गिरिष्ठाम्) जो वेदरूपी वाणी का अधिष्ठाता है । (तं वावशानम्) उस सर्वोपरि कमनीय परमात्मा को (मतयः) सुमति लोग (सचन्ते) संगत होते हैं । और जो परमात्मा (समुद्रे) अंतरिक्ष में (वरुणम्) वरणीय पदार्थों को (बिभर्ति) धारण करता है । और (त्रितः) प्रकृति, जीव, और महत्तत्व रूप सूक्ष्म जगत्कारणों का अधिष्ठाता है । अथवा (त्रितः) भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों कालों का अधिष्ठाता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है । संयमी पुरुष उसका साक्षात्कार कर सकते हैं ॥४॥

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।

इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (मनीषाम्) बुद्धि को हमारे लिये (विष्य) प्रदान कीजिये । और (वाचमिष्यन्) वाणी की इच्छा करते हुए (उपवक्तेव) वक्ता के समान (होतुः) उपासक को सदुपदेश करें । (च) और (यत्) जो (इन्द्रः) कर्म्मयोगी और आप (क्षयथः) दोनों अद्वैत भाव को प्राप्त हैं । (सौभगाय) इस सौभाग्य के लिये हम आपका धन्यवाद करते हैं । और आप से प्रार्थना करते हैं कि (सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम) हम सर्वोपरि बल के पति हों ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उक्त परमात्मा से बल की प्रार्थना की गयी है ॥५॥

नवम मण्डल में यह पिचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ।

Scanned by CamScanner

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य १—२४ प्रतर्दनो दैवोदासिऋर्षिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ११, १२, १४, १९, २३ त्रिष्टुप् । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—१०; १३, १५, १८, २१, २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक्त्रिष्टुप् २०, २२ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थः—(सोमः) सोमरूप परमात्मा (सखिभ्यः) अपने अनुयायी (इन्द्रहवान्) जो कर्मयोगी हैं उनके लिये (भद्राणि कृण्वन्) भलाई करता हुआ (वस्त्रारभसानि) अत्यन्त वेगवाले शस्त्रों को (आदत्ते) ग्रहण करता है । जैसे कि (शूरः) शूरवीर (सेनानीः) जो सेनाओं का नेता है वह (रथानाम्) संग्रामों के (अग्रे) समक्ष (गव्यन्) यजमानों के ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ (एति) प्राप्त होता है । इस प्रकार परमात्मा न्यायकारियों के ऐश्वर्य्य को चाहता हुआ अपने रूप से न्यायकारियों की रक्षा करता है । (अस्य) उस शूरवीर की (सेना) फौज (हर्षते) जैसे प्रसन्न होती है । इसी प्रकार परमात्मा के अनुयायियों की सेना भी हर्ष को प्राप्त होती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधर्म का वर्णन है कि परमात्मपरायण पुरुष राजधर्म द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होते हैं ॥१॥

समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥२॥

पदार्थः—(अस्य हरिम्) उस परमात्मा की हरणशीलशक्ति को (हरयः) ज्ञान की किरणें (मृजन्ति) प्रदीप्त करती हैं । और (अश्वहयैः) विद्युदादि शक्तियों के समान (अनिशितम्) असंस्कृत को भी (नमोभिः) सत्कार द्वारा संस्कृत करता हुआ (आतिष्ठति) आकर विराजमान होता है । (रथम्) उक्त गतिस्वरूप परमात्मा को (इन्द्रस्य) कर्मयोगी का (सखा) मित्र (विद्वान्) मेधावी पुरुष (एना) उक्त रास्ते से (सुमतिम्) सुन्दर मार्ग को (अच्छ याति) भली भांति प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग नम्रभाव से परमात्मा की उपासना करते हैं वे असंस्कृत होकर भी शुद्ध हो जाते हैं, अर्थात्—उनकी शुद्धि का कारण एकमात्र परमात्मोपासनरूपी संस्कार ही संस्कार है, कोई अन्य संस्कार नहीं ॥२॥

Scanned by CamScanner

स नों देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरंस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नों वरिवस्या पुनानः ॥३॥

पदार्थः—(देव सोम) हे दिव्यगुणयुक्त परमात्मन् ! (देवताते) विद्वानों से विस्तृत, किये हुए (महे) बड़े (प्सरसे) सुन्दर यज्ञ में आप (पवस्व) पवित्र करें (इन्द्रपानः) आप कर्म्मयोगियों के तृप्तिरूप हैं । और (अवः कृण्वन्) शुभ कर्मों को करते हुए (उत) अथवा (इमां द्याम्) इस द्युलोक को उत्पन्न करते हुए आप (उरः) इस कर्म्मयोग के विस्तृत मार्ग से (आ) आते हुए (नः) हमको (वरिवस्य) धनादि ऐश्वर्य्य के द्वारा (पुनानः) पवित्र करते हुए आप आकर हमारे हृदय में विराजमान हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोग का वर्णन है कि कर्मयोगी अपने योगज कर्म द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करता है ॥३॥

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (अजीतये) हम किसी से जीते न जायें । (अहतये) किसी से मारे न जायें (पवस्व) इस बात के लिये आप हमको पवित्र बनायें और (स्वस्तये) मङ्गल के लिये (बृहते सर्वतातये) सर्वोपरि बृहत् यज्ञ के लिये (तदुशन्ति) इसी पद की कामना (इमे विश्वे) ये सब (सखायः) मित्रगण करते हैं । (तत्) इसलिये (अहम्) मैं (वश्मि) यही कामना करता हूँ । इसलिये हे परमात्मन् ! आप हमको उक्त प्रकार का ऐश्वर्य दें । क्योंकि आप इस ब्रह्माण्ड के उत्पत्तिकर्ता हैं ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करते हैं वे किसी से दबाये वा दीन नहीं किये जा सकते ॥४॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

पदार्थः—(सोमः) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (पवते) सबको पवित्र करता है (जनिता मतीनाम्) और ज्ञानों को उत्पन्न करनेवाला है (दिवो जनिता) द्युलोक को उत्पन्न करनेवाला है । (पृथिव्या जनिता) पृथिवी लोक को उत्पन्न करनेवाला है (अग्नेर्जनिता) अग्नि को उत्पन्न करनेवाला है । और (सूर्यस्य जनिता) सूर्य्य को

Scanned by CamScanner

उत्पन्न करनेवाला है । (उत) और (विष्णोः जनिता) ज्ञानयोगी को उत्पन्न करनेवाला है । (इन्द्रस्य जनिता) कर्म्मयोगी को उत्पन्न करनेवाला है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के सर्वकर्तृत्व का वर्णन किया है ॥५॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पवित्रम्) वज्रवाले को भी (रेभन्) शब्द करता हुआ अतिक्रमण कर जाता है। जिस प्रकार (गृध्राणाम्) [गृध्यति शस्त्रवच्छेत्तुमभिकांक्षति इति गृध्रः शस्त्रम्] शस्त्रों के मध्य में (स्वधितिः) वज्र सबको अतिक्रमण कर जाता है और (मृगाणां श्येनः) शीघ्र गतिवाले पक्षियों में बाज और (विप्राणाम्, कवीनां, ऋषिः) विप्र और कवियों के मध्य में ऋषि सबको अतिक्रमण कर जाता है । (देवानाम्) और विद्वानों के मध्य में (ब्रह्मा) ४ वेदों का वक्ता सबको अतिक्रमण कर जाता है । इसी प्रकार (पदवी) पर्वोपरि उच्च पदरूप परमात्मा सब वस्तुओं में मुख्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कवि, विप्र, ब्रह्मादि मुख्य-मुख्य शक्तियोंवाले पुरुषों का दृष्टान्त देकर परमात्मा की मुख्यता वर्णन की है ॥६॥

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (वाच ऊर्मिम्) वाणी की लहरों को (सिन्धुर्न) जैसे कि सिन्धु (प्रावीविपत्) कँपाता है, इसी प्रकार से कँपाता है । (सोमः) वह सोमरूप परमात्मा (पवमानः) सबको पवित्र करता है । (मनीषाः) मन का भी प्रेरक है । (अन्तः पश्यन्) सबका अन्तर्यामी होकर (वृजना) इस संसाररूपी यज्ञ में (इमा अवराणि आतिष्ठति) इन प्रकृति के कार्य्यों को आश्रयण करता है । जिस प्रकार (वृषभः) सब बल को देने वाला जीवात्मा (जानन्) चेतनरूप से अधिष्ठाता बनकर (गोषु) इन्द्रियों में विराजमान होता है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा सबका अन्तर्यामी है । वह सर्वान्तिर्यामी होकर सर्वप्रेरक है 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम् यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' इत्यादि वाक्य उक्त वेद के आधार पर निर्माण किये गये हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥८॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (मत्सरः) आनन्दस्वरूप है। (पृत्सु) यज्ञों में (वन्वन्) सब विघ्नों को नाश करता हुआ (अवातः) निश्चल होकर विराजमान है। (सहस्ररेताः) अनन्त प्रकार के बलों से युक्त है। (वाजम्) सब बलों को (अभि) आश्रय देकर (अर्ष) व्याप्त हो रहा है (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (पवमानः) आप सबको पवित्र करने वाले हैं (मनीषी) मन के प्रेरक हैं। (गाः, अंशोः, इषण्यन्) इन्द्रियों को प्रेरणा करते हुए (ऊर्मिमीरय) आनन्द की लहरों को हमारी ओर प्रेरित करें ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष अनन्य भक्ति से अर्थात्—एकमात्र ईश्वरपरायण होकर ईश्वर की उपासना करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव आनन्द का प्रदान करता है ॥८॥

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥९॥

पदार्थः—(प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा (देववातः) जो विद्वानों के लिये सुगम है वह (सोमः) सर्वोत्पादक (रण्यः) रमणीक (इन्द्राय मदाय) कर्मयोगी के आह्लाद के लिये (सहस्रधारः) जो अनन्त प्रकार की शक्ति से सम्पन्न और (शतवाजः) अनन्त-प्रकार के बल से सम्पन्न है वह (इन्दुः) परमैश्वर्य्यशाली (सप्तिनं) विद्युत् की शक्ति के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (समना, परिजिगाति) आध्यात्मिक यज्ञों में (कलशे) ['कलाः शेरते अस्मिन् इति कलशम्' निः—१—१२ अन्तःकरणम्]। जिसमें परमात्मा अपनी कलाओं के द्वारा विराजमान हो, उसका नाम यहां कलश है। विद्वानों के अन्तःकरण में आकर उपस्थित होता है ॥९॥

भावार्थः—जो लोग ब्रह्मविद्या द्वारा परमात्मा के तत्त्व का चिन्तन करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ज्ञान का विषय होता है ॥९॥

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥

पदार्थः—(सः) वह (पूर्व्यः) अनादिसिद्धपरमात्मा (वसुवित्) सब धनों का नेता (जायमानः) जो सब जगह पर व्यापक है। (मृजानः) शुद्ध है (अप्सु) कर्म्मों में

Scanned by CamScanner

(दुदुहानः) पूर्ण किया जाता है। और (भद्रो) सब प्रकार के संकटों में (अभिशस्तिपाः) शत्रुओं से रक्षा करनेवाला है। (भुवनस्य राजा) सब भुवनों का राजा है। (ब्रह्मणे पूयमानः) कर्म्मों में पवित्रता प्रदान करता हुआ (गातुम्) उपासकों के लिये (विदत्) पवित्रता प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थः—शुद्ध भाव से उपासना करनेवाले लोगों को परमात्मा सर्व-प्रकार के ऐश्वर्य्य और पवित्रताओं का प्रदान करता है ॥१०॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! (पूर्वे, पितरः) पूर्वकाल के पिता पितामह (धीराः) जो धीर हैं (त्वया) तुम्हारी प्रेरणा से (कर्म्माणि, चक्रुः) कर्मों को करते थे। (पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन्! (वन्वन्) आपका भजन करते हुए (अवातः) निश्चल होकर (परिधीन्) राक्षसों को (अपोर्णु) दूर करें (वीरेभिः) वीर पुरुषों से (अश्वैः) और जो शक्तिसम्पन्न हैं उनसे (नः) हमको (मघवा, भव) ऐश्वर्यसम्पन्न करें ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा की आज्ञा पालन करने से देश में ज्ञानी तथा विज्ञानी पुरुषों की उत्पत्ति होती है और देश ऐश्वर्य्यसम्पन्न होता है इस प्रकार राक्षसभावनिवृत्त होकर सभ्यता के भाव का प्रचार होता है ॥१२॥

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान्।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (यथा) जिस प्रकार (मनवे) विज्ञानी पुरुष के लिये (अपवथाः) धनादिक देने के लिये आप पवित्र करते हैं अन्नादिकों के देनेवाला (अमित्रः) दुष्टों को दण्ड देने वाला (वरिवोवित्) और धनादि ऐश्वर्य्य को देनेवाला (हविष्मान्) हवि वाला भक्त पुरुष आपको प्रिय होता है। इस प्रकार हे परमात्मन्! (एव) निश्चय करके (पवस्व) आप हमको पवित्र करें। और (इन्द्रे) कर्म्मयोगी में (द्रविणं, दधानः) ऐश्वर्य्य को धारण करते हुए आप (सन्तिष्ठ) आकर विराजमान हों। तथा (जनय, आयुधानि) कर्म्मयोगी के लिये अनन्त प्रकार के आयुधों को उत्पन्न करें ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मपरायण पुरुष परमात्मा में चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्य और आयुधों को उत्पन्न करके देश को अभ्युदय-शाली बनाते हैं ॥१२॥

Scanned by CamScanner

पव॑स्व सोम॒ मधु॑माँ ऋ॒तावा॒पो वसा॑नो॒ अधि॒ सानो॒ अव्ये॑ ।
अव॑ द्रोणा॑नि घृ॒तव॑न्ति सीद म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्र॒पानः॑ ॥१३॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! आप (मधुमान्) आनन्दमय हैं (ऋतावापः) कर्मरूपी यज्ञ के अधिष्ठाता हैं। (अव्ये) रक्षायुक्त (अधिसानो) सर्वोपरि उच्च पद में (वसानः) विराजमान हैं। (पवस्व) आप हमारी रक्षा करें। और (द्रोणानि) अन्तःकरणरूपी कलश (घृतवन्ति) जो स्नेहवाले हैं। (अवसीद) उनमें आकर स्थिर हों। आप (मत्सरः) सबके तृप्तिकारक हैं। और (मदिन्तमः) अत्यन्त आह्लादक हैं। और आप (इन्द्रपानः) कर्मयोगी की तृप्ति के कारण हैं ॥१३॥

भावार्थः—जिन पुरुषों के अन्तःकरण प्रेमरूप वारि से नम्र भाव को ग्रहण किये हुए हैं उनमें परमात्मा के भाव आविर्भाव को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

वृ॒ष्टिं दि॒वः श॒तधा॑रः पवस्व सहस्र॒सा वा॑ज॒युर्दे॒ववी॑तौ ।
सं सिन्धु॑भिः क॒लशे॑ वावशा॒नः समु॒स्रिया॑भिः प्रति॒रन्न॒ आयुः॑ ॥१४॥

पदार्थः—(शतधारः) आप अनन्तशक्तियुक्त हैं। और (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिम्) वृष्टि से (संपवस्व) पवित्र करें। (देववीतौ) यज्ञों में (वाजयुः) अनेक प्रकार के बलों को प्राप्त हैं। और (सिन्धुभिः) प्रेम के भावों से (कलशे) हमारे अन्तःकरण में (वावसानः) वास करते हुए (उस्रियाभिः) ज्ञानरूप शक्तियों से (नः) हमारी (आयुः) उमर को (प्रतिरन्) बढ़ायें ॥१४॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के ज्ञानविज्ञानादि भावों को धारण करके अपने को योग्य बनाते हैं परमात्मा उनके ऐश्वर्य्य को अवश्यमेव बढ़ाता है ॥१४॥

ए॒ष स्य सोमो॑ म॒तिभिः॑ पुना॒नोऽत्यो॒ न वा॒जी तर॒तीद॑राती॑ः ।
पयो॒ न दु॒ग्धमदि॑तेरिषि॒रमु॒र्वि॑व गा॒तुः सु॒यमो॒ न वोळ्हा॑ ॥१५॥

पदार्थः—(एषः स्यः सोमः) यह उक्त परमात्मा (मतिभिः) ज्ञानविज्ञानों द्वारा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अत्यो न) विद्युत् के समान (वाजी) बलरूप परमात्मा (अरातीः) शत्रुओं को (इत्) अवश्य (तरति) उल्लंघन करता है वह परमात्मा (अदितेः) गौ के (दुग्धम्) दुहे हुए (पयः) दुग्ध के (न) समान (इषिरम्) सर्वप्रिय है (उरु) विस्तीर्ण (गातुरिव) मार्ग के समान सबका आश्रयणीय है। तथा (वोळ्हा) सम्यक् नियन्ता के (न) समान है ॥१५॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा के सदृश इस संसार में कोई नियन्ता नहीं। उसी के नियम में सब लोकलोकान्तर भ्रमण करते हैं ॥१५॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (गुह्यम्) सर्वोपरि रहस्य (चारु) श्रेष्ठ (नाम) जो तुम्हारी संज्ञा है (अभ्यर्ष) आप उसका ज्ञान करायें (सोतृभिः, पूयमानः) आप उपासक लोगों से स्तूयमान हैं। (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्ति से युक्त हैं। और (सप्तिरिव) विद्युत् के समान (श्रवस्याभि) ऐश्वर्य के सम्मुख प्राप्त कराइये और (वायुमभि) हमको प्राणों की विद्या का वेत्ता बनाइये। (देव) हे सर्वशक्तिसम्पन्न परमेश्वर ! हमको (गाः) इन्द्रियों के (अभिगमय) नियमन का ज्ञाता बनाइये ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा पर विश्वास रखते हैं वे अवश्यमेव संयमी बनकर इन्द्रियों के स्वामी बनते हैं ॥१६॥

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥

पदार्थः—(शिशुम्) [श्यति सूक्ष्मं करोति प्रलयकाले जगदिति शिशुः परमात्मा] उस परमात्मा को (जज्ञानम्) जो सदा प्रकट है। (हर्यतः) जो अत्यन्त कमनीय है। उसको उपासक लोग (मृजन्ति) बुद्धिविषय करते हैं। और (शुंभन्ति) उसकी स्तुतिद्वारा उसके गुणों का वर्णन करते हैं। और (मरुतः) विद्वान् लोग (वह्निम्) उस गतिशील परमात्मा का (गणेन) गुणों के गणों द्वारा वर्णन करते हैं। और (कविः) कविलोग (गीर्भिः) वाणीद्वारा और (काव्येन) कवित्वसे उसकी स्तुति करते हैं। (सोमः) सोमस्वरूप (पवित्रम्) पवित्र वह परमात्मा कारणावस्था में अतिसूक्ष्म प्रकृति को (रेभन्, सन्) गर्जता हुआ (अत्येति) अतिक्रमण करता है ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से यह ब्रह्माण्ड सूक्ष्म से स्थूलावस्था को प्राप्त होता है और उसी से प्रलयावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः— (**सोमः**) सोमस्वरूप परमात्मा (**सिसासन्**) पालन की इच्छा करता हुआ (**महिषः**) जो महान् वह परमात्मा (**तृतीयं, धाम**) देवयान और पितृयान इन दोनों से पृथक् तीसरा जो मुक्तिधाम है, उसमें (**विराजम्**) विराजमान जो ज्ञानयोगी है उसको (**अनुराजति**) प्रकाश करने वाला है। और (**स्तुप्**) स्तूयमान है। (**कवीनाम्, पदवीः**) जो क्रान्तदर्शियों की पदवी अर्थात् मुख्य स्थान है। और (**सहस्र-नीथः**) अनन्त प्रकार से स्तवनीय है। (**ऋषिमनाः**) सर्वज्ञान के साधनरूप मनवाला वह परमात्मा (**यः**) जो (**ऋषिकृत्**) सब ज्ञानों का प्रदाता (**स्वर्षाः**) सूर्य्यादिकों का प्रकाशक है। वह जिज्ञासु के लिये उपासनीय है ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोकलोकान्तरों का नियन्ता है तथा मुक्तिधाम में विराजमान पुरुषों का भी नियन्ता है ॥१८॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥

पदार्थः—(**अपामूर्मिम्**) प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों के साथ (**सचमानः**) जो संगत है और (**समुद्रम्**) [सम्यक् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः] जिससे सब भूतों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है, वह (**तुरीयम्**) चौथा (**धाम**) परमपद परमात्मा है। उसको (**महिषः**) [मह्यते इति महिषः महिष इति महन्नामसु पठितम् नि० ३—१३]। महापुरुष उक्त तुरीय परमात्मा का (**विवक्ति**) वर्णन करता है। वह परमात्मा (**चमूसत्**) जो प्रत्येक बल में स्थित है (**श्येनः**) सर्वोपरि प्रशंसनीय है और (**शकुनः**) सर्वशक्तिमान् है। (**गोविन्दुः**) यजमानों को तृप्त करके जो (**द्रप्सः**) शीघ्र गतिवाला है (**आयुधानि, बिभ्रत्**) अनन्तशक्तियों को धारण करता हुआ इस संपूर्ण संसार का उत्पादक है ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा इस विविध रचना का नियन्ता है उसने अन्त-रिक्ष लोक को सम्पूण भूतों के इतस्ततः भ्रमण का स्थान बनाया है ॥१९॥

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥

पदार्थः—वह परमात्मा (**यूथा, वृषेव**) जिस प्रकार एक संघ को उस का सेनापति प्राप्त होता है। इसी प्रकार (**कोशम्**) ब्रह्माण्डरूपी कोशको (**अर्षन्**) प्राप्त होकर (**कनिक्रदत्**) उच्चस्वर से गर्जता हुआ (**चम्वोः**) इस ब्रह्माण्डरूपी विस्तृत प्रकृतिखण्ड में (**पर्य्याविवेश**) भली भांति प्रविष्ट होता है। और (**न**) जैसे कि (**मर्यः**)

Scanned by CamScanner

मनुष्य (शुभ्रस्तन्वं, मृजानः,) शुभ्र शरीर को धारण करता हुआ (अत्यो न) अत्यन्त गतिशील पदार्थों के समान (सनये) प्राप्ति के लिये (सृत्वा) गतिशील होता हुआ (धनानाम्) धनों के लिये कटिबद्ध होता है इसी प्रकार प्रकृतिरूपी ऐश्वर्य्य को धारण करने के लिये परमात्मा सदैव उद्यत है ॥२०॥

भावार्थः—जिस प्रकार मनुष्य इस स्थूल शरीर को चलाता है अर्थात् जीवरूप से इसका अधिष्ठाता है एवं परमात्मा इस प्रकृतिरूप शरीर का अधिष्ठाता है ॥२०॥

पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (महोभिः) महापुरुषों से (पवमानः) उपास्यमान आप (पवस्व) हमको पवित्र करें। और (कनिक्रदत्) वैदिकवाणियों के द्वारा शब्दायमान होते हुए आप (वाराणि) श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति (पर्य्यर्ष) प्राप्त हों। और (चम्वोः, क्रीळन्) इस ब्रह्माण्ड में क्रीडा करते हुए और (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए (आविश) हमारे अन्तःकरण में आकर प्रविष्ट हों। हे परमात्मन्! (ते) तुम्हारा (रसः) आनन्द (मदिरः) जो आह्लादित करने वाला है, वह (इन्द्रम्) कर्म्मयोगी को (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा के आनन्दाम्बुधि के रस को केवल कर्म्मयोगी ही पान कर सकता है; आलसी निरुद्यमी लोग उक्त आनन्द के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते ॥२१॥

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमात्मा के आनन्द की (बृहतीः, धाराः) बड़ी धाराय (प्रासृग्रन्) परमात्मा की ओर से रची गई हैं। (अक्तः) सर्वव्यापक परमात्मा (गोभिः) अपने ज्ञान की ज्योतिद्वारा (कलशान्) उपासकों के अन्तःकरणों को (आविवेश) प्रवेश करता है। और (सामकृण्वन्) संपूर्ण संसार में शान्ति फैलाता हुआ (सामन्यः) शान्तिरस में तत्पर परमात्मा (विपश्चितः) जो सर्वोपरि बुद्धिमान् है। वह (सख्युः) मित्र के (न, जामिम्) हाथ को पकड़ने के समान (क्रन्दन्, अभ्येति) मंगलमय शब्द करता हुआ हमको प्राप्त हो ॥२२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा अपने भक्तों को सदैव सुरक्षित रखता है जिस प्रकार मित्र अपने मित्र पर सदैव रक्षा के लिये हाथ प्रसारित करता है एवं स्वमर्य्यादानुयायी लोगों पर ईश्वर सदैव कृपादृष्टि करता है ॥२२॥

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (शत्रून्, अपघ्नन्) अन्यायकारी शत्रुओं को नाश करते हुए (एषि) आप सत्पुरुषों को प्राप्त होते हैं ।(जारः, न) [जारयतीति जारोऽग्निः] जैसे अग्नि (प्रियाम्) कमनीय कन्या को प्राप्त होकर उसे संस्कृत करता है जिस प्रकार (अभिगीतः, इन्दुः) सत्कार द्वारा आह्वान किया हुआ ज्ञानयोगी (वनेषु, सीदन्) भक्तों में स्थिर होता, हुआ उनको शान्तिप्रदान करता है और (शकुनः) विद्युत्शक्ति (न) जैसे (पत्वा) अपने प्रभाव को डालकर उन्हें उत्तेजित करती है । इसी प्रकार (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (कलशेषु) भक्त पुरुषों के अन्तःकरणों में (सत्ता) स्थिर होता है ॥२३॥

भावार्थः—अन्य पदार्थ जीवात्मा का ऐसा संस्कार नहीं करते जैसा कि परमात्मा करता है अर्थात् परमात्मज्ञान के संस्कार द्वारा जीवात्मा सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥२३॥

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पवमानस्य, ते रुचः) सबको पवित्र करने वाले आपकी दीप्तियां (सुदुघाः) जो भली भांति सबको परिपूर्ण करने वाली हैं (सुधाराः) और सुन्दरधाराओं वाली हैं, वे भक्त पुरुष के प्रति (योषेव, यन्ति) परम प्रेम करने वाली माता के समान प्राप्त होती हैं । (हरिः) जो सब दुःखों को हरण करने वाला परमात्मा है वह (आनीतः) सब ओर से भली भांति उपासना किया हुआ (अप्सु, पुरुवारः) प्रकृतिरूपी ब्रह्माण्ड में अत्यन्त वरणीय है । वह (देवयूनाम्) परमात्मा की दिव्यशक्ति चाहने वाले उपासकों के (कलशे) हृदय में (अचिक्रदत्) सर्वदैव शब्दायमान है ॥२४॥

भावार्थः—यों तो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्ड में सर्वत्रैव देदीप्यमान है, पर भक्त पुरुषों के स्वच्छ अन्तःकरणों में परमात्मा की अभिव्यक्ति सबसे अधिक दीप्तिमती होती है ॥२४॥

नवम मण्डल में यह छ्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथाष्टपञ्चाशदृचस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१—३ वसिष्ठः। ४—६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः। ७—९ वृषगणो वासिष्ठः। १०—१२ मन्युर्वासिष्ठः। १३—१५ उपमन्युर्वासिष्ठः। १६--१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः। १९–२१ शक्तिर्वासिष्ठः। २२—२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः २५—२७ मृलीको वासिष्ठः। २८—३० वसुक्रोवासिष्ठः। ३१—४४ पराशरः शाक्तः। ४५—५८ आङ्गिरसः कुत्सः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः–१, ६, १०, १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६, निचृत्त्रिष्टुप्। २—४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४, ३३, ४८, ५३, विराट्त्रिष्टुप्। ५, ९, १३, २२, २७—३०, ३४, ३५, ३७, ४२—४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप्। १८, ४१, ५०, ५१, ५५, आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ३१, ४९ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ४० भुरिक्त्रिष्टुप्॥ धैवतः स्वरः॥

अब विद्वानों के गुण वर्णन किये जाते हैं।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता॥१॥

पदार्थः—(सुतः) विद्या द्वारा संस्कृत हुआ-हुआ विद्वान् (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ (पवित्रं, पर्य्येति) पवित्रता को प्राप्त होता है। जिस प्रकार (पशुमन्ति) ज्ञानवाले स्थान को (मिता, इव) नियमी पुरुष के समान (होता) यज्ञकर्ता पुरुष प्राप्त होता है। (अस्य, प्रेषा) उक्त विद्वान् की जिज्ञासा करने वाला पुरुष (हेमना, पूयमानः) सुवर्णादि भूषणों से पवित्र होता हुआ (देवेभिः, सम्पृक्तः) विद्वानों से संगति को लाभ करता हुआ (देवः) दिव्य भाववाला (रसन्) ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है॥१॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों के शिष्य अर्थात् जो पुरुष वेदवेत्ता विद्वानों से शिक्षा पाकर विभूषित होते हैं, वे सदैव ऐश्वर्य्य से विभूषित रहते हैं॥१॥

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन्।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ॥२॥

पदार्थः—उक्त विद्वान् (विचक्षणः) विलक्षण बुद्धिवाला (जागृविः) जागरणशील (चम्वोः, पूयमानः) बड़े-बड़े समाजों को अपने ज्ञानद्वारा पवित्र करता हुआ (समन्या) शान्ति की (वस्त्रा) रक्षा करने वाले (भद्राः) सुन्दर भावों को (वसानः) धारण करता हुआ (निवचनानि शंसन्) जो सुन्दर वक्तव्य हैं उनको जानता हुआ (महान्, कविः) महा विद्वान् होता है। (देववीतौ) यज्ञ के विषय में उक्त विद्वान् को (आवच्यस्व) ऐसा वचन कहकर संस्कृत करे॥२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो पुरुष अपने आध्यात्मिकादि यज्ञों में उक्त विद्वानों की प्रशंसा तथा सत्कार करते हैं, वे अभ्युदयशील होते हैं ॥२॥

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—यशस्वियों के मध्य में जो (यशस्तरः) अत्यन्त विद्वान् है और (क्षैतः) पृथिव्यादि लोकों में (यशसां, प्रियः) यज्ञों को चाहने वाला है (सानो, अव्ये) रक्षा के उच्चशिखर में जो (समु, मृज्यते) भली भांति मर्जन किया गया है उक्त गुणों वाला विद्वान् (अस्मे) हमारे लिये (धन्वा) अन्तरिक्ष में (अभि, स्वर) हमारे लिये सदुपदेश करे (पूयमानः) सब को पवित्र करने वाला विद्वान् सदा सत्कारयोग्य होता है। हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त विद्वानों के प्रति इस प्रकार का स्वस्तिवाचन कहो कि (स्वस्तिभिः) कल्याणरूप वाणियों के द्वारा (यूयं) आप लोग (सदा) सदैव (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥३॥

भावार्थः—स्वस्तिवाचन द्वारा मंगलको करनेवाले पुरुष सदैव उन्नतिशील होते हैं ॥३॥

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।

स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (महते, धनाय) बड़े ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (देवान्) विद्वान् लोगों का (प्र, गायत) स्तवन करो (अभ्यर्चामः) और उन्हीं का सत्कार करो और (सोमं) उनमें जो सौम्यगुण-सम्पन्न विद्वान् है उसको (हिनोत) प्रेरणा करो कि वह तुम को सदुपदेश करे और (स्वादुः) आनन्ददायक पदार्थों के लिये (पवाते) पवित्र करे (देवयुः) दिव्यगुणी और (वारं) वरणीय (अव्यं) रक्षक उक्त विद्वान् (नः) हमारे (कलशं) अन्तःकरण में (आसीदति) स्थिर हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करता है कि हे पुरुषो तुम कल्याण की प्राप्ति के लिये विद्वानों का सत्कार करो ॥४॥

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।

नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥५॥

पदार्थः—(इन्दुः) कर्म्मयोगी विद्वान् (देवानाम्) विद्वानों के (उपसख्यं) मैत्रीभाव को (उपायद्) प्राप्त होता हुआ (मदाय) आनन्द के लिये (पवते) सबको पवित्र

करता है। वह कर्म्मयोगी (सहस्रधारः) अनन्त प्रकार की शक्तियां रखता हुआ (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिये (इन्द्रं) ऐश्वर्य्य को (अगन्) प्राप्त होता हुआ (पूर्वं धाम) सर्वोपरि धाम बनाता है ॥५॥

भावार्थः—जिन पुरुषों के मध्य में एक भी कर्मयोगी होता है वह सब को उद्योगी बनाकर पवित्र बना देता है ॥५॥

स्तो॒त्रे रा॒ये हरि॑रर्षा पुना॒न इन्द्रं॒ मदो॑ गच्छतु ते॒ भरा॑य ।
दे॒वैर्या॑हि स॒रथं॒ राधो॒ अच्छा॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥

पदार्थः—(हरिः) [हरतीति हरिः] जो प्रलयकाल में सब कार्य्यों को अपने में लय कर लेता है उसका नाम यहां हरि है। वह हरि (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्ष) आता है और (राये) ऐश्वर्य्य के लिये (स्तोत्रे) यज्ञ सम्बन्धी स्तोत्रों में आकर प्राप्त होता है, हे हरि ! (ते) तुम्हारा (मदः) आनन्द (भराय) संग्राम के लिये (गच्छतु) प्राप्त हो और (देवैः) विद्वानों के साथ (याहि) आकर आप हमको प्राप्त हों (राधः) ऐश्वर्य्य (अच्छ) हमको दें !और (यूयम्) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (नः) हमारी सदा के लिये (पात) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थः—जो परमात्मा प्रलय काल में सब वस्तुओं का एकमात्र आधार होता हुआ विराजमान है वह परमात्मा हमको आनन्द प्रदान करें ॥६॥

प्र काव्य॑मु॒शने॑व ब्रुवा॒णो दे॒वो दे॒वानां॒ जनि॑मा विवक्ति ।
महि॑व्रतः॒ शुचि॑बन्धुः पाव॒कः प॒दा व॑रा॒हो अ॒भ्ये॑ति॒ रेभ॑न् ॥७॥

पदार्थः—(देवानाम्) विद्वानों के मध्य में (देवः) जो मुख्य विद्वान् है वह (उशनेव काव्यं ब्रुवाणः) कान्तिशील विद्वान् के समान संदर्भ रचना को करनेवाला विद्वान् (जनिम विवक्ति) अनेक जन्मजन्मान्तरों का वर्णन करता है। (महिव्रतः) बड़े व्रत को धारण करनेवाला (शुचिबन्धुः) पवित्रता का बन्धु (पावकः) सबको पवित्र करनेवाला है (वराहः) [वरञ्च तदहश्चेति वराहः वराहो विद्यते यस्य स वराहः] जिसका श्रेष्ठ तेज हो उसका नाम यहां वराह है। उक्त प्रकार का विद्वान् (रेभन्) सुन्दरोपदेश करता हुआ (पदाऽभ्येति) सन्मार्ग द्वारा आकर उपदेश करता है ॥७॥

भावार्थः—जो उत्तम विद्वान् हैं वे अपनी रचना द्वारा पुनर्जन्मादि सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। 'वराह' शब्द यहां सर्वोपरि तेजस्वी विद्वान्

Scanned by CamScanner

के लिये आया है। सायणाचार्य्य कहते हैं कि पांव से भूमि को खोदता हुआ वराह जिस प्रकार शब्द करता है इसी प्रकार सोम भी शब्द करता हुआ आता है। कई एक नवीन लोग इसको वराहावतार में भी लगाते हैं। अस्तु, वराहावतार वा सोम के पक्ष में काव्य का बनाना और उपदेश करना कदापि सङ्गत नहीं हो सकता, इसलिये वराह के अर्थ यहां विद्वान् के ही हैं ॥७॥

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्रवदन्ति वाणम् ॥८॥

पदार्थः—(वृषगणाः) विद्वानों के गण (हंसासः) हंसों के समान विचरते हुए (तृपलम्) शीघ्र ही (मन्युमच्छ अमात् अस्तम्) दुष्टों के दमन करनेवाले उक्त परमात्मा को (आंगूष्यम्) जो सबका लक्ष्य है और (पवमानम्) सबको पवित्र करनेवाला है उसको (आयासुः) प्राप्त होते हैं। तदनन्तर (सखायः) परस्पर मैत्रीभाव से सङ्गत होते हुए (वाणम्) भजनीय (दुर्मर्षम्) जो दुःख से प्राप्त होने योग्य लक्ष्य है उस लक्ष्य के (साकम्) साथ-साथ (प्रवदन्ति) वर्णन करते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मा के सद्गुणों को परम प्रेम से धारण करते हैं वे मानो परमात्मा के साथ मैत्री करते हैं,वास्तव में परमात्मा किसी का शत्रु वा मित्र नहीं कहा जा सकता ॥८॥

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥९॥

पदार्थः—(सः) उक्त परमात्मा (रंहते) गतिशील है (उरुगायस्य) सर्वोपासनीय परमात्मा की (जूतिम्) गति को स्मरण करते हुए (गावः) इन्द्रियां (न मिमते) उसके तत्त्व को नहीं पा सकतीं, जो (वृथा) अनायास ही (क्रीळन्तम्) क्रीडा कर रहा है (तिग्मशृङ्गः) अज्ञानों को नाश करनेवाला परमात्मा (परीणसम्) अनन्त प्रकार के ज्ञान का प्रकाश (कृणुते) करता है और (हरिः) जो परमात्मा (दिवानक्तम्) दिन-रात ज्ञानदृष्टि से (ऋज्रः) एकरस (ददृशे) देखा जाता है ॥९॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा समय-समय पर उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण है तथापि उसके स्वरूप में कोई विकार न उत्पन्न होने से वह सदैव एकरस है ॥९॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥

पदार्थः—(वृजनस्य) बल का (राजा) प्रदीप्त करनेवाला परमात्मा (वरिवः) ऐश्वर्य्य को (कृण्वन्) करता हुआ (अरातीः) शत्रुरूप राक्षसों को (परिबाधते) नाश करता है और (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप (वाजी) बलस्वरूप (गोन्योघाः) गतिशील (पवते) हमको पवित्र करता है और (इन्द्रे) कर्मयोगी विषयक (सोमः) सोमस्वभाव (सहः) शीलस्वभाव की (इन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (मदाय) आनन्द के लिये उक्त गुणों का प्रदान करता है ॥१०॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी उद्योगी पुरुषों के सब विघ्नों की निवृत्ति करके परमात्मा कर्म्मयोगी के लिये आत्मभावों का प्रकाश करता है ॥१०॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोमं पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥

पदार्थः—(अद्रिदुग्धः) चित्तवृत्तियों से साक्षात्कार किया हुआ परमात्मा (पवते) हमको पवित्र करता है (अध) और (मध्वा, धारया) आनन्द की धाराओं से (पृचानः) विद्वानों को तृप्त करता हुआ (रोम, तिरः) अज्ञान को तिरस्कृत करके हमको पवित्र करे और (देवस्य) उक्त दिव्यरूप परमात्मा का (मत्सरः) आह्लादक जो आनन्द है वह (मदाय) हमारे मोद के लिये हो । (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा के (सख्यम्) मैत्रीभाव को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप (देवः) विद्वान् सद्गति को प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थः—अज्ञान की निवृत्ति के लिये परमात्मा की उपासना सर्वोपरि साधन है ॥११॥

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

पदार्थः—(देवः) उक्त परमात्मारूप देव (देवान्) विद्वानों को (स्वेन) अपने (रसेन) आनन्द से (पृञ्चन्) तृप्त करता हुआ (अभि प्रियाणि) सब प्रिय पदार्थों को (पवते) पवित्र करता है (पुनानः) सबको पवित्र करनेवाला परमात्मा (इन्दुः) जो प्रकाशस्वरूप है, वह (धर्माणि) वर्णाश्रमों के धर्म्मों को पृथक् पृथक् विधान करता हुआ (ऋतुथा) सब ऋतु और देश-कालों में (वसानः) निवास करता हुआ (दश क्षिपः) पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों के (अव्ये, सानो) ब्रह्माण्डरूप इस कार्य्य में विराजमान होकर (अव्यत) हमारी रक्षा करता है ॥१२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा सूत्रात्मारूप से सब सूक्ष्म और स्थूल भूतों में विराजमान है, और उसी ने आदिसृष्टि में वर्णाश्रमों का गुण, कर्म, स्वभाव द्वारा विभाग किया है ॥१२॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥

पदार्थः—(शोणः) वह तेजस्वी परमात्मा (वृषा) आनन्दों का वर्षक है (गा, अभि, कनिक्रदत्) लोकलोकान्तरों के समक्ष शब्दायमान होता हुआ (द्याम्) द्युलोक (उत) और (पृथिवीम्) पृथिवीलोक को (नदयन्) समृद्धि को प्राप्त करता हुआ (एति) विराजमान होता है (आजौ) धर्म विषय में जीवात्मा को (प्रचेतयन्) बोधन कराता हुआ (इमां, वाचम्) इस वेदरूपी वाणी को (अर्षति) प्राप्त होता है और उसका (वग्नुः) शब्द (इन्द्र इव) विद्युत् के समान (शृण्वे) सुना जाता है ॥१३॥

भावार्थः—सब आनन्दों की राशि एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये, उसी में चित्तवृत्ति का निरोध करके ब्रह्मानन्द का उपभोग करना चाहिये ॥१३॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपास्यमान आप (सन्तनिम्) अभ्युदय का (कृण्वन्) विस्तार करते हुए (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (एषि) प्राप्त होते हैं (पवमानः) सब को पवित्र करने वाले आप (पयसा रसाय्यः) आनन्दस्वरूप हैं सब प्रकार के अभ्युदयों से (पिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त आप (मधुमन्तमंशुम्) माधुर्य्ययुक्त अष्ट सिद्धियों को (ईरयन्) प्रेरणा करते हुए (एषि) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—अभ्युदय और निश्रेयस का प्रदाता एकमात्र परमात्मा ही है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि उसी परमात्मा को दृढ़ भक्ति से सब प्रकार के ऐश्वर्य और मुक्ति को लाभ करे ॥१४॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(मदिरः) हे आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! (मदाय) हमारे आनन्द के लिये आप (उग्राभस्य) अज्ञान के बादल को (वधस्नैर्नमयन्) अपने बाधक शस्त्रों से नम्र करते हुए (रुशन्तम्) दीप्तिवाले (गव्युः) ज्ञान को (नः) हमारे लिये (पर्वर्ध) प्रदान कीजिये। (सोम) हे सौम्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! (वर्णं भरमाणः) हममें योग्यता उत्पन्न करते हुए आप (परिसिक्तः) हमारे लिये ज्ञानप्रद हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग अनन्यभक्ति से परमात्मा का भजन करते हैं, परमात्मा उनके अज्ञान के बीज को छिन्न-भिन्न करके अवश्यमेव ज्ञान का प्रकाश करता है ॥१५॥

जुष्ट्वी नं इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पंवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वंग्दुरितानिं विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानौ अव्ये ॥१६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे स्वप्रकाश परमात्मन् ! आप (वरिवांसि) धनों का प्रदान (कृण्वन्) करते हुए (नः) हमारी (पवस्व) रक्षा करें, और (जुष्ट्वी) हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न हुए आप (सुपथा) सुन्दर मार्ग और (सुगानि) सरल वैदिक धर्म्म के रास्तों का उपदेश करें। (उरौ) विस्तीर्ण (सानौ, अव्ये) रक्षा के पथ में (विष्वग्दुरितानि) विषम से विषम पापों को (घना इव) बादलों के समान (विघ्नन्) नाश करते हुए (ष्णुना) अपनी आनन्दमय धाराओं से (अधिधन्व) प्राप्त हों ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा का प्रीति से सेवन करते हैं अर्थात् सर्वोपरि प्रिय एकमात्र परमात्मा ही जिन को प्रतीत होता है, वे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी होकर इस संसार में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरते हैं ॥१६॥

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिंगत्नुमिळांवतीं शङ्गयीं जीरदांनुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये आप (दिव्याम्) दिव्य (वृष्टिम्) वृष्टि (अर्ष) दें, जो वृष्टि (जिगत्नुं) सर्वत्र व्याप्त हो, (इळावतीम्) अन्नवाली हो, (शङ्गयीम्) सुखप्रद हो, (जीरदानुम्) शीघ्र ऐश्वर्य के देनेवाली हो और तुम (वीता, स्तुका, इव) सुन्दर सन्तानों के समान (विचिन्वन्) उत्पन्न करते हुए (इमान्, बन्धून्) इस बन्धुगण को (अवरान्) जो देशदेशान्तरों में स्थिर हैं, और (वायून्) वायु के समान गतिशील हैं, उनको (धन्व) आकर प्राप्त होओ ॥१७॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मा स्वस्वकर्मानुकूल ऊँच नीच गति प्रदान करता है, तथापि वह सन्तानों के समान जीवमात्र की भलाई चाहता है। इसलिये कर्मों द्वारा सुधार करके सबको शुभमार्ग में प्रेरित करता है ॥१७॥

Scanned by CamScanner

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ग्रथितम्) बद्धपुरुषों के (पुनानः) मुक्तिदाता आप (नः) हमारे (ग्रन्थिम्) बन्धन को (विष्य) मोचन करें (च) और (गातुम्) हमारे मार्ग को (ऋजुम्) सरल करें। (सोम) हे परमात्मन् ! (च) तथा (वृजिनम्) हमको बल प्रदान करें (अत्यो न) विद्युत् की शक्ति के समान (क्रदः) आप शब्दायमान हैं (आ, सृजानः) उत्पत्तिकाल में सबके स्रष्टा हैं, और प्रलयकाल में (हरिः) सबके हरणकर्त्ता हैं। (देव) हे देव ! (पस्त्यवान्) अन्यायकारी शत्रुओं के (मर्यः) आप नाशक हैं, (धन्व) आप हमारे अन्तःकरणों को शुद्ध करें ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा स्वभाव से न्यायकारी है वह आप उपासकों के अन्तःकरण को शुद्धि प्रदान करता है। और अनाचारियों को रुद्ररूप से विनाश करता हुआ इस संसार में धर्म और नीति का स्थापन करता है ॥१८॥

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा (सुरभिरदब्धः) किसी से न दबाये जानेवाला (वाजसातौ) यज्ञ में (नृषह्ये) जो मनुष्यों के तपोबल का वर्धक है और (अव्ये) सब का रक्षक है (सानो) रक्षारूप उच्च शिखर पर (ष्णुना) अपने प्रवाह से (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तुम (धन्व, पवस्व) हमको पवित्र करो, क्योंकि आप (देवताते) विद्वानों के विस्तृत यज्ञ में (मदाय) आनन्द को (जुष्टः) प्रीति से सेवन करनेवाले हैं ॥१९॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उनकी सदैव रक्षा करता है ॥१९॥

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥

पदार्थः—(आजौ) ज्ञानयज्ञों में जो विद्वान् (ससृजानासः) दीक्षित किये गये हैं (अत्यासः) विद्युत् के (न) समान जो (अयुक्ताः) बन्धनरहित हैं, (अरश्मानः) जीवन्मुक्त होते हुए ये जो (अरथाः) कर्मों के बन्धनों से रहित हैं (एते शुक्रासः) उन

तेजस्वी विद्वान् (धन्वन्ति) अव्याहतगति होकर सर्वत्र विचरते हैं। (सोमाः) सौम्य (देवासः) परमात्मा जो दिव्य के गुण कर्म स्वभाव हैं (तान्) उनको, (पिबध्वै, उप-यात) विद्वानों से प्रार्थना है कि आप लोग परमात्मा के उक्त गुणों को सेवन करने का प्रयत्न करें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने का उपदेश है अर्थात् परमात्मा के गुणों के धारण करने से पुरुष पवित्र और तेजस्वी हो जाता है ॥२०॥

एवा नं इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (नः) हमारे (देववीतिम्, अभि) यज्ञ के प्रति (परिस्रव) ज्ञान की वृष्टि करें और (चमूषु) हमारे क्षेत्ररूप यज्ञों में (नभः) नभोमण्डल से (अर्णः) जल की वृष्टि करें, (सोमः) सोमगुणसम्पन्न आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (काम्यम्) कमनीय (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (ददातु) दें और वह धन (उग्रं वीरवन्तम्) उग्र वीरों की सम्पत्तिवाला हो ॥२१॥

भावार्थः—जो लोग अनन्यभक्ति से ईश्वर की उपासना करते हैं, ईश्वर उनको अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥२१॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२॥

पदार्थः—(क्षोरनीके, धर्मणि) वैदिकधर्म में (वेनतो मनसः) अत्यन्त कान्ति-वाले मन की (वाक्) वाणी (तक्षत्) आत्मा का संस्कार करती है (यदि वा) अथवा (गावः) इन्द्रियां (इन्दुम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का, जो (पतिम्) लोकलोकान्तरों का पति है (वरम्) वरणीय है (जुष्टम्) जो सबका प्रेमपूर्वक उपासनीय है (कलशे) अन्तःकरण में (ईम्)उक्त परमात्मा को (आयन्) आते हुए को (वावशानाः) ग्रहण करके (आत्) तदनन्तर तुरन्त ही साक्षात्कार करती हैं ॥२२॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ द्वारा मन का संस्कार करते हैं उनका शुद्ध मन परमात्मा के ज्ञान को लाभ करता है ॥२२॥

प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सुमेधाः**) स्वप्रकाश परमात्मा (**ऋतम्**) सच्चाई को (**ऋताय**) कर्मयोगी के लिये (**पवते**) पवित्र करता है, वह परमात्मा (**दानुपिन्वः**) जिज्ञासुओं को धनदानादिकों से पुष्ट करनेवाला है, (**दिव्यः**) दिव्य है, (**दानुदः**) सब दाताओं का दाता है, वह (**धर्माभुवत्**) सब धर्मों को धारण करनेवाला है, (**वृजन्यस्य**) साधु-बल के धारण करनेवाला है, (**रश्मिभिर्दशभिः**) पांच सूक्ष्म पांच स्थूल भूतों की शक्तियों द्वारा (**भूम, प्रभारि**) इस चराचर जगत् को धारण कर रहा है और (**राजा**) सब लोकलोकान्तरों का प्रकाश करने वाला है ॥२३॥

भावार्थः—परमात्मा इस चराचर जगत् का निर्माण करनेवाला है उसी ने सम्पूर्ण संसार को रच कर धर्म की मर्यादा को बांधा है ॥२३॥

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥२४॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**चारु**) सुन्दर (**ऋतम्**) प्रकृतिरूपी सत्य को (**भरत्**) धारण किये हुए है, वह प्रकृतिरूपी सत्य (**सुभृतम्**) भलीभांति सब की तृप्ति का कारण है, उक्त परमात्मा (**रयीणाम्**) धनों का (**पतिः**) स्वामी है और (**द्विता**) जीव और प्रकृतिरूपी द्वैत के लिये (**भुवत्**) स्वामीरूप से विराजमान है, (**उत**) और (**मर्त्यानाम्**) साधारण मनुष्यों का और (**देवानाम्**) विद्वानों का (**राजा**) राजा है (**नृचक्षाः**) शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा है तथा (**पवित्रेभिः**) अपनी पवित्र शक्तियों से (**पवमानः**) पवित्रता देनेवाला है ॥२४॥

भावार्थः—परमात्मा ने प्रकृतिरूपी परिणामी नित्य और जीवरूपी कूटस्थ नित्य द्वैत को धारण किया है। इस प्रकार जीव और प्रकृति का परमात्मा से भेद है। इस विषय का वर्णन वेद के कई एक स्थानों में अन्यत्र भी पाया जाता है। जैसा कि 'न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकम् अन्तरं बभूव' (तुम उसको नहीं जानते जिसने इस संसार को उत्पन्न किया है, वह तुमसे भिन्न है। इस मन्त्र में द्वैतवाद का वर्णन स्पष्ट रीति से पाया जाता है ॥२४॥

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥

पदार्थः--(**सोम**) हे परमात्मन् ! आप (**सहस्रा**) सहस्रों प्रकार के (**बृहतीः**) बड़े-बड़े (**इषः**) ऐश्वर्यों के (**दाः**) देनेवाले (**भव**) हो, क्योंकि आप (**द्रविणोवित्**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों के जाननेवाले हैं। इसलिये (**पुनानः**) ऐश्वर्यों द्वारा पवित्र करते

Scanned by CamScanner

हुए (अर्वा इव) गतिशील विद्युत् के समान (श्रवसे) ऐश्वर्य्य के लिये (सातिम्) यज्ञ को (अच्छ) हमारे लिये दें। और (इन्द्रस्य) कर्मयोगी को और (वायोरभि) ज्ञानयोगी को (वीतिम्) ज्ञान (अर्ष) दें (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (नः) हमको ज्ञानप्रदान से पवित्र करें ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी को नानाप्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इस लिये मनुष्य को चाहिये कि वह ज्ञानयोग का सम्पादन करे ॥२५॥

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।

आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६॥

पदार्थः—(देवाव्यः) विद्वानों को ज्ञान द्वारा तृप्त करनेवाला परमात्मा और (आयज्यवः) यजनशील (विश्ववाराः) सबका उपास्यदेव (होतारः) होताओं के (न) समान (दिवि यजः) द्युलोक में सूर्य्यादि अग्निपुञ्जों के द्वारा यज्ञ करनेवाला (मन्द्रतमाः) आनन्दस्वरूप, उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा (परिषिच्यमानाः) उपासना किया हुआ (सोमाः) सौम्यस्वभाव परमात्मा (सुवीरम्) सुवीर सन्तान और (क्षयम्) निवास स्थान (धन्वन्तु) दें। [यहां बहुवचन आदर के लिये है] ॥२६॥

भावार्थः—सुसम्पत्ति तथा सुन्दर सन्तान एकमात्र पुण्यकर्मों से प्राप्त होती है इसलिये पुण्यात्मा बनकर पुण्यों का सञ्चय करना चाहिये ॥२६॥

एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।

महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥२७॥

पदार्थः—(देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन्! आप (देवपानः) विद्वानों मे प्रारम्भ किये हुए यज्ञ में (महे) जो सबसे बड़ा है, उसमें (सोम) हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! (प्सरसे) विद्वानों की तृप्ति के लिये (पवस्व) पवित्र करें, और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (सुष्ठाने) शोभन स्थान में (पुनानः) हमको पवित्र करते हुए आप (समर्ये) इस संसार के युद्धरूपी क्षेत्र में (हिताः) हितकर (कृधि) बनाएँ, (हि) क्योंकि आप (महश्चित्) बड़ी से बड़ी शक्तियों को (स्मसि) अनायास से (एव) ही धारण कर रहे हो ॥२७॥

भावार्थः—परमात्मा सब लोक-लोकान्तरों को अनायास से धारण कर रहा है। उसी सर्वाधार परमात्मा की सुरक्षा से पुरुष सुरक्षित रहता है, अतएव शुभ कर्म्म करते हुए एकमात्र उसी से सुरक्षा की प्रार्थना करनी चाहिये ॥२७॥

Scanned by CamScanner

अश्वो न क्रंदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (अर्वाचीनैः) आपके अभिमुख करनेवाले (पथिभिः) मार्गों से (ये) जो मार्ग (रजिष्ठाः) सरल हैं । उनके द्वारा (नः) हमको (सौमनसम्) संस्कृत मन देकर पवित्र करें आप (मनसो जवीयान्) मन के वेग से भी शीघ्रगामी हैं, [अर्थात्] मन के पहुँचने से पहिले वहां विद्यमान हैं । (सिंहः) सिंह के (न) समान भयप्रद हैं, (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (क्रदः) शब्दायमान हैं (वृषभिः) योगियों से (युजानः) जुड़े हुए हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा से मन की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनके मन को शुद्ध करके उन्हें शुभ बुद्धि प्रदान करता है ॥२८॥

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुर एतासि महतो धनस्य ॥२९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (सनित्रम्) उपासना के साधनरूप ऐश्वर्य्य को (दिवः) द्युलोक से देकर (आ पवस्व) हमको पवित्र करें, क्योंकि, (पुरः) प्राचीन काल से ही आप(महतो धनस्य) बड़े धनों के (एता) दाता(असि) हो, आप कैसे हैं । (शतधाराः) अनन्त ब्रह्माण्डों के (असृग्रन्) धारण करने वाले हैं । और (सहस्रम्) सहस्रों प्रकार की (एनाः) विभूतियां (मृजन्ति) आप को अलंकृत करती हैं, (देवजाताः)दिव्यशक्तिसम्पन्न (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् तुमको शुद्ध स्वरूप से वर्णन करते हैं ॥२९॥

भावार्थः—परमात्मा के ऐश्वर्य्य को सब लोक लोकान्तर वर्णन करते हैं, जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है वह परमात्मा की विभूति है अर्थात् यह सब चराचर जगत् परमात्मा के एकदेश में स्थिर है और परमात्मा इसको अपने में अभिव्याप्त करके सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है ॥२९॥

दिवो न सर्गा असमृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप हमको (अजीतिम्) अजयभाव देकर (पवस्व) पवित्र करें । (दिवः) द्युलोक से (न) जिस प्रकार (अह्नाम्) आदित्य की (सर्गाः) रश्मियां (असमृग्रम्) प्रचार पाती हैं इसी प्रकार परमात्मा की ज्योति में प्रकाशरूप

परमात्मा से प्रचार पाती हैं । और (न) जिस प्रकार (धीरः) धीर (राजा) प्रजा का स्वामी (मित्रम्) मित्ररूप प्रजा को (न प्रमिनाति) नहीं मारता इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी लोगों को (न प्रमिनाति) नहीं मारता, और (न) जिस प्रकार (यतानः) यत्नशील (पुत्रः) पुत्र (क्रतुभिः) यज्ञों के द्वारा (पितुः) पिता के ऐश्वर्य्य को चाहता है इसी प्रकार हम लोग आपके ऐश्वर्य सत्कर्मों द्वारा चाहते हैं। इसलिये (विशे) सन्तानरूप प्रजा को (आपवस्व) आप पवित्र करें ।।३०।।

भावार्थः—जो लोग परमात्मा से सन्तानों की शुद्धि की प्रार्थना करते हैं परमात्मा उनकी सन्तानों को अवश्यमेव शुद्धि प्रदान करता है ॥३०॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (गोनाम्) सब ज्योतियों का (धाम) निवासस्थान हैं और (जज्ञानः) आप अपने आविर्भाव से (अर्कैः) किरणों के द्वारा (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः) पुष्ट करते हैं और (ते धाराः) तुम्हारे आनन्द की लहरें (मधुमतीः) मीठी हैं, और (यत्) जब (पूतः) अपने पवित्र भाव से (अव्यान्) रक्षायुक्त पदार्थों को (अत्येषि) प्राप्त होते हो तब तुम्हारी उक्त धाराएं (प्रासृग्रन्) अनन्त प्रकार के भावों को उत्पन्न करती हैं, और आप (वारान्) वरणीय पदार्थों को (पवसे) पवित्र करते हैं ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की ज्योतियों का वर्णन है अर्थात् परमात्मा की दिव्य ज्योतियां सब पदार्थों को पवित्र करती हैं ॥३१॥

कनिक्रदद्नु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ऋतस्य) सच्चाई के (पन्थाम्) रास्ते का (कनिक्रदत्) उपदेश करते हुए (शुक्रः) बलस्वरूप आप (विभासि) प्रकाशमान हो रहे हो, आप (अमृतस्य धाम) अमृत के धाम हो (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवसे) पवित्र करते हैं, (मत्सरवान्) आप आनन्दस्वरूप हैं, (कवीनाम्) मेधावी पुरुषों की (वाचम्) वाणी को (मतिभिः) अपने ज्ञानों द्वारा (हिन्वानः) प्रेरणा करते हुए (पवसे) पवित्र करते हैं ॥३२॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञानयोगी व कर्मयोगी हैं परमात्मा उनके उद्योग को अवश्यमेव सफल करता है ॥३२॥

Scanned by CamScanner

दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**दिव्यः**) दिव्यस्वरूप हैं (**सुपर्णः**) चेतन हैं (**अवचक्षि**) आप हमको सदुपदेश करें, (**सोम**) हे सोम ! (**देववीतौ**) देवताओं के यज्ञ में (**कर्मणा**) रक्षा से (**पिन्वन्**) पुष्ट करते हुए आप (**धाराः**) अपनी कृपामयी वृष्टि से पुष्ट करें, (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**सोमधानम्**) सोमगुण के धारण करनेवाले (**कलशम्**) अन्तःकरण को (**विश**) प्रवेश करें । और (**सूर्यस्य रश्मिम्**) ज्ञान की रश्मियों का (**क्रन्दन्**) उपदेश करते हुए (**उप, एहि**) आकर प्राप्त हों ॥३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया है कि परमात्मा स्वतः ज्ञानस्वरूप है अर्थात् स्वतःप्रकाश है ॥३३॥

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३४॥

पदार्थः—(**वह्निः**) [वहतीति वह्निः] सर्वप्रेरक परमात्मा (**तिस्रो वाचः**)तीन प्रकार की वाणियों की (**प्रेरयति**) प्रेरणा करता है । उक्त वाणी (**ऋतस्य, धीतिम्**) सच्चाई को धारण करनेवाली है (**ब्रह्मणः**) शब्दब्रह्मरूपवेद का (**मनीषाम्**) मनरूप है ऐसी वाणी की उक्त परमात्मा प्रेरणा करता है, (**गोपतिम्**) जिस तरह प्रकाशों के पति सूर्य्य को (**गावः**) किरणें (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (**वावशानाः**) कामना वाले जिज्ञासु (**पृच्छमानाः**) जिनको ज्ञान की जिज्ञासा है । वैसे (**मतयः**) मेधावी लोग (**सोमम्**) परमात्मा को (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥३४॥-

भावार्थः—जो लोग अपने शील को बनाते हैं अर्थात् सदाचारी बनकर परमात्मपरायण होते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अपने ज्ञान से प्रदीप्त करता है ॥३४॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५॥

पदार्थः—(**सोमम्**) परमात्मा की (**गावो, धेनवः**) ज्ञानरूप वाणियां (**वावशानाः**)इच्छा करती हैं,(**सोमम्**) परमात्मा की (**विप्राः**) मेधावी लोग (**मतिभिः**)ज्ञान द्वारा (**पृच्छमानाः**) जिज्ञासा करते हैं (**अज्यमानः**) उपासना किया हुआ (**सुतः**) पावि-

Scanned by CamScanner

र्भव को प्राप्त हुआ (सोमः) परमात्मा (पूयते) साक्षात्कार किया जाता है (सोमे) उक्त परमात्मा में (त्रिष्टुभः) कर्म, उपासना, ज्ञानरूप तीनों प्रकार की वाणियां (अर्काः) जो परमात्मा की अर्चना करनेवाली हैं, वे (संनवन्ते) सङ्गत होती हैं ॥३५॥

भावार्थः—कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीनों प्रकार के भावों को वर्णन करनेवाली वेदरूपी वाणियां एकमात्र परमात्मा में ही संगत होती हैं अथवा यों कहो कि जिस प्रकार सब नदियां समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं इसी प्रकार वेदरूपी वाणियां परमात्मारूपी समुद्र की शरण लेती हैं ॥३५॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६॥

पदार्थः—(सोम) हे परमात्मन् ! (परिषिच्यमानः) उपासना किये हुए आप (नः) हमको (आ पवस्व) पवित्र करें, और (पूयमानः) शुद्धस्वरूप आप (स्वस्ति) मङ्गल वाणी से हमारा कल्याण करें, और (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (आविश) आकर प्रवेश करें तथा (बृहता रवेण) बड़े उपदेश से उसको (वर्धय) बढ़ाएँ और (पुरन्धिम्) ज्ञान के देनेवाली (वाचम्) वाणी को (जनय) उसमें उत्पन्न करें ॥३६॥

भावार्थः—जो लोग उपासना द्वारा परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, परमात्मा उन्हें अवश्यमेव शुद्ध करता है ॥३६॥

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥

पदार्थः—(चमूषु) सब प्रकार के बलों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोमः) सोमरूप परमात्मा (मतीनाम्) मेधावी लोगों के हृदय में (आसदत्) विराजमान होता है, वह परमात्मा (ऋता) सत्यस्वरूप है, (विप्रः) मेधावी है (जागृविः) ज्ञानस्वरूप है (यम्) जिस परमात्मा को (मिथुनासः) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी (निकामाः) जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, और (अध्वर्यवः) अहिंसारूपी व्रत को धारण किये हुए हैं, (रथिरासः) ज्ञानी और (सुहस्ताः) कर्मशील हैं, वे प्राप्त होते हैं ॥३७॥

भावार्थः—उक्त विशेषणोंवाले ज्ञानयोगी और कर्मयोगी परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥३७॥

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(स सोमः) वह उक्त परमात्मा अज्ञानों को (व्यावः) नाश करता है (न) जिस प्रकार (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में (सूरे) सूर्य्य के आश्रित (धाता) काल निवास करता है, इसी प्रकार सम्पूर्ण लोकलोकान्तर परमात्मा को आश्रय कर स्थिर होते हैं, इसी प्रकार परमात्मा (आप्राः) लोकलोकान्तरों का प्रचार करता है (चित्) और (सत्य) जिस परमात्मा के (प्रियाः) प्रेममय धाराएं (प्रियसासः) जो अत्यन्त प्रिय हैं (ऊती) जगद्रक्षा के लिये प्रचार पाती हैं (सः) वह (सोमः) परमात्मा हमको ऐश्वर्य्य प्रदान करे (न) जैसे कि धन का स्वामी (कारिणे) अपने भृत्य के लिये (धनम्) धन को (प्रयंसत्) देता है, इसी प्रकार परमात्मा हमको धन प्रदान करे ॥३८॥

भावार्थः—अविद्यान्धकार को परमात्मारूपी सूर्य्य ही निवृत्त करता है। भौतिक प्रकाश उस अन्धकार के निवृत्त करने के लिये समर्थ नहीं होता ॥३८॥

स व॑र्धि॒ता वर्ध॑नः पू॒यमा॑नः॒ सोमो॑ मी॒ढ्वाँ अ॒भि नो॒ ज्योति॑षावीत् ।
येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञाः स्व॒र्विदो॑ अ॒भि गा अद्रि॑मु॒ष्णन् ॥३९॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (वर्धिता) सबको बढ़ाने वाला है (वर्धनः) स्वयं वर्धमान है (पूयमानः) शुद्धस्वरूप है (सोमः) सौम्यस्वभाव है, (मीढ्वान्) सब कामनाओं की वृष्टि करता है, वह (ज्योतिषा) अपने ज्ञान द्वारा (नः) हमारी (अभ्यावीत्) रक्षा करे, और (येन) जिस परमात्मा से (नः) हमारे (पूर्वे) प्रथम सृष्टि के (पितरः) ज्ञानी लोग (पदज्ञाः) पदपदार्थ के जाननेवाले (स्वर्विदः) स्वतन्त्र सत्ता के जाननेवाले (अद्रिमुष्णन्) अपनी चित्तवृत्ति का निरोध करते हुए (अभिगाः) ज्ञान को लक्ष्य बनाकर उक्त परमात्मा की उपासना करते थे उसीभाव से हम भी उक्त परमात्मा की उपासना करें ॥३९॥

भावार्थः—पूर्वज लोग परमात्मा की जिस प्रकार की उपासना करते थे, उसी प्रकार की उपासनाओं का विधान इस मंत्र में किया गया है। तात्पर्य्य यह है कि "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादि मन्त्रों में जो इसे सृष्टिप्रवाहरूप से वर्णन किया है उसी भाव को यहां प्रकारान्तर से वर्णन किया है ॥३९॥

अक्रा॑न्त्समु॒द्रः प्र॑थ॒मे विध॑र्मञ्ज॒नय॑न्प्र॒जा भुव॑नस्य॒ राजा॑ ।
वृषा॑ प॒वित्रे॒ अधि॒ सानो॒ अव्ये॑ बृ॒हत्सोमो॑ वावृधे सुवा॒न इन्दुः॑ ॥४०॥

पदार्थः—[सम्यग् द्रवन्ति गच्छन्ति भूतानि यस्मात्स समुद्रः] परमात्मा। उससे सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है इसलिये उसका नाम समुद्र है वह (भुवनस्य) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का (राजा) स्वामी परमात्मा (प्रथमे) पहिला (विधर्मन्) जो नाना प्रकार के धर्म्मोंवाला अन्तरिक्ष है उसमें (प्रजाः) प्रजाओं को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सर्वोपरि होकर विराजमान है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सुवानः) सर्वोत्पादक (सोमः) सोमगुणसम्पन्न (बृहत्) जो सबसे बड़ा है, (वृषा) सब कामनाओं का देनेवाला है, वह (अव्ये) रक्षायुक्त (पवित्रे) पवित्र ब्रह्माण्ड के (सानौ) उच्च शिखर में (अधिवावृधे) सर्वव्यापकरूप से विराजमान हो रहा है ॥४०॥

भावार्थः—सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला परमात्मा अन्तरिक्ष में सर्वोपरि विराजमान है। वही सबकी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। अतः वह उपास्य है ॥४०॥

म॒हत्तत्सोमो॑ महि॒षश्च॑कारा॒पां यद्गर्भोऽवृ॑णीत दे॒वान् ।
अद॑धा॒दिन्द्रे॒ पव॑मान॒ ओजोऽज॑नय॒त्सूर्ये॒ ज्योति॒रिन्दुः॑ ॥४१॥

पदार्थः—(इन्दुः) जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्ये) भौतिक सूर्य में (ज्योतिः) प्रकाश को (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला वह परमात्मा (इन्द्रे) कर्मयोगी के लिये (ओजः) ज्ञानप्रकाशरूपी बल (अदधात्) धारण कराता है और (महिषः) महान् (सोमः) सोम (तत्, महत्) उस बड़े काम को (चकार) करता है (यत्) जो (अपाम्) वाष्परूप प्रकृति के अंशों में (देवान्) सूर्यादि दिव्य पदार्थों के (गर्भः) उत्पत्तिरूप गर्भ से (अवृणीत) वरण किया गया है ॥४१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सूर्य्यादिकों के प्रकाशकरूप से वर्णन किया है। इसी अभिप्राय से उपनिषद्कार ऋषियों ने परमात्मा को सूर्य्यादिकों का प्रकाशक माना है ॥४१॥

मत्सि॑ वा॒युमि॒ष्टये॒ राध॑से च॒ मत्सि॑ मि॒त्रावरु॑णा पू॒यमा॑नः ।
मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं॒ मत्सि॑ दे॒वान्मत्सि॒ द्यावा॑पृथि॒वी दे॑व सोम ॥४२॥

पदार्थः—(पूयमानः) वह शुद्धस्वरूप परमात्मा (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक को (राधसे) धन के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है (च) और (वायुम्) कर्मयोगी को (इष्टये) यज्ञादि कर्मों के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है, और (मारु-

तम्) विद्वानों के गण को (शर्धः) बल के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है, और (देवान्) विद्वानों को (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक की विद्या के लिये (मत्सि) उत्साहित करता है। (देव) उक्त दिव्यस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप उक्त प्रकार से पूर्वोक्त अधिकारियों को (मत्सि) उत्साहित करते हैं ॥४२॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगियों के हृदय में सर्वदा उत्साह उत्पन्न करता है जिस प्रकार सूर्य्य चक्षु वाले लोगों का प्रकाशक है इसी प्रकार अनुद्योगी परमालसियों के लिये परमात्मा उद्योगदीपक नहीं ॥४२॥

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥

पदार्थः—(ऋजुः) शान्तभाव से शासन करनेवाले आप (वृजिनस्य) अज्ञानरूप वृजिन दोष के (हंता) हनन करनेवाले हैं, (अमीवां) सब प्रकार की व्याधियों को (अपसारय) दूर करें, (च) और (मृधः) दुष्ट हिंसकों को (बाधमानः) दूर करते हुए आप (गोनाम्) इन्द्रियों की (पयसा) तृप्तिकारकवृत्ति द्वारा (पयः) ज्ञान को लक्ष्य करके (अभिश्रीणन्) आप लक्ष्य बनाए जाते हैं (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के मित्र हैं इसलिये (वयं, तव, सखायः) हम तुम्हारी मैत्री चाहते हैं ॥४३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सब दुःखों के दूर करनेवाले परमात्मा से दुःखनिवृत्ति की प्रार्थना है, अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक उक्त तीनों प्रकार के तापों की निवृत्ति परमात्मा से कथन की गयी है। सायणाचार्य्य 'ऋजुः पवस्व' के अर्थ यहां सोमरस के सीधा होकर बहने के करते हैं। अर्थात् क्षर के करते हैं सो (पूञ् पवने) धातु के सर्वत्र अयुक्त है ॥४३॥

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥

पदार्थः—(इन्दो) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (मध्वः सूदम्) मधुरता के रसों को (आपवस्व) हमको दें (वस्वः) धनों के (उत्सम्) उपयोगी ऐश्वर्यों को आप हमें दें और (वीरम्) वीरसन्तानों को आप (नः) हमें (आपवस्व) दें, (च) और (भगम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य्य आप हमें दें (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (स्वदस्व) आनन्द देकर (पवमानः) पवित्र करते हुए (रयिम्) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को आप (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (आपवस्व) हमको दें ॥४४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी अर्थात् उद्योगी पुरुषों पर प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह उद्योगी बनकर परमात्मा के ऐश्वर्य्य का अधिकारी बने ॥४४॥

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक (**सुतः**) स्वयंसिद्ध जो परमात्मा है वह (**धारया**) अपनी स्वतःसिद्ध शक्तियों के द्वारा (**अत्यः**) विद्युत् के समान (**सम्**) भलीप्रकार (**हित्वा**) गतिशील होता हुआ (**सिन्धुः**) स्यन्दनशील नदी के (**न**) समान (**निम्नम्**) नीचे की ओर (**वाजी**) बलस्वरूप उक्त परमात्मा (**वन्यम्**) अभियुक्त (**योनिम्**) अन्तःकरणरूप स्थान को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**असदत्**) स्थिर होता है, वह (**इन्दुः**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (**न**) भक्तों के प्रति (**अभ्यक्षाः**) रक्षा करता है (**गोभिः**) इन्द्रियों की वृत्तियों द्वारा (**अद्भिः**) जो प्रेम के प्रवाह से अन्तःकरण को सिञ्चित करती हैं, उनसे (**समसरत्**) ज्ञानरूप से व्याप्त होता है ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार से यह वर्णन किया है कि परमात्मा नम्र स्वभाववाले पुरुषों को निम्न भूमि के समान सुसिञ्चित करता है ॥४५॥

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे कर्मयोगिन् ! (**ते**) तुम्हारे लिये (**एषः, स्यः**) वह उक्त परमात्मा (**पवते**) पवित्र करता है (**यः**) जो (**सोमः**) सौम्यस्वभाव (**चमूषु**) सब प्रकार के बलों में (**धीरः**) धीर है और (**उशते**) कान्तिवाले कर्मयोगी के लिये (**तवस्वान्**) बलस्वरूप है (**स्वर्चक्षाः**) सुख का उपदेष्टा (**रथिरः**) गतिस्वरूप (**सत्यशुष्मः**) सत्यरूप बल वाला और (**देवयताम्**) देवभाव की इच्छा करनेवालों के लिये जो (**कामः**) कामना के समान (**असर्जि**) उपदेश किया गया ॥४६॥

भावार्थः—परमात्मा ही सब कामनाओं का मूल है। जो लोग ऐश्वर्य्य की कामना वाले हैं उनको चाहिये कि वे कर्मयोगी और उद्योगी बनकर उससे ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति के अभिलाषी बनें ॥६॥

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥४७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (प्रत्नेन वयसा) प्राचीनैश्वर्य्यं से (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) पृथिवी के (वपींसि) रूपों को (तिरोदधानः) अपने तेज से आच्छादन करता हुआ (शर्म) सुख को (वसानः) धारण करता हुआ (त्रिवरूथम्) सत्व रजः तमोरूप तीनों गुणों वाली प्रकृति को धारण करते हुए (अप्सु) कर्म-यज्ञों में यज्ञ करने वाले (होता, इव) होता के समान (समनेषु) यज्ञों में (रेभन्) शब्दायमान होता हुआ परमात्मा (याति) सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ॥४७॥

भावार्थः—जिस प्रकार होता अथवा उद्गातादि ऋत्विज् लोग वेदों का गायन करते हुए इस विविध रचनारूप विराट्का वर्णन करते हैं इसी प्रकार परमात्मा स्वयं उद्गातारूप होकर वेदरूप गीति के द्वारा चराचर ब्रह्माण्डों का वर्णन करता है अर्थात् प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा इस चराचर जगत् की विविध रचना का हेतु एक मात्र परमात्मा ही है, कोई अन्य नहीं ॥४७॥

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तुम (रथिरः) बलस्वरूप हो (चम्वोः) सब भुवनों को (पूयमानः) पवित्र करते हुए (अप्सु) जलों में (मधुमान्) मीठा (स्वादिष्ठः) स्वादुरस (ऋतावा) वितीर्ण करते हुए (देवः) दिव्यशक्ति के (न) समान (नु) शीघ्र (नः) हमारे लिये (सत्यमन्मा) सत्यस्वरूप आप हमारे अन्तःकरण में आकर (परिस्रव) विराजमान हों ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से स्वस्वामिभाव की प्रार्थना की गई अथवा यों कहो प्रेर्य और प्रेरक भाव से परमात्मा की उपासना की गई है ॥४८॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥४९॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (वायुम्) ज्ञानयोगी की (वीती) तृप्ति के लिये (अभ्यर्ष) प्राप्त हों (गृणानः) उपास्यमान आप (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक को (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (पूयमानः) सबको पवित्र करते हुए आप (धीजवनं, नरम्) कर्मयोगी पुरुष को (अभ्यर्ष) प्राप्त हों, (रथेष्ठाम्) जो कर्मों की गति स्थिर है, उसको प्राप्त हों, (वज्रबाहुम्) वज्र के समान भुजाओं वाले (इन्द्रं) योद्धा पुरुष को, (वृषणम्) जो बलस्वरूप है, उसको प्राप्त हों ॥४९॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति के पात्र ज्ञानयोगी कर्मयोगी और शूरवीरों का वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष परमात्मा की कृपा का पात्र बनना चाहे उसे स्वयं उद्योगी वा कर्मयोगी अथवा शूरवीर बनना चाहिये क्योंकि परमात्मा स्वयं बलस्वरूप है इस लिये जो बलिष्ठ पुरुष हैं वे उस की कृपा का पात्र बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥४९॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५०॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! तृप्ति के लिये (वस्त्रा, सुवसनानि) शोभन वस्त्र (अभ्यर्ष) दें (पूयमानः) सब को पवित्र करते हुए आप (सुदुघाः) सुन्दर अर्थों से परिपूर्ण (धेनूः) वाणियां (अभ्यर्ष) हम को दें, (चन्द्रा, हिरण्या) आल्हादक धन आप (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें, (रथिनः) वेगवाले (अश्वान्) घोड़े (नः) हमको (अभ्यर्ष) दें ॥५०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पुनरपि ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना है कि हे परमात्मन् ! आप हम को ऐश्वर्यशाली बनने के लिये ऐश्वर्य प्रदान करें, पुनः-पुनः ऐश्वर्य की प्रार्थना करना अर्थपुनरुक्ति नहीं, किन्तु अभ्यास अर्थात् दृढ़ता के लिये उपदेश है जैसा कि "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यादिकों में वार-वार चित्तवृत्ति का लगाना परमात्मा में कथन किया गया है। इसी प्रकार यहां भी दृढ़ता के लिये उसी अर्थ का पुनः-पुनः कथन है जो अज्ञानियों को वेद में पुनरुक्ति दोष प्रतीत होता है। वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं यह केवल अज्ञानियों की भ्रान्ति है ॥५०॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पूयमानः) शुद्धस्वरूप आप (दिव्या, वसूनि) दिव्य धन (नः) हमें (अभ्यर्ष) दें, (विश्वा, पार्थिवा) सम्पूर्ण पृथिवी सम्बन्धी धन आप (नः) हमें दें (जमदग्निवत्) चक्षु की दिव्य दृष्टि के समान (येन) जिस सामर्थ्य से हम (आर्षेयम्) ऋषियों के योग्य (द्रविणम्) धन को (अश्नवाम) भोग सकें, वह सामर्थ्य आप (नः) हम को दें ॥५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से भोक्तृत्वशक्ति की प्रार्थना की गई है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष स्वामी होकर ऐश्वर्यों को भोग सकता है

Scanned by CamScanner

वही ऐश्वर्य्यसम्पन्न कहलाता है अन्य नहीं । इसी अभिप्राय से उपनिषदों में अन्नाद अर्थात् ऐश्वर्य्यों के भोक्ता होने की प्रार्थना की गई है ॥५१॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥५२॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अया) इस (पवा) पवित्र करने वाली वृष्टि से (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (एना) यह (वसूनि) धन आप हमको दें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मांश्चत्वे, सरसि) वाणी के समुद्र में आप हम को (प्रधन्व) प्रेरणा करके स्नातक बनाएं, और (वातः) कर्मयोगी के (न) समान (जूतः) गतिशील बनाते हुए आप (अत्र) उक्त विज्ञान विषय में (ब्रध्नः) प्रामाणिक (चित्) और (पुरुमेधः) बहुत बुद्धिवाला बनाएं (चित्) और (तकवे) संसार की गति में (नरम्) कर्मयोगी सन्तान (दात्) मुझे दें ॥५२॥

भावार्थः—जो लोग उक्त प्रकार से शक्तिसम्पन्न होने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यसम्पन्न बनाता है ॥५२॥

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।

षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३॥

पदार्थः—(उत) और (एना) इस (पवया) पवित्र दृष्टि से (श्रवाय्यस्य) जो सब के सुनने के योग्य (श्रुते) श्रवण हैं और (तीर्थे) तीर्थस्वरूप है उसमें (अधि) अत्यन्त (पवस्व) आप हम को पवित्र करें ताकि, हम (नैगुतः) शत्रुओं के (षष्टि, सहस्रा, वसूनि) असंख्यात धनों को हरण करते हुए (पक्वम्) पके हुए (वृक्षम्) वृक्ष के (न) समान (रणाय) रण के लिये (धूनवत्) उनको कँपाते हुए संसार में यात्रा करें ॥५३॥

भावार्थः—जो लोग उक्त प्रकार से कर्मयोगी वा उद्योगी बनते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव अविद्यारूपी शत्रुओं के हनन करने का सामर्थ्य देता है ॥५३॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।

अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४॥

पदार्थः—(वधत्रे) वध करने वाले (पृशने) युद्ध में (मांश्चत्वे) जिनमें गतिशील शक्तियों का उपयोग किया जाता है उनमें (महि) बड़े (इमे) यह (अस्य) इस

परमात्मा के (वृषनाम) दो काम (शूषे) सुखकर हैं (निगुतः) शत्रुओं को (अस्वापयत्) सुलादेना (च) और (अपमित्रान्) अमित्रों को (स्नेहयत्) स्नेह प्रदान करना (वा) और (अचितः) जो लोग परमात्मा की भक्ति नहीं करते अर्थात् नास्तिक हैं, उनको (इतः) इस आस्तिक समाज से (अपाच) दूर करना ।।५४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में आस्तिक धर्म के प्रचार करने के लिये अर्थात् वैदिक धर्म की शिक्षाओं के लिये तेजस्वी भावों का वर्णन किया है ।।५४।।

सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।

असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ।।९५।।

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (त्री) तीन (विततानि) विस्तृत (पवित्रा) पवित्र पदार्थों को (सम्) भली प्रकार (एषि) प्राप्त हैं, और (पूय-मानः) सबको पवित्र करते हुए (अन्वेकम्) प्रत्येक पदार्थ में (धावसि) गतिरूप से विराजमान हैं (भगः) आप ऐश्वर्य्यस्वरूप (असि) हैं, (दात्रस्य) धन के (दाता) देने वाले (असि) हैं, क्योंकि आप (मघवद्भ्यः) सम्पूर्ण धनिकों से (मघवा) धनी हैं ।।५५।।

भावार्थः—परमात्मा सब ऐश्वर्य्यों का स्वामी है और सब धनिकों से धनी है इसलिये उसी की कृपा से सब ऐश्वर्य्यों की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ।।५५।।

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।

द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ।।९६।।

पदार्थः—(एषः) उक्त परमात्मा (विश्ववित्) सर्वज्ञ है (पवते) सब को पवित्र करने वाला है, (मनीषी) सूक्ष्म से सूक्ष्म शक्तियों का प्रेरक है, (सोमः) वह सर्वो-त्पादक परमात्मा (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) लोकों का (राजा) प्रकाशक है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (विदथेषु) ज्ञानयज्ञों में (द्रप्सान्) ज्ञानों की (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (अव्यम्) रक्षायोग्य (वारम्) वरणीय पुरुष को (सम-याति, याति) अति संनिहित प्राप्त होता है ।।५६।।

भावार्थः—जो परमात्मज्ञान के अधिकारी हैं परमात्मा उन्हीं को प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं ।।५६।।

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।

हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ।।५७।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**इन्दुम्**) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (**प्रवव्रयः**) दृढ़ प्रतिज्ञावाले (**महिषाः**) जो सद्‌गुणों के प्रभाव से महापुरुष हैं, वे (**रिहंति**) प्राप्त होते हैं, (**न, गृध्राः**) निष्कामकर्मी (**कवयः**) विद्वान् (**पदे**) ज्ञानरूपी यज्ञ की वेदी में (**रेभन्ति**) जैसे शब्दायमान होते हैं, (**धीराः**) धीर लोग (**दशभिः**) दश (**क्षिपाभिः**) प्राणों की गति से (**प्रपाम्**) सत्कर्मों के (**रसेन**) परिपाक से (**रूपम्**) उक्त परमात्मा के स्वरूप को (**समञ्जते**) साक्षात्कार करते हैं ॥५७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायाम के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है ॥५७॥

त्वया॑ व॒यं पव॑मानेन सोम॒ भरे॑ कृ॒तं वि चि॑नुयाम॒ शश्व॑त् ।

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥५८॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**पवमानेन**) पवित्र करने वाले (**त्वया**) आप की सहायता से (**वयम्**) हम लोग (**भरे**) अज्ञान की वृत्तियों को नाश करने वाले सङ्ग्राम में (**कृतम्**) सत्कर्मों का (**शश्वत्**) निरन्तर (**विचिनुयाम**) संग्रह करें, (**तत्**) इसलिये (**मित्रः, वरुणः**) अध्यापक और उपदेशक, (**अदितिः**) अज्ञान के खण्डन करने वाला विद्वान् (**सिन्धुः**)समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) द्युलोक; ये सब पदार्थ (**ममहंताम्**) मेरे अनुकूल होकर मुझे पूज्य बनाएं ॥५८॥

भावार्थः—जो लोग सदाचारी अध्यापकों वा उपदेशकों द्वारा परमात्मज्ञान की शिक्षा पाते हैं वे अवश्यमेव अज्ञान को नाश करके ज्ञानरूपी प्रदीप से प्रदीप्त होते हैं ॥५८॥

नवम मण्डल में यह सतानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य १—१२ अम्बरीष ऋजिष्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् ३, ५, ९ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ११ निचृद्बृहती ॥ स्वरः—१—१०, १२ गान्धारः । ११ मध्यमः ॥

अ॒भि नो॑ वाज॒सात॑मं र॒यिम॑र्ष पुरु॒स्पृह॑म् ।

इन्दो॑ स॒हस्र॑भर्णसं तुविद्यु॒म्नं वि॑भ्वा॒सह॑म् ॥१॥

पदार्थः—(**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**सहस्रभर्णसम्**) अनेक प्रकार का पालन-पोषण करने वाला (**पुरुस्पृहम्**) जो सबको अभिलषित है (**वाजसातमम्**)

जो अनन्त प्रकार के बलों का देने वाला है, (रयिम्) ऐसे धन को (नः) हमारे लिये (अभ्यर्ष) आप दें, (तुविद्युम्नम्) जो अनन्त प्रकार के यशों का देनेवाला और (विश्वसहम्) सब तरह की प्रतिकूल शक्तियों को दबा देने वाला है, इस प्रकार का धन आप दें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अक्षय धन की प्राप्ति का वर्णन है ॥१॥

परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।

इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥२॥

पदार्थः—(स्यः) वह पूर्वोक्त (सुवानः) सर्वोत्पादक परमात्मा (अव्ययम्) रक्षा-युक्त पुरुष को (धाराभिः) अपनी कृपामयी वृष्टि से (अक्षाः) रक्षा करता है (न) जैसे कि, (रथे) कर्मयोग में स्थित विद्वान् को (वर्म) कर्मयोग (पर्य्यव्यत) सब ओर से रक्षा करता है (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (अभिद्रुणा) उपासना किया हुआ और (हियानः) ज्ञानस्वरूप (हितः) साक्षात्कार किया हुआ मनुष्य की बुद्धि की रक्षा करता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार मनुष्य को सर्वथा सुरक्षित करता है ॥२॥

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।

धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥३॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (मदच्युतः) जो आनन्दमय है वह (अव्ये) रक्षायोग्य सत्कर्मी पुरुष के अन्तःकरण में (पर्य्यक्षाः) अपना ज्ञानप्रवाह बहाता है, (स्यः) वह (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान परमात्मा (यः) जो (अध्वरे) अहिंसाप्रधान यज्ञों में (धारा) अपनी आनन्दमयी वृष्टि से (न) जैसे कि, (भ्राजा) दीप्ति अपने प्रकाश्य पदार्थों में दीप्ति डालती है इसी प्रकार (गव्ययुः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (सुवानः)जो सर्वोत्पादक है (एति) वह अपनी व्याप्त सत्ता से सर्वत्र व्याप्त है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा विद्युत् की दीप्ति के समान सर्वत्र परिपूर्ण है ॥३॥

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।

इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥४॥

पदार्थः—(**देव**) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (**स, त्वम्**) पूर्वोक्त आप (**मर्ताय, दाशुषे**) जो आपकी उपासना में लगा हुआ पुरुष है (**शाश्वते**) निरन्तर कर्मयोगी है उसके लिये (**वसु**) धन (**सहस्रिणम्**) जो अनन्त प्रकार के ऐश्वर्य्योंवाला है (**शतात्मानम्**) जिसमें अनन्त प्रकार के बल हैं (**रयिम्**) ऐसे धन को (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**विवाससि**) आप प्रदान करें ॥४॥

भावार्थः—सामर्थ्ययुक्त पुरुष को परमात्मा ऐश्वर्य्य प्रदान करता है इसलिये ऐश्वर्य्यसम्पन्न होना परमावश्यक है ॥४॥

व॒यं ते॑ अ॒स्य वृ॑त्रह॒न्वसो॒ वस्वः॑ पुरु॒स्पृहः॑ ।
नि नेदि॑ष्ठतमा इ॒षः स्याम॑ सु॒म्नस्या॑ध्रिगो ॥५॥

पदार्थः—(**वृत्रहन्**) हे अविद्याविनाशक परमात्मन् ! [यदवृणोत्तद्वृत्रम-ज्ञानम् नि० २ । १८ ।] (**वयम्**) हम (**अस्य ते**) आप के (**स्याम**) वशवर्त्ती हों (**वसो**) हे सर्वाधार परमात्मन् ! (**वस्वः**) आप सब प्रकार के ऐश्वर्य्यों के स्वामी हैं, (**पुरुस्पृहः**) सब के उपास्यदेव हैं (**नि, नेदिष्ठतमाः**) आप सर्वान्तर्यामी हैं, (**अध्रिगो**) हे ज्ञानगमन परमात्मन् ! आप (**इषः**) ऐश्वर्य्यों के और (**सुम्नस्य**) सुख के भोक्ता हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना द्वारा मनुष्य अविद्या को नाश करके विद्या का प्रकाश करता है ॥५॥

द्विर्यं पञ्च॒ स्वय॑शसं॒ स्वसा॑रो॒ अद्रि॑संहतम् ।
प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्यं॑ प्रस्ना॒पय॑न्त्यू॒र्मिण॑म् ॥६॥

पदार्थः—(**यम्, ऊर्मिणम्**) जो ज्ञानस्वरूप है तिस परमात्मा को (**द्विः पञ्च**) दश (**स्वसारः**) इन्द्रियवृत्तियां अथवा दश प्राण (**प्रस्नापयन्ति**) साक्षात्कार करते हैं (**स्वयशसम्**) जिसका स्वाभाविक यश है (**अद्रिसंहतम्**) जो ज्ञानरूपी चित्तवृत्ति का विषय है (**इन्द्रस्य प्रियम्**) और जो कर्मयोगी का प्रिय है (**काम्यम्**) कमनीय है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्राणायामादि विद्या द्वारा अथवा यों कहो कि चित्तवृत्तियों द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन किया है ॥६॥

परि॒ त्यं ह॑र्य॒तं हरिं॑ ब॒भ्रुं पु॑नन्ति॒ वारे॑ण ।
यो दे॒वान्विश्वाँ॒ इत्परि॒ मदे॑न स॒ह गच्छ॑ति ॥७॥

पदार्थः—(**त्यम्**) उक्त परमात्मा (**हरिम्**) जो अनन्त प्रकार की सृष्टि का

उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता है (हर्यतम्) जो सर्वप्रिय है (बभ्रुम्) ज्ञानस्वरूप है (वारेण) वरणीय से वरणीय पदार्थों द्वारा जिसकी उपासना करते हैं और (यः) जो (विश्वान्) सब (देवान्) विद्वानों को (इव) ही (मदेन) परमानन्द के (सह) साथ (परि पुनन्ति) पवित्र करता है (परि गच्छति) वह सर्वत्र प्राप्त है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा का स्वातन्त्र्य वर्णन किया है ॥७॥

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्व१र्ण हर्यतः ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (सूरिषु) कर्मयोगियों में (बृहत्) बड़े (श्रवः) ऐश्वर्य्य को (दधे) धारण करता है (हि) क्योंकि (अस्य) उक्त परमात्मा की (अवसा) रक्षा द्वारा (वः) आप लोग (पान्तः) उसके आनन्द का पान करें, जो आनन्द (दक्षसाधनम्) सब प्रकार के चातुर्य्यों का मूल है और (स्वः) सूर्य के (न) समान (हर्यतः) अज्ञान के नाशक परमात्मा का स्वभावभूत गुण है ॥८॥

भावार्थः—उस परमात्मा के सर्वोत्तम स्वादुमय आनन्द को कर्मयोगी ही पा सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह उक्त परमात्मा (वाम्) तुम कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों के (यज्ञेषु) यज्ञों में (जनिष्ट) शुभ फलों को उत्पन्न करता है इसलिये (मानवी) हे मनुष्यसृष्टि के कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानो ! और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (देवी) दिव्यगुणवती स्त्रियो (इन्दुः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (देवः) जो दिव्यगुणयुक्त है (गिरिष्ठाः) जो सब ब्रह्माण्डों में स्थित है, तुम (तुविष्वणि) ज्ञानयज्ञों में (तम्) उस परमात्मा का (अस्रेधन्) साक्षात्कार करो ॥९॥

भावार्थः—जीवमात्र के शुभ-अशुभ कर्मों के फलों का दाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥९॥

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१०॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (वृत्रघ्ने) अज्ञान के नाशक (इन्द्राय) कर्मयोगी की (पातवे) तृप्ति के लिये (परिषिच्यसे) साक्षात्कार किये जाते

हो (दक्षिणावते, नरे) अनुष्ठानी विद्वान् (देवाय) जो दिव्यगुणयुक्त है, उसके लिये (सदनासदे) यज्ञगृह में साक्षात्कार किये जाते हो ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी तथा अनुष्ठानी विद्वानों का ही साक्षात्-करणार्ह है ॥१०॥

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (प्रत्नासः) स्वाभाविक (सोमाः) सौम्यस्वभाव (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (अक्षरन्) प्रवाहित होते हैं, (अप्रचेतसः) अज्ञानी पुरुष (हुरश्चितः) जो कुटिल चित्तवाले हैं (तान्) उनको आप प्रवाहित नहीं करते क्योंकि वह (अपप्रोथन्तः) हिंसक हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा का आनन्द सौम्य स्वभाववाले ही भोग सकते हैं; कुटिल चित्तवाले नहीं ॥११॥

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥

पदार्थः—(त्यम्) उस पूर्वोक्त परमात्मा को (तम्) जो (वाजगन्ध्यम्) बल-स्वरूप है और (पुरोरुचम्) सदा से प्रकाशस्वरूप है उसको (वयम्) हम (च) और (यूयम्) आप (सूरयः) विद्वान् (सखायः) जो मैत्रीभाव से वर्ताव करते हैं (वाजपः) जो उसकी अनन्त शक्तियों को अनुभव करना चाहते हैं, वे सब (सनेम) उसकी उपासना करें और उसके आनन्द को भोगें ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा ही के आनन्द भोगने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि सच्चा आनन्द वही है ॥१२॥

नवम मण्डल में यह अठानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य नवनवतितमस्य सूक्तस्य १—८ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्बृहती । २, ३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ निचृद-नुष्टुप् ॥ स्वरः—१ मध्यमः । २—८ गान्धारः ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(महीयुवः) उपासक लोग (असुराय) जो असुर है और (घृणये) अन्याय से दूसरों की शक्तियों को मर्दन करता है (हर्यताय) दूसरों के धन को हरण करनेवाला है उसके लिये (पौंस्यम्) शूरवीरता का (धनुः) धनुष (आतन्वन्ति) विस्तार करते हैं, और (विपाम्) विद्वानों के (अग्रे) समक्ष (निर्णिजम्, शुक्राम्) वे सूर्य के समान ओजस्विनी दीप्ति का (वयन्ति) प्रकाश करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो लोग तेजस्वी बनना चाहते हैं, वे परमात्मोपासक बनें ॥१॥

अर्थ क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥२॥

पदार्थः—(अध) अब इस बात का वर्णन करते हैं कि (क्षपापरिष्कृतः) सैनिक बलों में उपासना किया हुआ परमात्मा (वाजान्, अभि, प्रगाहते) बलों का प्रदान करता है, पर (यदि) यदि (विवस्वतः) याज्ञिक के (धियः) कर्म (यातवे) कर्मयोग के लिये (हरिम्, हिन्वन्ति) परमात्मा की प्रेरणा करें ॥२॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मोपासक हैं वही युद्ध में विजय पाते हैं ॥२॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥३॥

पदार्थः—(अस्य) उक्त परमात्मा के (तम्) उक्त आनन्द को (मर्जयामसि) हम लोग शुद्धभाव से धारण करते हैं, (यः) जो (मदः) आनन्द (इन्द्रपातमः) कर्मयोगी की तृप्ति करनेवाला है (यम्) जिस आनन्द को (गावः) इन्द्रियां (आसभिः) अपनी वृत्तियों द्वारा (दधुः) धारण करती हैं (च) और (नूनम्) निश्चयपूर्वक (सूरयः) विद्वान् लोग (पुरा) पूर्वकाल से उपासना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—कर्म्मयोगी लोग अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके परमात्मानन्द का अनुभव करते हैं ॥३॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥४॥

पदार्थः—(तम्) उक्त परमात्मा को (पुनानम्) जो सबको पवित्र करनेवाला है, उसको (पुराण्या गाथया) अनादिसिद्ध वेदवाणी द्वारा (अभ्यनूषत) वर्णन करते

Scanned by CamScanner

हैं, (उतो) और (धीतयः) मेधावी लोग (देवानाम्) सब देवों के मध्य में उसी के (नाम) नाम को (कृण्वन्त) धारण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर उपासना करनी चाहिये ॥४॥

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।

दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥५॥

पदार्थः—(उक्षमाणम्, तम्) उक्त बलस्वरूप परमात्मा को (मनीषिणः) मेधावी लोग (अव्यये, वारे) रक्षायुक्त विषयों में (पुनन्ति) वर्णन करते हैं, (धर्णसिम्) सर्वाधिकरण को (दूतम्, न) दुःखनिवारक रूप से (पूर्वचित्तये) सबसे प्रथम (आशासते) प्रार्थना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का आधार है इससे उसी की उपासना प्रथम करनी चाहिये ॥५॥

स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।

पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला है (मदिन्तमः) आनन्दस्वरूप है (सोमः) सर्वोत्पादक है, (चमूषु) सब प्रकार के सैनिक बलों में (सीदति) स्थिर है (पशौ, न) द्रव्य के समान (रेतः) [रेत इति जलनामसु पठितं नि०] प्रकृति की सूक्ष्मावस्था को (आदधत्) धारण करता है (धियः पतिः) वह कर्माध्यक्ष (वचस्यते) उपासना किया जाता है ॥६॥

भावार्थः—आनन्दप्रद, विजयादि प्रदाता और प्रलयादिकर्त्ता केवल परमात्मा ही है, इससे वही उपास्य है ॥६॥

स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।

विदे यदासु सन्ददिर्महीरपो वि गाहते ॥७॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्त परमात्मा (देवः) देव (देवेभ्यः) जो विद्वानों के लिये (सुतः) स्तुति किया गया है वह (यत्) जब (विदे) साक्षात्कार किया जाता है, तब कर्मयोगी पुरुष (आसु) प्रजाओं में (संददिः) सम्यक् धनों का प्रदाता होता है तब (महीः, आपः) बड़े-बड़े कर्मों की विपत्तियों को (विगाहते) तैर जाता है ॥७॥

भावार्थः—कर्मयोगी जो परमात्मोपासक है, वह सब बलों का आश्रय हो सकता है ॥७॥

Scanned by CamScanner

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥८॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (सुतः) आवाहन किये हुए (नृभिः) कर्मयोगी पुरुषों द्वारा (यतः) साक्षात्कार किये हुए, (विनीयसे) विशेषरूप से साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं, (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (मत्सरिन्तमः) आनन्दस्वरूप आप (चमूषु) सब प्रकार के बलों में (आ निषीदसि) तुम स्थिर होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्धान्तःकरण से कर्मयोगयुक्त होता है, परमात्मा उसी की सहायता करता है ॥८॥

नवम मण्डल में यह निन्यानवेंवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य शततमसूक्तस्य १—९ रेभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, ९ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थः—(न) जैसे कि (पूर्वे) प्रथम (आयुनि) उमर में (जातं) उत्पन्न हुए (वत्सं) वत्स को (मातरः) गौएँ (रिहंति) आस्वादन करतीं हैं, इसीप्रकार (अद्रुहः) रागद्वेष से रहित पुरुष (इन्द्रस्य) कर्म्मयोगी के (काम्यं) कमनीय (प्रियं) सबसे प्यारे कर्म्मयोग को (अभिनवंते) प्रेमभाव से प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थः—अभ्युदय की इच्छा करनेवाले मनुष्य को कर्मयोग ही सबसे प्रिय मानना चाहिये ॥१॥

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥२॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पुनानः) सबको पवित्र करते हुए आप (द्विबर्हसं) दोनों लोकों में बढ़ने वाले (रयिं) धन से

Scanned by CamScanner

(आभर) आप हमको परिपूर्ण करें और (त्वं) आप (दाशुषो गृहे) यज्ञशील दानी पुरुष के घर में (विश्वानि, वसूनि) सब धनों को (पुष्यसि) पुष्ट करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष आत्मा और पर में सुखदुःखादि को समान समझ कर परोपकार करते हैं, परमात्मा उनको उन्नतिशील करता है ॥२॥

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वं) तुम (मनोयुजं) मन को स्थिर करनेवाले (धियं) कर्म्मयोग को (सृज) उत्पन्न करो (न) जैसे कि (तन्यतुः) मेघ (वृष्टिं) वृष्टि का विस्तार करता है, इसी प्रकार (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (त्वं) तुम (पार्थिवा) पृथिवीसम्बन्धी (च) और (दिव्या) द्युलोकसम्बन्धी (वसूनि) धनों से (पुष्यसि) हमको पुष्ट करो ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी पुरुष ही मन के स्थैर्य को प्राप्त करके विविध ऐश्वर्य का स्वामी बनता है ॥३॥

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सुतस्य) उपासना किये गए (ते) तुम्हारे आनन्द की (धारा) लहरें उपासक की ओर (परिधावति) इस प्रकार दौड़ती हैं (यथा) जैसे कि (जिग्युषः) जयशील योधा का (वाजी, इव) घोड़ा शत्रु के दमन के लिये दौड़ता है इसी प्रकार (रंहमाणा) वेगवती और (सानसिः) प्राप्त करने योग्य धारा (अव्ययं, वारं) रक्षायोग्य वरणीय पुरुष की अज्ञाननिवृत्ति के लिये है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार करनेवाले ही परमानन्द पाते हैं ॥४॥

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥५॥

पदार्थः—(कवे) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (नः) हमारे (क्रत्वे) कर्म्मयोग के लिये (पवस्व) आप हमको पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (धारया) आप अपनी आनन्दमय वृष्टि से हमको पवित्र करें (च) और (इन्द्राय) कर्म्मयोगी

की (पातवे) तृप्ति के लिये (मित्राय) अध्यापक और (वरुणाय) उपदेशक की तृप्ति के लिये आप (सुतः) उपासना किये जाते हो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार कर्मयोगी, अध्यापक तथा उपदेशक—सबों की तृप्ति करता है ॥५॥

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (**वाजसातमः**) सब प्रकार ऐश्वर्यों के देनेवाले आप (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**धारया**) धारणारूप शक्ति से (**सुतः**) साक्षात्कार किये जाते हो (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**विष्णवे**) ज्ञानयोगी के लिये (**देवेभ्यः**) अन्य विद्वानों के लिये (**मधुमत्तमः**) आप आनन्दमय हो ॥६॥

भावार्थः—वस्तुतः परमात्मा के ऐश्वर्य्य तथा विभूति के आनन्द को ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी ही भोगते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥७॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**विधर्मणि**) नाना प्रकार के ज्ञानों को धारण करने वाले ज्ञानयज्ञ में (**त्वां**) तुमको (**अद्रुहः**) राग-द्वेष से रहित विज्ञानी लोग (**रिहंति**) आस्वादन करते हैं (**न**) जैसे कि (**धेनवः**) गौयें (**जातं**) उत्पन्न हुए (**वत्सं**) वत्स को आस्वादन करती हैं, इसी प्रकार (**हरिं**) हरिरूप परमात्मा को सब लोग प्रेम से ग्रहण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोपरि साधन प्रेम है ॥७॥

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥८॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (**महिश्रवः**) सर्वोपरि यशवाले हैं (**चित्रेभिः**) आप नाना प्रकार की (**रश्मिभिः**) शक्तियों के द्वारा (**यासि**) सर्वत्र प्राप्त हैं। और आप (**शर्धन्**) अपनी ज्ञानरूपी गति से (**विश्वानि**

Scanned by CamScanner

तमांसि) सब अज्ञानों को (जिघ्नसे) हनन करते हो, और (दाशुषो गृहे) उपासक के अन्तःकरण में स्थिर होकर आप उसे ज्ञान से प्रकाशित करते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञानरूप प्रकाश से सब अज्ञानों का नाश होता है ॥८॥

त्वं द्यां च॑ महिव्रत पृ॒थि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे ।

प्रति॑ द्रा॒पिम॑मुञ्चथाः॒ पव॑मान महि॒त्व॒ना ॥९॥

पदार्थः—(**महिव्रत**) हे बड़े व्रतवाले परमात्मन् ! (**त्वं**) आप (**द्यां**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवीं**) पृथिवीलोक को (**अति जभ्रिषे**) अत्यन्त ऐश्वर्यसम्पन्न बनाते हो (**पवमान**) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (**महित्वना**) अपने महत्त्व से (**द्रापिं**) रक्षारूपी कवच से (**प्रत्यमुञ्चथाः**) आच्छादित करते हो ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा ने द्युलोक और पृथिवीलोक को ऐश्वर्यशाली बनाकर उसे अपने रक्षारूपकवच से आच्छादित किया, ऐसी विचित्र रचना से इस ब्रह्माण्ड को रचा है कि उसके महत्त्व को कोई नहीं पा सकता ॥९॥

विशेष—इस अध्याय में 'सोम' नाम परमेश्वर का है; क्योंकि 'सूते चराचरं जगदिति सोमः—चराचर संसार की रचना करने वाला चेतनस्वरूप परमात्मा ही हो सकता है। कई मन्त्रों में तो स्पष्ट लिखा है कि द्यु० भू आदि लोक 'सोम' ने ही उत्पन्न किये।

नवम मण्डल में यह एकसौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥

—:॥०।०।०॥:—

अथ पञ्चदशर्चस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः—१-३ अन्धीगुः श्यावाश्विः । ४—६ ययातिर्नाहुषः । ७—९ नहुषो मानवः । १०—१२ मनुः सांवरणः । १३--१६ प्रजापतिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, ११—१४, निचृदनुष्टुप् । ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप् । १० पादनिचृदनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ स्वरः—१, ४—१६ गान्धारः । २, ६, षड्जः ॥

अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना का कथन करते हैं ।

पु॒रोजि॑ती वो॒ अन्ध॑सः सु॒ताय॑ माद॒यि॒त्नवे॑ ।

अप॒ श्वानं॑ श्नथिष्टन॒ सखा॑यो दी॒र्घजि॒ह्व्य॑म् ॥१॥

पदार्थः—(वः) आप लोग (पुरोजिती) जो सब के विजेता हैं (अन्धसः) सर्वप्रिय (सुताय) संस्कृत (मादयित्नवे) आह्लादक परमात्मा के स्वरूपज्ञान में (श्वानम्) जो विघ्नकारी लोग हैं उनको (अपश्नथिष्टन) दूर करें (सखायः) हे सब के मित्रभूत याज्ञिक लोगो ! आप (दीर्घजिह्व्यम्) वेदरूप विशाल वाणी वाले परमात्मा की उपासना करो [जिह्वेति वाङ्नामसु पठितम् । नि० २ । खं० । २३] ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा, शब्द ब्रह्म का एकमात्र कारण है इस लिये मुख्य करके उसी को बृहस्पति वा वाचस्पति कहा जा सकता है। इसी अभिप्राय से परमात्मा के लिये बहुधा कवि शब्द आया है। इस तात्पर्य से यहां परमात्मा को दीर्घजिह्व्य कहा है ॥१॥

यो धार॑या पाव॒कया॑ परि॒प्रस्यन्द॑ते सु॒तः ।

इन्दु॒रश्वो॒ न कृत्व्यः॑ ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (पावकया, धारया) अपवित्रताओं को दूर करने वाली अपनी सुधामयी वृष्टि से (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र परिपूर्ण है और (सुतः)

Scanned by CamScanner

सर्वत्र अपने सत्, चित्, आनन्द स्वरूप से देदीप्यमान है, और (कृत्व्यः) वह गतिशील (इन्दुः) सर्वव्यापक परमात्मा (अश्वः, न) विद्युत् के समान सर्वत्र अपनी सत्ता से परिपूर्ण है ॥२॥

भावार्थः—यहां विद्युत् का दृष्टान्त केवल परमात्मा की पूर्णता बोधन करने के लिये आया है ॥२॥

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥३॥

पदार्थः—(तम्) पूर्वोक्त (दुरोषम्) अखण्डनीय परमात्मा को (नरः) नेता लोग (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभि हिन्वन्ति) साक्षात्कार करते हैं, जो परमात्मा (यज्ञम्) यज्ञरूप है, और (सोमम्) सर्वोत्पादक है, उसको (विश्वाच्या, धिया) विचित्र बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा को वेद में यज्ञ शब्द से कथन किया गया है जैसा कि "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" से बताया है कि सर्वपूज्य परमात्मा से ऋगादि चारों वेद प्रकट हुए। इसी अभिप्राय से यहां भी परमात्मा को यज्ञ रूप से वर्णन किया है ॥३॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

पदार्थः—(सुतासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए (मधुमत्तमाः) अत्यन्त आनन्दमय (सोमाः) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (मन्दिनः) जो आह्लादक हैं वे (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये प्राप्त हों और (वः) तुम जो (देवान्,) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् हो, उनको (मदाः) वह आह्लादक गुण (पवित्रवन्तः) पवित्रतावाले (अक्षरन्) आनन्द की वृष्टि करते हुए (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा के अपहतपाप्मादि धर्मों का धारण करना इस मन्त्र में वर्णन किया गया है, अर्थात् परमात्मा के सौम्यस्वभावादिकों को जब जीव धारण कर लेता है तो वह शुद्ध हो कर ज्ञानयोगी व कर्मयोगी बन सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**इन्दुः**) सर्वप्रकाशक परमात्मा (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है (**देवासः**) विद्वान् लोग (**इत्यब्रुवन्**) यह कहते हैं कि कर्मयोगी उद्योगी पुरुष ही उस के ज्ञान का पात्र है, (**वाचस्पतिः**) वह सम्पूर्ण वाणियों का पति परमात्मा है और (**मखस्यते**) ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ, इत्यादि सब यज्ञों का अधिष्ठाता है वह परमात्मा (**ओजसा**) अपने स्वाभाविक बल से (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का (**ईशानः**) स्वामी है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी को अपने सद्गुणों द्वारा पवित्र करता है अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावों के धारण करने का नाम ही परम पवित्रता है ॥५॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**सहस्रधारः**) अनन्त प्रकार के आनन्दों की वृष्टि करने वाला, और (**समुद्रः**) सम्पूर्ण भूतों का उत्पत्तिस्थान (**वाचमीङ्खयः**) वाणियों का प्रेरक (**रयीणाम्**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी (**दिवे दिवे**) जो प्रतिदिन (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी का (**सखा**) मित्र है, वह परमात्मा (**पवते**) सन्मार्ग से गिरे हुए लोगों को पवित्र करता है ॥६॥

भावार्थः—'सहस्रधारः' परमात्मा को इस लिये कथन किया गया है कि वह अनन्त शक्तियुक्त है। धारा शब्द के अर्थ यहां शक्ति हैं। "सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मिन्स समुद्रः" इस व्युत्पत्ति से यहां समुद्र नाम परमात्मा का है, इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा गया है कि, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति". यहां (पवते) के अर्थ सायणाचार्य्य ने 'क्षरति' किये हैं जो व्याकरण से सर्वथा विरुद्ध हैं ॥६॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥७॥

पदार्थः—(**अयम्**) वह उक्त परमात्मा (**पूषा**) सब का पोषक है (**भगः**) ऐश्वर्य्य देने वाला है (**सोमः**) सर्वोत्पादक है (**पुनानः**) सबको पवित्र करने वाला है, (**भूमनः विश्वस्य**) इस बृहद् ब्रह्माण्ड का (**पतिः**) स्वामी है और (**रयिः**) सम्पूर्ण धनों का हेतु है (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथिवीलोक को (**व्यख्यत्**) निर्माण करने वाला उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा अपनी विभुता से (**अर्षति**) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ॥७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस मन्त्र में द्यु लोक और पृथिवी लोक का प्रकाशक परमात्मा को कथन किया है। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि सोमशब्द के अर्थ यहां सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के हैं, किसी जड़ वस्तु के नहीं ॥७॥

समुं प्रिया अंनूषत गावो मदांय घृष्वंयः ।
सोमांसः कृण्वते पथः पवंमानास इन्दंवः ॥८॥

पदार्थः—(गावः) इन्द्रियां (घृष्वयः) जो दीप्तिवाली हैं, वे, (उ) और जो (प्रियाः) परमात्मा में अनुराग रखने वाली हैं, वे (मदाय) आनन्द के लिये (समनूषत) परमात्मा का भली-भांति साक्षात्कार करती हैं (सोमासः) परमात्मा के सौम्य स्वभाव (पवमानासः) जो सब को पवित्र करने वाले हैं, (इन्दवः) जो ज्ञानविज्ञानादि गुणों के प्रकाशक हैं, वे इन्द्रियों से साक्षात्कार किये हुए लोगों को संस्कृत करके (पथः कृण्वते) सन्मार्ग के यात्री बनाते हैं ॥८॥

भावार्थः—गावः शब्द के अर्थ यहां इन्द्रियवृत्तियों के हैं। किसी गौ, बैल आदि पशुविशेष के नहीं, क्योंकि "सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते" नि. २—१। इस प्रमाण से प्रकाशक रश्मियों का नाम यहाँ 'गावः' हैं ॥८॥

य ओजिंष्ठस्तमा भंर पवंमान श्रवाय्यंम् ।
यः पञ्चं चर्षणीरभि रयिं येन वनांमहै ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (यः) जो यश (ओजिष्ठः) अत्यन्त ओज वाला है (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य है, (यः) जो यश (पञ्च, चर्षणीः) पांचों ज्ञानेन्द्रिय अथवा पांचों प्राणों को संस्कृत करता है, (येन) जिस परमात्मा के यश से (रयिम्) ऐश्वर्य्य को (वनामहै) हम प्राप्त हों (तं, आभर) उसको दीजिये ॥९॥

भावार्थः—यहां परमात्मा के आनन्द को लाभ करके आनन्दित होने का वर्णन है ॥९॥

सोमाः पवन्त इन्दंवोऽस्मभ्यं गातुवित्तंमाः ।
मित्राः सुंवाना अंरेपसंः स्वाध्यंः स्वर्विदंः ॥१०॥

पदार्थः—(सोमाः) परमात्मा के ज्ञानादिगुण (इन्दवः) प्रकाशक (गातुवित्तमाः) जो शब्दादि गुणों में श्रेष्ठ हैं (मित्राः) सबके मित्र भूत हैं (सुवानाः) जो स्वसत्ता से सर्वत्र विद्यमान हैं, (अरेपसः) जो अविद्यादि दोषों से रहित हैं, जो

Scanned by CamScanner

(स्वाध्यः) धारण करने योग्य हैं, (स्वर्विदः) जो सर्वज्ञान के हेतु होने के कारण सर्वज्ञ कहे जा सकते हैं, वे (अस्मभ्यम्) हमको (पवन्ते) पवित्रता प्रदान करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा के गुणों के वर्णन करने से ज्ञान और पवित्रता बढ़ती है ॥१०॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चितांना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥११॥

पदार्थः—(गोरधित्वचि) अन्तःकरण में (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (चिताना:) ध्यान किये हुए (वि) विशेषरूप से (सुष्वाणासः) आविर्भाव को प्राप्त हुए उस परमात्मा के गुण (अस्मभ्यम्) हम को (अभितः) सर्वप्रकार से (इषम्) ऐश्वर्य्य (समस्वरन्) देते हैं, और वे, परमात्मा के ज्ञानादि गुण (वसुविदः) सब प्रकार के ज्ञानों के उत्पादक हैं ॥११॥

भावार्थः—यहां इन्द्रियों का अधिकरण जो मन है, उसका नाम अधित्वक् है। इस अभिप्राय से अधित्वचि के माने अन्तःकरण के हो सकते हैं। कई एक लोग इस के यह अर्थ करते हैं कि सोम कूटने वाले अनडुह् चर्म का नाम अधित्वक् है अर्थात् गोचर्म में सोमकूटने का यहां वर्णन है। यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर के गुण वर्णन में गोचर्म का क्या काम! ॥११॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२॥

पदार्थः—(विपश्चितः) विज्ञान के बढ़ाने वाले (एते) पूर्वोक्त, परमात्मा के विज्ञानादि गुण (पूताः) जो पवित्र हैं, (सोमासः) जो शान्त्यादिभावों के देने वाले हैं, (दध्याशिरः) धृत्यादि सद्गुणों के धारण करने वाले हैं (सूर्यासः) सूर्य के (न) समान (दर्शतासः) सब मार्गों के प्रकाशक हैं (जिगत्नवः) गतिशील (घृते) नम्रान्तःकरणों में (ध्रुवाः) स्थिर होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जो लोग साधनसम्पन्न होकर अपने शील को बनाते हैं उनके अन्तःकरणरूप दर्पण में परमात्मा के सद्गुण अवश्यमेव प्रतिबिम्बित होते हैं ॥१२॥

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३॥

पदार्थः—(**प्रसुन्वानस्य**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**अन्धसः**) जो उपासनीय है, (**तद्वचः**) उसकी वाणी को (**मर्तः**) सन्मार्ग में विघ्न करने वाला पुरुष (**न वृत**) न ग्रहण करे, और (**श्वानम्**) उस विघ्नकारी को (**राधसम्**) जो नास्तिकता के भाव से सत्कर्मों से रहित है, उसको (**न**) जैसे (**भृगवः**) परिपक्व बुद्धिवाले (**मखम्**) हिंसा-रूपी यज्ञ का हनन करते हैं इस प्रकार (**अपहत**) आप लोग इन विघ्नकारियों का हनन करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में हिंसा के दृष्टान्त से नास्तिकों की सङ्गति के त्याग का वर्णन है ॥१३॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥१४॥

पदार्थः—(**न**) जैसे (**पुत्रः**) पुत्र (**ओण्योः**) माता पिता की (**भुजे**) भुजाओं की (**अव्यत**) रक्षा करता है इसी प्रकार (**जामिरत्के**) अपने उपासकों की रक्षा करने वाले परमात्मा के आधार पर आप लोग विराजमान हों । और (**न**) जैसे कि(**जारः**) "जारयतीति जारोग्निः" कफादि दोषों का हनन करने वाला अग्नि (**योषणाम्**) स्त्रियों को (**सरत्**) प्राप्त होता है और (**न**) जैसे कि, (**वरः**) वर (**योनिम्**) वेदी को (**आसदम्**) प्राप्त होता है, इसी प्रकार सर्वगुणाधार परमात्मा को आप लोग प्राप्त हों ॥१४॥

भावार्थः—यहां कई एक दृष्टान्तों से परमात्मा की प्राप्ति का वर्णन किया है । कई एक लोग यहां "जारो न योषणां" के अर्थ स्त्रैण पुरुष अर्थात् स्त्री-लम्पट पुरुष के करते हैं । यह अर्थ वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि वेद सदाचार का रास्ता बतलाता है, दुराचार का नहीं ॥१४॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५॥

पदार्थः—(**सः**) पूर्वोक्त परमात्मा (**वीरः**) सर्वगुणसम्पन्न है (**दक्षसाधनः**) सब चातुर्य्यादि बलों का देने वाला है, (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक को (**यः**) जो (**तस्तम्भ**) सहारा दिये खड़ा है, वह (**हरिः**) सब दुर्गुणों को हनन करने वाला परमात्मा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में विराजमान होकर (**अव्यत**) रक्षा करता है(**न**) जैसे कि, (**वेधाः**) यजमान (**योनिम्**) अपने यज्ञमण्डप में (**आसदम्**) स्थिर होता है । इसी प्रकार परमात्मा पवित्र अन्तःकरणों में ज्ञानगति से प्रविष्ट होकर उनको प्रकाशित करता है ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग अपने अन्तःकरणों को पवित्र बनाते हैं अर्थात् मन बुद्धि आदिकों को शुद्ध करते हैं, उनके अन्तःकरणों में परमात्मा का आविर्भाव होता है ॥१५॥

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।

कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६॥

पदार्थः—(हरिः) उक्त परमात्मा (**इन्द्रस्य**) कर्मयोगी के (**निष्कृतम्**) सद्गुण-सम्पन्न अन्तःकरण में (**अभ्येति**) प्राप्त होता है, (**वृषा**) वह सब कामनाओं की वर्षा करने वाला (**गव्ये अधित्वचि**) इन्द्रियों के अधिष्ठाता मन में स्थिर होकर (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**पवते**) रक्षा करता है, (**सोमः**) वह सर्वोत्पादक परमात्मा (**अव्यः**) जो सर्वरक्षक है वह (**वारेभिः**) पवित्र सद्भावों से सन्मार्गानुयायियों की रक्षा करता है ॥१६॥

भावार्थः—यहां कई एक लोग 'गव्ये अधित्वचि' के अर्थ गोचर्म के करते हैं। ऐसा करना वेद के आशय से सर्वथा विरुद्ध है, न केवल वेदाशय से विरुद्ध है किन्तु प्रसिद्धि से भी विरुद्ध है। क्योंकि अधित्वचि के अर्थ गोचर्म पर गर्जना किये गये हैं और गोचर्म पर गर्जना अनुभव से सर्वथा विरुद्ध है। इस अधित्वचि के अर्थ मनरूप अधिष्ठाता के ही ठीक हैं, किसी अन्य वस्तु के नहीं ॥१६॥

नवम मण्डल में यह एकसोएकवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ अष्टर्चस्य द्व्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—८ त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ८ निचृदुष्णिक् । ५—७ उष्णिक् ॥ ऋषभः स्वरः ॥

अब परमात्मा के गुणों द्वारा उसकी उपासना का कथन करते हैं ॥

(अब प्रकृति और जीवरूप से द्वैत का वर्णन करते हैं ॥)

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

पदार्थः—(**शिशुः**) अति प्रशंसनीय परमात्मा (**महीनाम्**) बड़े से बड़े पृथिव्यादि लोकों को (**क्राणा**) रचता हुआ (**ऋतस्य**) सच्चाई के (**दीधितिम्**) प्रकाश को (**हिन्वन्**) प्रेरित करता है और वह (**विश्वा, परि**) सब लोगों के ऊपर (**प्रिया**) प्रिय-

Scanned by CamScanner

भाव (भुवत्) प्रकट करता है (अध) और (द्विता) द्वैतभाव से प्रकृति और जीव द्वारा इस संसार की रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में द्वैतवाद का वर्णन स्पष्ट रीति से किया गया है ॥१॥

उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद्गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥

पदार्थः—(पाष्योः) प्रकृति और पुरुषरूपी जो दृढ़ अधिकरण हैं उन के आधार पर (त्रितस्य) तीनों गुणों के (पदं) पद को (उपाभक्त) सेवन किया (यत्) जो पद (गुहा) प्रकृतिरूपी गुहा में (यज्ञस्य) परमात्मा के सम्बन्ध से (सप्तधामभिः) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों द्वारा (अध, प्रियं) अत्यन्त प्रियता को धारण करता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में महत्तत्त्वादि कार्य्यकारणों द्वारा सृष्टि का निरूपण किया गया है ॥२॥

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थः—(त्रितस्य धारया) तीनों गुणों की धारणारूप शक्ति से (पृष्ठेषु) इस ब्रह्माण्ड में (त्रीणि) तीन प्रकार के भूतों को (ईरय) प्रेरणा करता हुआ परमात्मा (रयिं) ऐश्वर्य्य को (मिमीते) उत्पन्न करता है (सुक्रतुः) शोभनप्रज्ञावाला परमात्मा (अस्य, योजना) इस ब्रह्माण्ड की योजना करता है ॥३॥

भावार्थः—प्रकृति के सत्व, रज, तम तीनों गुणों द्वारा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥३॥

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥४॥

पदार्थः—(सप्त, मातरः) महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियां (जज्ञानं) आविर्भाव को प्राप्त (वेधां) जो परमात्मा है (श्रिये)) ऐश्वर्य्य के लिये उसको (अशासत) आश्रयण करती हैं (अयं) उक्त परमात्मा (ध्रुवः) अचल रूप से विराजमान है, और (यत्) जो (रयीणां) सब लोकलोकान्तरों के ऐश्वर्य का (चिकेत) ज्ञाता है ॥४॥

भावार्थः—इसमें महत्तत्त्वादि सातों प्रकृतियों का वर्णन है ॥४॥

Scanned by CamScanner

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥५॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमात्मा के (व्रते) नियम में (सजोषसः) संगत हुए (विश्वे, देवासः) सम्पूर्ण विद्वान् (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर उक्त परमात्मा की उपासना करें (यत्) यदि (रंतयः) रमणशील उक्त विद्वान् (जुषंत) उक्त परमात्मा की प्रीति से भक्ति करते हैं (स्पार्हाः) तो संसार के अत्यन्त प्रिय करने वाले (भवन्ति) होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग राग द्वेष रहित होकर परमात्मा की भक्ति करते हैं वे अपने सामर्थ्य से संसार का बहुत उपकार कर सकते हैं ॥५॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् ।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥६॥

पदार्थः—(ऋतवृधः) यज्ञकर्म्म में कुशल विद्वान् (यमी) जिस उक्त परमात्मा के (गर्भं) ज्ञानरूप गर्भ को धारण करते हैं (दृशे) संसार के प्रकाश के लिये उस से (चारुं) सुन्दर सन्तान को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं, वह परमात्मा (कविं) सर्वज्ञ (मंहिष्ठं) अत्यन्त पूजनीय, और (पुरुस्पृहं) सबका उपास्य देव है (अध्वरे) ज्ञानयज्ञों में उक्त परमात्मा उपासनीय है ॥६॥

भावार्थः—जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का उत्पादक परमात्मा है उसकी उपासना ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तपोयज्ञ इत्यादि अनन्त प्रकार के यज्ञों द्वारा की जाती है ॥६॥

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा ।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥७॥

पदार्थः—वह परमात्मा (ऋतस्य) इस संसार के (मातरा) निर्माण करने वाले द्युलोक और पृथिवी लोक को रचता है वह द्युलोक और पृथिवी लोक (समीचीने) सुन्दर हैं (यह्वी) बड़े हैं (तन्वानाः) इस प्रकृतिरूपी तन्तुजाल के विस्तृत करनेवाले हैं और (त्मना) उस परमात्मा के आत्मभूत सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं (यत्) जब योगी लोग (यज्ञं) इस ज्ञान यज्ञ को (आनुषक्) आनुषङ्गिक रूप से सेवन करते हैं अर्थात् साधन रूप से आश्रयण करते हैं तो (अभ्यंजते) उक्त परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो लोग इस कार्य्य संसार और इसके कारणभूत ब्रह्म के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे शक्तिसम्पन्न होकर इस संसार की यात्रा करते हैं ॥७॥

क्रत्वा॑ शु॒क्रेभि॑र॒क्षभि॑र्ऋ॒णोरप॑ व्र॒जं दि॒वः ।
हि॒न्वन्नृ॒तस्य॑ दीधि॑तिं॒ प्राध्व॒रे ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (व्रजं) [व्रजतीति व्रजः] अन्धकार, जो ज्ञानरूपप्रकाश से दूर भाग जाय, उसको (क्रत्वा)कर्म्मों के द्वारा (शुक्रेभिः, अक्षभिः) बलवान् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा (दिवः) द्युलोक से (अपर्णोः) दूर करें और (प्राध्वरे) इस ज्ञानयज्ञ में (ऋतस्य दीधितिं) सच्चाई के प्रकाश को (हिन्वन्) प्रेरणा करते हुए आप हमारे अज्ञान को दूर करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान की निवृत्ति के साधनों का वर्णन है अर्थात् जो पुरुष ज्ञानादि द्वारा जप तप आदि संयमसम्पन्न होकर तेजस्वी बनते हैं वे अज्ञान को निवृत्त करके प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में विराजमान होते हैं ॥८॥

नवम मण्डल में यह १०२वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य त्र्यधिकशततमस्य सूक्तस्य १—६ द्वित आप्त्यः ऋषिः ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, ३ उष्णिक् । २, ५ निचृदुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ६ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

प्र पु॑ना॒नाय॑ वे॒धसे॒ सोमा॑य॒ वच॒ उद्य॑तम् ।
भृ॒तिं न भ॑रा म॒तिभि॒र्जुजो॑षते ॥१॥

पदार्थः—(सोमाय) सर्वोत्पादक (वेधसे) जो सबका विधाता परमात्मा है, (पुनानाय) सबको पवित्र करने वाला है, (जुजोषते) जो शुभकर्मों में युक्त करनेवाला है, उसके लिये (मतिभिः) हमारी भक्तिरूपी (वचः) वाणी-स्तुतियों के द्वारा (उद्यतम्) उद्यत हों, और उक्त परमात्मा (भृतिम्) भृत्य के (न) समान, हमें (भर) ऐश्वर्य से परिपूर्ण करे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मपरायण होते हैं परमात्मा उन्हें अवश्यमेव ऐश्वर्य्यों से भरपूर करता है, वा यों कहो कि जिस प्रकार स्वामी भृत्य

Scanned by CamScanner

को भृति देकर प्रसन्न होता है इसी प्रकार परमात्मा अपने उपासकों का भरण-पोषण करके उन्हें उन्नतिशील बनाता है ॥१॥

परि वारांण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।
त्री षधस्थां पुनानः कृणुते हरिंः ॥२॥

पदार्थः—(**गोभिरञ्जानः**) अन्तःकरण की वृत्तियों द्वारा साक्षात्कार को प्राप्त हुआ परमात्मा (**अव्यया**) अपनी रक्षायुक्त शक्ति से (**वाराणि**) वरणयोग्य अर्थात् पात्रता को प्राप्त अन्तःकरणों को (**परि, अर्षति**) प्राप्त होता है, (**त्री, सध-स्था**) कारण, सूक्ष्म और स्थूल तीनों शरीरों को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ(**हरिः**) वह अन्तःकरण के मलविक्षेपादि दोषों को हरण करने वाला परमात्मा (**कृणुते**) उपासक को पवित्र करता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग अन्तःकरण के मलविक्षेपादि दोषों को दूर करते हैं, वे लोग परमात्मज्ञान के अधिकारी बन कर परमात्मज्ञान का लाभ करते हैं ॥३॥

परि कोशं मधुश्चुतंमव्यये वारें अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषींणां सप्त नूषत ॥३॥

पदार्थः—(**मधुश्चुतम्**)जो प्रेमरूपी माधुर्य्य का स्रोत (**कोशम्**) अन्तःकरण है (**अव्यये**) रक्षायुक्त (**वारे**) वरणीय जो स्थिर है, उसमें (**परि, अर्षति**) परमात्मा प्राप्त होता है, और (**वाणीः, अभि**) भक्ति को लक्ष्य में रखकर (**ऋषीणाम्, सप्त**) जो ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्र हैं, उनको (**नूषत**) विभूषित करता है ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपासक की ज्ञानेन्द्रियों को निर्मल करके उनमें शुद्ध ज्ञान प्रकाशित करता है ॥३॥

परिं णेता मंतीनां विश्वदेवो अदांभ्यः ।
सोमंः पुनानश्चम्वोंर्विशद्धरिंः ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वदेवः**) जो सम्पूर्ण विश्व का प्रकाशक परमात्मा है, (**अदा-भ्यः**) जो किसी से तिरस्कृत नहीं हो सकता, किन्तु सर्वोपरि होकर विराजमान है, (**हरिः**) परमात्मा (**चम्वोः**) जीव और प्रकृतिरूपी दोनों प्रकृतियों में (**परिविशत्**) प्रवेश करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा शुभ बुद्धियों का प्रदान करनेवाला है ॥४॥

Scanned by CamScanner

परि॑ दे॒वीरनु॑ स्व॒धा इन्द्रे॑ण याहि स॒रथ॑म् ।
पु॒ना॒ना वा॒घद्वा॒घद्भि॒रम॑र्त्यः ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रेण) कर्मयोगी के साथ (सरथम्) समान भाव को प्राप्त होकर (पुनानाः) सबको पवित्र करने वाला परमात्मा (स्वधाः) स्वधा से सृष्टि करता हुआ (देवीरनु) दैवी सम्पत्ति के अनुकूल (परियाहि) गमन करता है। और (वाघद्भिः) वैदिक लोगों के साथ (वाघत्) सशब्द (अमर्त्यः) अमरणधर्मा परमात्मा अपने प्रकाश्यप्रकाशकभावरूपी योग से वैदिक लोगों को पवित्र करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दैवी सम्पत्ति के गुणों का वर्णन किया है ॥५॥

परि॒ सप्ति॒र्न वा॑ज॒युर्दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः ।
व्या॒न॒शिः पव॑मानो॒ वि धा॑वति ॥६॥

पदार्थः—(देवः) उक्त दिव्यस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः, सुतः) जो विद्वानों के लिये संस्कृत है, और (वाजयुः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (व्यानशिः) सर्वव्यापक (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला है वह परमात्मा (सप्तिः) विद्युत् के (न) समान (परिधावति) सर्वत्र विराजमान हो रहा है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता को विद्युत् के दृष्टान्त से स्पष्ट किया है ॥६॥

नवम मण्डल में यह १०३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुरधिकशततमस्य षड्चस्य सूक्तस्य ऋषी—१—६ पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ ॥ देवता—पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, ३, ४ उष्णिक् । २, ५, ६ निचृदुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

सखा॑य॒ आ नि षी॑दत पुना॒नाय॒ प्र गा॑यत ।
शिशुं॒ न य॒ज्ञैः परि॑ भूषत श्रि॒ये ॥१॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक लोगो ! आप (आनिषीदत) यज्ञवेदी पर आकर स्थिर हों (पुनानाय) जो सबको पवित्र करने वाला है, उसके लिये [प्रगायत] गायन करो (श्रिये) ऐश्वर्य के लिये (शिशुम्) "यः शंसनीयो भवति स शिशुः" जो प्रशंसा के योग्य है, उसको (यज्ञैः) ज्ञानयज्ञादि द्वारा (परिभूषत) अलंकृत करो ॥१॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—उपासक लोग परमात्मा का ज्ञानयज्ञादि द्वारा आह्वान करके उसके ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करते हैं ॥१॥

सम्ीं वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥२॥

पदार्थः—(**गयसाधनम्**) ज्ञान का साधन जो परमात्मा है, (**देवाव्यम्**) देवों का रक्षक (**मदम्**) जो आनन्दस्वरूप है (**द्विशवसम्**) जो बलिष्ठ है (**वत्सं, न**) जो सर्वाभिव्यक्त शक्ति के समान है (**ईम्**) इसको (**मातृभिः, संसृजत**) विद्वान् लोग बुद्धिवृत्ति द्वारा साक्षात्कार करते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा दैवीसम्पत्तिवाले पुरुषों को अपनी दिव्य शक्तियों से विभूषित करता है और जो लोग अनाचारी आसुरी भावसम्पन्न हैं उन को परमात्मा ज्ञान की ज्योति से देवपुरुषों के समान लाभ नहीं होता। तात्पर्य्य यह है कि दिव्य पुरुषों में परमात्मा की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है और तमरूप भावों से दूषित पुरुषों में नहीं ॥२॥

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमः ॥३॥

पदार्थः—(**दक्षसाधनम्**) सम्पूर्ण ज्ञानों का एकमात्र आधार जो परमात्मा है, उसकी उपासना (**शर्धाय**) बल के लिये (**वीतये**) तृप्ति के लिये (**पुनात**) आप लोग करें, (**यथा**) जिस प्रकार (**मित्राय**) उपदेशक के लिये और (**वरुणाय**) अध्यापक के लिये (**शन्तमः**) सुखों का विस्तार करने वाला वह परमात्मा हो, उस प्रकार आप उसके ज्ञान को लाभ करें ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार ग्रह उपग्रहों का केन्द्र सूर्य है इसी प्रकार सब ज्ञानों का आधार परमात्मा है। जो लोग ज्ञानी तथा विज्ञानी बन कर देश का सुधार करना चाहते हैं, उनको चाहिये कि परमात्मा से ज्ञानरूपी दीप्ति का लाभ करें ॥३॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥४॥

पदार्थः—(**वसुविदम्**) सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्य्यों को देने वाले आप को (**अस्मभ्यम्**) हमारी (**वाणीः**) स्तुतिरूप वाणी (**अभ्यनूषत**) वर्णन करे (**ते**) तुम्हारे

Scanned by CamScanner

(वर्णम्) वर्णन को (गोभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (अभि वासयामसि) अपने चित्त में वसायें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्त गुणसम्पन्न है, उसके गुणों के वर्णन को जो पुरुष श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा चित्त में वसाते हैं, वे पुरुष अवश्यमेव ज्ञानयोगी बनते हैं ॥४॥

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (मदानां, पते) आनन्दपते परमात्मन् ! (सः) पूर्वोक्त गुणसम्पन्न आप (देवप्सराः) दिव्यरूप (असि) हो (नः) हमारे लिये (सखेव, सख्ये) जैसे मित्र अपने मित्र के लिये (गातुवित्तमः) मार्ग दिखलाता है इसी प्रकार आप भी रास्ता दिखलाने वाले (भव) हों ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सबको सन्मार्ग दिखलाने वाला है और जिस प्रकार मित्र अपने मित्र का हितचिन्तन करता है इस प्रकार परमात्मा सब का हितचिन्तन करने वाला है ॥५॥

सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कंचिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप इस यज्ञकर्त्ता के (सनेमि) सनातनकाल के मैत्रीभवन को (कृधि) धारण करें (कञ्चिदत्रिणम्) कोई भी हिंसक क्यों न हो उसको (रक्षसम्) जो राक्षस हो (अपादेवम्) जो दैवीसम्पत्ति के गुणों से रहित है (द्वयुम्) झूठ सच की माया से मिला हुआ है, उसको हमसे दूर करो और (नः) हमारे (अंहः) पापों को (युयोधि) दूर करो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा पापी पुरुषों का हनन करके निष्कपटता का प्रचार करता है ॥६॥

नवम मण्डल में यह एकसौ चारवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ षड्चस्य पञ्चाधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषी १—६ पर्वतनारदौ ॥ देवता–पवमानः सोमः ॥ छन्दः—१, २ उष्णिक् । ३, ४, ६ निचृदुष्णिक् । ५ विराडुष्णिक् ॥ स्वरः—ऋषभः ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥

पदार्थः—(सखायः) हे उपासक लोगो ! (यज्ञैः स्वदयन्तः) जो कि आप लोग यज्ञ द्वारा परमात्मा का स्तवन करते हैं (गूर्तिभिः) स्तुतियों द्वारा (तम्) उस परमात्मा को (वः पुनानम्) जो आप सब का पवित्र करने वाला है (शिशुम्) प्रशंसनीय है, उसको आनन्द के लिये (अभिगायत) गायन करें ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के यश को गायन करते हैं वे अवश्यमेव परमात्मज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥१॥

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।

देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥

पदार्थः—(देवावीः) देवताओं का रक्षक (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (हिन्वानः) उपास्यमान (मतिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा (समज्यते) उपासना किया जाता है, वह (मदः वत्सः, इव) परमानन्द के समान (मातृभिः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा (परिष्कृतः) परिष्कार को प्राप्त ध्यान विषय होता है ॥२॥

भावार्थः—जो लोग अपनी चित्तवृत्तियों को निर्मल करके उस परमात्मा का ध्यान करते हैं, परमात्मा अवश्यमेव उनके ध्यान का विषय होता है ॥२॥

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।

अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥३॥

पदार्थः—(अयम्) वह परमात्मा जो (दक्षाय, साधनः) चातुर्य का एक मात्र साधन है, (अयम्) वह (शर्धाय) बल के लिये (मधुमत्तमः) आनन्दमय है. (अयम्) वह (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सुतः) अभिव्यक्त है ॥३॥

भावार्थः—सब प्रकार की नीति का साधन एक मात्र परमात्मा है, जो विद्वान् नीतिनिपुण होना चाहते हैं वे भी एकमात्र परमात्मा की शरण लें ॥३॥

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व ।

शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (सुदक्ष) सर्वज्ञ (सुतः) आप सर्वत्र अभिव्यक्त हैं (नः) हमको (गोमत्) ज्ञानयुक्त (अश्ववत्) क्रियायुक्त ऐश्वर्य को (धन्व) प्राप्त करायें, ताकि (ते) तुम्हारे (शुचिवर्णम्) शुद्धस्वरूप को (अधिगोषु) मन बुद्धि आदिकों में (दीधरम्) धारण करें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग परमात्मा के शुद्धस्वरूप का ध्यान करते हैं, परमात्मा उन के ज्ञान को अपनी ज्योति से अवश्यमेव देदीप्यमान करता है ॥४॥

स नो॑ हरीणां पत॒ इन्दो॑ दे॒वप्स॑रस्तमः ।

सखे॑व॒ सख्ये॒ नर्यो॑ रु॒चे भ॑व ॥५॥

पदार्थः—(हरीणां, पते) हे अखिल प्रकाशाधार ! (इन्दो) परमात्मन् ! आप (देवप्सरस्तमः) दिव्य से दिव्य तेजवाले हैं (सः) वह आप (नः, नर्यः) हम सब यज्ञकर्ताओं की (रुचे, भव) दीप्ति के लिये हों (सख्ये, सखा, इव) जिस प्रकार मित्र मित्र के लिये तेजोवर्द्धक होता है ॥५॥

भावार्थः—जिस प्रकार सूर्य्य अन्य पदार्थों के तेज को देदीप्यमान करता है, इसी प्रकार परमात्मा भी ज्ञान-विज्ञानादि तेजों में लोगों को देदीप्यमान करता है ॥५॥

सने॑मि॒ त्वम॒स्मदाँ अदे॑वं॒ कं चि॑द॒त्रिण॑म् ।

साह्वाँ इ॑न्दो॒ परि॒ बाधो॒ अप॑ द्व॒युम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सनेमि) हम पर ऐसी कृपा करें जिससे (अदेवम्) जो अदैवी सम्पत्ति का पुरुष है, (अत्रिणम्) जो हिंसक है, (आ) और जो (द्वयुम्) सत्यानृतरूपी मायायुक्त है, ऐसे (कञ्चित् साह्वान्) सब शत्रु जो कई एक हैं (बाधः) हम को पीड़ा देने वाले हैं, उनको (अस्मत्) हमसे (परिजहि) दूर करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा मायावी पुरुषों से अपने भक्तों की रक्षा अवश्यमेव करता है अर्थात् परमात्मा के सामने मायावी पुरुषों की माया और दम्भियों का दम्भ कदापि नहीं चलता ॥६॥

नवम मण्डल में यह एकसौ पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

अथ चतुर्दशर्चस्य षडधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः १—३, १०—१४ अग्निश्चाक्षुषः। ४—६ चक्षुर्मानवः। ७—९ मनुराप्सवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१, ३, ४, ८, १०, १४ निचृदुष्णिक्। २, ५—७, ११, १२ उष्णिक्। ९, १३ विराडुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यंतु हरयः।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः॥१॥

पदार्थः—(स्वर्विदः) ज्ञानादिगुण (इन्दवः) जो प्रकाशस्वरूप हैं, (जातासः) जो सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो (सुताः) संस्कृत अर्थात् उपासना द्वारा जो साक्षात्कार को प्राप्त हैं, (हरयः) जो सब दुःखों को हरण करने वाले हैं, (इमे) ये परमात्मा के सब गुण (वृषणम्) कर्म द्वारा उद्योग की वृष्टि करने वाले, (इन्द्रम्) कर्मयोगी को (श्रुष्टी) शीघ्र (अच्छ, यन्तु) प्राप्त हों॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष उद्योगी हैं अर्थात् कर्मयोगी हैं, उन को परमात्मा के गुणों की उपलब्धि अवश्यमेव होती हैं॥१॥

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे॥२॥

पदार्थः—(अयम्) उक्त परमात्मा जो (सानसिः) सब का उपास्य देव है, (सोमः) सर्वोत्पादक है (सुतः) सर्वत्र विद्यमान है, वह गुणसम्पन्न परमात्मा (यथाविदे) यथार्थ ज्ञानी के लिये (भराय) जो स्वकर्तव्य से भरपूर है (जैत्रस्य) जो जयशील है (इन्द्राय) कर्मयोगी है उसको (चेतति) बोधन करता है, और अपने ज्ञानद्वारा (पवते) पवित्र करता है॥२॥

भावार्थः—परमात्मा विजयी पुरुषों को, धर्म से जो विजय करने वाले हैं, उनको अवश्यमेव अपने ज्ञान से बोधन करता है अपने ऐश्वर्य्य से उन्हें सदैव उत्साहित बनाता है॥२॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम्।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित्॥३॥

पदार्थः—(सानसिम्) सर्वभजनीय परमात्मा को (ग्राभम्) जो ग्रहण करने के योग्य है, (आ) और (वृषणम्) वर्षणशील (वज्रम्) विद्युत् को (संभरत्) बनाता है, (अस्य, इत्) उसी की ही (इन्द्रः) कर्मयोगी (अप्सुजित्) जो सब कामनाओं को वशी-

भूत करने वाला है, (मदेषु) आनन्द की प्राप्ति (गृभ्णीत) के लिये उपासना को करें ॥३॥

भावार्थः—कर्मयोगी को चाहिये कि वह एकमात्र परमात्मा की ही अनन्य भक्ति करे, अन्य किसी की उपासना न करे ॥३॥

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।

द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (जागृविः) जागरणशील हैं (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! कर्मयोगी के लिये (परिस्रव) आप प्राप्त हों जो कर्म्मयोगी (द्युमन्तं) दीप्तिवाला (स्वर्विदं) विज्ञानी है उसको (शुष्मं) बल से (आभर) आप पूर्ण करें, आप (प्रधन्व) कर्म्मयोगी को प्रेरणा करें, ताकि वह संसार की भलाई करे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपनी शक्तियों से सदैव जागृत है और वह कर्मयोगी को सदैव जागृति देकर सावधान करता है ॥४॥

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।

सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) कर्म्मयोगी के लिये (वृषणं) सब कामनाओं की वृष्टि करने वाले हैं (मदं) आनन्द (पवस्व) कर्म्मयोगी को दें । आप (विश्वदर्शतः) सर्वज्ञ हैं (सहस्रयामा) अनन्त शक्तियुक्त हैं और (विचक्षणः) चतुर हैं (पथिकृत्) अपने अनुयायियों के पथों को सुगम करने वाले हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा कर्मयोगी के लिये सब प्रकार के ऐश्वर्य्य प्रदान करता है, और उनको अपने ज्ञान से प्रकाशित करता है ॥५॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः ।

सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥६॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों के लिये (मधुमत्तमः) आनन्दमय परमात्मन् (अस्मभ्यं) हमारे लिये (गातुवित्तमः) शुभमार्गों की प्राप्ति करने वाले हो और (सहस्रं, पथिभिः) अनन्तशक्तिप्रद मार्गों से (कनिक्रदत्) गर्जते हुए (याहि) आप ज्ञानरूपी गति का प्रदान करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा अनन्त मार्गों द्वारा अपने ज्ञान का प्रकाश करता

Scanned by CamScanner

है अर्थात् इस विविध रचना से उसके भक्त अनन्त प्रकार से उसके ज्ञान को उपलब्ध करते हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना द्वारा और इस विशाल नभोमण्डल में अपनी दिव्य ज्योतियों से परमात्मा सदैव गर्ज रहा है। परमात्मा का यही गर्जन है, निराकार परमात्मा और किसी भी प्रकार गर्जन नहीं करता ॥६॥

पर्वस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥७॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (देववीतये) देवमार्ग की प्राप्ति के लिये (धाराभिः) आनन्द की वृष्टि से और (ओजसः) अपने विज्ञानयुक्त बल से (पवस्व) हमको पवित्र करें और (सोम) हे परमात्मन्! (मधुमान्) आनन्दमय आप (नः कलशं) हमारे अन्तःकरण में (असदः) आकर विराजमान हों ॥७॥

भावार्थः—ब्रह्मानन्द जो सब आनन्दों से बढ़कर आनन्द है, जिसको उपनिषत्कारों ने "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" इत्यादि वाक्यों में वर्णन किया है, वह आनन्दरूप परमात्मा अपने भक्तों को अवश्यमेव अपने ब्रह्मानन्द से आनन्दित करता है ॥७॥

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥८॥

पदार्थः—(तव, द्रप्साः) तुम्हारी शीघ्रगति वाली शक्तियाँ जो (उदप्रुतः) जलों के प्रवाह के समान बहती हैं वे (इन्द्रं) कर्म्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिये (ववृधुः) बढ़ती हैं और (त्वां) तुम जो (कं) आनन्दस्वरूप हो इससे (देवासः) विद्वान् लोग (अमृताय) सदा के जीवन के लिये (पपुः) पीते हैं ॥८॥

भावार्थः—ब्रह्मानन्द वा ब्रह्मामृतरूपी रस जो सब रसों से अधिक स्वादु है, उसका पान ब्रह्मपरायण ज्ञानयोगी और कर्मयोगी ही कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥८॥

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥९॥

पदार्थः—(इन्दवः) हे प्रकाशस्वरूप! (सुतासः) सर्वत्र विद्यमान परमात्मन् आप (नः) हमको (पुनानाः) पवित्र करते हुए (रयिं) धन को (आधावत) प्राप्त

करायें (वृष्टिं, द्यावः) द्युलोक को लक्ष्य रखकर वृष्टि करने वाले (रीत्यापः) सर्वव्यापक आप ! (स्वरविदः) आनन्दस्वरूप हैं, हमको भी आनन्दित करें ॥९॥

भावार्थः—जिस प्रकार बाह्य जगत् में परमात्मा की शक्तियों से अनन्त प्रकार की वृष्टि होती है इसी प्रकार कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषों के अन्तःकरण में परमात्मा की ज्ञानरूपी वृष्टि सदैव होती रहती है। इसको योगशास्त्र की परिभाषा में धर्ममेघ समाधि के नाम से कहा गया है अर्थात् धर्मरूपी मेघ से योगीजन सदैव सुसिञ्चित रहते हैं ॥९॥

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरों से (अव्यः) सब की रक्षा करता हुआ (वारं) सद्गुणसम्पन्न पुरुष को (विधावति) प्राप्त होते हैं। जो परमात्मा (अग्रे, वाचः) सर्वोपरि आध्यात्मिक विद्यारूपवाणी को (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (पवमानः) पवित्र बनाता है ॥१०॥

भावार्थः—जो पुरुष सद्गुणसम्पन्न हैं उनको परमात्मा अपने आनन्द में निमग्न करता है अर्थात् ब्रह्माम्बुधि में वे लोग अपने आपको सदैव शान्तिमय वारि से स्नान कराते हैं ॥१०॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११॥

पदार्थः—(धीभिः) स्तुतियों द्वारा (वाजिनं) उस बलस्वरूप को (हिन्वन्ति) सर्वोपरिरूप से वर्णन करते हैं जो परमात्मा (अत्यविं) सब की रक्षा करने वाला है (वने क्रीळन्तं) सर्वत्र विद्यमान है, (त्रिपृष्ठं) तीनों लोक, तीनों काल और तीनों सवन इत्यादि सब त्रिकों में विद्यमान है, उस को (मतयः) बुद्धिमान् लोग (समस्वरन्) स्तुति करते हैं ॥११॥

भावार्थः—परमात्मा कालातीत है अर्थात् भूत भविष्वत् और वर्तमान यह तीनों काल उसकी इयत्ता अर्थात् हद्द नहीं बांध सकते। तात्पर्य यह है कि काल की गति कार्य्य पदार्थों में है कारणों में नहीं, वा यों कहो कि नित्य पदार्थों में काल का व्यवहार नहीं होता किन्तु अनित्यों में होता है। इसी अभिप्राय से परमात्मा को कालातीतरूप से वर्णन किया है ॥११॥

Scanned by CamScanner

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयंन्नसिष्यदत् ॥१२॥

पदार्थः—(वाजयुः) सबलोकों का प्राप्त परमात्मा (मीळ्हे) संग्राम में (सप्तिर्न) विद्युत् के समान (कलशानभि) पवित्र अन्तःकरणों में (असर्जि) साक्षात्कार किया जाता है, वह परमात्मा (वाचं पुनानः) वाणी को पवित्र करके (जनयन्) उत्तम भावों को उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) शुद्ध अन्तःकरणों को सिञ्चन करता हुआ स्थिर होता है ॥१२॥

भावार्थः– उपासकों को चाहिये कि वे उपासना से प्रथम अपने अन्तःकरणों को शुद्ध करें, क्योंकि वह उपास्य देव स्वच्छ अन्तःकरणों में ही अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है ॥१२॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३॥

पदार्थः—(हर्यतः) वह सर्वपूज्य परमात्मा (हरिः) जो सब अवगुणों के हरण करने वाला है, वह (रंह्या) ज्ञानरूपवेग से (ह्वरांसि) सब प्रकार की कुटिलताओं को (अति) अतिक्रमण करके (पवते) पवित्र करता है और (स्तोतृभ्यः) उपासकों को (वीरवत् यशः) वीरसन्तान और यश (अभ्यर्षन्) देकर (पवते) पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण लोगों को सरल भाव प्रदान करके उनकी कुटिलताओं को दूर करता है और उनको वीर सन्तान देकर लोक-परलोक में तेजस्वी बनाता है ॥१३॥

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४॥

पदार्थः—(देवयुः) वह परमात्मा विद्वानों को पवित्र करने वाला है (मधोः धारा) जिसकी आनन्दमय धारा (असृक्षत) आविर्भाव को प्राप्त की जाती है । (अया) उक्त धारा से हे परमात्मन् ! (पवस्व) आप हमको पवित्र करें क्योंकि आप (विश्वतः) सब प्रकार से (पवित्रं) पवित्र अन्तःकरण को (रेभन्) शब्दायमान होते हुए (पर्येषि) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

Scanned by CamScanner

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥१२॥

पदार्थः—(वाजयुः) सबलोकों का प्राप्त परमात्मा (मीळ्हे)संग्राम में(सप्तिर्न) विद्युत् के समान (कलशानभि) पवित्र अन्तःकरणों में (असर्जि) साक्षात्कार किया जाता है, वह परमात्मा (वाचं पुनानः) वाणी को पवित्र करके (जनयन्) उत्तम भावों को उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) शुद्ध अन्तःकरणों को सिञ्चन करता हुआ स्थिर होता है ॥१२॥

भावार्थः– उपासकों को चाहिये कि वे उपासना से प्रथम अपने अन्तःकरणों को शुद्ध करें, क्योंकि वह उपास्य देव स्वच्छ अन्तःकरणों में ही अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है ॥१२॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३॥

पदार्थः—(हर्यतः) वह सर्वपूज्य परमात्मा (हरिः) जो सब अवगुणों के हरण करने वाला है, वह (रंह्या) ज्ञानरूपवेग से (ह्वरांसि) सब प्रकार की कुटिलताओं को (अति) अतिक्रमण करके (पवते) पवित्र करता है और (स्तोतृभ्यः) उपासकों को (वीरवत् यशः) वीरसन्तान और यश (अभ्यर्षन्) देकर (पवते) पवित्र करता है ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा परमात्मपरायण लोगों को सरल भाव प्रदान करके उनकी कुटिलताओं को दूर करता है और उनको वीर सन्तान देकर लोक-परलोक में तेजस्वी बनाता है ॥१३॥

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४॥

पदार्थः—(देवयुः) वह परमात्मा विद्वानों को पवित्र करने वाला है (मधोः धारा)जिसकी आनन्दमय धारा (असृक्षत) आविर्भाव को प्राप्त की जाती है। (अया) उक्त धारा से हे परमात्मन् !(पवस्व)आप हमको पवित्र करें क्योंकि आप (विश्वतः) सब प्रकार से (पवित्रं) पवित्र अन्तःकरण को (रेभन्) शब्दायमान होते हुए (पर्येषि) प्राप्त होते हैं ॥१४॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा का शब्दायमान होना इसी तात्पर्य से है कि वह अपने वेदरूपी शब्दब्रह्म द्वारा शब्दायमान है अर्थात् वेद के सदुपदेश द्वारा लोगों को बोधित करता है ॥१४॥

नवम मण्डल में यह एकसौ छः वाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य सप्ताधिकशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः सप्तर्षयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ९, १४, १७, २१ विराड्बृहती । २, ५ भुरिग्बृहती । ८, १०, १२, १३, १९, २५ बृहती । २३ पादनिचृद्बृहती । ३, १६ पिपीलिकामध्या गायत्री । ७, ११, १८, २०, २४, २६, निचृत् पंक्तिः । १५, २२, पंक्तिः । स्वरः—१, २, ४—६, ८—१०, १२—१४, १७, १९, २१, २३, २५ मध्यमः । ३, १६ षड्जः ७, ११, १५, १८, २०, २२, २४, २६, पञ्चमः ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

पदार्थः—(सोमम्) सर्वोत्पादक परमात्मा को (सुतम्) जो सर्वत्र विद्यमान है (अप्स्वन्तः) जो प्रकृति के सूक्ष्म कारण में विराजमान है उसको (अद्रिभिः) चित्तवृत्तियों द्वारा यज्ञ का अधिष्ठाता (आसुसाव) भलीभाँति साक्षात्कार करता है (यः, सोमः) जो सोम (उत्तमं हविः) विद्वानों का सर्वोपरि पूजनीय है (नर्यः) सब नरों का हितकारी है तथा (दधन्वान्) सबको धारण करता हुआ जो सर्वत्र विद्यमान है उसको (इतः) यज्ञादि कर्मों के अनन्तर ज्ञानवृत्तिरूप वृष्टि से (परिषिञ्चत) परिसिञ्चन करें ॥१॥

भावार्थः—सोम जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का कारण है और जो सौम्य स्वभावों का प्रदान करने वाला है, वह सोमरूप परमात्मा संसार में ओतप्रोत हो रहा है उसका अपनी ज्ञानरूपी वृत्तियों द्वारा साक्षात् करना ही वृत्तियों से सिञ्चन करना है ॥१॥

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (नूनम्) निश्चय करके (अविभिः) अपनी रक्षाओं से (पुनानः) पवित्र करते हुए आप (परिस्रव) हमारे अन्तःकरण में आकर विराजमान हों, आप (अदब्धः) अखण्डनीय हैं (सुरभिन्तरः) अत्यन्त शोभनीय हैं, हम लोग

Scanned by CamScanner

(उत्तरम्) अत्यन्त प्रेमसे (गोभिः) ज्ञानरूप वृत्तियों द्वारा (श्रीणन्तः) तुम्हारा साक्षात्कार करते हुए (अन्धसा) मनोमय कोश से (अप्सु) कर्मों में (सुते, चित्) साक्षात्कार के लिये (त्वा) तुम्हारा (मदामः) स्तवन करते हैं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, आपका स्वरूप अखण्डनीय है इसलिये आपका ध्यान व्यापकभाव से ही किया जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥२॥

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थः—(चक्षसे) सब लोगों की ज्ञानवृद्धि के लिये (परिसुवानः) ज्ञानरूपी दीप्ति से प्रकट हुआ परमात्मा उपासकों के ध्यानगोचर होता है, वह परमात्मा (देवमादनः) विद्वानों को आनन्द देने वाला है (क्रतुः) यज्ञरूप है (इन्दुः) स्वयंप्रकाश है (विचक्षणः) विलक्षण प्रतिभा वाला अर्थात् सर्वज्ञ है ॥३॥

भावार्थः—जिस समय उस निराकार का ध्यान किया जाता है उस समय उसके सद्गुण उपासक के हृदय में आविर्भाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् उसके सत्‌चित् आनन्द इत्यादि रूप प्रतीत होने लगते हैं। यही परमात्मदेव का साक्षात्कार है ॥३॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (अपः, पुनानः) हमारे कर्मों को पवित्र करते हुए आप (वसानः) हमारे अन्तःकरण में निवास करते हुए (धारया) आनन्द की वृष्टि से (अर्षसि) हम को प्राप्त होते हैं (रत्नधाः) आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को धारण करने वाले हैं (ऋतस्य, योनिम्) सत्य रूपी यज्ञ के स्थान को (आसीदसि) प्राप्त होते हैं (देव) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (उत्सः) आप सबका निवास स्थान और (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप हैं, [अप इति कर्मनामसु पठितम्—निरु० अ० ३—खं—२] ॥४॥

भावार्थः—वह ज्योतिस्वरूप परमात्मा अपनी दिव्य ज्योति से उपासक के अज्ञान को छिन्न-भिन्न करके उसमें विमल ज्ञान का प्रकाश करता है ॥४॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(दुहानः) सबको परिपूर्ण करनेवाला (ऊधः) सबका अधिकरण-स्वरूप परमात्मा (मधु) आनन्दस्वरूप (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) अन्तरिक्ष स्थान को (प्रियम्) जो प्रिय है, उसको (आसदत्) आश्रय करता है वह परमात्मा (वाजी) जो बलस्वरूप (विचक्षणः) विलक्षण बुद्धि वाला (नृभिः, धूतः) उपासकों से उपासना किया हुआ (धरुणम्) धारणा वाले (आपृच्छ्यम्) जिज्ञासु=यजमान को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष धारणा ध्यानादि साधनों से सम्पन्न हैं वे ही उस निराकार ज्योति के ज्ञान के पात्र बन सकते हैं अन्य नहीं ॥५॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥६॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (पुनानः) आप सबको पवित्र करते हुए (जागृविः) सदैव अपनी चेतन सत्ता से विराजमान हैं (अव्यः) सर्वरक्षक हैं (वारे) आपको वरण करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में (परि, प्रियः) आप अत्यन्त प्रिय हैं (त्वम्) आप (विप्रः) मेधावी हैं [विप्र इति मेधावि नामसु पठितम्] (अङ्गिरस्तमः, अभवः) सब प्राणों में प्रियतम अर्थात् प्राणों के भी प्राण हैं (मध्वा) अपने आनन्द से (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (मिमिक्ष) सिञ्चन करें ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपासकों के यज्ञों को अपनी ज्ञानमयी वृष्टि द्वारा सुसिञ्चित करके आनन्दित करते हैं ॥६॥

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥७॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (सोमः) सर्वोत्पादक हैं (मीढ्वान्) सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले (गातुवित्तमः) सर्वोपरि मार्ग के दिखलाने वाले हैं, (ऋषिः) [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र प्राप्नोतीति ऋषिः] जो अपनी व्यापक शक्ति से सर्वत्र विद्यमान हो उसका नाम यहां ऋषि है (विप्रः) मेधावी (विचक्षणः) सर्वोपरि विज्ञानी है (कविः) सर्वज्ञ (अभवः) है (देववीतमः) सब विद्वानों के परमप्रिय तथा (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य का (आरोहयः) प्रादुर्भाव करते हैं, उक्त गुणशाली आप उपासकों के अन्तःकरणों को (पवते) पवित्र करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि परमात्मा ज्ञानादि गुणों द्वारा उपासक के हृदय को दीप्तिमान बनाते हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

सोमं उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

पदार्थः—आपको साक्षात्कार करनेवाले (**सोतृभिः**) उपासकों द्वारा (**अधि, सुवानः**) साक्षात्कार को प्राप्त हुए (**सोम**) सर्वोत्पादक आप (**अवीनाम्**) रक्षायुक्त वस्तुओं के (**ष्णुभिः**) रक्षायुक्त साधनों से (**अश्वया**) विद्युत् के (**इव**) समान (**हरिता**) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (**मन्द्रया, धारया**) आनन्दित करने वाली धारा से (**याति**) उपासकों के अन्तःकरण को प्राप्त होता है ॥८॥

भावार्थः—जिस प्रकार विद्युत् अपनी शक्तियों द्वारा नाना कार्य्यों का हेतु होती है इसी प्रकार परमात्मा अपने ज्ञान कर्मरूपी शक्ति द्वारा सब ब्रह्माण्डों की रचना का हेतु है ॥८॥

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥९॥

पदार्थः—(**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**दुग्धाभिः**) ज्ञान को दोहन करने वाली चित्तवृत्तियों द्वारा (**अक्षाः**) साक्षात्कार को प्राप्त होता है (**गोमान्**) वह ज्ञान-रूपी दीप्तिवाला परमात्मा (**गोभिः**) अन्तःकरण की वृत्ति द्वारा (**अनूपे**) अनूपरूपी अन्तःकरण देश में (**अक्षाः**) प्रवाहित होता है (**न**) जैसे (**समुद्रम्**) समुद्र के अभिमुख (**संवरणानि**) समुद्र को जानेवाली नदियां (**अग्मन्**) प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार (**मन्दी**) आनन्दस्वरूप परमात्मा (**मदाय**) आनन्द के लिये (**तोशते**) अज्ञानरूपी आवरण को भंग करके साक्षात्कार किया जाता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अज्ञान को भंग करके परमात्मा का साक्षात्-कार करना वर्णन किया गया है ॥९॥

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (**अद्रिभिः**) चित्तवृत्तियों द्वारा (**सुवानः**) साक्षात्कार को प्राप्त हुए आप (**वाराणि**) वरणीयान्तःकरणों को (**आवि-शत्**) प्रवेश करते हैं (**हरिः**) कर्मों का अधिष्ठाता परमात्मा (**अव्यया**) जो सर्वरक्षक है वह (**तिरः**) अज्ञान को तिरस्कार करके (**वनेषु**) भक्तिभाजन अन्तःकरणों में विरा-जमान होता है, और उनको (**सदः**) स्थिति का स्थान बनाकर (**दधिषे**) ज्ञान का

Scanned by CamScanner

प्रकाश करता है (न) जिस प्रकार (जनः) जनसमुदाय (चम्बोः) अधिष्ठानरूप (पुरि) पुरी को प्रवेश करता है, इसी प्रकार परमात्मज्ञान पुरीरूप अन्तःकरण में प्रवेश करता है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता वर्णन की गई है ॥१०॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीह्ळे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥

पदार्थः—(मेष्यः) [मिषति इति मेष्यः] सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला (वाजयुः) ऐश्वर्य्ययुक्त भगवान् (मीह्ळे) युद्ध में (न) जिस प्रकार (सप्तिः) अश्व सत्तास्फूर्तिवाला होता है, इस प्रकार ओजस्वी (अण्वानि) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पञ्च तन्मात्राओं को (तिरः) तिरस्कार करके (सः, ममृजे) वह बुद्धिवृत्ति का विषय किया जाता है, और (सोमः) उक्त सर्वोत्पादक परमात्मा (विप्रेभिः) जो मेधावी है, और (ऋक्वभिः) जो समय-समय पर यज्ञ करने वाले हैं, ऐसे (मनीषिभिः) मनस्वी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (पवमानः) सबको पवित्र करनेवाला वह परमात्मा (अनुमाद्यः) आनन्द प्रदान करता है ॥११॥

भावार्थः—जो सर्वोपरि ब्रह्मानन्द है जिसके आगे और सब आनन्द फीके हैं, वह एकमात्र परमात्मपरायण होने से ही उपलब्ध होता है, अन्यथा नहीं ॥११॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (देववीतये) विद्वानों की तृप्ति के लिये (अर्णसा) जल से (सिन्धुः) सिन्धु के (न) समान (प्रपिप्ये) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (अंशोः) जीवात्मा के (पयसा) अभ्युदय से (मदिरः) आह्लादक आनन्द (न) जैसे (मधुश्चुतम्, कोशम्) आनन्द के कोश अन्तःकरण को (अच्छ) प्राप्त होता है इसी प्रकार (जागृविः) चैतन्यस्वरूप परमात्मा उपासकों की तृप्ति के लिये जीव के अन्तःकरण को आनन्द का स्रोत बनाता है ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका आनन्द यद्यपि सर्वत्र परिपूर्ण है, तथापि उसको चित्त की निर्मलता द्वारा उपलब्ध करने वाले उपासक प्राप्त कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥१२॥

Scanned by CamScanner

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३॥

पदार्थः—(अर्जुने) कर्मों के अर्जन विषय में (अत्के) जो निरूपण किया जाता है वह (हर्यतः) सर्वप्रिय परमात्मा (अव्यत) हमारी रक्षा करता है (न) जैसे (सूनुः) सन्तति (मर्ज्यः) मार्जन करने योग्य होती है, इसी प्रकार (प्रियः) सर्वप्रिय परमात्मा सन्ततिस्थानीय हम लोगों की रक्षा करता है (तमीम्) उक्त परमात्मा की (अपसः) कर्म (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं (यथा) जिस प्रकार (गभस्त्योः) बल के समक्ष (रथम्) वेग को (नदीषु) संग्राम में प्रेरणा करते हैं, इसी प्रकार रथरूपी जीव को कर्मरूप संग्राम के अभिमुख परमात्मा प्रेरणा करता है ॥१३॥

भावार्थः—संचित कर्म, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों प्रकार के कर्मों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा ही है ॥१३॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥

पदार्थः—(आयवः) ज्ञानशील विद्वान् (सोमासः) सर्वोत्पादक परमात्मा के (अभि) अभिमुख (मद्यम्) आह्लाद तथा (मदम्) आनन्द के लिये (पवन्ते) आत्मा को पवित्र करते हैं (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष देश के (अधिविष्टपि) ऊपर (मनीषिणः) मननशील (मत्सरासः) ब्रह्मानन्द का पान करने वाले (स्वर्विदः) विज्ञानी लोग परमात्मा के रस को पान करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—ज्ञानी और विज्ञानी लोग ही अपने जप तप आदि संयमों द्वारा परमात्मा के आनन्द को उपलब्ध करते हैं और वही अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं ॥१४॥

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥

पदार्थः—(ऊर्मिणा) अपने आनन्द की लहरों से (पवमानः) पवित्र करने वाला परमात्मा (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक को (तरत्) अवगाहन करता है (राजा) [राजते प्रकाशत इति राजा] सबको प्रकाश करने वाला (देवः) दिव्यस्वरूप (बृहत्, ऋतम्) सर्वोपरि सत्य को धारण करने वाला परमात्मा (प्रार्षत्) सर्वत्र गतिशील होता है और (मित्रस्य) अध्यापक तथा (वरुणस्य) उपदेशक के (धर्मणा) धर्मों द्वारा (बृहत्,

ऋतम्) सर्वोपरि सत्य को (**हिन्वानः**) प्रेरणा करता हुआ अध्यापक और उपदेशकों द्वारा देश का कल्याण करता है ॥१५॥

भावार्थः—जिस देश में अध्यापक और उपदेशक अपनी शुभशिक्षा द्वारा लोगों को सुशिक्षित करते हैं, परमात्मा उस देश का अवश्यमेव कल्याण करता है ॥१५॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥

पदार्थः—(**समुद्रियः**) अन्तरिक्ष देशव्यापी (**देवः**) दिव्यस्वरूप (**राजा**) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का नियन्ता (**विचक्षणः**) सर्वद्रष्टा (**हर्यतः**) सर्वप्रिय परमात्मा (**नृभिः**) सदुपदेशक मनुष्यों द्वारा (**येमानः**) उपदेश किया हुआ कर्मयोगी के लिये शुभफलों का प्रदाता होता है ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा के ज्ञान से कर्मयोगी नानाविध फलों को लाभ करता है। यहां कर्मयोगी यह उपलक्षण मात्र है। वास्तव में ज्ञानयोगी, उद्योगी, तपस्वी और संयमी सब प्रकार के पुरुषों का यहां ग्रहण है ॥१६॥

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७॥

पदार्थः—(**मरुत्वते**) कर्मयोगी द्वारा (**सुतः**) साक्षात्कार किया हुआ (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**मदः**) आल्हादक बनकर (**इन्द्राय**) कर्मयोगी के लिये (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है (**सहस्रधारः**) अनन्तशक्तियुक्त परमात्मा (**अति, अव्यम्**) अत्यन्त रक्षा को (**अर्षति**) प्राप्त होता अर्थात् करता है (**तम्**) उक्त परमात्मा को (**आयवः**) कर्मयोगी लोग (**मृजन्ति**) साक्षात्कार करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—यहां भी कर्मयोगी उपलक्षणमात्र है। वास्तव में सब प्रकार के योगियों का यहां ग्रहण है कि वह परमात्मा का साक्षात्कार करके सुरक्षित रह कर आह्लादक तथा सुखकारी पदार्थों का उपभोग करते हैं ॥१७॥

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८॥

पदार्थः—(**चमू**) जीव तथा प्रकृतिरूपी संसार की आधार दोनों शक्तियों को (**पुनानः**) पवित्र करता तथा (**मतिम्**) बुद्धि को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**कविः**) विज्ञ (**सोमः**) सर्वोत्पादक परमात्मा (**देवेषु**) सूर्यादि दिव्यशक्तिवाले पदार्थों में

Scanned by CamScanner

(रण्यति) सर्वव्यापक भाव से विराजमान होता है (अपः, वसानः) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (गोभिः, उत्तरः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (परि-सीदन्) अन्तःकरणों में विराजमान होता तथा (वनेषु) सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में परि, अव्यत) सब ओर से रक्षा करता है ॥१८॥

भावार्थः—द्युभ्वादि लोकलोकान्तर एकमात्र परमात्मा ही के आधार पर स्थित होने से योगीजन सर्वत्र सुरक्षित रहता है ॥१८॥

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥१९॥

पदार्थः—(इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप (सोम) सर्वोत्पादक परमात्मन्! (दिवेदिवे) प्रतिदिन (तव, सख्ये) तुम्हारी मैत्री में (अहं, रारण) मैं सदैव तुम्हारा स्मरण करता हूँ (बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन्! (पुरूणि) बहुत (निचरन्ति) नीच भावों से जो राक्षस (माम्) मुझको पीड़ा देते हैं (तान्, परिधीन्) उन राक्षसों को (अतीहि) अतिक्रमण करके मेरी (अव) रक्षा करो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्! वैदिक कर्मानुष्ठान में विघ्न करनेवाले मनुष्यों से हमारी रक्षा करें, "रक्ष-त्यस्मादिति रक्षः, रक्ष एव राक्षसः" यहाँ राक्षस शब्द से विघ्नकारी मनुष्यों का ग्रहण है, किसी जातिविशेष का नहीं ॥१९॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि।

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥

पदार्थः—(बभ्रो) हे सर्वाधिकरण परमात्मन्! (ते, सख्याय) तुम्हारी मैत्री के लिये (दिवा) दिन (उत) अथवा (नक्तम्) रात्रि (सोम) हे सोम (ते, ऊधनि) तुम्हारे समीप (घृणा, तपन्तम्) जो तुम अपनी दीप्ति से देदीप्यमान हो (अति, सूर्यम्) अपने प्रकाश से सूर्य को भी अतिक्रमण करनेवाले हो, तथा (परः) सर्वोपरि हो, उक्त गुणसम्पन्न आपको (शकुना, इव) पक्षी के समान (पप्तिम) प्राप्त होने के लिये गति-शील बनूं ॥२०॥

भावार्थः—बिभर्तीति बभ्रुः=जो सबको धारण करने वाला पर-मात्मा है, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥२०॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि।

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सुहस्त्य) हे सर्वसामर्थ्यों को हस्तगत करने वाले परमात्मन् ! आप (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करते हैं (मृज्यमानः) उपासना किये हुए आप (बहुलम्) बहुत सा (पिशङ्गम्) सुवर्णरूपी (रयिम्) धन (पुरुस्पृहम्) जो सबको प्रिय है वह (पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (अभ्यर्षसि) आप देते हैं ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा की उपासना करने से सब प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं, इसलिये ऐश्वर्य्य की चाहना वाले पुरुष को उसकी उपासना करनी चाहिये ॥२१॥

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमाननिष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥

पदार्थः—(मृजानः) आप सबको शुद्ध करने वाले हैं (अव्यये, वारे) रक्षायुक्त वरणीय पुरुष को (पवमानः) पवित्र करने वाले (वृषा) सब कामनाओं की वर्षा करने वाले आप (वने) सब ब्रह्माण्डों में (अव, चक्रदः) शब्दायमान हो रहे हैं (सोम) हे सर्वोत्पादक (पवमान) सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् (देवानाम्) विद्वानों के (निष्कृतम्) संस्कृत अन्तःकरण को (अर्षसि) प्राप्त होते हैं, आप कैसे हैं (गोभिः, अञ्जानः) इन्द्रियों द्वारा ज्ञानरूपी वृत्तियों से साक्षात्कार किये जाते हैं ॥२२॥

भावार्थः—अभ्युदय और निःश्रेयस का हेतु एकमात्र परमात्मा ही है, इसलिये उसी की उपासना करनी चाहिये ॥२२॥

पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोममत्सरः ॥२३॥

पदार्थः—(विश्वानि, काव्या) सर्वज्ञता के सम्पूर्ण भावों को (अभि) लक्ष्य रखकर (पवस्व) आप हमको पवित्र करें, (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये आप (मत्सरः) अत्यन्त आनन्दप्रद हैं, और (त्वम्) तुमने (समुद्रम्) अन्तरिक्षरूपी कलश को (प्रथमः) सबसे प्रथम (विधारयः) धारण किया है, आप (वाजसातये) ऐश्वर्य धारण करने के लिये (पवस्व) हमको पवित्र बनायें ॥२३॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! इस नभोमण्डल अर्थात् कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को एकमात्र आपने ही धारण किया है, इसलिये आप कृपा करके हमारे भावों को पवित्र बनायें, जिससे हम आपकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥२३॥

Scanned by CamScanner

स तू पंवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रांसो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥२४॥

पदार्थः—(पार्थिवम्, रजः) पृथिवी के परमाणु (च) और (दिव्या) द्युलोकस्थ अन्य भूतों के परमाणुओं को (सः, तु) वह आप (परि, पवस्व) भले प्रकार पवित्र करें (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! (धर्मभिः) तुम्हारे गुणों द्वारा (त्वाम्) तुम्हारा (विप्रासः) मेधावी लोग (मतिभिः) अपनी बुद्धि से साक्षात्कार करते हैं (विचक्षण) हे सर्वज्ञ! (शुभ्रम्) सर्वोपरि शुद्धस्वरूप आपको (धीतिभिः) कर्मयोग की शक्तियों द्वारा कर्मयोगी लोग तुम्हारी (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥२४॥

भावार्थः—इस ब्रह्माण्ड के परमाणुरूप सूक्ष्म कारण को एकमात्र परमात्मा ही धारण करता तथा पवित्र करता है, इसलिये हे भगवन्! हम में भी वह शक्ति प्रदान करें कि हम कर्मयोगी बनकर ऐश्वर्यशाली हों॥२४॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५॥

पदार्थः—(धारया) अपनी कृपामयी वृष्टि से (पवित्रम्) पवित्र अन्तःकरण को (अभि) लक्ष्य रखकर (अति, असृक्षत) तुम्हारा साक्षात्कार किया जाता है (पवमानाः) तुम्हारे पवित्र स्वभाव (मरुत्वन्तः) जो विद्वानों द्वारा साक्षात्कार किये गये हैं (मत्सराः) आनन्ददायक हैं (इन्द्रियाः) कर्मयोगियों के हितकर हैं (हयाः) गतिशील हैं (च) और (मेधाम्) बुद्धि तथा (प्रयांसि) ऐश्वर्य्यों को देने वाले जो आपके स्वभाव हैं, उनसे आप हमको पवित्र करें ॥२५॥

भावार्थः—परमात्मा के अपहतपाप्मादि स्वभाव उपासना द्वारा मनुष्य को शुद्ध करते हैं, इसलिये मनुष्य को उसकी उपासना में सदा रत रहना चाहिये ॥२५॥

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥२६॥

पदार्थः—(सोतृभिः) कर्मयोगियों से (हियानः) प्रेरणा किया हुआ (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (कोशम्) उनके अन्तःकरण को (पर्यर्षति) प्राप्त होता है (अपः, वसानः) कर्मों का अध्यक्ष परमात्मा (ज्योतिः) सूर्यादि ज्योतियों को (जनयन्) उत्पन्न करके (गाः) पृथिव्यादि लोकों को (अवीवशत्) देदीप्यमान करता हुआ और

Scanned by CamScanner

(निर्णिजम्) अपने स्वरूप को (कृण्वानः) स्पष्ट करते हुए के (न) समान (मन्दनाः) अभिव्यक्त करता है ॥२६॥

भावार्थः—सूर्य चन्द्रादि नाना ज्योतियों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा सब कर्मों का अध्यक्ष हैं, वह अपनी कृपा से हमारे अन्तःकरण को प्राप्त हो ॥२६॥

नवम मंडल में यह एकसो सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षोडशर्चस्य अष्टोत्तरशततमस्य सूक्तस्य ऋषिः–१, २ गौरिवीतिः । ३, १४—१६ शक्तिः । ४, ५ उरुः । ६, ७ ऋजिश्वाः । ८, ९ ऊर्द्धसद्मा । १०, ११ कृतयशाः १२, १३ ऋणञ्चयः ॥ पवमानःसोमो देवता ॥ छन्दः १, ६, ११ उष्णिक् ककुप् । ३ पादनिचृदुष्णिक् । ५, ७, १५ निचृदुष्णिक् । २ निचृद्बृहती । ४, ६ १०, १२ स्वराड्बृहती । ८, १६ पङ्क्तिः । १४ निचृत्पङ्क्तिः । १३ गायत्री ॥ स्वरः १, ३, ५, ७, ९, ११, १५ ऋषभः । २, ४, ६, १०, १२ मध्यमः । ८, १४, १६, पञ्चमः । १३ षड्जः ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (मधुमत्तमः) आनन्दस्वरूप और (क्रतुवित्तमः) सब कर्मों के वेत्ता हैं (द्युक्षतमः) दीप्तिवाले हैं (महि, मदः) अत्यन्त आनन्द के हेतु (मदः) हर्षस्वरूप आप (इन्द्राय) कर्मयोगी को (पवस्व) पवित्र करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से शुभकर्मों की ओर लगने की प्रार्थना की गई है कि हे शुभकर्मों में प्रेरक परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों को भलीभांति जानते हुए भी अपनी कृपा से हमें शुभकर्मों की ओर प्रेरित करें कि हम कर्मयोगी बनकर आपकी समीपता का लाभ कर सकें।।१॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥

पदार्थः—(यस्य, ते) जिस तुम्हारे (पीत्वा) आनन्द के पान करने से (वृषभः) कर्मों की वृष्टि करने वाला कर्मयोगी (वृषायते) वर्षतीति वृषः, वृषु सिञ्चने, इस धातु से सदुपदेश द्वारा सिञ्चन करने वाले पुरुष के लिये यहां 'वृष' शब्द आया है

जिसके अर्थ सदुपदेश के हैं (अस्य, पीता) इस आनन्द के पीने से (सुप्रकेतः) शोभन प्रज्ञा वाला होकर (इषः, अभ्यक्रमीत्) शत्रुओं को अतिक्रमण कर जाता है (एतशः) अश्व (न) जैसे (वाजम्) संग्राम का (अच्छ) अतिक्रमण करता है इसी प्रकार कर्मयोगी पुरुष सब बलों का अतिक्रमण करता और (स्वर्विदः) विज्ञानी बनता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेद के सदुपदेश द्वारा कर्मयोगी शोभन प्रज्ञावाला हो जाता है। यहां अश्व के दृष्टान्त से कर्मयोगी के बल और पराक्रम का वर्णन किया है कि जिस प्रकार अश्व संग्राम में विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार कर्मयोगी विज्ञान द्वारा सब शत्रुओं का पराजय करने वाला होता है ॥२॥

त्वं ह्यं१ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।

अमृतत्वाय घोषयः ॥३॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करने वाले परमात्मन् ! (त्वम्, दैव्या, जनिमानि) पवित्र जन्मों को लक्ष्य रखकर (द्युमत्तमः) दीप्तिवाले आप (अमृतत्वाय) अमृतभाव का (घोषयः) घोषण करते हैं (हि) निश्चय करके (अंग) हे सर्वप्रिय परमात्मन् आप ही सब का कल्याण करने वाले हैं ॥३॥

भावार्थः—वही परमपिता परमात्मा विद्वान् तथा सत्कर्मी जीवों को कल्याण के देने वाले और वही सबका पालन-पोषण करने वाले हैं ॥३॥

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥४॥

पदार्थः—(येन) जिस तुम्हारे आनन्द से (नवग्वः) नवीन पुरुष (दध्यङ्) ध्यानी लोग (अपोर्णुते) सदुपदेशों द्वारा लोगों को सुरक्षित करते हैं (येन) जिससे (विप्रासः) मेधावी लोग (आपिरे) प्राप्त होते हैं (देवानाम्, सुम्ने, चारुणः, अमृतस्य) विद्वानों के अमृतरूपी सुख में जिज्ञासु विराजमान होता है (येन) जिससे (श्रवांसि) यशों को (आनशुः) भोगता है, वह एकमात्र आप ही का आनन्द है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा ही अपने अनादिसिद्ध ज्ञान द्वारा लोगों को सन्मार्ग की प्रेरणा करता, वही सद्विद्यारूपी वेदों से सबका सुधार करता और वही सबको आनन्द प्रदान करने वाला है ॥४॥

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः ।

क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(एषः, स्यः) वह पूर्वोक्त परमात्मा (अव्यः) जो सर्वरक्षक है (वारेभिः, सुतः) श्रेष्ठ साधनों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (धारया) आनन्द की वृष्टि से (पवते) पवित्र करता है (मदिन्तमः) वह आनन्दस्वरूप (अपाम्, ऊर्मिः, इव) समुद्र की लहरों के समान (क्रीळन्) क्रीड़ा करता हुआ, सब ब्रह्माण्डों का निर्माण करता है ॥५॥

भावार्थः—यहां समुद्र की लहरों का दृष्टान्त अनायास के अभिप्राय से है साकार के अभिप्राय से नहीं, अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अनायास ही श्वासादि व्यवहार करता है इसी प्रकार लीलामात्र से परमात्मा इस संसार की रचना करता है ॥५॥

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥६॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (अप्याः, उस्रियाः) अपनी व्याप्तिशील शक्तियों से (अन्तरश्मनः) मेघों के भीतर (ओजसा, अकृन्तत्) बल से छेदन करता हुआ (निर्गाः) निरन्तर शब्दायमान होकर (व्रजम्) इस ब्रह्माण्डरूपी समुदाय के समक्ष (अभि, तत्निषे) चारों ओर व्याप्त हो रहा है और जो (गव्यम्) ज्ञान तथा (अश्व्यम्) कर्म की शक्तियों को (वर्मीव) कवच के समान धारण कर रहा है उससे यह प्रार्थना है कि (धृष्णो) हे धृतिरूप परमात्मन् ! (आरुज) आप हमारी बाधक शक्तियों को नाश करें ॥६॥

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, वही मंगलमय प्रभु सब विघ्नों को निवृत्त करके कल्याण का देने वाला और वही सब पापों का क्षय करने वाला है ॥६॥

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥७॥

पदार्थः—(अश्वम्, न) जो विद्युत् के समान (अप्तुरम्) अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को गति देने वाला (रजस्तुरम्) तेजस्वी पदार्थों को गति देने वाला, और (वनक्रक्षम्, उदप्रुतम्) जो सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है ऐसे (स्तोमम्) स्तुतियोग्य परमात्मा को (परिषिञ्चत, आ) अपनी उपासनारूप वारि से भले प्रकार सिञ्चन करते हुए उसका (सोत) साक्षात्कार करें ॥७॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—विद्युदादि नानाविध क्रियाशक्तियों का प्रदाता, निर्माता तथा प्रकाशक एकमात्र परमात्मा ही है, वही सबका उपासनीय और वही सबको कल्याण का देने वाला है ॥७॥

सहस्रंधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।

ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥८॥

पदार्थः—(सहस्रधारम्) जो अनन्त प्रकार की आनन्द धाराओं से (वृषभम्) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (पयोवृधम्) जो अन्नादि ऐश्वर्यों से परिपूर्ण और (प्रियम्) जो सर्वप्रिय है, ऐसे परमात्मा से मैं (देवाय, जन्मने) दिव्यजन्म के लिये प्रार्थना करता हूँ, जो (ऋतेन) प्रकृतिरूपी ऋत से (ऋतजातः) ऋतजात अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है (विववृधे) जो सर्वत्र विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त है, (यः) जो (देवः) दिव्यस्वरूप और जो (राजा) सब भूतों का स्वामी है वही (ऋतं बृहत्) एकमात्र सर्वोपरि सत्य है, उसी परमात्मा की लोग उपासना करें ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रकृति को "ऋत" इस अभिप्राय से कहा गया है कि प्रकृति परिणामी नित्य है—अर्थात् परिणाम को प्राप्त होकर नाश नहीं होती, शेष सब अर्थ स्पष्ट है ॥८॥

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः ।

वि कोशं मध्यमं युव ॥९॥

पदार्थः—(द्युम्नम्) दीप्ति वाला (बृहत्, यशः) बड़े यश वाला (इषस्पते) हे ऐश्वर्यों के पति परमात्मन् ! (अभि, दिदीहि) आप हमको ऐश्वर्य प्रदान करें (देवयुः) दीप्ति को प्राप्त (देव) दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! (मध्यमम्, कोशम्) अन्तरिक्ष कोश को (वि, युव) आप हमें विशेषरूप से समाश्रित करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से ऐश्वर्यप्राप्ति की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! आप ऐश्वर्य्यरूप सम्पूर्ण कोषों के पति हैं, कृपा करके हमें भी विशेषरूप से सम्पत्तिशील बनावें ॥९॥

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।

वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥

पदार्थः—(सुदक्ष) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप (चम्वोः) प्रकृति तथा जीवरूप व्याप्य पदार्थों में (सुतः) सर्वत्र विद्यमान (विशाम्) सब प्रजाओं के (वह्निः) अग्नि के

Scanned by CamScanner

(न) समान (विश्पतिः) वोढा=नेता हैं, आप (आ, वच्यस्व) हमें प्राप्त हों, (दिवः) द्युलोक की (वृष्टिम्) वृष्टि को (पवस्व) पवित्र करें, (अपां, रीतिम्) कर्मों की गति को पवित्र करें, (गविष्टये) ज्ञान और (धियः) कर्मों की इच्छा करने वाले पुरुष को (जिन्व) अपनी शक्ति से परिपूर्ण करें ॥१०॥

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि एक पदार्थ को स्थानान्तर को प्राप्त कर देती है अर्थात् अपनी तेजोमयी शक्ति से गतिशील बना देती है, इसी प्रकार परमात्मा ज्ञानी तथा शुभकर्मी पुरुष को गतिशील बनाता है जिससे पुरुष शक्तिसम्पन्न होकर उसकी समीपता को उपलब्ध करता है ॥१०॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥११॥

पदार्थः—(त्यमेतमु) उस उक्त परमात्मा को (मदच्युतम्) जो आनन्द से भरपूर, (सहस्रधारम्) अनन्त शक्तियों वाला, (दिवोवृषभम्) द्युलोक से आनन्द की वृष्टि करने वाला (विश्वावसूनि) और जो सब ऐश्वर्य्यों के (बिभ्रतम्) धारण करने वाला है, उसको (दुहुः) ज्ञानवृत्तियों से परिपूर्ण करते हैं ॥११॥

भावार्थः—ज्ञानवृत्तियाँ परमात्मा का साक्षात्कार इस प्रकार करती हैं कि आवरण भंग करके सर्वव्यापक परमात्मा को अभिव्यक्त करती हैं इसी का नाम वृत्तिव्याप्ति है ॥११॥

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

पदार्थः—(अमर्त्यः) अमरणधर्मा परमात्मा (वृषा) जो सब कामनाओं की वृष्टि करने वाला है, वह (जनयन्) अपनी ज्योति को प्रकाश करता हुआ (विजज्ञे) जायमान कथन किया जाता है (ज्योतिषा) अपनी ज्ञानरूपी ज्योति से (तमः, प्रतपन्) अज्ञान को दूर करता हुआ (कविभिः) विद्वानों से वर्णित (निर्णिजम्) निराकार के पद को (दधे) धारण करता है, और (अस्य, दंससा) इसके अपूर्व कर्मों से (त्रिधातु) तीनों गुणों की आश्रयभूत प्रकृति स्थिर है (सः) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (सुस्तुतः) भलीभांति उपासना किया हुआ सद्गति प्रदान करता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को जायमान उपचार से कथन किया गया है वस्तुतः नहीं। वास्तव में वह अजर, अमरादि गुणसम्पन्न है, वह अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला और उनको सद्गति का प्रदाता है ॥१२॥

Scanned by CamScanner

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१३॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (यः) जो (सुन्वे) सब संसार को उत्पन्न करता है, (यः) जो (सोमः) सर्वोत्पादक, (वसूनाम्) सब धनों (रायाम्) ऐश्वर्यों का (आनेता) प्रेरक, और (यः) जो (इलानां, सुक्षितीनाम्) सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिष्ठाता है, वह हमारे ज्ञान का विषय हो ॥१३॥

भावार्थः—सब पदार्थों का अधिष्ठाता परमात्मा है अर्थात् परमात्मा सब पदार्थों का आधार है और सब पदार्थ आधेय हैं। हे भगवन्! आप हमारे ज्ञान की वृद्धि करें कि हम लोग आपकी समीपता को प्राप्त होकर आनन्द का उपभोग कर सकें ॥१३॥

यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४॥

पदार्थः—(नः) हमारा स्वामी परमात्मा (यस्य) जिसके आनन्द को (इन्द्रः) कर्मयोगी (पिबात्) पान करते हैं, (यस्य) जिसके आनन्द को (मरुतः) विद्वानों का गण पान करता है, (यस्य) जिसके आनन्द को (अर्यमणा) कर्मों के साथ (भगः) कर्मयोगी उपलब्ध करता है और (येन) जिससे (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशक (करामहे) सदुपदेश करते हैं (महे, अवसे) अत्यन्त रक्षा के लिये (इन्द्रम्) कर्मयोगी को जो उत्पन्न करता है, वही हमारा उपास्यदेव है ॥१४॥

भावार्थः—जो परमात्मा नाना प्रकार की विद्याएँ और इन विद्याओं के वेत्ता कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों को उत्पन्न करता है जिससे शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक तथा उपदेशक धर्मोपदेश करते हैं और जो दुष्टदमन के लिये रक्षक उत्पन्न करता है, वही हमारा पूजनीय देव है। उसी की उपासना करनी योग्य है ॥१४॥

इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः ।
पवस्व मधुमत्तमः ॥१५॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन्! (इन्द्राय, पातवे) कर्मयोगी की तृप्ति के लिये (नृभिः, यतः) साक्षात्कार किये हुए, आप जो (मधुमत्तमः) अत्यन्त

Scanned by CamScanner

मीठे और (मदिन्तमः) आह्लादक गुणों को धारण किये हुए हैं (स्वायुधः) स्वाभाविक शक्तिप्रद आप (पवस्व) हमारे ज्ञान का विषय हों ॥१५॥

भावार्थः—हे आनन्दवर्द्धक तथा आह्लादजनक गुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी बनकर आपका साक्षात्कार करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ॥१५॥

इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (हार्दि) हृदयरूप (सोमधानम्) अन्तःकरण को (आविश) प्राप्त हों (इव) जिस प्रकार (सिन्धवः) नदियां (समुद्रम्) समुद्र को प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार हमारी वृत्तियां आपको प्राप्त हों, आप (मित्राय) अध्यापक के लिये और (वरुणाय) उपदेशक के लिये (वायवे) ज्ञानयोगी के लिये (जुष्टः) प्रीति से युक्त हैं, और आप (दिवः) द्युलोक का (उत्तमः) सर्वोपरि (विष्टम्भः) सहारा हैं ॥१६॥

भावार्थः—कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा के आधार पर स्थिर हैं और जो कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी इत्यादि योगीजनों का विद्याप्रदाता है, वही एकमात्र उपास्य देव है ॥१६॥

नवम मण्डल में यह १०८वां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ द्वाविंशत्यृचस्य नवोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—२२ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री । २—६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड्गायत्री । २०, २१ आर्ची गायत्री । १६ पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

अब कर्मयोगी के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थः—(मित्राय) मित्रतारूप गुणवाले (पूष्णे) सदुपदेश द्वारा पुष्टि करने वाले (भगाय) ऐश्वर्य्य वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (सोम) हे सोम ! आप (स्वादुः) उत्तम फल के लिये (परि, प्र, धन्व) भले प्रकार प्रेरणा करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उद्योगी तथा कर्मयोगियों के लिये नानाविध स्वादु फलों को उत्पन्न करता है अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्य्य और धर्म,

Scanned by CamScanner

अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों फलों का भोक्ता कर्मयोगी तथा उद्योगी ही हो सकता है अन्य नहीं, इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा उद्योगी बनना चाहिये ॥१॥

इन्द्र॑स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेयाः क्रत्वे॑ दक्षा॑य विश्वे॑ च दे॒वाः ॥२॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे (सुतस्य) साक्षात्काररूप रस को (इन्द्रः) कर्मयोगी (क्रत्वे) विज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य्य के लिये (पेयाः) पान करे (च) और (विश्वे, देवाः) सब देव तुम्हारे आनन्द को पान करें ॥२॥

भावार्थः—परमात्मानन्द के पान करने का अधिकार एकमात्र दैवीसम्पत्ति वाले पुरुषों को ही हो सकता है अन्य को नहीं, इसी अभिप्राय से यहाँ कर्मयोगी, ज्ञानयोगी तथा देवों के लिये ब्रह्मामृत का वर्णन किया गया है ॥२॥

ए॒वामृता॑य म॒हे क्षया॑य॒ स शु॒क्रो अ॑र्ष दि॒व्यः पी॒यूषः॑ ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (शुक्रः) आप बलस्वरूप (दिव्यः) दिव्यस्वरूप (पीयूषः) विद्वानों के लिये अमृत हैं (सः) उक्त गुणसम्पन्न आप (महे) सदा के निवासार्थ (अमृताय) मुक्तिसुख तथा (क्षयाय) दोषनिवृत्ति के लिये (एव) इस प्रकार (अर्ष) प्राप्त हों जिससे हम सदैव आपके आनन्द को भोग सकें ॥३॥

भावार्थः—यहां मुक्तिरूप सुख का "पीयूष" शब्द से वर्णन किया है, ब्रह्मानन्द का नाम ही पीयूष है, और उसी को अमृत, पीयूष, मुक्ति इत्यादि नाना प्रकार के शब्दों से कथन किया गया है ॥३॥

पव॑स्व सोम म॒हान्त्स॑मु॒द्रः पि॒ता दे॒वानां॒ विश्वा॒भि धाम॑ ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक ! आप (समुद्रः) [सम्यग् द्रवन्ति भूतानि यस्मात् स समुद्रः] जिससे पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोकलोकान्तर उत्पन्न होते हैं उसका नाम यहां "समुद्र" है, और (महान्) सबसे बड़ा (देवानां) सूर्य्यादि देवों का (पिता) निर्माण करने वाला (विश्वा, अभि, धाम) सबको लक्ष्य रखकर हे ईश्वर ! आप हमको पवित्र करें ॥४॥

भावार्थः—परमपिता परमात्मा जो आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण है, उसी की उपासना से मनुष्य मुक्तिधाम को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥४॥

शु॒क्रः प॑वस्व दे॒वेभ्यः॑ सोम दि॒वे पृ॑थि॒व्यै शं च॑ प्र॒जायै॑ ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**देवेभ्यः**) आप सब विद्वानों को (**पवस्व**) पवित्र करें (**सोम**) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (**दिवे**) द्युलोक, (**पृथिव्यै**) पृथिवी लोक (**च**) और (**प्रजायै**) प्रजा के लिये (**शं**) कल्याणकारी हों, (**शुक्रः**) क्योंकि आप बलस्वरूप हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के लिये आनन्द की वृष्टि करने वाला है, अर्थात् वही आनन्द का स्रोत होने के कारण उसी से आनन्द की लहरें इतस्ततः प्रचार पाती हैं, किसी अन्य स्रोत से नहीं ॥५॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६॥

पदार्थः—(**दिवः धर्ता, असि**) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक के धारक, और (**सत्ये, विधर्मन्**) सत्यरूप यज्ञ में (**पीयूषः**) अमृत हैं (**शुक्रः**) दीप्तिमान् तथा (**वाजी**) बलस्वरूप आप (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—द्युलोक का धारक, अमृत, देदीप्यमान तथा बलस्वरूप परमात्मा, जिसने सूर्य्य, चन्द्रमादि सब लोकलोकान्तरों का निर्माण किया है, वही हम सबका एकमात्र उपास्यदेव है, अन्य नहीं ॥६॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सोमगुणसम्पन्न तथा सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (**द्युम्नी**) यशस्वरूप (**सुधारः**) अमृतस्वरूप, तथा (**महान्, अवीनां**) बड़े-बड़े रक्षकों में (**अनु, पूर्व्यः**) सबसे मुख्य रक्षक होने से आप (**पवस्व**) हमको पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—सर्वोपरि परमात्मा जिसका यश महान्=सबसे बड़ा है, वही हमारा रक्षक और वही एकमात्र उपास्य देव है ॥७॥

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥८॥

पदार्थः—(**नृभिः, येमानः**) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किये हुए (**जज्ञानः**) सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त (**पूतः**) पवित्र (**मन्द्रः**) आनन्दस्वरूप (**स्वर्वित्**) सर्वज्ञ (**विश्वानि**) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (**क्षरत्**) हमको देवें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा का साक्षात्कार संयमी पुरुषों को ही होता है अर्थात् जप, तप, संयम तथा अनुष्ठान द्वारा वही लोग साक्षात्कार करते हैं, वह परमात्मा अपनी दिव्य ज्योतियों से सर्वत्र आविर्भाव को प्राप्त और नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है, वह पिता हमें सब प्रकार का सुख प्रदान करे ॥८॥

Scanned by CamScanner

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥९॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक, (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला, (प्रजां, उराणः) प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को विशाल करता हुआ परमात्मा (विश्वानि, द्रविणानि) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य (नः) हमको (करत्) प्रदान करे ॥९॥

भावार्थः—जो परमात्मा सम्पूर्ण प्रजाओं के ऐश्वर्य्य को बढ़ाता और जो स्वतःप्रकाश तथा स्वयंभू है वही हमारा उपास्यदेव है। उसी की उपासना करता हुआ पुरुष आनन्द-लाभ करता है, अन्यथा नहीं ॥९॥

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो न वाजी धनाय ॥१०॥

पदार्थः—(सोम) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन् (क्रत्वे) विज्ञान के लिये (दक्षाय) चातुर्य्यप्राप्ति के लिये (अश्वः, न) विद्युत्समान (निक्ता) वेगवान् (वाजी) बलस्वरूप परमात्मन् (धनाय) धन के लिये (पवस्व) पवित्र करें ॥१०॥

भावार्थः—जिस प्रकार विद्युत् प्रत्येक पदार्थ को देदीप्यमान करता और सब पदार्थों का प्रकाशक तथा उद्दीपक है, इसी प्रकार परमात्मा सबको उद्बोधन करके अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त करता है और कर्मयोगी पुरुष को सदैव धन का लाभ होता है ॥१०॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

पदार्थः—(सोतारः) उपासक लोग (ते) तुम्हारे (तं) उस (सोमं) शान्तिरूप (रसं) आनन्द को (मदाय) आनन्दित होने के लिये तथा (महे, द्युम्नाय) बड़े ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये धारणा द्वारा (पुनन्ति) पवित्र करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव यह है कि उपासक लोग इस विराट् स्वरूप को देखकर ईश्वर की धारणा अपने हृदय में करते हैं, यही इस ऐश्वर्य्य को पवित्र बनाना है ॥११॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

पदार्थः—(शिशुं) सर्वोपरि प्रशंसनीय (जज्ञानं) सर्वत्र विद्यमान (हरिं) सब दुःखों को हरण करनेवाला (इन्दुं) प्रकाशस्वरूप (सोमं) सौम्यस्वभाव परमात्मा को (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (देवेभ्यः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (मृजन्ति) ऋत्विग् लोग साक्षात्कार करते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जो ऋतु-ऋतु में यज्ञों द्वारा परमात्मा का यजन करते हैं उनका नाम "ऋत्विग्" है, अर्थात् इस विराट्स्वरूप की महिमा को देखकर

Scanned by CamScanner

जो आध्यात्मिक यज्ञादि द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को परमात्मा का साक्षात्कार होता है ॥१२॥

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३॥

पदार्थः—(इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (कविः) जो सर्वज्ञ है वह (अपां, उपस्थे) कर्मों की सन्निधि में (भगाय) ऐश्वर्य्यप्राप्ति तथा (चारुः, मदाय) सर्वोपरि आनन्दप्राप्ति के लिये (पविष्ट) हमको पवित्र बनाता है ॥१३॥

भावार्थः—जो पुरुष यज्ञादि कर्म तथा अन्य सत्कर्म करते हैं उन्हीं को परमात्मा पवित्र बनाता है, जिससे वह ऐश्वर्य्य-प्राप्ति द्वारा आनन्दोपभोग करते हैं ॥१३॥

बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) परमात्मा कर्मयोगी के (चारु, नाम) सुन्दर शरीर को (बिभर्ति) निर्माण करता है, (येन) जिससे वह (विश्वानि) सम्पूर्ण (वृत्रा) अज्ञान का (जघान) नाश करता है ॥१४॥

भावार्थः—यद्यपि स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण यह तीनों प्रकार के शरीर सब जीवों को प्राप्त हैं परन्तु कर्मयोगी के सूक्ष्म शरीर में परमात्मा एक प्रकार का दिव्यभाव उत्पन्न कर देता है, जिससे अज्ञान का नाश और ज्ञान की वृद्धि होती है। इस भाव से मन्त्र में कर्मयोगी के शरीर को बनाना लिखा है ॥१४॥

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

पदार्थः—(नृभिः, सुतस्य) संयमी पुरुषों द्वारा साक्षात्कार किया हुआ (गोभिः श्रीतस्य) जो ज्ञानवृत्तियों से दृढ़ अभ्यास किया गया है, (अस्य) उससे परमात्मा के आनन्द को (विश्वे, देवासः) सम्पूर्ण विद्वान् (पिबन्ति) पान करते हैं ॥१५॥

भावार्थः—परमात्मा का आनन्द इन्द्रियसंयम द्वारा दृढ़ अभ्यास के विना कदापि नहीं मिल सकता, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा दृढ़ अभ्यास करके परमात्मा के आनन्द को लाभ करे ॥१५॥

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्त सामर्थ्ययुक्त परमात्मा (सुवानः) साक्षात्कार किया हुआ (विवारं, अव्यं, तिरः) आवरण को तिरस्कार करके (पवित्रं) पवित्र अन्तःकरण को (अक्षाः) अपने ज्ञान के प्रवाह से सिञ्चन करता है ॥१६॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब तक मनुष्य में अज्ञान बना रहता है, तब तक वह परमात्मा का साक्षात्कार कदापि नहीं कर सकता, इसलिये जिज्ञासु को आवश्यक है कि परमात्मा के स्वरूप को ढकने वाले अज्ञान का नाश करके परमात्म-दर्शन करे। अज्ञान, अविद्या तथा आवरण यह सब पर्य्याय शब्द हैं ॥१६॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

पदार्थः—(अद्भिः, मृजानः) कर्मों द्वारा साक्षात्कार करके (गोभिः, श्रीणानः) ज्ञानरूप वृत्तियों के अभ्यास से परिपक्व किया हुआ (सहस्ररेताः) अनन्त सामर्थ्य-शाली परमात्मा (वाजी) जो ऐश्वर्य्यशाली है (सः) वह अपनी ज्ञानसुधा से (अक्षाः) हमको सिञ्चन करता है ॥१७॥

भावार्थः—जब दृढ़ अभ्यास से परमात्मा का परिपक्व ज्ञान हो जाता है तब परमात्मज्ञान जो अमृत के समान है वह उपासक को आनन्द प्रदान करता है, इसी का नाम यहां सिञ्चन करना है ॥१७॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥१८॥

पदार्थः—(अद्रिभिः, सुतः) चित्तवृत्तियों के संयम द्वारा साक्षात्कार किये हुए (नृभिः, येमानः) संयमी पुरुषों के लक्ष्य, (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (इन्द्रस्य) कर्मयोगी के (कुक्षा) अन्तःकरण में (याहि) प्राप्त हों ॥१८॥

भावार्थः—जो पुरुष उसी एकमात्र परब्रह्म परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाते हैं उनको परमपिता परमात्मा अवश्य देदीप्यमान करते हैं ॥१८॥

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९॥

पदार्थः—(सहस्रधारः) अनन्तसामर्थ्ययुक्त (सोमः) सर्वोत्पादक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (असर्जि) उपदेश द्वारा प्राप्त होते हैं (वाजी) वह बल-स्वरूप परमात्मा (तिरः) अज्ञान को तिरस्कार करके (पवित्रं) अन्तःकरण को पवित्र बनाते हैं ॥१९॥

भावार्थः—परम पिता परमात्मा जो इस चराचर ब्रह्माण्ड का अधि-पति है, वह अनन्त सामर्थ्ययुक्त है। उसके सामर्थ्य को उपदेशों द्वारा कर्म-योगी लाभ करता है ॥१९॥

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥२०॥

पदार्थः—(एनं) उक्त परमात्मा को (मध्वः, रसेन) उसके माधुर्य्ययुक्त रस से

Scanned by CamScanner

(वृष्णे) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले (इन्द्राय) कर्मयोगी के (मदाय) आनन्द के लिये (इन्दुं) स्वप्रकाश परमात्मा के उपासक लोग (अञ्जन्ति) ज्ञानवृत्ति द्वारा योग करते हैं ॥२०॥

भावार्थः—ब्रह्मविषयिणी वृत्ति द्वारा परमात्मा के योग का नाम "परमात्मयोग" है अर्थात् उपासक लोग ज्ञानवृत्ति द्वारा परमात्मा के समीपी होकर परमात्मरूप माधुर्य रस को पान करते हुए तृप्त होते हैं ॥२०॥

दे॒वेभ्य॑स्त्वा॒ वृथा॒ पाज॑से॒ऽपो वसा॑नं॒ हरिं॑ मृजन्ति ॥२१॥

पदार्थः—(देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (पाजसे) बल के लिये (अपः, वसानं) प्रकृतिरूप व्याप्य वस्तु में निवास करते हुए (हरिं) अविद्या का हरण करने वाले (त्वां) तुमको (वृथा) कर्मफलों में अनासक्त होकर (मृजन्ति) उपासक लोग साक्षात्कार करते हैं ॥२१॥

भावार्थः—विद्याप्राप्ति द्वारा विद्वान् बनना, बलवान् होना तथा नानाविध ऐश्वर्य्य प्राप्त करके ऐश्वर्य्यशाली बनना, परमात्मा की उपलब्धि के विना कदापि नहीं हो सकता, इसलिये ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों का कर्तव्य है कि वह ज्ञान द्वारा परमात्मा को उपलब्ध करें ॥२१॥

इन्दु॒रिन्द्रा॑य तोशते॒ नि तो॑शते श्री॒णन्नु॒ग्रो रि॒णन्न॒पः ॥२२॥

पदार्थः—(इन्दुः) सर्वप्रकाशक परमात्मा (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (तोशते) साक्षात्कार किया जाता है (उग्रः) उग्रस्वरूप परमात्मा (श्रीणन्) अपनी प्रेरणा द्वारा (अपः, रिणन्) मन्द कर्मों को दूर करता हुआ (नि, तोशते) निरन्तर अज्ञान का नाश करता है ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि सुख की इच्छावाले पुरुष को मन्दकर्मों का सर्वथा त्याग करना चाहिये, जब तक पुरुष मन्द कर्म नहीं छोड़ता तबतक वह परमात्मपरायण कदापि नहीं हो सकता और न सुख उपलब्ध कर सकता है, इसी अभिप्राय से मन्त्र में अज्ञान के नाश द्वारा मन्दकर्मों के त्याग का विधान किया है ॥२२॥

नवम मण्डल में यह १०९वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—१२ त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद्बृहती । ९ बृहती ॥ स्वरः—१-३, १०-१२ गान्धारः । ४—९ मध्यमः ॥

Scanned by CamScanner

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्यां ऋणया न ईयसे ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (**वाजसातये**) ऐश्वर्यप्रदान के लिये हमको (**परि, प्र, धन्व**) भली भांति प्राप्त हों,(**सक्षणि**)सहनशील आप (**वृत्राणि**)अज्ञानों को नाश करने के लिये हमें प्राप्त हों (ऊं) और (**ऋणयाः**) ऋणों को दूर करनेवाले आप (**द्विषः**) शत्रुओं को (**परि, तरध्यै**) भले प्रकार नाश करने के लिये (**नः**) हमको (**ईयसे**) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वरपरायण होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं वही परमात्मा को उपलब्ध करनेवाले कहे जाते हैं, या यों कहो कि उन्हीं को परमात्मप्राप्ति होती है और वही अपने ऋणों से मुक्त होते और वही शत्रुओं का नाश करके संसार में अभय होकर विचरते है। स्मरण रहे कि पूर्वस्थान को त्यागकर स्थानान्तरप्राप्तिरूप प्राप्ति परमात्मा में नहीं घट सकती ॥१॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सोमगुणसम्पन्न परमात्मन् (**महे, समर्यराज्ये**) न्याययुक्त बड़े राज्य में (**त्वा, सुतं**) साक्षात्कार को प्राप्त आप (**अनु, मदामसि**) हमको आनन्दित करें (**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले भगवन् (**वाजान्, अभि**) ऐश्वर्यों को लक्ष्य रखकर (**प्र, गाहसे**) हमको प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थः—मन्त्र में ऐश्वर्यों के लक्ष्य का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार के ऐश्वर्य्य हैं, जो पुरुष मुक्ति-सुख का लक्ष्य रखते हैं उनको निःश्रेयसरूप आध्यात्मिक ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है और जो सांसारिक सुख को लक्ष्य रखकर ईश्वरपरायण होते हैं उनको परमात्मा अभ्युदयरूप आधिभौतिक ऐश्वर्य्य प्रदान करते हैं ॥२॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥३॥

पदार्थः—(**पवमान**) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप (**पयः, विधारे**) जलों को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष देश में (**शक्मना**) अपनी शक्ति से

Scanned by CamScanner

(सूर्यं) सूर्य्य को (अजीजनः) उत्पन्न करते हैं और (गोजीरया, पुरंध्या) पृथिव्यादि लोकों को प्रेरणा करनेवाली बड़ी शक्ति से भी (रंहमाणः) अत्यन्त वेगवान् हैं ॥३॥

भावार्थः—वह परमपिता परमात्मा जो अभ्युदय तथा निःश्रेयस का दाता है, उसका प्रभुत्व विद्युत् से भी अधिकतर है ॥३॥

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥४॥

पदार्थः—(अमृत) हे सदा एकरस तथा जरामरणादि धर्मों से रहित परमात्मन् ! आप (मर्त्येषु, आ) मनुष्यों के सन्मुख होने के लिये (चारुणः, अमृतस्य, धर्मन्) सुन्दर अविनाशी परमाणुओं को धारण करने वाले अन्तरिक्ष देश में (अजीजनः) सूर्य्यादि दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करके (सदा, असरः) सदैव विचरते हो, इसलिये (वाजं, अच्छ) ऐश्वर्य्य को लक्ष्य रखकर (सनिष्यदत्) हमारी भक्ति का विषय हों ॥४॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सदा एकरस, सर्वत्र विराजमान और सदैव सब प्राणियों को अहर्निश देखते हुए विचरते हैं, अतएव प्रार्थना है कि आप हमें अपनी भक्ति का दान दें कि हम आपकी आज्ञा का पालन करते हुए ऐश्वर्य्यशाली हों । विचरने से तात्पर्य्य अपनी व्यापकशक्ति द्वारा सर्वत्र विराजमान होने का है, चलने का नहीं ॥४॥

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (श्रवसा) अपने ज्ञानरूप ऐश्वर्य्य से (अभ्यभि) प्रत्येक उपासक के (ततर्दिथ) दुर्गुणों का नाश करते हैं (न) जैसे कोई (अक्षितं) जल से भरे हुए (उत्सं) उत्सरण योग्य जलवाले (जनपानं, कंचित्) वापी आदि जलाधार को मलिन जल निकालकर स्वच्छ बनाता है (हि) निश्चय करके (न) जैसे सूर्य्य (गभस्त्योः) अपनी किरणों की (शर्याभिः) कर्मशक्ति द्वारा (भरमाणः) सब विकारों को दूर करके प्रजा का पालन करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य अपनी गरमी तथा प्रकाश-शक्ति से प्रजा के सब विकार तथा अवगुणों को दूर कर के शुभ गुण देता है, इसी प्रकार परमात्मा सदाचारी पुरुषों के दोष दूर करके उनमें सद्गुणों का आधान कर देता है । इसलिये पुरुष को कर्मयोगी तथा सदाचारी होना परमावश्यक है ॥५॥

Scanned by CamScanner

आर्दी के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥६॥

पदार्थः—(आप्यं) पूजनीय परमात्मा को (केचित्) कई एक लोग (पश्यमानासः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं (आत्) अथवा (इं, वारं) इस वरणीय परमात्मा को (वसुरुचः, दिव्याः) ऐश्वर्य्य चाहने वाले विद्वान् (देवः सविता) दिव्यरूप सूर्य्य (वि, ऊर्णुते) जिस प्रकार अपने प्रकाश से आच्छादन कर लेता है (न) इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥६॥

भावार्थः—भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य्य की प्रभा चहुँ ओर व्याप्त हो जाती है इसी प्रकार ब्रह्मविद्यावेत्ता पुरुषों की ब्रह्मविषयिणी बुद्धि विस्तृत होकर सब ओर परमात्मा का अवलोकन करती है और ऐसे पुरुष परमात्मपरायण होकर ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं ॥६॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥७॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (प्रथमाः) प्राचीन लोग (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने अपनी कामनाओं को उच्छेदन कर दिया है, वे (त्वे) आप में (महे, वाजाय) बड़े यज्ञ के लिये अथवा (श्रवसे) ऐश्वर्य्य के लिये (धियं, दधुः) कर्मरूप बुद्धि को धारण करते हैं (वीर) हे सर्वोपरि बलस्वरूप परमात्मन् (सः, त्वं) वह आप (नः) हमको (वीर्याय) वीर पुरुषों में होने वाले गुणों के लिये (चोदय) प्रेरणा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! हम बड़े-बड़े यज्ञ करते हुए ऐश्वर्य-सम्पादन करें, अथवा वीर पुरुषों के गुणों को धारण करते हुए बलवान् बनें, क्योंकि आप ही की कृपा से मनुष्य वीरतादि गुणों को धारण कर सकता है, अन्यथा नहीं ॥७॥

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥८॥

पदार्थः—(दिवः, पीयूषं) जो द्युलोक का अमृत (पूर्व्यं) सनातन (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (यत्) जो (महः, गाहात्) बड़े गहन (दिवः) द्युलोक से (आ, निः, अधुक्षत) भलीभांति दोहन किया गया है (इन्द्रं, अभि) जो कर्मयोगी को लक्ष्य रखकर (जाय-

Scanned by CamScanner

मानं) विद्यमान है, उस परमात्मा की उपासक लोग (सं, अस्वरन्) भले प्रकार स्तुति करते हैं ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा को द्युलोक का अमृत इस अभिप्राय से कथन किया गया है कि "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋग्० १० । ६० । ३] इस मन्त्र में यह वर्णन किया है कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एकदेश में है, और अनन्त परमात्मा अमृतरूप से द्युलोक में विस्तृत हो रहा है। अर्थात् उसका अमृतस्वरूप अनन्त नभोमण्डल में सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, ऐसे सर्वव्यापक परमात्मा की उपासक लोग स्तुति करते हैं ॥८॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥९॥

पदार्थः—(पवमान) हे सबको पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! (इमे, रोदसी) ये द्युलोक पृथिवीलोक (अध, यत्) और जो (इमा, च, विश्वा, भुवना) यह सब लोक-लोकान्तर हैं, उन सबको (मज्मना) बल से (अभि तिष्ठसे) भले प्रकार धारण कर रहे हो (न) जिस प्रकार (निष्ठाः, वृषभः) स्थिर शक्तिवाला स्वामी (यूथे) अपने मण्डल का मध्यवर्ती होकर स्थिर होता है ॥९॥

भावार्थः—जिस प्रकार मण्डलाधिपति अपने मण्डल के मध्य में स्थिर होकर सबको स्वाधीन रखता है, इसी प्रकार परमात्मा सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों को बल से धारण करके सर्वत्र स्थित होरहा है, या यों कहो कि उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय रूप परमात्मशक्ति सदा एकरस दृढ़ता से विराजमान रहती है, उसमें कभी रुकावट नहीं होती ॥९॥

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥१०॥

पदार्थः—(सोमः) सर्वोत्पादक (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला (अव्यये, वारे) रक्षायुक्त पदार्थों में (शिशुः, न, क्रीलन्) प्रशंसनीय वस्तुओं के समान क्रीड़ा करता हुआ (सहस्रधारः) अनन्त प्रकार की शक्तियों से युक्त (शतवाजः) अनन्त प्रकार के बलों वाला (इन्दुः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (पुनानः) ज्ञानवृद्धि द्वारा पवित्र करता हुआ (अक्षाः) अपनी सुधावारि से सबको सिंचन करता है ॥१०॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा के गुण तथा शक्तियां अनन्त हैं, और जिससे उसके स्वरूप का निरूपण किया जाता है वह गुण भी उसमें अनन्त है, इस लिये अनन्त स्वरूप की अनन्त रूप से ही उपासना करनी चाहिये ॥१०॥

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११॥

पदार्थः—(एषः) उक्त गुणसम्पन्न परमात्मा (पुनानः) सबको पवित्र करने वाला (मधुमान्) आनन्दमय, (ऋतवा) ज्ञानादि यज्ञों का स्वामी, (इन्दुः) प्रकाश-स्वरूप, (इन्द्राय, पवते) कर्मयोगी के लिये पवित्रता प्रदान करने वाला (वाजसनिः) अन्नादि ऐश्वर्यों का दाता, (वरिवोवित्)धनादि ऐश्वर्य्य प्रदान करनेवाला,(वयोधाः) आयु की वृद्धि करनेवाला, (स्वादुः, ऊर्मिः) आनन्द की लहरें बहाता है ॥११॥

भावार्थः—जो पुरुष उक्त गुणों वाले परमात्मा की ओर क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति से बढ़ते हैं, उनको परमपिता परमात्मा अवश्य प्राप्त होते और उन पर सब ओर से आनन्द की वृष्टि करते हैं ॥११॥

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२॥

पदार्थः—(सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् ! आप (पृतन्यून्, रक्षांसि) संग्राम की कामना करनेवाले राक्षसों को (दुर्गहानि) जो दुर्गम हैं (अप, सेधन्, पवस्व) दूर करते हुए हमारी रक्षा करें (सहमानः) सहनशील (स्वायुधः) स्वयम्भू (शत्रून्) शत्रुओं का (ससह्वान्) तिरस्कार करते हुए (सः) आप हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप कुमार्ग में प्रवृत्त दुष्ट पुरुषों से हमारी रक्षा करें, जिनसे रक्षा की जाती है उनका नाम "राक्षस" है, सो हे पिता ! आप सम्पूर्ण विघ्न-कारी पुरुषों से हमारी रक्षा करते हुए हमें अभय प्रदान करें ॥१२॥

नवम मण्डल में यह ११०वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्यैकादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १–३ अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टिः ॥ मध्यमः स्वरः ॥

Scanned by CamScanner

अब शूरवीर का कर्तव्य कथन करते हैं ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः
सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थः—(हरिः) [हरतीति हरिः] परपक्ष को हरण करनेवाला शूरवीर (**अरुषः**) उग्र तेजवाला, (**पुनानः**) अपने वीर कर्मों से पवित्र करने वाला, (**सुतस्य, धारा**) संस्कार की धारा से (**रोचते**) दीप्तिमान् होता है, (**हरिण्या**) शत्रुओं को हनन करने वाली (**अया**) इस (**रुचा**) दीप्ति से (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**स्वयुग्वभिः**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों द्वारा (**विश्वा, द्वेषांसि**) सब शत्रुओं को (**तरति**) हनन करता है (**न**) जैसे (**सूरः**) सूर्य्य (**स्वयुग्वभिः**) अपनी स्वाभाविक शक्तियों से अन्धकार का नाशक होता है (**यत्**) जैसे (**सप्तास्येभिः**) सात मुखों वाली (**ऋक्वभिः**) किरणों से (**विश्वा, रूपा**) नाना रूपों को धारण करता हुआ सूर्य्य (**परियाति**) प्राप्त होता है । इसी प्रकार (**ऋक्वभिः**) ज्ञानेन्द्रियों के सप्त छिद्रों से निकले हुए तेज द्वारा शूरवीर परपक्ष को प्राप्त होता है, इसलिये वह सूर्य्य की सप्त किरणों की तुलना करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालंकार से शूरवीर की सूर्य्य के साथ तुलना की गई है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य्य अपने तेजोमय प्रभामण्डल से अन्धकार को छिन्न-भिन्न करता है इसी प्रकार शूरवीर योधा शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके स्वयं स्थिर होता है ॥१॥

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम
ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥२॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिस युद्ध में (**धीतयः**) युद्धकुशल लोग (**परावतः**) दूर से ही (**रणन्ति**) मङ्गलमय गीत गाते हैं (**न**) जैसे (**साम**) सामगान होता है, हे शूर-वीर ! (**त्वं**) तुम (**पणीनां**) परपक्ष के ऐश्वर्य्य वालों से (**त्यत्, वसु**) जो धन छीना गया है उसको (**ऋतस्य, धीतिभिः**) कर्मयज्ञ द्वारा (**विदः**) लाभ करके (**दमे**) अपने वशीभूत करते हो (**आ**) और (**दमे**) अपने आधीन धन को (**मातृभिः, सं, मर्जयसि**) माता-पिता द्वारा दत्त शक्ति द्वारा फिर भलीभांति अर्जन करके (**त्रिधातुभिः**) तीन

Scanned by CamScanner

धातुओं से बने हुए (अरुषीभिः) कान्तिवाले इस शरीर द्वारा (वयः, दधे) ऐश्वर्य को धारण करते हो और (रोचमानः, वयः, दधे) दीप्तिवाले ऐश्वर्य्यशाली होकर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन को आनन्द में परिणत करते हो ॥२॥

भावार्थः—जिस प्रकार ब्रह्मोपासक ब्रह्मयज्ञ में ब्रह्म के ज्ञानादि ऐश्वर्यों को धारण करते हैं, इसी प्रकार शूरवीर कर्मयज्ञ में परमात्मा के अभ्युदयरूप ऐश्वर्य को धारण करते हुए इस त्रिधातुमय शरीर के प्रयत्न को सफल करते हैं ॥२॥

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो
दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥३॥

पदार्थः—(दर्शतः) दर्शनीय (रथः) शूरवीर का गमन (दैव्यः) दिव्यशक्तियुक्त (रश्मिभिः) उत्साहरूप किरणों द्वारा (सं, यतते) भलीभांति यत्नशील होता है (चेकितत्) युद्धविद्या के जाननेवाला योधा (पूर्वां, प्रदिशं) प्रशंसनीय गति को (याति) प्राप्त होता है (पौंस्या, उक्थानि) पुंस्त्वसम्बन्धि स्तवन जब (अग्मन्) विजेता को प्राप्त होते हैं तब (जैत्राय) विजेता उत्साहयुक्त होकर स्वामी को (हर्षयन्) प्रसन्न करता हुआ (इन्द्रं) अपने स्वामी को प्राप्त होता है (यत्) क्योंकि (समत्सु) संग्रामों में (अनपच्युता, भवथः) न गिरे हुए स्वामी तथा सेवक सद्गति के भागी होते हैं (च) और (वज्रः) उन का शस्त्र भी अवर्जनीय होकर संसार में अव्याहत गति को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शूरवीर के तेज की दिव्य तेज से तुलना की गई है कि जिस प्रकार द्युलोकवर्ती तेज अन्धकार को दूर करके सर्वत्र प्रकाश का संचार करता है इसी प्रकार शूरवीर का तेज तमोरूप शत्रु को हनन करके अभ्युदयरूप ऐश्वर्य्य का संचार करता है ॥३॥

नवम मण्डल में यह १११वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—४ शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १—३ विराट् पङ्क्तिः । ४ निचृत् पङ्क्तिः ॥ पंचमः स्वरः ॥

अब प्रसङ्गप्राप्त गुणकर्मानुसार वर्णों के धर्मों का वर्णन करते हैं ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**धियः**) कर्म (**नानानं**) भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं (**वै**) निश्चय करके (**ऊं**) अथवा (**जनानां**) सब मनुष्यों के (**व्रतानि**) कर्म (**वि**) विविध प्रकार के होते हैं (**तक्षा**) 'तक्षतीति तक्षा'=लकड़ी गढ़ने वाला पुरुष (**रिष्टं**) अपने अनुकूल लकड़ी की (**इच्छति**) इच्छा करता है (**भिषक्**) वैद्य (**रुतं**) रोगचिकित्सा की इच्छा करता है (**ब्रह्मा**) वेदवेत्ता पुरुष (**सुन्वन्तं**) वेदविद्या से संस्कृत पुरुष की इच्छा करता है, इसलिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) [इन्दतीति इन्द्रः] जो अपने न्यायादि नियमों से राजा बनने के सद्गुण रखता है, उसी को (**परि, स्रव**) राजसिंहासन पर अभिषिक्त करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पुरुष अपने अनुकूल पदार्थ को सुसंस्कृत करके बहुमूल्य बना देता है, इसी प्रकार राज्याभिषेक-योग्य राजपुरुष को परमात्मा संस्कृत करके राज्य के योग्य बनाता है ॥१॥

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**जरतीभिः**) प्राचीन (**ओषधीभिः**) ओषधियों से निर्मित (**शकुनानां, पर्णेभिः**) उन्नतिशील पुरुषों के नभोयानादि विमानों द्वारा (**कार्मारः**) शिल्पी लोग (**अश्मभिः, द्युभिः**) दीप्तिवाले वज्रादि शस्त्रों से (**हिरण्यवन्तं**) ऐश्वर्य्यवाले राजा की (**इच्छन्ति**) इच्छा करते हैं (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**इन्द्राय**) उक्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा के लिये (**परि, स्रव**) अभिषेक का कारण बनें ॥२॥

भावार्थः—जो राजा दीप्तिवाले अस्त्रशस्त्र तथा विमानादि द्वारा सर्वत्र गतिशील होता है, वह परमात्मा की कृपा से ही उत्पन्न होता है, या यों कहो कि पूर्वकृत प्रारब्ध कर्मों के अनुसार परमात्मा ही ऐसे राजा को अभिषिक्त करता है ॥२॥

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थः—(**कारुः, अहम्**) मैं शिल्पविद्या की शक्ति रखता हूँ (**ततः**) पुनः (**भिषक्**) वैद्य भी बन सकता हूँ (**नना**) मेरी बुद्धि नम्र है अर्थात् मैं अपनी बुद्धि को जिधर लगाना चाहूँ, लगा सकता हूँ, (**उपलप्रक्षिणी**) पाषाणों का संस्कार करनेवाली मेरी बुद्धि मुझे मन्दिरों का निर्माता भी बना सकती है, इस प्रकार (**नानाधियः**) नाना कर्मों वाले मेरे भाव (**वसूयवः**) जो ऐश्वर्य को चाहते हैं वे विद्यमान हैं, हम

Scanned by CamScanner

लोग (अनु, गाः) इन्द्रियों की वृत्तियों के समान ऊंच नीच की ओर जानेवाले (तस्थिम) हैं, इस लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हमारी वृत्तियों को (इन्द्राय) उच्चैश्वर्य्य के लिये (परि, स्रव) प्रवाहित करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से उच्चोद्देश्य की प्रार्थना की गई है—कि हे भगवन् ! यद्यपि मेरी बुद्धि मुझे कवि, वैद्य तथा शिल्पी आदि नाना भावों की ओर ले जाती है, तथापि आप ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये मेरे मन की प्रेरणा करके मुझे उच्चैश्वर्य्य की ओर प्रेरित करें ॥३॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमंत्रिणः । शेपो रोमण्वंतौ भेदौ वारिन्मंडूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

पदार्थः—(अश्वः) "अश्नुतेऽध्वानमित्यश्वः" [निरु० १ । १३ । ५] जो शीघ्रगामी होकर अपने मार्गों का अतिक्रमण करे उसका नाम 'अश्व' है । इस प्रकार यहां अश्व नाम विद्युत् का है (वोळ्हा) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाला वा प्राप्त होने वाला विद्युत् जिस प्रकार (रथं) गति को (इच्छति) चाहता है, जैसे (उपमंत्रिणः) उपमन्त्री लोग (हसनां) आह्लादजनक क्रिया की इच्छा करते हैं, जैसे (मंडूकः) [मंडयतीति मण्डूकः] मण्डन करनेवाला पुरुष (वारित्) वरणीय पदार्थ की ही इच्छा करता है, जैसे (शेपः) सूर्य्य का प्रकाश (रोमण्वन्तौ) प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में (भेदौ) विभाग की इच्छा करता है, इसी प्रकार योग्यतानुसार विभाग की इच्छा करते हुए (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा को (परि, स्रव) अभिषिक्त करें ॥४॥

भावार्थः—मंत्र का अर्थ स्पष्ट है । यहां यह लिखना अनुपयुक्त नहीं कि इस मन्त्र के अर्थ सायणाचार्य तथा आजकल के कई एक वैदिक ज्ञानाभिमानियों ने अत्यन्त निन्दित किये हैं, जो ऐश्वर्य्य प्रकरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखते ॥४॥

नवम मण्डल में यह ११२ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ एकादशर्चस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—११ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः १, २, ७ विराट् पङ्क्तिः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ पङ्क्तिः । ५, ६, ८—११ निचृत् पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अब प्रसंग संगति से राजधर्म का निरूपण करते हैं:—

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**शर्यणावति**) कर्मयोगी में (**सोमं**) ईश्वरानन्दरूप (**इन्द्रः**) [इन्दतीतीन्द्रः] परमैश्वर्य को प्राप्त होने वाला राजा (**पिबतु**) पान करे, वह राजा (**वृत्रहा**) शत्रुरूप बादलों के नाश करने वाला होता है (**बलं, दधानः**) बल को धारण करता हुआ और (**आत्मनि**) अपने आत्मा में (**महत्, वीर्यं**) बड़े बल को (**करिष्यन्**) उत्पन्न करता हुआ राज्यपद के योग्य होता है, (**इन्द्राय**) ऐसे बल-वीर्य्य-सम्पन्न राजा के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**परि, स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥१॥

भावार्थः—जो राजा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों के सदुपदेश से ब्रह्मानन्द का पान करता है, वह राजा बनने योग्य होता है, हे परमात्मन् ! ऐसे राजा को राज्याभिषेक से अभिषिक्त करें ॥१॥

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे सर्वोत्पादक (**मीढ्वः**) कामप्रद (**दिशां पते**) सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप (**आर्जीकात्**) सरलभाव से प्रजा में (**आ, पवस्व**) पवित्रता उत्पन्न करते हुए (**ऋतवाकेन सत्येन**) वाणी के सत्य से (**श्रद्धया, तपसा**) श्रद्धा तथा तप से (**सुतः**) जो राज्याभिषेक के योग्य है, ऐसे (**इन्द्राय**) राजा के लिये (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**परि स्रव**) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि जो राजा सरल भाव से प्रजा पर शासन करता हुआ श्रद्धा, तप तथा सत्यादि गुणों को धारण करता है, ऐसे कर्मशील राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥२॥

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थः—(**पर्जन्यवृद्धं**) सघन घटा के समान वृद्धि को प्राप्त (**सूर्यस्य, दुहिता**) द्युलोक की पुत्री श्रद्धा (**तं**) उक्त गुणसम्पन्न (**महिषं**) पूजायोग्य राजा को (**आभरत्**) ऐश्वर्य्यरूप गुणों से भरपूर करती है (**तं**) उस राजा की (**गन्धर्वाः**) गानविद्या के वेत्ता जो (**प्रति, अगृभ्णन्**) प्रत्येक भाव ग्रहण करने वाले हैं (**सोमे**) [सूते चराचरञ्जगदिति सोमः] जो सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करे उसका नाम यहां 'सोम" है (**तं, रसं**) उक्त परमात्मा-विषयक रस को (**आदधुः**) धारण करते हुए गन्धर्व लोग (**इन्द्राय**) उपर्युक्त गुणसम्पन्न राजा के लिये गान करें (**इन्दो**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (**परि, स्रव**) ऐसे राजा के लिये राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥३॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—श्रद्धायुक्त राजा ही ऐश्वर्य्यशाली होता और परमात्मा उसी को राज्याभिषेक के योग्य बनाता है अर्थात् आस्तिक राजा ही अटल ऐश्वर्य्य भोगता है, अन्य नहीं ॥३॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥

पदार्थः—(ऋतं, वदन्) यज्ञादिकों का उपदेश करते हुए (ऋतद्युम्न) यज्ञकर्मरूप दीप्ति से दीप्तिमान् (सत्यं, वदन्) सत्य भाषण करने वाले (सत्यकर्मन्) सत्य के आश्रित कर्म करने वाले (राजन्) हे राजन् ! आप (श्रद्धां, वदन्) श्रद्धा का उपदेश करते हुए (सोम) सौम्यस्वरूप युक्त (धात्रा) संसार को धारण करने वाले (सोम, परिष्कृतः) परमात्मा से परिष्कार किये गये (इन्द्राय) राजा के लिये (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥४॥

भावार्थः—जो स्वयं यज्ञादि कर्म करता तथा औरों को यज्ञादि कर्म करने का उपदेश करता है उस सत्यभाषण और सत्य के आश्रित कर्म करने वाले राजा के राज्य को परमात्मा अटल बनाता है ॥४॥

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥५॥

पदार्थः—(उग्रस्य, सत्यं, बृहतः) संग्राम में सत्यता होने से बढ़े हुए जिस पुरुष के (संस्रवाः) सत्यरूप स्रोत से अनेक सत्य के प्रवाह (सं, स्रवन्ति) बह रहे हैं (रसिनः) रसिक पुरुषों के (रसाः) रस (सं, यन्ति) जिसको भलीभांति प्राप्त होते हैं (ब्रह्मणा) वेदवेत्ता विद्वान् से (पुनानः) जो पवित्र किया गया है (इन्द्राय) ऐसे राजा के लिये (हरे) हे हरणशील (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) राज्याभिषेक का निमित्त बनें ॥५॥

भावार्थः—वेदवेत्ता विद्वान् से शिक्षा पाया हुआ जो राजा अपने सत्यादि धर्मों का त्याग नहीं करता, उसका राज्य अवश्यमेव चिरस्थायी होता और वह सांसारिक अनेक रसों का भोक्ता होता है ॥५॥

अब ऐश्वर्यनिरूपण के पश्चात् मोक्षधर्म का निरूपण करते हैं ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥६॥

पदार्थः—(यत्र) जिस संन्यासावस्था में (ब्रह्मा) वेदवेत्ता विद्वान् (छन्दस्यां,

वाचं, वदन्) वेदविषयक वाणी का वर्णन करता हुआ (ग्राव्णा) [गृणातीति ग्रावा तेन ग्राव्णा, चित्तवृत्तिनिरोधेन] चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा (सोमे) सौम्यस्वरूप परमात्मा में (महीयते) मोक्षारूप पूज्यपद को लाभ करता है (सोमेन) सोमस्वभाव से (आनन्दं, जनयन्) आनन्द को लाभ करने वाले (इन्द्राय) योगेन्द्र संन्यासी के लिये (पवमान) सबको पवित्र करने वाले (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (परि, स्रव) अपने ज्ञान द्वारा पूर्णाभिषेक करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि वेदवेत्ता विद्वान् संन्यासावस्था में वेदरूप वाणी का प्रकाश करता हुआ अर्थात् वैदिकधर्म का उपदेश करता हुआ चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा परमात्मा में लीन होकर इतस्ततः विचरता है । वह सब के पवित्र करने वाला होता है, हे परमात्मन् ! आप ऐसे संन्यासी को पूर्णाभिषिक्त करें ॥६॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां धेहि
पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

पदार्थः—(यत्र) जिस मोक्ष में (अजस्रं, ज्योतिः) निरन्तर ज्योति का प्रकाश होता तथा (यस्मिन्, लोके) जिस ज्ञान में (स्वः, हितं) सुख ही सुख होता है (तस्मिन्, अमृते) उस अमृत अवस्था में (अक्षिते) जो वृद्धि तथा क्षय से रहित है (पवमान) हे सब को पवित्र करने वाले परमात्मन् (मां, धेहि) मुझे रखें, (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (इन्द्राय) उक्त ज्ञानयोगी के लिये आप (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का कारण बनें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी के लिये सदुपदेशरूप वाणी प्रदान करें और वृद्धि तथा क्षय से रहित अमृत अवस्था प्राप्त करायें, जिससे वेदरूप वाणी का प्रकाश हो और आप अपनी कृपा से ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करें ॥७॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥८॥

पदार्थः—(यत्र) जिस अवस्था में (वैवस्वतः, राजा) काल ही राजा है (यत्र, अवरोधनं, दिवः) जहां दिन तथा रात का वशीकरण है (यत्र, अमूः, यह्वतीः, आपः) जहां उक्त आध्यात्मिक ज्ञानों का बाहुल्य है (तत्र) उस पद में (मां) मुझको (अमृतं, कृधि,) अमृत बनाओ (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक के निमित्त बनें ॥८॥

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमात्मा ज्ञानयोगी को सत्य तथा अनृत के निर्णय में अभिषिक्त करता है अर्थात् ज्ञानयोगीरूप राजा सत्य तथा अनृत का निर्णय करके अपने विवेकरूप राज्य को अटल बनाता है ॥८॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।

लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

पदार्थः—(त्रिनाके, त्रिदिवे, दिवः) ज्ञानरूप स्वर्गलोक में (यत्र, अनुकामं, चरणं) जहां स्वेच्छानुसार विचरण होता है, (यत्र) जिसमें (ज्योतिष्मन्तः) केवल ज्ञान ही का (लोकाः) दर्शन है, (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करो (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥९॥

भावार्थः—मुक्त पुरुष मुक्ति अवस्था में अव्याहतगति होकर विचरता है अर्थात् उसको उस अवस्था में किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता, या यों कहो कि वह स्वतंत्रतापूर्वक ईश्वरीय सत्ता में सम्मिलित होता है। हे परम-पिता परमात्मन् ! आप ज्ञानयोगी को अभिषिक्त करके वह अवस्था प्राप्त करायें ॥९॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१०॥

पदार्थः—(यत्र, कामा,) जहाँ सब काम (निकामाः) निष्काम किये जाते हैं (च) और (यत्र) जहां (ब्रध्नस्य) ब्रह्मज्ञान का (विष्टपं) सर्वोच्च पद है (यत्र) जहां (स्वधा) अमृत (च) और उससे (तृप्तिश्च) तृप्ति है (तत्र) वहां (मा) मुझको (अमृतं, कृधि) मोक्षपद प्राप्त करायें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥१०॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! जो ब्रह्मज्ञान का उच्चपद है और जहाँ स्वधा से तृप्ति होती है, वह मोक्षरूप सुख मुझे प्रदान कीजिये, या यों कहो कि वह मुक्तिसुख जिससे एकमात्र ब्रह्मानन्द का ही अनुभव होता है, अन्य विषय आदि जिस अवस्था में सब तुच्छ हो जाते हैं, वह मुक्ति अवस्था मुझे प्राप्त करायें ॥१०॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(यत्र) जहां (आनन्दाः) आनन्द (च) और (मोदाः) हर्ष हैं (मुदः, च, प्रमुदः) और जहां आनन्दित तथा हर्षित मुक्त पुरुष (आसते) विराजमान होता है (कामस्य, यत्र, आप्ताः कामाः) और जहां कामना वालों को सब काम प्राप्त हैं (तत्र) वहां (मां) मुझको (अमृतं) मोक्षसुख का भागी (कृधि) करें (इन्दो) हे परमात्मन् ! आप (इन्द्राय) ज्ञानयोगी के लिये (परि, स्रव) पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें ॥११॥

भावार्थः—हे भगवन् ! जिस अवस्था में आनन्द तथा मोद होता है और जहां सब कामनायें पूण होती हैं वह अवस्था मुझे प्राप्त करायें, या यों कहो कि हे परमात्मन् ! उस मुक्ति-अवस्था में जहां आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है, अन्य सब भाव उस समय तुच्छ हो जाते हैं, वह मुक्ति-अवस्था मुझे प्राप्त हो ॥११॥

नवम मण्डल में यह ११३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—४ कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् पङ्क्तिः । ३, ४ पङ्क्तिः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अब मुक्तपुरुष के ऐश्वर्य का निरूपण करते हैं: ।

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् । तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो पुरुष (पवमानस्य) सबको पवित्र करने वाले (इन्दोः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (धामानि) कर्म, उपासना तथा ज्ञानरूप तीनों काण्डों का (अनु अक्रमीत्) भले प्रकार अनुष्ठान करता है (तं) उसको (सुप्रजाः इति, आहुः) शुभ जन्म वाला कहा जाता है, (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (यः) जो पुरुष (ते) तुम्हारे में (मनः) मन (अविधत्) लगाता है (इन्द्राय) उस उपासक के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप ! आप (परि, स्रव) ज्ञानगति से प्रवाहित हों ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा परमात्मप्राप्ति का भले प्रकार अनुष्ठान करता है, या यों कहो कि जब उपासक अनन्य भक्ति से परमात्मपरायण होकर उसी की उपासना में तत्पर रहता है, तब परमात्मा उसके अन्तःकरण में स्वसत्ता का आविर्भाव उत्पन्न करते हैं॥१॥

Scanned by CamScanner

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः। सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

पदार्थः—(ऋषे) हे सर्वव्यापक (कश्यप) सर्वद्रष्टा परमात्मन् ! आप (मंत्र-कृतां, स्तोमैः) स्तुतियुक्त मंत्रानुष्ठान करनेवाले उपासकों की (गिरः) उपासनारूप वाणियों को (उद्वर्धयन्) बढ़ाते हुए उपासक का कल्याण करें, (यः) जो उपासक (सोमं, राजानं) सोमस्वभाव परमात्मा को (नमस्य) प्रभु मानकर (जज्ञे) प्रकाशित होता है, (वीरुधां, पतिः) आप वनस्पतियों के स्वामी हैं, इसलिये (इन्द्राय) उपासक के लिये (इन्दो) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् (परि, स्रव) ज्ञानद्वारा उसके हृदय में व्याप्त हों ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा चराचर ब्रह्माण्डों का पति है उससे यहां ज्ञानयोग की प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! ज्ञानवर्द्धक वाणियों द्वारा उपासक के हृदय में ज्ञान की वृद्धि करें ॥२॥

अब मुक्त पुरुष की अवस्था का निरूपण करते हैं:—

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

पदार्थः—मुक्त पुरुष के लिये (सप्त, दिशः) भू आदि सातों लोक (नानासूर्याः) नाना प्रकार के दिव्य प्रकाश वाले हो जाते हैं, और (सप्त) इन्द्रियों के सातों छिद्र प्राणों की गति द्वारा (होतारः) होता तथा (ऋत्विजः) ऋत्विक् हो जाते हैं (ये, सप्त देवाः) प्रकृति के महत्तत्त्वादि सात कार्य्य उसके लिये मंगलमय होते हैं (आदि-त्याः) सूर्य्य सुखप्रद होता है (तेभिः) उक्त शक्तियों द्वारा मुक्त पुरुष यह प्रार्थना करता है कि (सोम) हे सोम ! (नः) हमारी (अभि, रक्ष) रक्षा कर (इन्दो) हे प्राणप्रद ! (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये आप (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में मुक्तपुरुष की विभूति का वर्णन किया गया है कि उसकी सब लोकों में दिव्य दृष्टि हो जाती है। "दिशा" शब्द का तात्पर्य्य यहां लोक में है और वह भूः, भुवः तथा स्वरादि सात लोक हैं अर्थात् विकृति रूप से कार्य्य और प्रकृतिरूप से जो कारण हैं वह सातों अखण्डनीय शक्तियाँ उसके लिये मंगलप्रद होती हैं ॥३॥

Scanned by CamScanner

अब मुक्तपुरुष की ऐश्वर्यरक्षा के लिये विघ्नों की निवृत्ति कथन करते हैं ।।

यत्ते राजञ्छृतं ह॒विस्तेन॒ सोमा॒भि र॑क्ष नः । अ॒रा॒ती॒वा मा
नंस्तारी॒न्मो च॑ नः॒ किं च॒नाम॑म॒दिन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥४॥

पदार्थः—(राजन्) हे सर्वोपरि विराजमान परमात्मन् (ते) तुम्हारा (यत्) जो (श्रुतं) परिपक्व (हविः) ज्ञानरूप फल है (तेन) उसके द्वारा (सोम) हे सर्वोत्पादक परमात्मन् (नः) हमारी (अभि, रक्ष) सर्व प्रकार से रक्षा करें (अरातीवा) शत्रुलोग (नः) हमको (मा, तारीत्) मत सतावें (च) और (नः) हमारे (किंचन) मोक्ष सम्बन्धी किसी भी ऐश्वर्य्य को (मो आममत्) नष्ट न करें (इन्दो) हे परमात्मन् (इन्द्राय) कर्मयोगी के लिये (परि, स्रव) सुधा की वृष्टि करें ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में मुक्तिरूप फल का उपसंहार करते हुए सब विघ्नों की शान्ति के लिये प्रार्थना की गई है कि हे सर्वरक्षक भगवन् ! वैदिक कर्म तथा वैदिक अनुष्ठान के विरोधी शत्रुओं से हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ताकि वह हमारे किसी अनुष्ठान में विघ्नकारी न हों और अपनी परम कृपा से मोक्ष सम्बन्धी ऐश्वर्य्य हमें प्रदान करें, यह हमारी आपसे सविनय प्रार्थना है ।।४।।

नवम मण्डल में यह ११४वां सूक्त समाप्त हुआ ।।

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे ऋक्संहिताभाष्ये
नवमं मण्डलं समाप्तम् ।।

Scanned by CamScanner